

## सुशचिपूर्णा, रोचक, अष्ट, सप्रहणीय उपन्यास

धनरत्नाय धनहोत्रा	बाहेर (पुरस्कृत) २.२०	बाहेर वधन शर्मा वध	धारावी ३ ३
समुता प्रीतिम	प्रमू ३ ००	श्री-श्री-श्री	३ ०
पक्ष	मोर की किरणें २ २३	पुष्पीलाय शर्मा	विजय ३ ०
पक्षपुत्रमार वीर		ब्रह्मा	बर्बर हुरी १ ०
पुत्रपुत्र राम	पुरस्कृत सचिन १ ००	वसन्त प्रभा	
रा० कृष्णमूर्ति		धरुवी ठरवीर (पुरस्कृत)	३ ०
मोर की प्रमिका (सचिन)	४ २०	भारचीरी किमव रौनिम्व इमराही	०
प्रास्कर वाइएड सौर्य की रेखाए	१ ०	योद्धा चोपडा	नीर के घाने
कचनमता सारवान		बलवत् शर्मा	इमान (पुरस्कृत) ४ ३
	पुनरुद्धार १	पञ्चमाला वीरव प्रमोद	वीरव ३ ०
कचनंग		बादलान्न शर्मा वान	बाटी की पीर ४ ०
इमानियत फिर भी जीवित है	१	रघनी बनिकर	
कृष्णबोहन राजवंशी		कामी लक्ष्मी (पुरस्कृत)	१
बीने बिन (सचिन)	४ ०	राजाराम धारवी प्यार पीर विसा	३
गोविन्दचलन वीर		रायकृष्ण	बहुके वधन २ २
वत-जयानि (पुरस्कृत)	४ ००	राधावतार स्वामी	समाधान २
पाठा (पुरस्कृत)	४	रमिय रायव	घाँसी की बीने २ ३
वध ६ ३		लक्ष्मण विपत्ती	बारकछाया २
शरों के सपने ६ ३		विजयकुमार पुजारी	पान्थदान ३
पॉर वेद-जी-ना (पुरस्कृत)	४	विजय प्रयाकर	निधिफल ३ ३
कमुगतेन धारवी	पपपमिठा २	वीरव मरियानी	पञ्चतरकाना ३
डोरिन नैनरल	पाप की गली १ ०	डोरीवनी से डोरी वानर ठक	३ ३
लक्ष्मी विचित्रकर विस्मै		हीनदा ३ ०	
डो मर बाल २ ०		किन्ना नर्मदावन पञ्चार्ई	२ ३
पुनीठी (सचिन)	२ ३०	विदुटीरमन	४ ३
मुगंवेद	कमीन बराना ३ ०	सिबसापर सिध	राजतिलक ३ ३
	बाप-बेटे ३ ३	डूब जगन घावी (पुरस्कृत)	४ ०
धपायकर विजय	कुम्भे वीर ३ ०	पत्ते फिर पडे	४ ०
देवदूत विद्यापी		लज्जोव नीरियान	दोस दिन ३ ३
		हरिवन	४
		नीलाचरल वीरिण	डूबन वधन ३
		ईतराव 'रुक्म' पदेर-जाउण	३ ३
		हरमन हेम	सिद्यार् ३
		नीलाम्बा वडेन	
		केतो की बोद ने (पुरस्कृत)	४ ३

# वैशालीकी दत्तकपुत्री

---



शिवकुमार कौशिक

आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-६

VAISHALI KI DATTAK PUTRI

(A historical novel)

By

Shiv Kumar Kambhik

Rs. 8.50

COPYRIGHT 1961 ©

ATMA RAM & SONS, DELHI-6

प्रकाशक

रामभाल पुगी संवाकक

आत्माराम एण्ड संस

कावनीरी गेट दिल्ली

हीन भास नई दिल्ली

बीडा रास्ता जबपुर

माई छीरा गेट जामनगर

बैनमगुन रोड मेरठ

विश्वविद्यालय लोक अण्डीगढ़

मुद्रक : कपूर ६१

प्रथम संस्करण १९६१

मुद्रक

मेवरेस्ट प्रेस, दिल्ली

८ अमनियान रोड दिल्ली ६

75 ATMA RAM & SONS-111

स्वर्गीय पिता श्री  
और  
स्वर्गीया माता (माँ)  
को



वास्तव में यह एक संयोग की ही बात हुई। धीरे, संस्कारों का इसमें—नया कुछ—  
 कितना प्रभाव है किमहात्मन उसकी चर्चा एकदम निरर्थक है। कारण? समस्त  
 प्राय विस्वास न करें। पर, वे श्रेय हैं, यह मैं आपसे केवल यूँ ही बहकाने भर के  
 लिए नहीं कह रहा। भाषा है भाषा इतना विस्वास तो कर ही लेंगे।

यदि मैं आपसे यह कहूँ कि इसी क्षण में मेरे दो क्षण्य हो चुके हैं तो आप  
 इस पर मुझे विस्फारित दृष्टि से तो देखेंगे ही संभव है विस्वास न कर हँस भी लें।  
 धीरे संभवतः पूछने लगे—'अच्छा इसका कोई प्रमाण?' तो फिर, क्या मैं आपको  
 छात्र-छात्र बता ही हूँ? एक दिन मैं भी इसी प्रमाण सन्न विक्षेप से भावपित हुमा था  
 धीरे अनुमति एवं आत्मविश्वास की उपेक्षा कर केवल उन्नी को पाने का सोम संभरण  
 नहीं कर पाया था। वास्तव में उसे पाने के लिए सत्त प्रयत्नशील हो उठा था। यूँ  
 कहो भी कि उसके पीछे बीबला हो गया था किन्तु हाथ पस्ने कुछ नहीं पड़ा। धीरे,  
 जब कुछ-कुछ वृद्ध हाथ लगा भी तो तब बीबलासी का सारा श्रेय विनाश के कपार तक  
 का पहुँचा था। सो कैसे? यह मैं बाद में बतलाऊँगा। किसके कारण? हाँ यदि यह  
 पूछो तो वह कुछ ठीक भी है। तो फिर क्या ही हूँ? वह अपराधी स्वयं मैं ही हूँ।  
 भला धीरे कोई शर्मो होता? अपना शोष किसी धीरे के बिर मरूँ मेरी यह शरत न  
 तो पहले ही नहीं रही धीरे न पाव ही है। भाषा है मेरी इतनी ही बात तो आप  
 मान ही लेंगे।

कराबिद् मही कारण रहा हो कि प्रस्तुत उपन्यास की पांडुलिपि तैयार होते  
 समय धीरे फिर उसक परवाह भी जब-जब बीबलासी जाने का प्रयत्न उठा मेरा मन  
 श्रद्धालु भी जाता धीरे साथ ही एक टीस-सी से कराह भी उठता। श्रद्धालु इसलिये  
 जाता कि तब मैं बेबी सिद्धा को जीवित छोड़ पाया था धीरे मेरा यह वृद्ध विस्वास  
 बना था रहा था कि वह इस समय भी जीवित ही होगी। पर मैं उस सीम्पुको  
 के दर्शन या सङ्घना। परन्तु बूढ़े ही जण मन में एक संकोच उठ उठा होता भला  
 किध यूँह से उसके सामने जाऊँ? परन्तु इस सारी अवधि ही तो किमह-सी बनी रही।  
 संकोचबरा अवका आत्मभ्रान्ति के कारण उबर पैर न छठ पाते धीरे फिर न जाने क्या  
 कुछ सोचते-सोचते एक पटना विधेय जैसे वह कम ही बटी हो मैनों के सम्मुख  
 बिबर ही उठनी। तब उस पटना को सर्वना बनीव रूप में अपनी दृष्टि में पटक  
 देक मेरा मन बुरी तरह से कराह उठता। फिर भी पाण्डुलिपि को पढ़ने वाले कुछ  
 उदार-दुर्बल मित्रों ने संतत उबर की ओर जाने की मुझे, जैसे बकेत ही तो बिबा।

धीरे, एक दिन जब मैं संभ्रा बला में अपने साथ कुछ परिचय-पत्र ले पटना स्टेशन पर चला तो बसि मन सकोच की ठिठक धीरे उल्लासोच्छ्वास की स्फुरण का एक साव ही तो अनुभव कर जठा ।

हाँ तो मैं संभोग की बात कह रहा था ।

प्रारम्भ में सोचा था कि यदि किसी दिन बेबी चिप्या के बर्तन-नाम की बात धा ही गई या फिर मैं कहूँ कि सोमाप्य से वह सुयोग मिल सका तो फिर भला इस पाण्डसिधि से भेषस्कर धीरे क्या उग्रहार हो सकेया जो उसकी सेवा में भेंट किए जाने योग्य है । किन्तु साव ही इशान ही घाता—'इस क्वाणक में कुछ भी तो ऐसा नहीं जो उसे प्रविष्ट हो ।' अतः मन पर बात कुछ बान-सी नहीं पा रही थी । पटना पहुँचते-पहुँचते तो जैसे वह बुनिया धीरे प्रपाङ्क हो उठी । कुछ रात का आपरज धीरे अचर अमर से पूरे चार प्रहर की मात्रा की बकान इतर मन पर अन्धा तुपा वह बुनिया मार । स्टेशन से निकल रिक्श में बैठ जब मैं उग्रार ही धीरे बढ़ा तो अंतवनेता को निद्रा से कोमिल पाया । नेत्रों के लिए बहुत कुछ गया था फिर भी मन की वह बुली अपने में अघिकाधिक लसझठी ही रही—कि सहासा सम्मुख विद्या से प्राते एक रिक्से पर वृष्टि का टिकी । रिक्शा ठीक सामने थाकर जानू से नी निकल गया किन्तु उसके बाह भी वृष्टि मुड़कर उतर ही की धीरे बेलती रही—एक गीर बहाँ सोम्य मुबी ने अपनी सवन स्वामल केस राधि के वृषे जूँ पर स्वैठ कमल-गुण्य घटका रखा था । इस मननामिराम व्रम को देख मेने मुक से मानों हठाव निकल गया—'अनो किराए के वृषे बगुल ही गए ।' परन्तु, दुरन्त बेबी चिप्या का ध्यान घाठे ही मैं उस पन्नाठ नीवना के प्रति अड्डाधिरैक से गठ बस्तक हो हर्षोन्नास से समगता कह जठा—'बेबी ठेरे इस कय को देख मैं तो धाव सन्मुख बन्म हो गया हूँ । पाटलिप्राम के इस भू पार-संस्कार का अविठ रक तुने निस्सर्विह स्तुर्य कार्य किया है ।'

धीरे फिर मेरे नेत्रों के सम्मुख सहासा ही तो कोई झाँई इन्वार लपं पूर्ण का वह छाँठ स्मिर-मन अरोवर अपने पूरे आकार-प्रकार के साव रँग-सा पवा, जो वहीं कहीं सवा विभिन्न रनो के कमल-गुण्यों से आन्ध्रारिठ रहता था । भगवान उवागत अपने निम्बु संन के साव बर कनी बीधाली की धीरे से राजबूह को अरवा राजगूह से बीधाली की धीरे बाते ही वह उस अरोवर के पास अवरम ठहरा करते । कभी-कभी तो वह यहाँ कई दिनों तक ठहरे रह अरोवर में गिने गीले रक्तिम धीरे स्वैठ कमलो की मनोहारी छटा को निहारा करते । मयपराज विम्बवार को जब जनकी इस कवि का पता चला तो उन्हीने अपने इस धाराप्य देव के भिण वहीं अरोवर क निकट एक विहार बनवा दिया था ताकि भगवान को कोई बर न हो । मैं महात्मा बुठ के अनेक अड्डालु राजा सामन्त एवं श्रेष्ठी-जनों ने उनके लिए न जाने कहीं-कहीं विहार बनवाये थे परन्तु इस विहार का अपना एक विशय महत्त्व था । इसी विहार से कुछ दूर नर ही तो अर्वाठ गंगा के उस पार अग्निसेप की सीमा प्रारम्भ हो पाठी थी । धीरे, इन धीरे मनन राज्य का ही । अग्नि सेप यह पाराध्यात्मक घातक प्रणाली का आम्बस्यमान प्रतीक का ही भगव राज्य एक असात्मक घातक पद्धति था । रंग-विजय क बाद भगव राज्य में विज संघ को भी अपने में मिला आन्नाम्य विस्तार की बात सोची किबल सोची ही

नहीं वरन् हम सहाय सं कई बार आक्रमण भी किए, परन्तु वे सभी विफल निश्चय हुए। और, अंततः राजा विम्बसार को बर्जित संघ के साथ संधि कर लेनी पड़ी। बीजापुरी इसी बर्जित संघ की राजधानी थी और तब महम राज्या की राजधानी थी कच्छहार अथवा पञ्चतीय यूप्र नामा की योद्ध में बसो राजगृह नगरी।

इस बोना ही नगरियों का अस्तित्व अति प्राचीन था और उनकी यणना उस समय के अन्य उत्तिपद प्रमुख नगरों जैसे—कोशाम्बी उज्जैन व्यावस्ती वाराणसी एवं तक्षशिला धानि-आदि के साथ की जाती थी। अंग राज्य के विहित ही जाने के पदपाद उसकी राजधानी बम्पा का नैमकपूर्ण प्रभाव कुछ-कुछ लीण हो जाता था पर शेष सभी नगरियाँ मानों अपने नरमोत्कर्ष पर थीं। कोशाम्बी बल्ल राज्य की राजधानी थी और वहाँ राजा उदयन राज किया करता था। उदयन का बीणा बालन पुत्र प्रिय था परन्तु अन्य प्रवेश में स्वच्छर विचरण करती ह्राषियों को पकड़ने में उसकी विशेष क्षमता थी। एक प्रकार से यही उसका मुख्य धाँसेट भी था। उज्जयिनी के राजा अश्व प्रद्योत से उसकी अथवा उसके अश्व प्रद्योत की ओर युद्धोत्था थी। एक बार अश्व प्रद्योत ने उस पकड़ने के लिए एक बड़ी ही पद्धतपूर्ण आलु बनाई। उसने अपने सीमान्त पर जो बलसथान उदयन की सीमा से ही लगती थी एक काष्ठ निर्मित ह्रापी बना और उसके अन्दर अपने कुछ सैनिकों को बैठा दिया। अन्तर निकट ही में कुम्भो-आदि की घोट में अन्य सैनिकों को भी छिपा दिया। अपने राज्य की सीमा पर एक नए ह्रापी के जाने का समाचार सुनते ही राजा उदयन उसका धाँसेट करने आस पड़ा। जो सैनिक ह्रापी के अन्दर बैठे थे उन्होंने राजा उदयन को आता देकर उसे तीव्र पति से रोड़ाता धुक कर दिया और अंततः उसे अश्व प्रद्योत की सीमा में ले आए। उदयन भी बीणा की अंकारों पर भ्रमता हुआ उधक पीछे-पीछे बीड़ता रहा और, इस प्रकार वह छिपे सैनिकों से भिर गया।

सैनिक उसे पकड़ उज्जयिनी में आए।

यह तो आप जानते ही हैं उन दिनों अंग्य काल में ह्राषियों का विद्यय महत्त्व होता था। एक राजा की सेना में बिजने ह्रापी होते अतने ही परिमाण में उसकी अन्वु सेना पर अति सम्पन्नता की पाठ हुआ करती। यदि किसी को स्वच्छ में भी ह्रापी बीच जाता तो उसे एक धूम मरण माना जाता। महारत्ना सुद्ध की माता मामा देवी अथ परमेश्वरी भी तो कहते हैं उन्होंने स्वच्छ में एक ह्रापी ही देखा था। ठीक वही ही बात अज्ञियों के बीबीसमें दोषकर वर्तमान महावीर की माता देवी त्रिशला के सम्बन्ध में भी कही जाती है।

हो तो राजा उदयन को जब बंसी का में राजा अश्व प्रद्योत के सम्मुख अस्तुन किया गया तो राजा अश्व बोला—“यदि तुम मुझे ह्रापी पकड़ने का मन्त्र दिखाओ तो मैं तुम्हें मुक्त कर दूँगा।”

“अम्भया क्या?” उदयन ने बंसी ह्रापी में भी जैसे लगने पूछा।

अश्व प्रद्योत ने उसके मुक्त पर हम दशा में भी अन्व का आन्व छाए हुआ देर भोज से अपनी भर्षे छान कहा—“अम्भया क्या तुम्हें यही मरवा दिया जाएगा।

उदयन अतिना पराजयनी था उतना ही नीति कुशल भी। इस पर उसने कहा—



“राजन् मैं प्रवचन ही मन्त्र सिखा सकता हूँ पर उसके लिए तुम्हें पहले मुझे कुछ रूप में मीन मरे सम्मुख एक शिष्य की भाँति प्रणाम करना होगा।

तब धर्मिकीस लोगों का ऐसा विश्वास था कि राजा उदयन भीष्मा की भक्तियों से हार्मिया को बंध में करता है परन्तु जब प्रद्योत की भारणा थी कि वह प्रवचन ही कोई अमलकारिक मन्त्र जानता है। घत वह उसे बामने के लिए भातुर था। परन्तु माय ही वह स्वभाव से धर्मिणी हीर ओषी था घत उसने उदयन का प्रस्ताव स्वीकार करने में धनती हेरी समझी। कहा जाता है अत्यधिक ओषी होने के कारण ही उसका नाम क सात्र जब मर गया था। परन्तु इन समय उदने भी शिष्य धारण नहीं किया। कारण वह उदयन की हत्या कर मन्त्र को खोना नहीं चाहता था। घत उदने उदयन से कहा—“अच्छा यदि तुम मेरी इच्छा के किसी अन्य व्यक्ति को भी यह मन्त्र सिखा दोये तो मैं तुम्हें मुक्त कर दूंगा।

उदयन ने यह सहर्ष स्वीकार कर लिया।

जब प्रद्योत की कन्या वासववता बड़ी निपुण थी। घत पिता ने अपनी पुत्री को ही उपयुक्त समझ उसे इस वीद्या के लिए बुना। परन्तु, उनके सम्मुख इस सम्बन्ध में भी जैसे एक दुभिया थी। वह अपनी पुत्री का उदयन के सम्पर्क में नहीं जाने देना चाहता था। घत उदने उदयन से कहा—“मेरी एक कुदड़ी बायी है वह तुम्हें प्रणाम कर मंत्र सीखेगी। उदर, उदने अपनी पुत्री बामवता से कहा—“एक कोड़ी व्यक्ति हारी को पकड़ने का मन्त्र जानता है तुम उससे वह मंत्र सीख लो।”

धीर फिर राजा ने दोनों के मध्य एक प र का बतवा दिया।

एक दिन क्या हुआ वासववता मन्त्र के कुछ घटारों का ठीक से उच्चारण करने में कुछ बुर-सी गई। इस पर उदयन ओषित हो बोला—“घरी ये कुदड़ी क्या तेरे होठ मोटे हैं।” तब तो वासववता को भी ओष घाय बिना न रहा। वह भी उत्तर में धारण कह उठी—“घरे धो कोड़ी क्या तू एक राज कन्या को कुदड़ी कहता है ?

उदयन की ममत्त में नहीं आया कि धारिण वह मायता क्या है। उदने परवा उठाकर उदर ओषा तो जैसे खल्वोद्घाटन हो गया केवल खल्वोद्घाटन ही नहीं बल्कि वे एक दूसरे पर धारण भी हो गए।

वैद्याधिको ने जब इन प्रसंग को सुना तो वे लुभ हँसे खूब हँसे। वासवव में क अत्यन्त विनादी स्वभाव के वे धीर धामास-प्रमोह प्रिय थी। परन्तु इस घटना विधेय के संघर्ष में मैं जो बात कहने लगा था वह तो अभी रह ही नहीं। एक दिन प्रलय-म्यस्त उदयन धीर बामवता ने धरती से भाग जाने का पदमन्त्र रखा। उदरवात का उर बत्ता ने घन पिता से यह कहकर भद्रवती नाम की हृदिनी मयबा भी कि शुभ मुहूर्त में मंत्र निद्रि के लिए एक धीपधि मानी है। धीर जब प्रद्योत उदयन कीड़ा के लिए गया था तो बामवता धीर उदयन दोनों ही धरमर वा अद्रवती हृदिनी पर उदार है। उदयनिनी में वीर्याम्बी के लिए माग निकसे। उदयन व हारी जाते में प्रत्यक्ष कुलम या फिर भी कीड़े से भेरे मये धरवारीही वीरिका ने उन्हें बर ही दिया। किन्तु बामवता भी कोई कम अनुर नहीं थी। उदने भी इनका उदाय पढ़ने ही से विचार लिया था। वह घने पिता के काय में स्वर्ण मुद्राई लेनी धार्य थी। उदने ने स्वयं

मुझाएँ मार्ग पर बिखर रहीं। धीरे धीरे जब जड़ों बीनने में व्यस्त हो गए तो जगने जगमग की धीरे धीरे कर हृमिली को धीरे लेज मगामे को कहा। इस प्रकार वह मारे रास्ते मुझाएँ बिखेरती गई धीरे धीरे सैनिक उन्हें व्यस्त भाव से घटोरने रहे।

यह सुन जानते हो बँदासिकों न क्या कहा था ? के भासे—“राजा मे अपने नेतन भोगी सैनिकों को जिस काम मे भेजा था, स्वर्ण मुझाओं के भोग में उषकी उगू धिन्ता ही मही रह्यो। बास्तव में बँदासिकों का यह कहना घञरघ उषिन ही था बरोकि उनके यहाँ की रक्षा ब्यबस्था सर्वथा भिन्न थी। उनके यहाँ कोई भी तो नेतन मानी सैनिक मही था। के तो निष्ठाभाव से अपने मणराज्य की स्वेच्छया रक्षा करते थे। उगूनि महानपरी बँदासिकी के चारों धीरे ऊँची धीरे मा ७ जिहरी प्राचीन बनाई हुई थी भिन पर बड़े हो सभी मायरिक बारी-बारी से पहुँच देते थे। ही घात्तरिक ब्यबस्था के लिए मणराज्य ब्यबस्था नियुक्त थे। परन्तु बाहर की धार से जब कभी कोई संकट घा बड़ा होता तो सभी घञरघ से सञ्जित हो उसका सामना करने के लिए दम के दम बनाकर निकल पड़ते। उनकी धारी धिन इन एवला ही में थी। यहाँ कारण है कि चारों धीरे साभ्राज्य लिप्यु राजाओं से बिते रहने के बावजूद इन एकमात्र मणराज्य का अस्तित्व हीं चहुँ सका था।

यूँ, इमी के पास यन्त्रों का भी एक मणराज्य था। परन्तु वह इतना धक्तिजानी मही था। एक प्रकार से बँदासिकी मणराज्य हो उसकी रक्षा प्राचीर बना हुआ था। बँसे भी बँदासिकी के लिञठकियों धीरे पावा एवं कुसोबास के मन्त्रों में परस्पर ब-बु-बान्धव का सम्बन्ध था। एक-दुसरे के प्रति उनमें घरमन्ध स्नेह था। के एक-दुसरे के जलनों में न केवल समान उत्साह से सम्मिश्रित होते बरन् संकट के समय जब से कथा भिजाकर उसका सामना भी करते। यूँ कभी-कभी जग में भी परस्पर कोई बिवाद हो जाता। परन्तु उसका प्रभाव कोई बिधाय स्थायी हंस का न होता। इमी घदर्म में मुझे इस समय एक बटना बिदेह की स्मृति सचीव हो उठी है। बँदासिकी के पास ही एक समी चौड़ी धनिजक पुष्करिणी थी। वह जब भी है धीरे जगमें मैने बोरियों का कपड़े बोते देका है। परन्तु सब उसका घरमन्ध पुनीत महुरव था। धाय बावने ही है बँदासिकी के प्रत्येक परिवार का प्रमुञ्ज राजा कहनाता था धीरे इस प्रकार वहाँ एक नहीं घनेक राजा थे। राजा की मृत्यु पर उसके ग्येष्ठ पुत्र को उत्तराधिकार में यह पद भिगना। जब वह उष पर पर धमि विरुद्ध धिया जाता तो वह सप्तमारोह इन पुष्करिणी के पकिर बल में स्नान करता। धीरे कोई भी ब्यक्ति धयवा राजा भिगत भी महुरवपूर्ण बरों व होता दम पुष्करिणी में उठे धफने बीबन में केबत एक बार ही स्नान करन का घदमर भिन्न पाता था। देवी घाभ्रासमी जब कसा के घविष्ठाभी पत्र पर प्रनिठित हुई थी तो जगका भी इसी पुष्करिणी में धमिदक धिया गया था। सब कई दिनों तक घमबरत कन में उनके उठ पर मृत्य एव समीतमुञ्ज सवारोह बनता रहा था।

ही तो एक बार बना हुआ मन्त्र राज बंधुम की पत्नी मन्त्रिका को रोहूद हुआ कि बँदासिकी-पुषाओं द्वारा प्रमुञ्ज इन धमिपेक कुञ्ज का जपदान भिन्न जाए। बंधुम उठे कुञ्ज पर से धाया धीरे को मैनिक जगकी रत्तार्य नियुक्त थे उन्हें अपने मार मगाया। घरमन्ध मन्त्रिका ने जग का लूच धानन्ध भिया। भिष्ठाभी राजाओं को जब यह बना

जमा हो उन्हें धरमन्त जोष घाला धीर से मनुष्य के रज के पीछे-पीछे भाग लिए, धीर उसे पकड़ धर्मपथ बचस्यमा में कर दिया। सिक्खबी मूं धरमन्त उचार हुदय दाबिन से परगु से अपनी परम्प राधों की रक्षाभ भर मिटने को सदा र्तयार रहते। इसके लिए फिर जाहे परस्पर ॥ मिडेंठ क्यों न हो जाती।

अपनी सुस्थापित परम्पराओं के प्रति वैधानिक नियमों निष्ठावान से यह एक ठम्य विरोध से विहित हो आया। मगध राज बिम्बसार वैद्याधी के महात्म्य राजा नेटक के आमाता से। इपर बेबी धाअपाजी से भी बिम्बसार ने प्रणय किया था जिसकी पुत्र बिबाह में परिणति हुई थी धीर, इसके कमस्तक्य समय नामक पुत्र हुआ था। राजा नेटक की पुत्री का नाम बेस्तना था जिससे हुस्त धीर बिहुस्त राजकुमार हुए। वे दोनों ही पृथ्वी माई से। परन्तु इनके अतिरिक्त वैद्याधी की एक कन्या धीर भी थी जिससे बिम्बसार का बिबाह हुआ। उसका नाम बासवी था। बासवी के साथ बिम्बसार के बिबाह के पीछे भी एक कहानी है। बिबेह राज विक्रमक का मंत्री साकस अपने दो पुत्र सोदात धीर सिंह के साथ वैद्याधी आया। कुछ समय के पश्चात् साकस वैद्याधी में नायक बना गया। उसके दोनों पुत्रों का वैद्याधी ही में बिबाह हो चुका था। पिता साकस की मृत्यु के पश्चात् सिंह भागक हुआ। पौषाल ने ज्येष्ठ होने के कारण इसमें अपनी सप्रतिष्ठा ससम्भी धीर वह राजपूह बना गया। छोटे भाई सिंह (सिंह सेनापति नहीं) की एक पुत्री बासवी थी। गोगल राजकुह भाते समय किसी प्रकार अपने साथ बासवी को भी ले गया धीर बिम्बसार से उसके साथ बिबाह कर लिया। मापाल राजा का एक प्रमुख सहायक बन गया। यह बासवी बिबेह बंध की भी धीर कुमार कोणिक बाह में अजातशत्रु इली से उतरान हुआ था। इसी कारण उसे बिबेह पुत्रों कहा गया है। बेस्तना एवं बासवी के अतिरिक्त बिम्बसार के धीर भी कई रानियां थीं। कौशल अरेश प्रसेनजित की बहन काषस बेबी उदकी पट्टमहिषी थी। जब राजा बिम्बसार को अजातशत्रु ने बन्दी बना काठपार में डाल दिया तो वहाँ अपने पिता से मिलने के लिए अजातशत्रु ने केवल कोषस बेबी को ही जाने की अनुमति दी थी। बन्दी मूह में वह राजा के लिए चोरी-छिपे भोजन से जाती। अजातशत्रु को जब इस रहस्य का पता चला तो उसने पट्टमहिषी की राजा से मिडेंठ समय तमासी लिए जाने का आदेश दे दिया। इस पर वह अपने धीर पर सहृद सहाकर से जाती। धीर दुषादीहित बूड राजा उसे बाटकर ही अपने को तृप्त हुआ समझता। किन्तु अजातशत्रु को जब इसका भी पता लग गया तो फिर उसने रानी कोडम देवी का आना पुनः ही बन्द करवा दिया। बाह में जब अजातशत्रु ने अपने पिता की हत्या कर दी तो यह रानी इतनी शोकाभिभूत हुई कि उसने तत्पश्च ही तो अपने प्राण त्याग दिए। बिम्बसार से अन्ध विधियों के साथ भी बिबाह किये से जिनमें से एक मद्रराज की दुहिता सेमा भी थी। धीर इस सेमा को अपने रूप का इतना गर्व था कि बड़ महारामा बूड के सामने जाने तक से हिचकिचाती थी कि कहीं बड़ उनके रूप की निन्दा न कर दें। प्रसू में वह पंच-सहायियों से धिरी राजनगरी के बाहर उतर बिदा में अस्थित बिम्बराज में मन्वान तथागत से मिली धीर धिम्गुली हो गयी। बिम्बसार उग्रमित्री से पचावती नाम की एक सुन्दरी बीवया को भी ले पाया था। धीर,

द्वैपाली में जो पन दिनों यह भी कहा जाता था कि राजगृह की सामन्ती नामक एक राजनरत्नी ॥ श्री विम्बसार का एक पुत्र था जो बाद में उसका गृह-बंध बना । वह भीषण कुमार मृत्यु के नाम से सुविख्यात हुआ । यूँ सामन्तीके राजनरत्नी बनने के पीछे श्री एक कहानी है, पर उसकी यहाँ चर्चा न कर कुछ और बताना ॥ उचित होगा । कहते हैं—जब सामन्ती मर्यादती हुई तो उसने नगर में डोंडी पिटवा दी कि वह दग्गाबत्वा में है पर किसी से न मिलेगी । उसे नय था कि जब उसके मर्यादती होने का समाचार चारों ओर फैलगा तो फिर उसी उसकी उपेक्षा करने लगेगे और इस प्रकार वह तिरस्कृत हो रहेगी । कुछ समय पश्चात् जब उसके पुत्र हुआ तो उसने उसे रूप में रखवा राजनरत्नी के मुख्य राजपत्र से लगे एक कड़े के दरपर रखवा दिया । एक नवजात शिशु को इस प्रकार देख बहो भाते-भाते मायारकों की चीड़ एकत्र हो गई । समय से देवा घातपाली का पुत्र राजकुमार धर्मव भी उस समय उठी मार्ग से था रहा था । उसे उस नवजात शिशु पर दया था गई और वह उसे अपने मासाव में लिका ले गया । जब वह कुछ बड़ा हुआ तो उसे विचारबन के लिए उद्योगिता विरवविद्यालय भेज दिया गया । वहाँ से वह आचार्य धाम्रेय से चिकित्सा शास्त्र की बीसा ले करने इस विषय में वारंयत हो मोटा था । चिकित्सा के धर्म में उन दिनों उसके नाम की दूर-दूर तक क्वाठि थी । और वह अल्प चिकित्सा में इतना रस था कि एक वेद की भी दो भागों में चीर सकता था । महत्त्वा कुछ जब कभी बीमार पड़ जाते तो उनकी भी बड़ी चिकित्सा किया करता था । और, अन्वयिनी के राजा कच्छ ब्रथाव ने भी उसे एक बार अपने किसी असाध्य रोग की चिकित्सा के लिए साराह बुलवाया था ।

ही तो राजा विम्बसार के धर्मगी विमिल रात्रिया से इस प्रकार एक नही बरन् धर्मक पुत्र से विमले से धर्मिकोच के नाम ही वैद्याधिको को क्या स्वयं मायनों को भी विरिष्ठ नहीं के कोष्ठिक इस्त विहस्त धर्मय नखिसेम मेर कुमार, विमल, कोरल तिसन, अयसेन और नूड नाम वैद्याधिको की धर्मय ज्ञात थे । बटाते हैं—सिलव राजा को धर्मय जिन था । वह उसके लीम्ब स्वभाव और कार्य निपुणता पर अत्यधिक मुग्ध थे । इतने मुग्ध थे कि धर्म विषय के परधान कुमार कोष्ठिक को जब बहो का राजपत्र बना दिया गया तो राजा ने सिलव को ही अपने राज्य का सारा कार्य सौंप दिया था । सभी सामन्त एवं समाज-जन उसकी धारण स्वबत्वा के प्रयत्न हो पने के उदा प्रजा में भी वह अत्यन्त लोकप्रिय बन गया था । किन्तु राजा का एक प्रमुख मंत्री धर्मदार सिलव के उद्योगी स्वभाव से तनिक भी तो प्रशन्न नहीं था । उसकी धारणा थी कि जब राजा ने कहीं सिलव को ही धर्मय पायित कर दिया तो फिर साम्राज्य की महत्त्वाकांक्षा का फलीभूत होना असम्भव है । और कर्पकार धर्मय प्रसार के लिए कृत-संकल्प था । वास्तव में, मन्त्र के राज परिवारों पर धवा ही से पुरोहित कुर्मों का प्रभाव रहा था । केवल प्रभाव ही नहीं बरन् कहीं के धर्मय राजा तो उनके समय निर्मित मात्र थे तथा एक प्रकार से वास्तविक धामक के ही थे । पर कर्पकार ने अपनी महत्त्वाकांक्षा को फलीभूत करने के लिए कर्मार कोष्ठिक को ही चुना । वह प्रारम्भ से ही महत्त्वाकांक्षा होने के धाय-नाथ कूर भी था । कर्मार ही कारण धर्मिकोच धर्मय धीर धामन्तपण धर्म प्रशन्न

नहीं थे ।

यं देवी द्विप्या मित मापिणी थी । तो भी वह कभी-कभी मेरे एक स्वामा विद्व सोय की घोर मेरा ध्याम धारकपित करण बिना न रहनी । नयन नत किए मन्त्र मन्त्र मुस्काते हुए बहक-बहती— 'विषयान्तर का यह गुण तो तुम्हारा ऐसा है कि यदि मैं उसे नात खम भेकर भी सीखती रहूँ तो भी नबाधिन् वताया भी परमे न पड़े ।' और तब मैं और से मिललिलाकर हूँग पकता । परन्तु साथ ही सखित भी हो रहता । बहता—'देवी रामा कर्मा मैं तो मू ही बहक गया था । और तब मरपभिक संकोच से उसक कपोली पर धारुर्ध भाभिमा विहर जाती । और मे ? बस मममुख हुआ-सा उसकी घोर निहारता रह जाता ।

हाँ तो मैं कह रहा था कि रामा द्विप्यार मरपि मण्डाप्यस रामा बेटक के जायाता से तपापि उम्होने जब कभी बैंगानी पर धारकमण किया वह उसकी रदार्य मोदेय बैंगानिकों की सबसे प्रथिम पंक्ति में बीलते । देवी धारकपामी की भी बैंगानी के प्रति कोई कम मिया नहीं थी और नायक विह तो प्रीतावस्था में ही और गति को प्राप्त हुए थे । अपने अधिमिलियत अधिमान 'प्रबेली-मुस्तक' पर बैंगानिकों का सचमुच रिठना करने का ? उसकी मान-मर्यादा के लिए वे हूँते-हूँते बीबन की बाजी मगा देते । वे कहा करते—'पुण्यात्मा पूर्वजों से उत्तराधिकार में प्राप्त यही तो हमारी समान सम्पदा है जो धार्यार्थ के किसी भी राज्य में बुलन है । बैंगानी का साथ धारन कार्य हमी प्रबेली-मुस्तक में सिद्धित नियमों के अनुसार बना करता था और वहाँ किसी व्यक्ति-विशेष का नहीं बल्कि अनुशासन का राज्य का और इस अनुशासन का उद्गम स्रोत था वहाँ का संवासार । उसके सर्वोच्च पद पर जो प्राचीन होता वह याव संवाहक कहलाता था । इस संवागार में सभी महत्त्वपूर्ण विषयों पर विचार होता । तथा कभी-कभी किसी विवाहास्पद विषय विषय को लेकर तो कई दिनों तक बार विबाह चलता रहता । परन्तु एक बार वहाँ को भी बहुमत से निरबध हो जाता वही बैंगानी का नियम बन रहता । देवी धारकपामी को जब जलपर कम्पाणी बनाने की बात बनी थी तो उस पर वहाँ कई दिनों तक विबाह चलता रहा था । कारण ? नायक महानाम कन्या को वह पर स्वीकार्य नहीं था और अपने पक्ष में वह समासकों के सम्मुख निरंठर धकाटय तक प्रस्तुत करती रही थी । धन्त में बैंगानी के नियम के तन्मुख नत भस्तक हो उसने बार घटें रलीं घोर समानकों को वे स्वीकार करनी पड़ी थी ।

बास्तव में धारकपामी हार कर भी जीत गई थी और जीतकर भी हार गई थी । सर्वमुखरी घोर कला मियुण होने के कारण यदि उधे बैंगानी की परम्परा के तन्मुख नत घिर होना पका था तो समासकों को उसकी हठ के सम्मुख । अपने प्रतिद्विंदों के निवट तो वह जैसे मडा हैं एक पहेनी बनी रही ऐसीपहेनी कि ।' ऐसा सभी बैंगानिक बहने थे । परन्तु देवी द्विप्या के निवट तो वह कुछ और ही थी । यूँ उसके मेषों में जननी छवि तथा ही घटकी-सी रहती परन्तु जब कभी किसी प्रसंगबध कोई बात बन पड़ती थी वह बहती—'नचमुच रिठनी धरल-हुरपा थी वह देवी ।' और फिर वह उठता स्मरण कर मध्यमिक माध विद्वान् हा पट्टी । उसके गीतित मेरों

को देख लक्षण ऐसा प्रतीत होता कि कोई स्वयं साकार रूप ग्रहण कर अपनी बुद्धि में स्थिर हो गया है। तब मैं देवी शिवा की ओर देखता रह जाता। उमने कहता—“गुने यह पूर्व जन्म का ही कोई संस्कार समझे कि वह मुझे यहाँ लीज लाया मला जितना पुनीत संस्कार रहा होगा वह जो मैं तुम्हारे दर्शन का सुयोग पा सका।” परन्तु, यह अन्तिम बात मेरे मन में धाकर भी होनी तक न पा पाती।

फिर, मैं मन ही मन बीधामो के उन शालों को समस्कार करता जिन्होंने अपने उदार स्वभाव के कारण मुझ जैसे परिकल्पन को भी अपने विशिष्ट समाज में प्रविष्ट कर लिया था। महत्त्वा बृद्ध ने एक बार विष्णुशिवियों की समूह में घाते देव अपने प्रमुख सिद्ध धाम्ना से कहा था—‘मायुष्यान धाम्ना यदि नूने भारी संख्या में देवों को एक साथ घाते कभी न देखा हो तो धाम्ना बीधामी के इन निष्ठाशिवियों को देख ले। तथापत्त प्रगवान् ने यह सबका उचित ही कहा था। फिर उन्होंने अपने भिक्षु संघ की रचना भी सो बीधामी यणराज्य के स्वरूप से ही प्रलिप्त होकर की थी। वास्तव में कथानी तो मन्वान बृद्ध ही हृदय-प्रिया थी। परिनिर्वाण से केवल कुछ दिन पूर्व जब वह बीधामी से अपने मन में समझा भी होकर भी उनका मन जैसे कुछ भारी हो गया। बोले— मायुष्यान धाम्ना बीधामी के मैं यह अन्तिम दर्शन कर रहा हूँ।

बीधामिकों ने जब यह सुना तो वे दुःखित हो तथापत्त के पीछे-पीछे ही गये। तथापत्त के बार-बार के अनुरोध पर भी वे मर को न छोटे। अन्त में मन्वान ने बीधामिकों को अपना पाप व उनके मोटने का अन्तिम अनुरोध किया और उन्हें निरस्त हो मोटना पड़ा। और मन्वान ने भी एक बार फिर तगर की मध्य अट्टामि नामों को अपनी बुद्धि में उतार जैसे अन्तिम समस्कार किया।

उन दिनों देहा ही कुछ था बीधामी का महत्त्व।

तथापि उसकी नीरवसुधे सिद्धांकित धम्म पताका पर कभी एक काला प्रम्बा भी लभा हुआ था। और जिस समय इस प्रम्बे को मिटाने का प्रयास जारी था उसी मेल वहाँ पदार्पण हुआ था।

एक-एक कर जब वे सभी घाते मानस पटल पर संवराने लगीं तो पटना की वह रात ऐसी प्रतीत हुई मार्गों पूरे एक पल्लवाड़े में फँस गईं ही। फिर तो वह घाटी रात करवट बरसते ही बीठी। और हर करवट के साथ मन का उठानसावन भी उद्वर होता बना। कभी-कभी अन्तर के किसी गुह्य प्रान्त में बँटी एक बुद्धि भी आत्मविश्वास की शिखर-सी जाती और तब अन्तस्तर में चिरकाम से प्राबद्ध एक कारण भी उठता उबलमा-सी उठती। मैं सोचने लगा—‘मैं यह कमन पुत्र लेकर भी गया और कहीं देवी शिवा ने ऐसे स्वीकार न किया था? क्या पल्ल एत छोटे पदवि ही मैं अपने मन में एक अम को ही प्राप्तता बना पा रहा हूँ? परन्तु तब साथ ही आत्मविश्वास भी अपनी पूरी वृद्धता से वह उठता—‘नहीं यह अम कदापि नहीं हो सकता करना देवी शिवा के निकट बँड में किसी विद्याम न बूज के नीचे प्राए एक मने बटोही की भाँति ही-तलता अथवा विद्याम का-सा आभास कदापि न पाता और न ही उसकी देह से पृथगी जग्या जैसे भीनी भीनी सुभाग से मैं अब एक न प्रचार न न-माया-सा रहता।’

मुझे तो निश्वास है कि वह मुझे उस समय भी प्रेम करती थी पर मे

भी वह मुझे कभी अपने धार्मिक गण में क्यों नहीं समेट ली ? पर, वह ऐसा करती भी कैसे ? तीन बानि वह कितनी विषय थी ?

पटना से बेमाली पहुँचते-पहुँचते रात हो गई । फिर भी सामान धारि रात में सबसे पहले सख्खरों ही की ओर मान लिया । कस ही तो पुनम हो कर चुकी थी इसलिए मगन प्रकाश विहीन नहीं था । रात्रि के एकाग्र में सख्खरों से सिमटी मिट्टी को कुरब बर में छोड़े चूमते हुए अपने मस्तक पर लगाने लगा तो मग जैसे कि काबू हो उठा हाहाकार करता हुआ वह कह उठा—“अरे यो-यश्वराज्य के प्रकाश-स्तम्भ भाब तेरी यह दुर्बला ?”

उस मुझे हुआ जैसे बन्धुवर सिंह सेनापति सम्मुख ही कड़े हों और पास ही ये देवी रोहिणी भी । और जैसे पितृवर गणाय्यस्य राजा बेटक सबैब की भक्ति पीठ पर हाव केरते हुए संसना के-से कण्ठस्वर में कह रहे हों—“बाबुसाल, तुम्हें तो सब प्रसन्न होना चाहिए कि भाब सारा भारत ही बँधाली बना हुआ है ; मबि यह बँधा सिकों का ही स्वप्न साकार नहीं हुआ है तो फिर मला वह धीर क्या है ?

जब छोले सख्खरों में भी सुपरिचित कृष्ण-जल मिल जाएँ, तो फिर मला दुबिधा किस बात की । जाँवनी रात तो भी ही घरा धीर भागे निकल गया । राजा विद्यास का वह बड़-बड़ कहीं कभी बाबाय्यस राजा बेटक खा करते थे उसी के पास तो गण-मन्दिर-संवागार का मध्य भवन था । उधरिमा विद्यापीठ से स्वापरय कला में बीजा हि बन्धुवर महासी जब बँधाली लीटे थे तो जहाँसे बड़े ही बाब से जसका पुनर्निर्मास करामा था । पापाल सगों की पुति उग्होने लड़ी-बड़ी हँटि पबबाकर कर सी थी । संवागार का उस क्या ही मध्य क्य नेषों के सम्मुख प्रगट हुआ था । एक बार उसकी ओर नैब उठे नहीं कि वे बस देखते ही रह जाते । उसके भिष्ट से जो भी भिक्तता, किबित् समय के लिए बड़ा से मस्तक मठ कर उसके सम्मुख परबस ही बड़ा होला और उसके सोपान को प्रगुसियों में बुहार उसके रक्कणों का नेषों से स्वर्ष करा मद् पद् कण्ठ से कहता—“ऐ बँधालिको के बेब मन्दिर, लीटे यह मख पठाका युन-युग तक सहारावे ।” किन्तु पाटलिघाम में गया कुर्व बनवाले समय मयब के कुटिल प्रमास्य बर्षकार की बक दुष्टि जैसे हर समय लगी पर टिकी रहती । साम्राज्य प्रसार की मातसा से उसकी बिल्ला बटकारें से कहती—“एक दिन बान के हरे अरे सेवों से महमहाती यह स्वलिम भूमि अषस्य ही साम्राज्य का प्रग बन कर रहेगी ।”

किन्तु, बँधालिकु शिखर थे । उन्हें अपने पराक्रम पर बुद्धि बिरबास था । जनमग हार्द-सी बप पूर्व उनके बिल पुर्व-बों से निष्ठा भाब से इन बलुसग्य की स्थापना की थी मन-ही मन उनका स्मरण कर, दीघ नवा ने कहते—“ऐ बलुसग्य के धारि देवो हूँ मैं धायीबार्द दो कि हम प्रगला सर्वस्व देकर भी इत पुष्य भूमि की रखा कर सके उगकी रसाय हमारा बस बना रहे हमारी एबता बनी रहे !”

ऊपर मगन पर से बिलकरी जाँवनी में यही सब कुछ छोचते निचारते में घाने बड़ा जा ही रहा था कि मगला वीरठिठ कर रह रहे । मीने चारों ओर दुष्टि प्रसारित कर जब नीब की ओर देला तो बस देखता ही रह गया—यहाँ कभी महावीर बेलुिम रल का मध्य प्रमास्य धड़ा था । और, लगी प्रमास्य में एक दिन । नी में घाया—“ओर है बिल्लाकर रात्रि के इस मुगसान में मैं मंत्रिका को पुकार लूँ । परन्तु इधरे

ही शरण अपने पर ईश पड़ा। मन-ही-मन बोला—'भला मेजरिका घब घड़ी काहे का होने मगी कौन जाने कहीं वह तो अपनी सबी चाखिमता के साबधन रही होगी श्रीर फिर मैं मारी मन से धागे बड़ने को छद्यत ही था कि इस बार मेरों के धम्मूख उपस्थित एक इस्व को देख मैं मयमीत हो उठा। एक काला गाय फुंकारता इसी दिशा में बना आ रहा था। मन में धाया कि उल्टे पीर ही भाग लूँ। परन्तु बूतरे ही शरण ऊँचे-नीचे टीलों का ध्यान कर उसे स्पर्श समझा खुकि यदि वह भी मेरे पीछे-पीछे दौड़ता तो उसके लिए वह प्रथम ही धनुकूल भूमि होती। घत-कड़ा रहा-कड़ा-कड़ा मन को धमझता रहा समझाता रहा कि यह प्रथम ही कोई निपटवान बंधासिक है जो धात्र भी बंधासी के घप रहे बंधव की रखा कर रहा है। फिर भला वह मुझे काहे को कुछ कहेगा? पर वह तो धब तक सर्वथा सन्निकट पहुँच चुका था। उसे देख मेरी देह बुरी तरह प्रकम्पित होने लगी। मैं सोचने लगा—'तब तो एक ऐसी भूम की ही थी परन्तु धात्र तो मैं जैसे बससे भी भयंकर भूज कर बैठा।' फिर, जैसे यह सोच मारी मनस्तोप हुआ कि 'जबो यदि कुछ हुआ भी तो अपनी बंधासी में ही होगा। तो भी पाण्डुसिपि का लोभ बना रहा और विचारने लगा कि क्या जो कुछ इतने परिधम से स्मरण कर मैं निविबद्ध किया है वह सब कुछ ही स्पर्श जाएगा। मोह से भला कब किसका साब घूना है। बवार भास की उस रात मैं कुछ-कुछ धीवम बयार बम रहा भी तो भी मेरे धप प्रवर्ग में स्वेद जल बुरी तरह फूँ रहा था। श्रीर, जब हाव क कमम की धोर देखा तो वह भी इस समय मूर म्म-धा-धा प्रतीत हुआ। भवमीत कण्ठ स्वर में मैं धोर से उस निर्जन प्रदेश में भिस्सा ही तो उठा—'देवी शिप्या ओ कन्वाणमयी देवी शिप्या तो क्या मैं धात्र भी वूँ ही लो' काऊँया?'

तब दूर विगत से धनि धाई—'धाचार्य शिष्य बबरधरो नहीं वह तो धामल-भुज धसण्ड देव है। क्यों क्या पहचाना नहीं?'

वह धुन में तो चकित रह गया। वह स्वर तो लचलुच ही बामा-पहचाना-धा लग रहा था।

धब बबरकि मैं बंधासी से लौट धाया हूँ तो धात्र निरन्धव ही उरमुकठा बस पूछे—'क्यों भी देवी शिप्या से भेंट नी हुई या बस मूँही लौट धाए?' तो फिर उत्तर में मैं धात्र धमी से केवल यही कहेया—'मडबनो, धापध का वह प्रेम ऐसा नहीं कि मैं इसकी दौड़ी पीठवा फिर—वह तो केवल मग-ही-मग नर्भ की बीर है। परन्तु धब धात्र इतने सहज धालीम भाव से पूछ ही रहे हैं, तो फिर भला मुझे भी कहने में क्यों कोई संकोच हो। तो मुझे जग-जग्यागर से मुरझता धा रहा धपना कमम-धुज धब धि देवी शिप्या के ध्यामम ऊँके पर घटकाया तो वह (कमल पुण) मुकुरित हो उठा। धोर ही देवी शिप्या पहले तो कल मुकुधाई-मी परन्तु फिर धात्र विमोर हो बोली—'देहे के संस्वार भी देखो तो कितने प्रथम है धन्यधा क्या धुम धाम घई फिर धाते?'

मैं मठ बसक हो बोला—'देवी धाप सत्य कहनी है।'

'धीर जब मे वहाँ से बसने मया तो मरे नैच कल धुराने धीर कुछ नये स्नेहसे धधुपरिठ-से हो उठे। तब देवी शिप्या ने उगँ धपने धावध के पस्ते से पाँउते हुए कहा—'धुम तो धप ही मैं बुकी ही रही हो, यह गणराज्य बबर धनर है धीर धब



तक यह है तब तक हम बार-बार मिलेंगे और बार-बार प्यार करेंगे”

किन्तु, मेरे मूँह से सहसा निकल गया—“बेबी सिध्दा तूम तो मुझे सबा मूँ ही बहका देती हो। खानती हो हम पूछे में यह कमल पुष्प लगाने की इच्छा मना कम बसकती हुई की ? प्रतीक्षा करते-करते वह बीबन तो बीत ही गया। मेरे बड़े बहज्जार बर्षे मी मूँ ही बने नथे। और बाब न जाने किस गद्दादेवी की कृपा से मन की यह साध पूरी हो सकी है। बेबी, एक साध और भी थी कहते छहते मेरी जिज्ञा सहसा कक जैसे जड़ हो गई परन्तु शोष्ठ जमके बरबात् मी कुछ कहने की इच्छा से छड़फड़ाते रहे। मैं याचना की-ती बाध दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए उसके बरखों में अन्तिम प्रयास स्वरूप बैठना ही चाहता था कि उसने मेरा हाथ पकड़ मुझे अपने आनिमनपाथ में समेट लिया। अपनी स्वल्पित दृष्टि से मुझे घापाव शीर्ष बुझारती हुई-सी बह बोली—“सब मुच में तो सब तक मूँ ही व्यर्थ का संकोच करती रही थी।”

और फिर, उसके बल में न जाने कब से बंदी हुआ मोक्षिलोप्य स्वास मेरे अन्तस्तन में सिहर-सा बना।

मेरा हृदय गुहमवा उठा। उसकी चुंबराची काभी केस रासि के मध्य सिधो मध्य ही थी कसौटी पर लिखी स्वर्ण रेखा की मूर्ति इतने दिन व्यतीत हो जाने के परबात् घाब मी बसक रही थी और उसमें से मीवी यानी बुबाध मी फूट रही थी। न जाने कितनी बार मन में आया था कि उधे की मर एकटक दृष्टि से देखते रह उसकी चुबाध सेता अपने अन्त और बाह्य को आसोक्ति कर मूँ और साध ही मन का सताप भी मिटा नूँ। परन्तु, न जाने क्यों सब मी मेरा साहस नहीं हो पा रहा था। कबाचित् बह मेरे मन के बाब को समझ गई मेरी अन्तर्धामिनी को ठहरी। उसके बैन मुस्कटा उठ। कितनी कल्याणमयी थी उसकी बह मुस्कटाइत और कितना पुनीत था जमका बह बुम्बन की उसने साहस कर इस बार मेरे समाट पर न जाने कैसे टका ही दिया था।

मेरा मन माना मचल उसके धाँस में चुबक रहा।

और अन्त में मेरे चलते-बचते बह उनिक क्षिप्त मुस्कान ॥ साध बानी—“बर्षों क्या तुम यह बसक्यो ही कि तुम्हें इस तरह जबाट मन बैब मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है ?”

और फिर न जाने क्यों उसके नेत्र सजल हो उठे मेरे मी। संस्कार सबमुच बड़े बलवान हैं। इस बार फिर मैं बीधानीसे बिदा हुआ हूँ परन्तु पूब की मूर्ति एक बस नहीं बरम् पीरे-बीरे। विगत की उन सभी घटनाओं का स्मरण करता हुआ-सा जिनमें सब यहि कछ कुमधुर है ना कुछ कट भी। परन्तु कुछ मी हों कैनी मी हो बगनाएँ तो बटनाएँ ही हैं ऐसी घटनाएँ कि जिनमें से कछ के साध मेरा मानो घट्ट संभ्रम हुआ हुआ है। परन्तु सब मना जममें मेरा क्या कछ रह बना है ? इतिहास के विस्मृत प्राय प नों के उगहे अपने धंक में को समेट लिया है ? अतः मेरा सब अपना कहने का कछ भी तो नहीं। और जो है वो तो बह सबके लिए ही है कम से कम बैदानिक तो ऐना ही मानते थे। र्मी ॥ देने सब अपने पाप को कैबल निमित्त बाध मान हटा लिया है और फिर सनधा या कुछ भी सहज स्वरूप बन गया है, बह प्रस्तुत है। उठकी अम्भ्राई घणवा बुराई से सब बितना घावका सम्भ्रम ॥ बस सजना ही मेरा भी।

## जातक-कथाओं में से एक प्रसंग

एक दिन उत्साह की ज्वलन में बौझती धाई, उत्सवित कण्ठ से एक परिचारिका ने अपनी स्वामिनी से आकर कहा—“देवी देवी देवी !” परन्तु इससे माने जैसे वह कुछ भी कहने में असमर्थ रही। कारण ?

उसका बचाव धनी भी पूरा रहा ना।

देवी धामपाली मध्याह्न का विश्राम कर धनी-धनी अपने प्रसादन-कर्म में धाई थी। मानवाकार दर्पण में प्रतिबिम्बित होते अपने असहाय धर्मों एवं अपनी मुक्त छवि को निहार वह जैसे अपने पर ही मुग्ध हो उठी। परिचारिका इतना उत्साह बिना कर भी जब कुछ न कह सकी तो इस पर वह कुछ भ्रमसा-धी गई। बोली—“देख मदिरे ! मैंने तुम्हें तिरनी बार धारण किया है कि इतनी मायुक न बन। धरी को मायुकता तो बन उतनी हो उचित है कि वह धर्मिण्यविज को सुन्दरता में संवार सके। धीर तू है कि धर्म्य बन कक बोलेगी यी कि।”

परिचारिका के मुक्त का फलता गाढ़ा रंग जैसे बहूँ बक धीर प्रगाढ़ हो गया। किन्तु, उसके नेत्रों में से प्रस्तुति हाता उत्साह धीर ज्योतिज हो उठा। संवत कण्ठ से मानों सप्रयास वह बोली—“स्वामिनी जानती हो धाम धरने धामधर्म में मनवान सहायत पधारते हैं।”

देवी धामपाली धपनी निहारती छवि को जैसे दर्पण में ही बकेत पीठिया से उठ पड़ी हुई उसके नेत्र निस्कारित हो गए। संस्रम पूछने लयी—“तबमुच मदिरे !”

धीर फिर वह संशय रव में जा बैठी रव तीव्र पति से धामकीन की धीर बौझ सिया।

× × × ×

उधर निष्कर्मों को भी जब सधामत के धाने का पता चला तो वे भी सीसाह एक-दुसरे को यह संशय मुनाते सपागत के दर्जन को बौझ लिए। पर तब तक सामने से देवी धामपाली ना रव धूमि-धुसरित मार्ग का सावेग रीचता लीट रहा था इतना सावेन कि निष्कर्मियों के रथों से असका रव टकरा गया धुरे से धुरे टकरा धरति उठे ! धाधिर उगहोने धपने रव रोक धामपाली से पुछा—“देवी, मना धाम ऐना क्या हुआ है जो तू इतनी प्रसन्न है।

तब धामपाली ने धनर्न कहा—“सधामत कत निधुसंघ समेत मेरे महीं ज्योकार पर जो धाईने।

यह सुन सभी लिच्छवियों ही की तो मुझ आत्मा तिलोज हो उठी मैं बँसि  
ठपे से कड़े रह गए। वरज्जुत हुए कण्ठस्वर में बोले—“देवी तू एक कीटि कार्पासि  
ने से घोर घोर यह उद्योगार हूँ वे वे।”

इस पर आत्मापत्नी ने समर्थ अपने सागथी को रच घागे बढ़ाने का आदेश कर,  
लिच्छवियों की घोर देखते हुए कहा—“नवा कहा एक कीटि कार्पासि।”

उपहास की मुस्कान से स्पष्ट ही उसके घाँट फँस गए। तब फिर बोली—  
“अद्वयनो यदि दूत समुत्था वज्रि सध देकर भी मुझ से यह उद्योगार चाहोवे तो  
तुम्हें उसका मिलना असम्भव है।

घोर, घण्टकूम को प्रतिबिम्बित करती लिच्छवियों के परिवारों की इंद्रधनुषीय  
छाया देवी आत्मापत्नी के रच के पहियों से उड़ती धूल में विनीत-सी हो गई।



**ग्री**ष्म काल का पक्षेष्ट मास और उसकी भी मध्याह्न वैशा। ऐसी भीषण गर्मी कि इन कोई बिरसा ही बाहर निकल सके। किन्तु, प्रायः इन दिन में भी महानगरी बैजपुरी के मध्य भाग की एक बीची में कुछ हलचल-सी है। और इस हलचल का केन्द्र बनी हुई है एक भव्य स्वयं कमल मंडित उष्ण प्रदूषिका। और इस समय वहाँ उसके लुके प्रांगण में पर्व मू के बपेड़े सड़ता हुआ कविपत्र बन समुदाय बन स्थित है।

प्रांगण में उपस्थित एक समुदाय ने सड़ता उन्मत्त हो, उष्ण कण्ठ स्वर में बयबोय किया। इस बयबोय की प्रतिध्वनि कुछ समय तक निकट के घुने बाठाबाण में घूबती रही। जब वह प्रतिध्वनि ऊपर लय में यकटाती घंतघं घंतरिल के घुम्प में लीन हो गई तो प्रांगण में भंबोचकारण करता एक समवेत स्वर गूँज उठा। न जाने क्या से वहाँ कुछ ऐसा ही कम चल रहा है। इस कम को कुछ उपस्थित नापरिक हठ प्रम हुए विस्फारित दृष्टि से देख रहे हैं। तो कुछ हर्षोत्साह के साथ से। फिर वहाँ इतनी बीच एक उष्ण अमबाय के साथ कुछ कोमाहल-सा हो उठा जो प्रांगण की परिधि को साथ घर्न-घर्न बीची को वार कर महानगरी के घरनों प्राचारों एवं उष्ण प्रदूषिकाओं से टकराता हुआ धावे बढ़ निकला।

इसी प्रदूषिकाम से कुछ दूर, नगर के एक विन्म प्रांठर में बयोद्वय गल संवाहक साल संवेदने ने मध्याह्न विभाग के पक्वात् धमी-धमी धम्पा का स्थाय प्रिया था। उनके रक्तिम मुख मंडल अपनिबीमित नेत्रों और बड़ाबसा से क्माचप्रान धंय-प्रत्थंय पर तंश प्रमाहका प्रमाह स्पष्ट दीक रहा था। उठने के पक्वात् भी वह कुछ भाणों तक धसझाई दृष्टि से खाशी मग्ना की ही घोर देखते रहे।

स्वामी क उठ सके होने पर बिजल करती ताश्चर्णों वाली धामा का भी हाथ बंदि स्वत कर गया। किन्तु वह नतमस्तक पक्वात्वात ही लड़ी रही। बिजल के बस्टे ही कुछ पलसंवाहक की देह पर भी स्वेद कण्ठ उमर धाए, पर जैसे उनका इत घोर कोई ध्यान ही नहीं गया। स्वाभाविक रूप में धाई एक बगझाई और धंय प्रत्थंय पर लड़कती धंयझाई के साथ उनके पैर, मागो स्वत-कदा बसात की घोर बढ़ लिए। यवाल छिद्रों में से घाते बायु के अंके का सड़ता स्पष्ट या जगदी स्वेद-सिक्त देह एक बारभी धापाह धोयें हीतल धामाभ से स्फुरित हो उठी। उनका सुन्द प्रतीव होता कण्ठ भी धानशीष्मराध से तरलित हो उठा। और दृष्टि ? वह उष्मन मान में पक्वात छिद्रों को साथ दूर धियंत में धिठित देखा तक कीन सचन पात्र कुर्बों के धुरमुट में जलम-

सी पई। सामने ही केबल कुछ अक्षर पर खेटी भित्तबिहक के कोठारों की पीठ खड़ी थी। उसके सम्मुख पंखे लगी खड़े धांगल में ताभ्रसिद्धि जलपतन से पहुँचे बरिष्ठ पदाधों का सम्भार सजा था। बास कम्मकरो का एक पूरा भुम्भ बड़ी-बड़ी माँठों से झुम्झता उन्हें पीठ पर सावठा कोठारों की धोर पाठा बीज रहा था। धनवरत भग से कम्मकरो की सुबील कामी वेह से स्वेर-जल बार बूट रही थी पर जैसे उन्हें इस समय छेले पौछने तक का धरकाछ नहीं था। तथापि उनसे कुछ ही दूर एक बट बूझ की छाया में बैठा खेटी भित्तबिहक का एक निरवस्त सेवक उन्हें पदा-कदा जल कार उठता। उसकी मसकार का यह कर्कश स्वर बलसंवाहक के कानों में भी पूँज उठा। उन्होंने सचटती बुद्धि से एक बारबी सबर देखा। फिर उनके नेत्र नगर प्राचीर के बाह्य क्षेत्र वाले घबनों पर जा टिके। समनिवेश अधिप कुम्भग्राम के उन घबनों के मध्य छड़े एक मध्य प्रासाद पर जब उनकी बुद्धि जा केन्द्रित हुई तो जैसे जती के साथ उनका मस्तिष्क घड़ा मास से गल हो रहा। मन-ही-मन में बोले—‘एक दिन यदि घात्य कुनों ने सजानीरा को मौज यहीं तो धरमा अतिव निवेश किया था। धीर सम्मुख बीसता यह मध्य प्रासाद ? यह तो अपने बर बितना भी बर्न करे, बीजा ही है। यह कहते हुए उनका मस्तिष्क अज्ञातिरिक्त से धीर भी घबनत हो गया। हाथों को प्रकम्पित कर बैसे—‘घार्यकुस भूपण महावीर मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ। यह वाक्य भूमि तुम्हें अपने पर अचरित कर सचमुच जन्म हुई है।’

अपने धारण्य के स्मरण से बूझ गणसंवाहक के अ्योष्ठित नेत्र धीर प्रदीप्त हो उठे।

कछ धल पश्चात् जब सहुमा उनका ध्यान भग हुआ तो बत्र कुछ चौक से गए। बुद्धि ऊपर उठ्य उनिक स्पष्ट भाव से उन्होंने बबाल छिन्नो में से बाहर की धोर भाँजा। बोले—‘घरे, यह तो सचमुच बिलम्ब हो गया।’ उनके विधाय द्विधित घबनों में तररता लहर उठी। अस्त-अस्त रूप में लटकते अपने उत्तरीय को धारव कबे पर पटक सम्मुख ही एक पीठिका पर ऐसे स्वर्न किरीट की धोर बड़ किए। मत्-मस्तक ही उमे उठया अपने धीव पर बारसु दिया। धीर फिर धारव संवागार तक के लिए बस पड़े।

ध्यान जब धीर द्वार मण्डप के बीचों बीच अनुमान पड़ता था। बूझ सामन्त धामी जगी तक पहुँचे थे कि धारवाना 11 की धोर से धाता हुआ एक लक्षण धामवाहन कर उनके सम्मुख उड़ा हो गया। वह भी रुक गया। उदण मत् मस्तक ही रहे कछ पप पीछे की धोर हट गया। धीर फिर वह बिनय के कण्ड स्वर में बोला—‘घार्य एक धारवपक संवाह है।’

क्या मवाज है बूझ गणसंवाहक ने जैसे अष्ट में उनके प्रति द्विधित मो उल्लुखता न दिखार्द। हाँ उनकी मत् 11 र बुद्धि उन पर धारव जा टिकी। धारमुक्त लक्षण में भी जैसे उत्तर की विधाय धारवपकता नहीं समयो। मचापुव नमस्तक रहे वह बोला—‘घार्यवर देवी धारव-ठाभी ने कना विरजन हो सद्ब्रम प्रवग की योग्यता की है।’

बृहत् गणसंवाहक यह सुन सर्वथा स्तब्ध रह गए। किन्तु सर्विसबाहक तत्क्षण नतमस्तक रहने के कारण उनके इस परिवर्तित मुख भाव को नहीं देख सका। उत्साह भाव के से कण्ठ स्वर में वह पुनः बोले—“भार्यवर केवल घोषणा ही नहीं बरन् प्रायः प्रती इधी मध्याह्नक बेसा में वह तत्प्राय से विविधत शीघ्रा प्रहृष्ट कर संघ में प्रविष्ट भी हो चुकी है।”

यह संवाद सुनाते हुए स्वयं तत्क्षण का हृदय भीत्कार कर उठा। परन्तु, बृहत् सामन्त तो उसे सुन सन्नमुख विचलित हो गए। मन ही मन बोले—मया तत्प्राय क्या एक गणिका को भी अपने संघ में प्रविष्ट कर सकते हैं? और फिर यही एक प्रसंग बार-बार उनके घंटे में घनिष्ठ हो गूँथता रहा।

केवल कुछ क्षणों पूर्व तक जिस हिय-बदन वामुः प्राञ्छादित प्रामा प्रदीप्त श्री रत्नितम मुख मण्डल से उनका प्रभावेत्पायक व्यक्तित्व प्रस्फुटित हो रहा था वह सहसा निस्तेज हो गया।

उनके सामने पटल पर बँसे रहे रहे कर घरीत के घंटेपत्र से बर्षा ऋतु के समन मेघों की मति कोई विस्मृतप्राय बटनाएँ घूमने लगीं। विचारों के एक प्रवह भ्रमरावत ने बृहत् सामन्त के घंटेपत्र को बुरी तरह मिथोड़ दिया। प्रसन्न में विचलता से विहार अर्धमुख हो चढ़ने लगे दृष्टि से अतुच्छान की छत की ओर देखा। दृष्टि वहीं स्थिर हो रही। उनका विद्याल बल प्रवक्तव्य श्वासे से घोर कुल-सा गया।

गणसंवाहक प्रस्तुत प्रसंग को अस्तित्व से निकाल देने की प्रयत्नशील हो उठे। किन्तु इस विद्या में निरतना प्रयास करते उसमें उठने हो उलझ कर रह जाते। उधर संवागार संघ का समय समिष्ट देख वह घोर भी बुचिबा दस्त हो उठे। एक बार मन में प्राया भी कि क्यों न सब-स्वजन का ही प्रादेश विचाराई। पर उठी के साथ उन्हें कुछ स्मरण हो प्राया। बोले—“ओह, प्राय तो तत्प्राय संवागार में समासर्षों के समन अर्धर्ष प्रवचन के लिए भी प्राथमिक हैं।”

पन्ततः उन्हें अपनी दृष्टि उठा सर्विसबाहक की ओर देखा। फिर सर्वे के स्वामाधिक संघत कण्ठ स्वर में पूछने लगे—“क्यों प्राकुष्माण कपित बाहन तो प्रस्तुत हैं न ?”

बाहन द्वार मण्डप में ऊड़ा कबी का प्रतीक्षा कर रहा था। फिर भी सर्विस-बाहक ने गणसंवाहक के प्रसंग का प्रयत्न उठार न है कहां—“किन्तु प्रायः इस समय कुछ प्रवचन प्रतीत हो रहे हैं।”

तत्क्षण के इस प्रयत्न प्रस्ताव में निहित प्राशय को समझ बबोबृहत् सामन्त पहले तो कुछ हँसे फिर धीमे ही उसे रोक घंटेर क समस्त गण्यार्थ को कण्ठ स्वर में लपेटत हुए बोले—“ता भी प्राकुष्माण संवागार संघ महत्त्वपूर्ण है। प्राय तो वह घोर भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। केवल इतनी पी बाउ के लिए उससे अनुपस्थित होना क्या किसी को घोरमा देता है।” तत्क्षण एक श्वासे छोड़त हुए वह फिर बोले—“घोर गणसंवाहक को तो वह कदापि घोरमा नहीं देता। प्राकुष्माण में संवागार प्रवचन प्राञ्छा है।” यह कह, वह तत्प्राय से द्वार मण्डप की ओर बढ़ लिए।

संविधानवाहक कपिल भी विनीत सेवक की भाँति उनके पीछे-पीछे हो गया।

रक्षाकृत होते-होते यणसंवाहक के मस्तिष्क में सहसा एक प्रश्न प्रबल भेग से जा टकपटा। मुझ पर विश्वास का छा भाव फँस गया। एष के निकट ही बड़े तस्कर संविधानवाहक की घोर अत्युक्त वृष्टि से बेखतरे हुए पूछने लगे—“क्यों प्रायुष्मान् कपिल, तुम्हारी देवी अधिष्ठात्री तो विपुल सम्पत्ति की स्वामिनी की न? क्या उसने सब सब कुछ का क्या किया?”

स्वामी के इस प्रश्न को सुन तस्कर जैसे असमंजस में पड़ गया। धीरे बहू मातों अंतर के धारे साहस को समेटते हुए, मस्तिष्क में उत्तर की भूमिका ढँढते हुए तब तक फिर एक-एक शब्द को ठोकते हुए बोला—“सामन्त श्रेष्ठ, देवी अधिष्ठात्री ने अपनी सम्पत्ति का प्राचा भाग तो सब को भेंट किया है ही।”

तस्कर मध्य ही में रुक गया। इस पर बृहत् संवाहक की विश्वासा जैसे धीरे उड़ ही उठी। अत्यधिक अत्युक्त वृष्टि से कपिल की घोर बेखतरे हुए स्पष्ट भाव से पूछने लगे—“धीरे धायी प्रायुष्मान्?”

संविधानवाहक ने पूर्ववत् नत मस्तक रह, मानों साहस कर कहा—“सामन्त श्रेष्ठ, देवी अधिष्ठात्री ने सभी सम्पत्ति उत्तराधिकार स्वक्य अपनी शिव शिष्या वाली कन्या को प्रदान की है।”

कीन वाली कन्या यह यणसंवाहक तुरन्त समझ गए। देवी प्रायुष्मान् ने उसे मधुपर्क के अक्षर पर शिव की भूमिका में मृत्यु मंत्र पर अक्षरलिपि किया था। यह ध्यान पाते ही बयोबृहत् सामन्त सहसा श्लेषानिमित्त हो उठे। उन्होंने जैसे अपने क्षणिक कुल शीतल को अपनायित हुआ अनुभव किया। क्षणिक में प्रवाहित होता क्षणिक एक पुलकिंग में उद्विग्न हो उठा, मुक्त समतला गया धर्म प्रत्येक उत्तमिष्ठ हो उठे धीरे मुकुटी बन गई। आश्चर्य के कारण अचकित स्वास से उनका विद्यालय बस स्वयं की बुद्धिमत्त हो उठा। नातिकारण भी कुल गए। घोर मस्तिष्क विचारण श्लेषानिमित्त विचारों से तन कर फँस उठी। अंतर की इस अज्ञानता को जब उनके धर्म प्रसंग न समझान सके तो जैसे वह प्रहारीयत हो उठे। बाह्य में बैठे-बैठे ही एक तीव्र पराधात कर उनके घोष्ठ फड़ फड़ा गए। धीरे फिर वे उसके परधातु भी फड़फड़ाते रहे। परधात से विद्यालय बाह्य मुटी तरल रह्य उठा अक्षर भीकसे गए, धीरे वे धात्रिण हो हिनहिना उठे। हिनहिनाते रहे कि इसी मध्य मेघ धवन के से कड़कते स्वर में यणसंवाहक बोले—“बस मर्तकी तैरा यह हुस्साहन। पाविष्ठा अक्षय जल से भी देवी, बैधानी में सामन्त मंत्रदेव के रहते एक शानी कन्या किस प्रकार धर्म सम्पत्ति के उत्तराधिकार का उपजीव करती है।”

तस्कर संविधानवाहक स्वामी के इस दृढ़ स्वर को देख भय से काँप-सा गया। उनके नेत्र अभी भी अन्तर्गर्भा से बचक रहे थे धीरे मुकुटी तो श्लेषानिमित्त से जैसे धब दूटी, धब दूटी।

यणसंवाहक सहसा फिर कड़कते स्वर में बोले—“सारथी जसता क्यों नहीं? धरे घो, यहाँ फड़-फड़ा नू किलवा मुह ताक रहा है?”

धारपी सहम-सा गया। धरनों की कुटी मत्स्या मानों हस्त: उनके अक्षरों

झाड़ी में घिबिल हो गई । प्रथम पूर्व से जी प्रथिक केय में हिलहिलाते हुए धार्तिक से ढीक लिए । रम धर 'ई' से द्वार मंडप को लीन बाटिका पथ का पार कर, मुख्य द्वार में से निकल राजमंडप पर सरपट ढीक निकला ।







महाशेखरी महाराज ने जब यह संवाद सुना तो वह सहाय ईश में बोले— 'मित्रवर बनो यह प्रणाम ही हुआ कि जब सन्ध्या में पशुकार्यों का भी प्रवेश होने लगा । धर्मशास्त्र इन दिनों धर्मशास्त्र कर्मों में मिश्र संव प्रवेश की बीबी बाढ़ आई हुई है, किसी दिन वह तो हमें भी अपने साथ खींच कर ले जाती ।'

यह कहते हुए महाशेखरी के मुख की मूर्तियाँ भी मुहान्त से प्रतीत हो उठीं । धीरे धीरे ? वे विनोद भाव की अपमत्ता से मुस्करा उठे । दृष्टि सम्मुख पीठिका पर बैठे गणसंवाहक पर आ टिकी ।

वास्तव में महाशेखरी धाम अत्यन्त प्रसन्न चित्त थे । कारण केवल कुछ समय पूर्व ही उनके अनुसन्धित सुपत्त में उन्हें एक धूम संवाद सुनाया था । उनके एक सार्थ ने प्रकृत शीरेव्य नगर में पूरे सप्त सहायकार्यालयों का नाम धर्मित कर जब महाराज नगरी साकल की घोर प्रस्ताव किया था । जो महाशेखरी के लिए सब सहाय कार्यालय कोई बड़ी बात नहीं थी । परन्तु उसके साथ जो सार्थबाह पया था वह अभी नया-नया ही था । पर उनके लिये यह मन्मथ एक सुख समाचार था । धीरे इस समाचार के उत्साह में उन्होंने सिद्ध हीन के एक सांवातिक से कठिनय बहुमुख्य रत्नों का भी क्रय कर लिया था । जब इन रत्नों को लेकर वह स्वयं ही महाराज उदयन की नगरी कीमात्री की घोर जाने की बात सोच रहे थे । सोच रहे थे कि जलो कथाचित्, इसी निमित्त से प्रवन्धितराज दुहिता वासवदत्ता के दर्शन का सुयोग मिल जाए । मन ही मन बोले— देखो कौन कठोर है । बन्ध प्रघोट धीरे खींची लकीरन है सप्तकी बुद्धिना वासवदत्ता । असा सोचो तो उनके विवाह को कितने सपने हीत बुके होंगे किन्तु अचयन धाम भी उस पर उठना ही मुख है । चिन्ता कि उग्रविनी से पलायन के समय रहा हीया । इसी कथना तरंग से सुप्रसारे हुए उनकी दृष्टि बनात् विजय करती परिचारिका की घोर धूम भई । धम-बाध ध्वनित ॥ उठा । बोले— 'क्यों कविने तुने भी तो सुना होगा कि बत्सराज धाम भी वासवदत्ता के बिना एक क्षण नहीं रह पाता । मानों दोनों में जैसे धमी-धमी प्रणव का धारण हुआ हो ।'

कविता बृज स्वामी के मुख से यह मून सजा-सी गई । बोली कुछ नहीं । हाँ उनके धनत वपोंकी की भाविता धवलय प्रगाढ़ हो गई । धीरे बृज महाशेखरी की मन दृष्टि सरसता से वासवपूर्व हो उठी ।

वह केवल कुछ समय पूर्व ही धयन बय में धाये थे कि महारा गणसंवाहक के जाने का सवेद मिल गया । इस धमय में उनके जाने पर वह कुछ चोके में किन्तु

अपने को भीड़ ही संयत कर जब वह उन तक पहुँचे तो उनके मुख पर बड़ी पूर्ववत् प्रभूत्स भाव उभर आया।

प्राचार के प्रस्थान करते समय गणसंबाहक का जो उग्र रूप उभर आया था वह मन तक प्रकट में प्रायः गुप्त हो चुका था। हाँ मुख पर कुछ चिन्मत्ता धबधब सीख रही थी। कर्वाचित् इसी चिन्मत्ता के कारण वह महाभेटी को घनी तक केवल प्रभूटी बात ही सुना जाए थे। उनकी दृष्टि बँधे किसी बटिम समस्या की गहनता में डूब गई। बृह सामन्त की इन उगम समस्या को देख महाभेटी को कुछ हँसी-सी भा गई। गणसंबाहक की बँधे उग्रा टूटी। मनेष्ट हो उन्होंने महाभेटी की ओर देखा। किन्तु इसी मध्य महाभेटी समुत्कान बचता से बोल उठे—“मित्रवर यदि प्राञ्जराती के जाने से इतने चिन्म हो उठे हैं, फिर तो यही धरम्य है कि तुम भी उग्रागत की चरण ना भी।”

महामेटी ने यह बात केवल उहक विमोह में कही थी, तो भी वह बँधे गणसंबाहक के किसी मनेस्थान का स्वर्ण कर गी। प्राचोष के उ कण्ठ स्वर में वह बोले—“कामधर, आपकी विविध हो संवापार की ओर जाते-जाते मैं बड़ी प्राया हूँ क्या इसीलिए कि मेरा उपहास किया जाय ?”

यह कहते हुए गणसंबाहक कुछ अनेचित हो उठे। साम ही पीठिका से भी उठ उठे हुए। फिर महाभेटी ही बना कि प्रकार बँधे रहे जाते। वे दोनों ही पर स्वर बात उठा थे। मणएव एक बूरे के स्वभाव से सुनिश्चित थे। इनी से कुछ संबाहक को उल्लेखित हुआ देख कर भी महाभेटी चबराबे नहीं। वरन उहक घनमीप भाव से हँस गई। भावस सटकते अपने बलम शमयु केसों को झाब में बद्ध उन्हें सम बरसक सामन्त के नेत्रों के सम्मुख पीनाठ हुए बोले—“मित्रवर! कुछ इनकी घोर भी म्यान बो। बैद्यनाथी के उचल्य जब यह बुने कि बरोबुद गणसंबाहक प्राञ्जराती के जाने जाने पर चिन्म मन हो उठे हैं तो जना क्या वे इति बिना रहे जावने ? क्या मन भी हमारी ऐसी समस्या रहे नहीं है कि किसी रूपका के पीठि निराशा से इतने बवास हो उठे। फिर, साम ही गणसंबाहक वपुष महबुर्जब बीरवास्यदपव उसकी मान रखा भी तो।”

“तभी तो इनकी चिन्ता है महाभेटी।” गणसंबाहक ने बल में स्की स्वात बाहर छोड़ते हुए उत्तरता से कहा। दृष्टि बठ ही रही।

किन्तु इसन बाद भी गणसंबाहक के मुख की बसाती से मटका गुप्ता देख महाभेटी फिर इतने को उचल हो उठे। पर इत बाद वह प्रकट में नहीं बरन मन ही मन हँस कर रहे बने। ऊपर से प्रस्थान पगनीर भाव दिखा बोले—“मित्र सामन्त ! महाभेटी कोई मूर्ख नहीं। क्या वह इतना भी नहीं समझता कि गणसंबाहक की वह बिया सर्वदा उचित ही है। बैद्यनाथी में कना पीठिका की पबिप्याधी का पर भीहीन ही जाय घोर सामन्त मनेष्ट धंरदेव का जलकी चिन्ता तक न ही जना यह बँधे सयमक है ?”

उहना बर उचिक स्की घोर दृष्टिम दृष्टि से गणसंबाहक को घोर देखा। गणसंबाहक की मुख मूटा इन समय उगामी की धीमा को मांय बिची वृह समस्या की गहनता में डूब गई थी। महाभेटी कुछ जराँ तक तो ध्यान से उनकी मुख देसाँ को देखते रहे फिर बोले—“कामधर ! स्मरण है गत बार जब देवी चिनापरा ने

अब समाप्त नियम से यही पर रिवत हो उठा था तो उसकी पूर्ति के लिए प्रायकी कितना भी पणु सपबर् करना पड़ा था। यह तो यक्षय मखिनाह की कृपा हुई कि प्रायकर वह प्रयास सफल हो गया। अक्षयवा पय-यम पर कितनी माटी निराशा का सामना करना पड़ रहा था। निस्सन्देह यह धारणा ही उतलत प्रयास था कि बैसाखी के इस पक्ष पर मायक महानाम कृपा धारणासी लघुप कणसा धीर नृत्त विचारता पाक्य हो सकी। परन्तु देखो तो यह भी एक ही विश्रम्भना रही। अते पाकर कहीं एक धोर वण महानगरी का जनसाधारण 'अम्ब अम्ब' कहत कटा वहीं हृतम्ब अग्निजात बर्ष उपकृत होकर भी अपना माका टीनटा रह गया। नास्तब में धारणासी को अग्निदेक की बैसी पर बैठे देख अपना मन उठा वो निहाद, वह कितना हृषित हुआ। अग्निदेक के वरचान् उसकी प्रथम भोपला पर वह उतना ही क्षीभ उठा। परन्तु इससे क्या? सामगठ पच्छ बैसाखी में अग्निजात हुन ई ही कितने को उनकी जिला की जाय।" कहते-कहते वह पुन एक बदे। धीर किर, अति च्छस्वपूर्व दृष्टि से मणसबाहू की धोर देखते रहे।

नास्तब में हुआ क्या था महानाय कम्पा धारणासी के कला पीठिका के अग्निजात को पक्ष पर अग्निविषत होने के तुण्य पक्षप्रद ही पापला की वो कि उसका नृत्य कैवल अग्निजात बर्ष तक ही सीमित न रह समाप्त रूप से जनसाधारण के लिए भी होना। उनसे कहा था— अपनी सभी कम्पा पूर्वकविया के विररीत कला बर्ष की यह अग्निजन सेविका धारणासी पीठिका की पूर्व परम्परा का परिष्कार कर, अग्नि जात बर्ष एवं सर्व साधारण का मन में कोई भेद विचार न रख सभी के लिए अपना नृत्य प्रस्तुत करेगी।

तब उसकी इस प्रमत्तपूर्व भोपला पर जन-साधारण हर्षोस्मात से करतल उजि कर उठा था। परन्तु, अग्निजात बर्ष के सभी जन इस पर लुम्ब हो उठ। उनमें एक निरचय धीर भी बिया था। उसने कधी अपने इस निरचय की विचित्र भोपला तो नहीं की की किर भी अग्निजात बर्ष के जन उस समयमें से अक्षयर्ष नहीं रहे। वह पूर्वगत अक्षयर्ष में रहती थी। धीर बैसी धारणासी के इस निरचय का भव कराने की विधा में श्रेष्ठियों अपना अम्बल सामगठ बना के एक एक कोटि कार्याणों के प्रमोशन में निष्पन्न सिद्ध हुए थे। अतएव, महाभष्टी इन समय क्या कुछ कह रहे थे। धीर उनका क्या कुछ प्रमोशन था मणसबाहू उस सभी को अक्षयर्ष समझ रहे थे। महाभष्टी वा एक-एक पक्ष उनके अर्धपक्ष पर तीव्र धापाठ कर रहा था। परन्तु जिस निमित्त वह प्राय से उठ विधा में भी वह पूर्वगत लक्ष्येष्ट थे। अतः तब कुछ ही तो वह अक्षयर्ष मीन भाव से लहन करते रहे। अक्षयर्ष में अग्निजात की कक्षया साधार मूर्ति बन कह बोले— "महाभष्टी वह निरसदेह धीवन की एत अर्धकर हुन थी। परन्तु मैरी जिस अक्षयपता मक्ष वह भूत हो मर् क्या उसके लिए मुझे जीवन भर क्षमा नहीं किया जा सकैगा ?

मणसबाहू के मन्वजक ऊपर उठ महाभष्टी के मुख पर जा केन्द्रित हुए। उन्हें मर्बाहन हुआ देख महाभष्टी में अक्षय प्रसव बदलना ही उचित समझ। बोले— सामगठ पच्छ न जाने क्यों अक्षय मणसबाहू अग्निकारियों में इतना प्रमाद धारणा है। बैसा तो मुखा प्रधान वा पक्ष पक्ष विचने महीनों से रिवत बना धारणा है। परन्तु, मणसबाहू राजा बैटक, महानायकित्त विह सभी को अक्षय धोर से

बसाहीन प्रतीत होते हैं। क्या अब पद के लिए अब महानगरी बैसाजी में कोई भी योग्य युवक नहीं रह गया ?

यह कह वह तनिक बड़े धीर फिर तन्परता से अपना मुँह गणसबाहक के कामों के प्रत्यक्ष समीप सा बोले—“बम्बुर अपने अभिजात समाज के कई बरिष्ठ बनों का तो यह मत है कि सामुप्यमान प्रबन्ध को ही क्यों न उस पद पर नियुक्त कर दिया जाय। छ मास की अवधि बीत जाने पर फिर निर्वाचन हो ही चायेगा। क्यों क्या धर्म की दृष्टि से वह पद सामुप्यमान के योग्य नहीं है ?”

प्रबन्धदेव शामन्त मंत्रदेव का ही एक मात्र पुत्र था। परन्तु, प्रायः जब इस प्रसंग विषय में प्रमाणात् ही उसका नाम आया तो उसे युवक वह उत्सहित न हो सके समझे व्यथित हो उठे। उनकी वह अन्त-ध्याना मुँह पर भी स्पष्ट रूप में प्रतिबिम्बित ही लगी। अतः कुछ बोधिव्य कण्ठस्वर से बोले—“बम्बुर किसी भी क्षणिक कुमार के लिए यह ही उत्तमपुत्र ही गौरव की बात होगी। किस नगरी के ऐश्वर्य को देख स्वयं के देवता भी ईर्ष्या करें उसकी रक्षा का भार जिस किसी भी क्षणिक कुमार को सौंपा जाय मना उसके बड़ कर सीमाभ्यन्तरी धीर कौन होगा। पर महाधेष्ठी कदाचित् यह नहीं जानत कि सामुप्यमान प्रबन्ध कितना महत्त्वाकांक्षी है।

महाधेष्ठी तन्परता से बोले—“यह तो सामन्त बन्ध का निस्तम्बेह ही अल्प कुल गौरवोचित सङ्कट सकोच है। अथवा सामुप्यमान अपने सभी समवयस्कों से कहीं अधिक प्रतिभावान है। रही महत्त्वाकांक्षा की बात यह भी मना कोई पबप्रसन्न है। यह तो निश्चित ही एक दुर्लभ गुण है। फिर, अभी मना उसकी बचन ही क्या है। उरीवमान है अतएव महत्त्वाकांक्षा का होना अभिवार्य है धीर फिर धर्म महत्त्वाकांक्षा मना किम में नहीं होती ? तनिक मेरी धोर ला देखो। पूरे घसी मनु पन देल मुँहा है। फिर भी जब मेरा धर्म परिवर्तनोत्तर राष्ट्रीय अथवा इतर पूर्व विद्या के हीनों से बन लख कार्यालय अर्चित कर लीटता है तो उस समय मेरी इच्छा पूरे एक कोटि कार्यालयों के लिए बलवती हो लठनी है।”

गणसबाहक कुछ धीर कण्ठस्वर में बोले—“परन्तु महाधेष्ठी यह महत्त्वाकांक्षा कुछ ऐसी है जिममें बैसाजी की श्रीशक्ति निहित है धीर दूर दिगंत में उसकी बच पताका कहराठी है धीर बहू ।”

गणसबाहक का कण्ठस्वर सहसा प्रत्यधिक बोधिव्य हो अचक्य हो गया।

महाधेष्ठी सोचने लगे— विपुल सम्पत्ति का स्वामी यह सामन्त भी अचभुषण निटना प्रभागा है। समान के नाम पर केवल एक पुत्र है धीर समसे भी वह प्रसन्न नहीं या फिर बही निर्वाचन उसे प्रसन्न रखने में असमर्थ रहा है। अंतवच्य धाए उसके नाम पर अपने मित्र की व्यथित रुपा देख महाधेष्ठी फिर विषयान्तर के लिए अँधे बाध्य हो गये। परन्तु जोरने पर भी अब उन्हें कोई निरपेक्ष शीघ्रता प्रसंग नहीं मितता तो विवश हो मीन रखना ही अवेगस्वर समझा।

इसके परबाद् बच में कुछ समय के लिए मीन छाया रहा। प्रसन्न इत निस्तम्बता को मंत्र किया स्वयं गणसबाहक ने। कदाचित् वह भी मीन बने रहते परन्तु संघावार अत के लिए पर्याप्त बिलम्ब हुआ देख वह उस धोर प्रत्यान करने के

लिए व्यग्र हो बैठ। फिर भी प्रस्थान से पूर्व वह महाधेष्ठी से इस नबोत्पन्न स्थिति पर कुछ परामर्श कर लेना अनिवार्य समझते थे। महाधेष्ठी बीबानी के संसर्गवश अभिजात समाज के सम्बन्धिता से घटएव छनते इस स्थिति विशेष पर बातें कर लेना और भी अनिवार्य था। बोले—“महाधेष्ठी को यह तो विदित ही है कि शास्त्रपानी विपुल सम्पत्ति की स्वामिनी थी ?”

महाधेष्ठी जस्ताह का सा भाव दिखाते हुए उत्तरता से बोले—“हाँ मनी प्राति जानता हूँ सामन्त घेठ।” यह कह वह तनिक रुके फिर पूर्व से भी प्रतिक जस्ताह के साथ बोले—“यदि धर्म की सखी बन्धि हो तो उसका धरम्य कम करें। मैं उसमें धरम्य ही यथासम्भव सहयोग प्रदान करूँगा।”

पल्लवाहक इस पर तनिक हँसते हुए बोले—“महाधेष्ठी ऐसी तो मेरी कोई बन्धि नहीं। तो भी धर्म ने सहयोग का जो धरबासन दिया वह निश्चित ही मेरा परम सीमाव्य है। परन्तु उसके कम की सामर्थ्य यदि बीबानी से किसी की है तो वह महाधेष्ठी के अतिरिक्त और कोई नहीं। केवल महाधेष्ठी ही तो उसके लिए सीमा पाव है।”

महाधेष्ठी तनिक जेहा का सा भाव दिखाते हुए बोले—“सामन्त श्रेष्ठ जसमें तो मेरी कैदमात्र भी बन्धि नहीं। कल भी हो विचार, है तो वह एक पणिका की ही सम्पत्ति।”

“तो फिर जसमें क्या हुआ महाधेष्ठी शास्त्रपानी को पानी इस सम्पत्ति का अधिकार माग ता अपने पिता नामक महानाम से ही उत्तराधिकार में मिला था। फिर जन्म महाधेष्ठी इनके अतिरिक्त एक बात और भी तो है। देस देसान्तरी में बास-बावियो के कम बिक्रम से अजित बन राशि से भी क्या इनकी यह सम्पत्ति धरबा उपहारों में मिले बहुमुख्य एलाभुपल एवं मलि मुस्ता भासाएँ भेदकर न होयी। महाधेष्ठी जानते ही उसका एक-एक एलाभुपल बस-बस सहज स्वर्न कार्याणों में मूक्य का होया। देस देसान्तर। में जा कर यदि इनका बिक्रम करो तो बस सर्वत्र कार्याण ही कार्याण समझे।”

एलाभुपलों का प्रसंग आते ही महाधेष्ठी के नेत्र जैसे उनकी धामा से दीप्त हो बैठ। अन्तराल में कौसाम्बी जाने की कल्पना फिर उछायें से उठी। इस बार वह अपने मनोभाव को दबाते से पूर्वतः धरमर्न रहे। बोले—“सामन्त श्रेष्ठ जसा देवी शास्त्रपानी की कम सम्पत्ति का मूक्य कितने कार्याण होया ?”

इतनी धीम्रग से महाधेष्ठी का मत परिष्करण होने देस पणसंवाहक हँसि बिना नहीं रहे। जन्मुक्त हान्य से उनकी पुत्र अन्त पवित्र बमक छड़ी। बोले—“परन्तु महाधेष्ठी इन मूक्यात्म की धर बाव किबिन भी धिन्ता न करें। धरकी देवी शास्त्रपानी इनकी ऐनी धरछी व्यवस्था कर गई है कि महाधेष्ठी को दानों के कम बिक्रम से ही सरा-सरा के कि निर्वास्य मिल जावका।”

इस पर महाधेष्ठी ने लावर्ण्य पूछा—“तो कौसे सामन्त श्रेष्ठ ?”

पणसंवाहक ने इनका प्रत्यक्ष उत्तर न दे कहा—“महाधेष्ठी जसने धरनी धानी सम्पत्ति निरुपय को धर भी कर बी है।”

“फिर भी धाबी तो बची ही सामग्य बच्ये ।” महाभेष्ठी ने मानों भारी सन्तोष का अनुभव करते हुए कहा ।

गणसंवाहक ने इसका उत्तरता से कुछ उत्तर न दे मौन रखा । जैसे कुछ सोच रहे हो । उन्हें इस प्रकार मौन देख महाभेष्ठी की उत्सुकता प्रगाढ़ हो उठी । उदात्त मन से पूछने लगे—“धीर धाबी सम्पत्ति का क्या हुआ धार्य ?”

महाभेष्ठी की इस उत्सुकता को देख गणसंवाहक क्षिणक्षिता उठे । बोले—  
“धाबी महाभेष्ठी ? जानते हो बचने धाबी सम्पत्ति का क्या किया ? वह उसने अपनी जमी सिन्ध्या वाली-कम्पा को दे दी है जिसे उसने ।”

गणसंवाहक धमी धाबी ही बात कह पाये थे कि महाभेष्ठी हृत्प्रम हुए कुछ कहने को जखत हो उठे । परन्तु, इस बार उनका मुख केवल खुना ही रह गया । बिह्वला जैसा बह हो गई ।

महाभेष्ठी की यह बला देख गणसंवाहक एक उच्च ठहाका दे ईस पड़े ईसते रहे । उनकी इस हँसी से सारा कज भर गया धीर फिर ईसते हुए ही संवागार की धीर पक्ष पड़े । किन्तु ही एक पक्ष बचने के पक्षपात एक रहे । पर इस सख उनके मुख पर अदृष्टहास की फूहड़ हँसी नहीं बरन् परोक्षित गाम्भीर्य था । उसी गम्भीरता के कण्ठस्वर में बोले—“महाभेष्ठी बेसा इस महानाम कम्पा ने बेधामा के सम्पुत्र कौती अटित समस्या उत्पन्न कर दी है । इमें उस पर विचार करना ही होना । पर यदि धाब राशि में ही समाज के अन्तर्गम सबस्यों की गुप्त मन्त्रणा हो तो कौता है ?”

महाभेष्ठी उत्तर में बोले—“सामग्य भेद्य क्या यह ही पूछने की बात है ।”

गणसंवाहक ने फिर प्रश्न किया—“धीर महाभेष्ठी स्वान के सिध मेरा धावात कौता रहेगा ?”

महाभेष्ठी ने उत्तर में कहा—“निश्चित ही वह अचित रहेगा धार्य ।”

“तो फिर सब सबस्यों को सूचना देना सब धापका कार्य है ।”

गणसंवाहक के पीठ देते ही महाभेष्ठी की क्षुब्ध दृष्टि में बृणा की विस्तता अमर धार्य । फिर उसी दृष्टि से वह गणसंवाहक की धीर देखते रहे । गणसंवाहक धाँधों से धोमन हो गए परन्तु उसके पक्षपात ही वह महाभेष्ठी की धाँधों में टिक रहे कुछ सोचते भी रहे ।





**और** टम टम का मन्त्रीर स्तर टंकारता गण संवागार का प्रीमकाय काँस्य  
बहियान तीन बार बज उठा ।

प्रीमकाय को हम बया में घोर दिनों गण महानवरी को एक बीबी विद्येय  
निर्जीव-सी माना सोई पड़ी रहनी थी । परन्तु धाय उसमें निरन्तर बढ़ते धा रहे जन प्रवाह  
के कारण बलि है तथा उस बलि के कारण कोलाहल थी । कोलाहल सुन धयन कसों  
में विभ्राम करती बारापनाई थीरु-सी गई । हडबडा कर के न नबन सप्याधों से उठ जाई  
हुई बरन उसी घटनमन बबस्था में धयने धस्त-धस्त बरसों को सपेटती-सी गबामों  
की घोर होइ लीं । घोर फिर, कोनुहलबस धरजों पर धा बीठीं ।

घोरजनों का बबन प्रवाह इस समय बबाब बलि से परिचय बिधा की घोर  
मदतर था ।

सायर में उफलते ज्वालों की भांति जन-समहाय प्रतिघण ही धबिधाबिध  
प्रायेय क साब उमरठा बीक रहा था । उन्हीं धयनी इन बीबी में तिन के समय  
इससे पूर्व इनकी भारी धंरुया में घोरजनों को धाते कबाबिध ही देखा होना धर उन  
समी का कोनुहन का हीना स्वाबाबिध था । छात्रे पर बीठे-बीठे ही उन्होने बिस्मय  
से बीबी के धार-धार परस्पर एक दूसरे की घोर देखा । उनके मुख पर धण-धण के  
धमर से बिबिध भाव मंत्रिमाई कीड़ा करने लबीं । नेत्रों को नचा धोळीं को धलिक  
बिचकते हुए उन्होने उस जन-प्रवाह की घोर देखा बिसे इस समय जनकी घोर  
देखने ठक का भी जैसे धबकाय मर्ती था । रसिक घोरजनों की इस बीतराकता पर हे  
यदायदा लिखबिता भी उठों । हम पर जन प्रवाह में बहे धा रहे इसके-दुधके धरबिन की  
दृष्टि हट्यु उस घोर उठजाती पर साब ही धबगर बोध की मज्जा से मठ हो रहनी ।

घोर इती बीबी के बीच ही यलुबहवाणी नयर धोमिनी कसा की धबि  
प्लावी देवी धाभ्रमाली की बीयबसाभिनी नीलबल्लू, यल्लजघीय उधर धट्टामिका बर्ष  
से पीरा ठगर लगये जाई थी । घोर, स्वर्ष कनजों से युग कसा कुल घोरव धावा  
से दीप्य उनके उमल ममाठ पर हम समय भी एक बाबिक कीबेब बबल पजाका पबल  
भोको से मुदुदुहा जानों देवी धबिध्यात्री के कसा कीउल का यधयान धुनधुना रही थी ।

केवल कय तक ही तो इनी धट्टामिका के बिल्लुत प्रांवरण में नित्य संरुना बना  
में बीजानी का नृत्य समाज जुडा कसा था । उसमें न केवल ननर का धबिधयल्ल बर्ष  
एवं नन साधारण बबान कय से धभिधमिठ होता था बरन् दूर दिवंत से धामन्य  
सेध्य एवं बला रसिक जन भी हम घोर बिबे जैसे धाठे थे । मठ संध्या ही ठा

### बैधानी की दृष्टि पुत्री

सोराप जनपदन के महापद्मी सुप्पारक ने उसके बरछों पर अपने बहुमुख्य मणि मुक्ता कण्ठाहार को धारित कर, धर्मिभूत कण्ठ से कहा था—“कमा देवी ! धरे विकट धर्मिपार्थों की विजय पर प्रसन्न हो स्वर्ग समुद्र-देवी देवी मणिमेखला ने एक नहीं धनैक बार मेरे इन तैषों के सम्मुख नृत्य किया है। परन्तु वे सभी काल्पनिक ही तो रहे। देवी ! धीरे उन्हें धाम में यहाँ साकार रूप में देव सचमुच बन्म हो गया हूँ।”

सुप्पारक ने कम इसे अपना केवल एक नृत्योप ही समझा था। परन्तु बैधानिकों के सम्मुख तो यह प्रतिदिन ही प्रस्तुत होती थी। तथापि उसका नृत्य नृतनता लिए होता। प्रतिदिन संख्या बना में जिस लाख वह धूम हियबबल मीने परिधान में रत्न-अन्धित जर्णामुपण बाहु बंधद कटि मेखला एवं हीप्ट मणिमुक्ता हार धारि धनकारों से धर्मैक हो नृत्यों की बीनी सह्य तातपुत्र बापों एवं सरस धंकार के मध्य ह्यं युगल की सी संवर्ति से बर्धनोत्सुक समुदाय के सम्मुख प्रवृत्त होती तो सारा प्रांणल सब समय ह्वातिरेक की तुमुत्र ध्वनि से मूंग उठता। धीरे फिर, जनी उत्साह के प्रवाह में प्रवर्ण्य समय तक वृंजायमान रहता।

फिर इस तुमुत्र ध्वनि के संव हगते ही कम वह सुरचित नृत्य मंत्रिका पर सम्मूल-सम्भय कर डय रकती थी अपनी मन्वी फनी सुगोल धरणिम सुबाधों पर श्वेत सत्तरवस्त्र के पन्नों को रंभाती-धी जगन भाव से धायें बड़ती तो संवर्णित से प्रबाहित होते बाधु के भ्रोकों का स्वर्ण वा से फरकत उठते। तल्लण वह ऐसी प्रतीत होती कि ऊपर नम-नक्षत्र में पुर्णेंद्रु के चारो धीरे बतियान निमल बवल कई-बालो धृषुष बादलों के नम से प्रस्तुत कोई देव कजा बनने श्वेत रंकों के सहारे, नीके इ मूतन पर धवठरित हों रही है। बर्धक समाज चित्रमिक्षा-सा उस धीरे निहारत रहना निहारता यह बाठा तथा धन्त में सहसा उसके मध्य ह्यं की एक प्रवाह सहर दौड़ जाती। साव ही ‘साधुकार-साधुबाध’ धबबा ‘धनुनम धनुपम’ की मुदुन ध्वनि से साप नम-नक्षत्र धनुनाणित हो बाठा।

धरनबात् बहु कमाप्राण धर्मित बनन धर्मविषय हो बर्धक समाज के सम्मुख धर्मिवादन के लिए प्रस्तुत होती। उस धन्तय के विनीत भाव से धवमत लत्रिका तदुध उठकी मुकोनल कांचन वेह विपेय ध्यान देने योग्य होती। धर्मिवादन की मुद्रा में उठकी कटि रंजा पर उठकम ऊर्ध्व धाम पुष्पहार से भनी भासती मन्मरी की शक्ति धवमत हो रहा धीरे उसके धन्तर का साप विनीत भाव भागों साकार रूप में प्रस्तुत हो बर्धकों के धन्तस्वन का स्वर्ध कर बाधा। इस सारी धवनि से स्वान रोके इस जय से उठकी धीरे देखते रहते कि कहीं उसका धर्मोमुख ऊर्ध्वमान लत्रिका विविधधन धवतन की शक्ति नृत्य मंत्रिका पर न धा गिरे। बँडे-बँठ ही वे उसके मुकोनल धव-वों की धवती प्रसारित बाहुधर्मों में सम्हालने के लिए प्रवृत्त हो उठते परन्तु फिर तीव्र ही सावधान हो बधक समाज मुदुन कण्ठों से “बन्ध-बन्ध” का उच्चारण करता नतनस्तरक होठा उसके इस विनम्र धर्मिवादन को स्वीकार कर उठता। इसी मध्य सुर्वय पर एक धीरे की पाद पड़ती त्रिनकी ध्वनि के इयत पर वह सहमा हरिणी की सी धवतता से सहहन धरी हो जाती। धीरे इस धर्मिनय विपद्य से सहसा बधक प्रीथा भाव पर ओ एक बधका सा मग रहता उससे विहर उसका मुषंजित धवामन



सिन्धु के घों के जूड़ा सहसा बिसगिजत हो कतिपय घसकों में छिटक रलामा से दीप्त कर्ष कण्डनों के घास-घान मण्डराने सनता । नितम्बों का स्पस करती उसकी लम्बी, काली, बल छाठी मध्य बेल्ही एवं शीर्ष पर बिचरी इयामल घसकों के मध्य उसका गीर, घामा बीप्य मुख मण्डल ऐसा प्रतीत होता मानों बर्षाङ्गु में नम पर लैरते सचन कारे-कजरारे मोर्षों को छिन्न विछिन्न करता सघाक सहसा बाहुर किसक घाबा हो । धीर उसके किससय घोषों पर मुस्कान की एक निर्मल रेखा सी बिच रहती ।

मूर्धन पर फिर एक बाण पड़ती । धीर, उठी के घास इस बार बीणा के तार झड़त हो उठते । बैला के हृदय से भी ककण स्वर में कोई भवमाता राम फूट निकमता तथा फिर उसके घास शीप बास थी परस्पर स्वर-ताम मिलाते हुए उसमें सम्मिलित हो बन्ते । बैषी घासपासी के सहज रूप में बिरकते वीर तथा उनमें बँधे बिकला धर्म-धर्म नृत्य को गति देने लपते बाघ बुन्द से प्रस्फुटित स्वरो के घागेह मचरोह के घास नति में प्रबाहू घाता बलता तथा उठी के घास-घास बर्षक समाज का मनममूर भी घासलोच्छ्वास से तरबित हाने लपता । किञ्चित् समबोधयन्त जब नृत्य अपने पूरे प्रबाहू बेन में घाता तो बैषी घासपासा की बिरकती कण्डरी बेहू दुस्म पक्षान्त में पनन के भोर्षों के घास भीड़ारत ज्योरलमा रेखा के समान प्रतीत होबे लगती । भीने परिघाम में से उसकी रूप छटा छिटक-छिटक स्वच्छन्द रूप से बर्षकों के सम्मुख बिखर जाती । धीर, घन्त में बिद्युत गति से होता उसका प्रथम बालन कटिप्रवेध पर धाकर केन्द्रीभूत हो रहता । बोलबामान नितम्बों के बँबल नति कम से उसका रोम रोम स्फुटित हो उसके अय प्रत्यन को स्पन्दित कर देता । तब, नृत्य धीर नतिमान होता बलता ।

• फिर अमाभिभूत उसका एक-एक अंग पबिकाधिक मुञ्जरित हो बर्षक समाज के लम्बुन प्रस्तुत होने लगता । कपीम पहले से भी अधिक अशुभिम हो उठते । उसके मस्तक धीर नासिकाध भाव पर स्वेद कल उमर पाते । घोष्ठ तरल हो रहते । धीर, फिर धपनी ही रूप सुपमा पर मानों प्रसन्न हो बेन मन्द-मन्द मुस्कान देते । तब केवघास पर घटका घुन्न पुण भी अपने स्वान से किसक उसके बरषों में घा लैटता । धीर, इस सारी अमधि नृत्य का नतिक्म धीर भी अधिक बेन में बलता रहता ।

अन्ततः, स्वेदकण एक प्रबाहू में हुलक भूरेलाघों को पार कर कपीनों पर बसत, पन तन बिचरी घसकों की तिथित करते से—घोष्ठ कोरों पर सहृम—नैयर हो रहते तो तब यही प्रतीत होता कि उनकी रूप-सुपमा साबन्ध प्रया से प्रभावित हो, स्वय कामदेव ने उठे नबबहु रूप में संवार, संवार कर बस बैठते बिसाते रहने भर का कठोर पड लिया है । उनकी सचन इयामल शीप केत छटा के मध्य प्रदीप्य घामसक सीधी, कसोटी पर बिचरी कानिठमान स्वर्न रेखा की भाँति बर्षकों को सहज हूँ में धपनी धीर बीच लेती ।

धीर जब नृत्य प्रबाहू के पुर्न बेन के मध्य मूर्धन पर सहसा पड़ी एक धीर की पाप के साव नृत्य बैषी सहसा बिरक स्थिर हुआ जाती ता सारा प्राणन 'ताबुवार-साबु बार' क मरुन कोलाहल से पूज छटता । धीर फिर बर्षक समाज मन्ध सुगंध हुआ ता

उमके रूप-सावध को मन ही मन सराहता, उस पर पुष्प पत्रियों की वर्षा कर देता ।

सूनी कीपय छाटन में से पारबसित होती उसकी नीरवर्ण स्फटिक जंघाएँ खरी, कटे छटे स्निग्ध करमी स्तम्भ की भाँति प्रतीत होती ।

कृष्ण समय पूर्व ही विधित क्यों से उसके उचके-उचके प्रथम धन नृत्य पकित होने पर सिमितता बस कृष्ण मया ही रूप ग्रहण कर लेते । बलस्वन पर कसा सचेष्ट शैव्य पट्ट की धन वासन के कारण धपने स्थान से कृष्ण खिसक रहता । धीरे तब, उच्छ्वस निश्वास के यतिक्रम में सिमटते-उमरते उरोज युग्म से सहला को सलिन रस बार-सी फूट निकलती धीरे फिर बहु वर्षक नृत्य की बत्तचित्त बुद्धि का स्पर्श कर भागे बढ़ती तो सभी के घोळ धान्यातिरेक का रसास्वादन कर तरल हो उठते ।

देवी धात्रपानी के नृत्य कीद्वत के प्रति समुचित समाचार माव हाते हुए भी सभी धावान-दृष्ट बैसासिको के हृदय उमकी कर्णनीय देह तथा उस पर उमरे हुए उरोज युग्म को धपने धांसिनन पाद्य न समेटने के लिए तबलित हो उठते । उसके त्रिस मय घोषो के परान पर उनके मन ध्रमर की भाँ ठ मगहराने लपते । तब वे उमकी निव नृवन भीवन छटा से परामूठ हो, कल्पना स्तर्य में उसके चिबुक को तनिक ऊपर उठ्य भीड़ा रत हो उसके रकिनम कपोल पर एक हस्की सी चपत सनते धीरे फिर मन ही मन 'देवी तुम सचमुच किन्ती सुन्दर हो' कहने हुए उमके नेत्रों में मयिक उठते । धीरे फिर वे उस रूपता के स्मिर नेत्रों में उमरी मावकता का धवनोकन कर उस पर उन्मत्त हुए बिना न रहते । परन्तु, देवी धात्रपानी केवल धंगुति के इयित पर सरा ही, सभी का हृर रखती ।

बर्धक नृत्य पर उसका सर्वत्र दृष्ट धारेण बलता वा । धीरे कलाचित ही कभी, किपी नै उसके निरुक्त धाने का साहम किया होगा ।

कसा भी प्रविष्टाभी गगनर्तकी रूपमा देवी धात्रपानी के केवल नृत्य समाज में ही नहीं बरन समूची घट्टात्मिका की विस्तृत परिधि में अनुधामन का दृष्टता न वासन होता वा । तथापि बहु सभी की हृदयधिया को ।

रूप धीरे गुणों के कारण बैसासी समाज में उसका विधिष्ट स्थान वा । बठ रन सचवा पिबिका धाकड़ हो त्रिस किन्ती भी नवर भाव से निकल जाती बर्धन की इच्छा व पीछे-पीछे भावती बन मावाग्य की भारी भीड़ तथा उसके संरेसाह कण्ठों से उल्लस इतर में निकले धय-धयकार, यह सारा दृश्य सहज ही में एक सीमावाधा का रूप बह्य कर लेता ।

धतः धात्र जब धीरेधनों ने यह सुन कि उनकी हृदयवहरी ने रात्र रैन एवं कलाधर्म का परिस्थान कर नीराग्य मार्ग का अनुसरण किया है तो उनके नेत्रों के सम्मुख जैसे निराधा का धमकार छा गया ।

कोट सिद्दुणी बनने स पहले वे कम से कम एक बार धीरे, भी भरकर उतकी रूप छटा का बर्धन कर सेने को धानुर हो उठे ।

संस्कृतप्रिय घट्टात्मिका का जो मुख्य प्रवेग द्वारा सग्या समाज में धरिस्मित बसा ही बन् रह्य करता धीरे किन्ती क साव सिर पटकने व न धन पाता वा धात्र

बड़ी इत मध्याह्न बैसा में सम्मुख माथ से मार्गी अपनी लम्बी मुबार्यै कैसा खिल मन बैद्यनाथको को अपने धामिना पास में समेटने के लिए धातुर हो उठा ।

घोर प्रतीक्षा के पश्चात् मन्त में तन्मायत भिक्षु मण्डली से चिरे मुख्य द्वार से बाहर निकले । सर्वान धातुर जन समुदाय में हृष की सहुर चौड़ गई धीर परसक्य कण्ठों से निकला वषण को प्रकथित करता अवशेष पूत्र उठा ।

वैद्यनाथ मात की कड़ी रूप इन तीसरे प्रहर में भी अपने प्रथम रूप में थी । साधारणतः किसी भी व्यक्ति के लिए अपने बाहर निकलना असम्भव था । किन्तु सभी सबकी किञ्चित्सा भी शिन्ता न कर उत्साहोन्मत्तास का अनुभव करते हुए जाड़े थे । इस समय सभी की दृष्टि एक बिन्दु पर ऐसे बिन्दु पर विषयों कि मानों धनन्त सहुरा रहा हो स्थिर थी । निष्पत्तक हो वे सम्मुख की धार्मिक रूप उठा को निहार रहे थे । वृद्ध भिक्षु समुदाय के मध्य तपागत की मुख सामा सभी प्रकार प्रतीत हो रही थी जैसे बैद्यनाथ पुत्रिमा की राशि का पुत्र जन्मा मैथोसुकुत निर्मल नीले लज विद्यान पर यत्र-तत्र छिटेके वारकण्ठ के मध्य अपनी धामोक उठा के साथ क्षोभित हुआ है । उनकी मन्त्र शोभ्याकृति एव प्रबुद्ध धीर्य-सिधियों से प्रसङ्गित धोषपूर्ण तथा स्वस्तिम बैद्यनाथ, तथा फिर, उनसे स्वतः सृष्ट वृत्ताकार प्रमाणजन से सम्मुख धामोक किरणों में सब लयन मार्ग से बहक जन-बाल मम के धन्तः धोर का स्पर्श किया तो करते उनकी मनबाबा सभी प्रकार लक्ष्मि किल्ट ही उठी जैसे युक्त पञ्चान्त की उष्या बैसा में प्राची विद्या में नवोदित मन्-शोमा उषाक इतर दिवस की उपर धीर उबर धानत राशि के प्रथ कार को अपने मन्तर में समेट समूचे भूमण्डल पर धीतम प्रकाश की स्वस्तिम कण्ठ वसिकार्यै छिटका देता है ।

सभी के मुख राशि में किले कृपुण पुण की चालि मुखरित हो उठे ।

सहसा नागरिकों की दृष्टि जनात पीछे-पीछे धाती मिथुंगमों पर जा टिकी । धास्ता के पीछे जना मिथुली धार्म इत धीपण शीघ्र में भी निपट मन परों उल्ट बीधी मार्ग को विद्यान भाव की ही मन्त्र यति से मत्पता धामे बढ़ना जना जा रहा था । उनके बैध-विहीन मन्-धोरों पर प्राकाश की धोर से बटकारे मैठी प्रथम सुर्व-किरणें कूलार रही थीं ; परन्तु उस धोर भी जैसे उनका कोई ध्यान नहीं था । वे तो केवल बैद्यनाथ की धाकार मूर्ति जनी सर्वथा धमिचमित रह, निर्द्वन्द्व भाव से निरवध की बुद्धता के साथ सब धामे बड़ी जमी जा रही थी । जैसे उगूनि जो कुछ भी नहोर उत मिया था उनके प्रभाव में उनका न तो उन कूलारों से ही कोई सम्बन्ध था धोर न ही उत कीतूहन से जो इस समय तक बधक नागरिकों की दृष्टि में इन कीपसांनिवों को बैध-बैध स्थिर हो गया था । नागरिक मत्त विस्मय से निष्प सक हुए उनकी धार देखते रहे बह रहे थे उन पीछ भीतरों को जिगूनि उनकी कन बंधं इकृति सभी माथ धमिमायों धीर मनोमाचनायों को समेट केवल धीतपण के प्रति धन्तर्मपी कर दिया था धोर इस प्रकार बटासेर हो गया था उनके उस भीवन धध्याय पर जो सभी राग रज से धीतप्रोव रहा हुआ । नागरिकमत्त मन ही मन धन्तनाथ कर कर उठे—'धरे, ऐसा गया था बह भाव इन्ध विचन इन सभी धावार धामिनिवों को सहज ही में बैद्यनाथ पत्र की धार पकेज दिया; धीर कैसा है रे यह

धार्मिक समाज-जर्म बिलने इन्हें धारण कर इस दुर्बल एवं कठोर मार्ग का पथिक बना लिया ।

और, इसी मध्य किसी बर्षन बिसेय के नाम से सम्मति हो जैसे किसी क्रमांत को यों ही काई पड़ा हुआ बहुमुख्य रत्न मिस गया हो नागरिकण्य उत्साह प्राथम से एक दूसरे की ओर देख उठे । जैसे मेरों के इंसित से एक दूसरे से पूछ रहे हों—'भद्र ! मना पहचाना वह देवी साधवी कौन है ?

देवी महाप्रभापति यौतमी कपिलवस्तु के राजशासन के मुख बीमब को त्याग इस भीषण गर्मी में अपने पुत्र राजकुमार के पीछे-पीछे मार्गों कुछ इसी घाटा से बनी का रही थी कि सायब वह उसे सब भी मना प्राप्त की ओर बापस सीटने को राजी करे । किन्तु इस अणु उसके मुख पर न तो कोई बर्ष परिमा का ही भाव या धीर न आत्मस्य की ही तरसता केवल एक सौम्य भाव का धीर सौम्य भाव की वह तटस्मता, जिसमें सभी शेष सम्बन्ध केवल धरोपवन कर जाहू बाते हैं । फिर मना मिसु-मिसुणी समुदाय के इस लहराते सागर में सब योसित देवी साधनाती का ही क्या अस्तित्व होर रहे बाता ?

किन्तु, देवी अविच्छिन्नी तो नव संख्या तक भी कमा रह रही थी । सबैब की नाति कल भी उनके कमा प्रांबण में मृत्य-समाज मया या धीर वह बोपानोक्ति मंच पर अमतरित हुई थी । मंच नूपुरों की शंकार से शंखत हुआ या धीर एभि का उभास तिमिर की उसकी मृत्य मुद्राओं जाह-अंगियाओं को देख धानम्बाच्छवास से स्फुरित हो उठा था । अतः दिन नागरिकों ने नव एभि तक ही मृत्य देवी के कमा कोषल से परिभूत हो अमृत कण्ठ से 'साधु-साधु' एवं 'बग्य बग्य' कह उतका अमिनमदन किया ही उसके केवल कुछ शहर परचात् ही उन देवी को बिरक्ति के इस कल क्य में देख मना उनके मुख पर बिपार की प्रगाढ़ रेखा छाए बिना जैसे रहे जाती ?

उसे मुष्टित शीर्ष देह समूचे जन गण का अमतरान बिबधता से सिद्ध, दुग्ध हो उठा । परन्तु स्वयं देवी साधनाती की मनेबसा इन समय कुछ धीर हो थी । जैसे इस क्य में देह जन गण के हृदय पर जला मया बीत रही होगी, इस धीर जैसे उतका प्यान ही नहीं था । उनका जो कुछ भी अमविष्ट अस्तित्व रहा या मार्गों वह सभी को अविधाधिक अस्तित्वहीन करती नगन वैर, वैरान ही अम ये पदि भूम से भी कोई धोकासा शेष रह गई हो जैसे अमतर धीर बाहर की पूरी अक्ति से रोते तप्त पीपी मार्ग पर शेष मिसुनी समुदाय के साक धाने बड़ी पत्नी का रह्यो थी । धीर धीपी में उमड़ता जन समुदाय ध्यय माव से उतकी ओर निहार रहा था । परन्तु जैसे मना धाज इतना अमकाय कहीं का कि वह एक अणु को भी दृष्टि उठा अत धीर देख लेती । किन्तु, बर्षक मणु उनके इस छोटा माव के परचात् भी उतका कय अदवार ५२ उठे । धीर दिनों वह उनके इन अय-अयकार पर अपनी स्वर्णिम मुस्काज बिपीर देती थी किन्तु धाज अपने सस मुनकर भी जैसे अममुना कर दिया । मन ही मन कह उठी—'साधनाती, यही तो वह मोठ भाया धीर मनता है बिध पर तुम्हें बिजय पानी है । वह केवल तटस्व भाव की साम्यपति से धाने बड़ी बनी का रही थी । बाली,

किसी ने उनके धर्म में कहा—'शास्त्रपानी शिष्टता बस ही उस धीर देव को । परन्तु उसने उससे भी अधिक दृढ़ता से मन ही मन कहा— शिष्टता तो साहम्बर है धीर धारण पुत्र का धर्म साहम्बर हीन है ।

किन्तु, नागरिकों की दृष्टि पूर्व से भी अधिक भाव विह्वल हो उसे देखते रहने को प्रसन्न हो गयी । वे मन ही मन सोचने लगे—'देवी शशिपत्नी को कल भी वह धार नहीं रही धीर को धार है कल वह भी नहीं रहेगी वह रहेगी अक्षय पर ह्यारी स्मृति में दृष्टि में तो केवल अक्षय बन कर रह जायगी । यह सोचते-सोचते उनका हृदय विवशता से मानों फटने-सा लगा । परन्तु नृप देवी का भला जब किसी भी भाव प्रवेग से क्या सम्बन्ध हीन रह गया था । यदि वह भी गया था तो बस वैपत्य के उस कठोर इत से जिसके बन्धीभूत हो वह दण्ड बाध में धीर इस सारी हनन का कोमाहम के मध्य केवल एकान्त का अनुभव करती धारें बड़ी आ रही थी । उसका मुक्त स्वेद बल प्रकट हो उठा । परन्तु उसकी भी उसे कोई शिष्टता न थी । किन्तु स्वेद बल से स्वतः प्रकटित उसका मुक्त शिष्टित मुक्त हो बर्षों की दृष्टि में स्थिर हो उठा धीर स्थिर हो उठा उनकी अक्षयभूत दृष्टि में वह कामा विन को उसके अक्षयम धार-शेष कपोल पर इस अक्ष भी शिष्टता का । किन्तु इस समय तो वह उसकी कमी-सहृदयी अक्षय-स्व-राशि पर मात्र धार बन कर रह गया था धीर अक्षय बन गया था उसका वह बला समुद्र जीवन जिसकी अक्षयताका अक्षी भी सुपों के प्रवास बर्षों के साथ बैधानियों के हृदय पटल पर अक्षय रही थी ।

उनके नागिका रक्ष धार भी देवी शास्त्रपानी की सुकोमल देह से निरन्तर फूटने वाली शास्त्रमन्त्री अक्षय भीनी-भीनी मन्त्र से सुवासित हो रहे थे धीर बस सुवास से उनके मन अक्षय मयमस्त हुए जा रहे थे । किन्तु जिस क्षण भी उन्हें सहता वस्तु स्थिति का स्वरण हो जाता उनकी मध्य धामा अक्षयता हो उठती धीर अक्षयकी शिष्टता आ जाती । अक्षयता से कराह वे कह उठे—'देवी ! यह तो वैपत्य नहीं निष्पूरता है । निष्पूरता नहीं तो भला धीर क्या है ?





**सि**ंहमय महारजा पणसंबाहक का विद्यालयाह बाह्य मध्य मार्ग में ही एक छात्र हो गया।

बीबी मुख के बाहर मुख्य राक्षस के पूरे आकार प्रकार पर आच्छादित सचन चीड़ को देख यह अपने पक्ष रख से मोके उत्तर र्दम ही सवापार की ओर हो लिए। किन्तु, अभी कुछ दूर ही जैसे कि उनका पैरल चलना भी असम्भव हो गया। तब विद्य हो उन्होंने वहीं चीड़ के मध्य ही खड़े रह प्रतीक्षा करना अपेक्षर समझ।

वयस की दृष्टि से पणसंबाहक अब तक निरिच्छ ही पूरे बस्ती मनुष्य देख चुके होंगे। फिर भी उनको मुझील वेह ने कदाचित् ही कहीं से एक ज्ञाना था। ऊंचा बोल-बोल पीर वयस खेत सचन समझ केज आच्छादित भापी भरकम मुख उन्नत लमाट छठी हुई नाविका विद्याल बहा ज्योतिष मैत्र पीर उनमें से प्रतिबिम्बित होवा उनके घंठम् का कुल गौरवामिमाल फिर छत पर छाया हुआ उच्च पदाधिकार का मय यदि वह महान् दृष्टि से भी किसीकी ओर देख खेते तो न चाह कर भी अपना शिर नत हुए बिना न रह पाता। फिर जैसे ही उनका अपने कुछ निश्चित दुर्लोक के कारण बंधानी में गया कुछ कम सम्मान था? तो भी उनका यह प्रभावात्मक व्यक्तित्व इस समय प्रतीक्षातुर पीर जनों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने में सक्षम पठमय रहा। नास्तब में इस क्षण सभी की दृष्टि सामुख रिया से बीबी मार्ग पर घाते लक्ष्यत एवं उनके मिलु समुदाय पर स्थिर थी।

सामन्त मन्त्रेय ने भी जैसे इस ओर विधाय ध्यान नहीं रिया। प्रकट में स्पष्ट ही उनके मुख पर प्रगाढ़ शान्ति व्याप्त थी। किन्तु मैत्र दृष्टि? वह विचारों के उल्ले उपन्न धनशा समस्या की गहनता में उगम, कुछ कीर्द-सी प्रतीत हुई।

सहसा घंठम् में डठी एक शान्ति हिलोर के साथ वह सोचने लगे— मन्त्रेय इस जन-साधारण को ती बेको जिज्ञासा न तो कीर्द घम है, पीर न कीर्द घास्या भाव । एक बार बिबर मुख छठ गया न वे बस जही ओर खोड़ लिए। ध्यान यदि यह आत्मपुत्र गीतम यही है तो जही ना जय-जयकार कर समके पीछे भाग लिए। पीर यदि कम यही महाभाम वर्तमान महापीर था जाएँ तो? तब वे उनके बचन को भी ऐसे खोड़ खेंगे जैसे उनकी घास्या का अलक्ष्य बग नहीं है। यता कीर्द इन घनमुक्ति माय-रिक्तों से यह तो पूछे घरे मुक्तों क्या मिलु संघ में एक मणिका को प्रक्षिप्त करने के परभाव भी उस लक्ष्यत के लक्ष्य का कीर्द पीरव पीर रह गया है? मुक्तों जिह आभ्यामी की सम्पत्ति का भ्रम करने की बात सोचते हुए एक भारी महाभेदी

मगिपुरल भी संकोच का अनुभव कर उठता है उसी सम्पत्ति को इस त्रिजु संघ में सागब स्वीकार कर ऐसे उदरस्थ क्रिया है जैसे वह सर्वथा निबिकार हो । धन्य है यह सम्भव धीर धन्य है जन-साधारण का यह गिरपक्ष धारणा भाव ।

इसी मध्य लहराते जन-सागर में उद्वेगित एक प्यार की लहर उनसे धा टकराई । उसके प्रबल धापात से उनकी न केवल निचार उठा संभ हुई बरन् वह बिरसे से भी किसी प्रकार बच सके । कबल बीघसंयोग से ही धरने को सम्मान सके । सर्वक समुदाय की इस उन्मत्तता धनका धपनी ही इस बयनीय स्थिति पर खिन्न हो वह हस्के से हंस भी बिए ।

तथागत का बिद्यु सार्य इन समय तक बीबी की पार का मुख राजपथ बर धा चुका था धीर बीबी में कडा जन-समूह सोसाह धपने को बकेतता परस्पर टकराता तथागत एवं भिक्षु बुन्द के पीछे-पीछे भाग रहा था । इधर, मुकर राजपथ के बिपुल बिस्तार पर बर्णनेसुकु धीर जनो की बिद्याम भीड़ खड़ी ही थी । बीबी वाली भीड़ को इनमें समाविष्ट होते देख देना प्रतीत होने लगा मानो समस्त भूमि को जनप्रावित करता कोई महागद धब उच्छावें मैत्री उर्धुय हितोरो के साथ किसी धनंत सागर में प्रविष्ट हो रहा है ।

जसाह धान्धोमित सपन भीड़ में से भारी कोनाहस फूट निकला । जन परिधयी भी बिगुंनकित ही उठी । इस धम्यबस्वा को देख तथागत समेत भिक्षु बुन्द के धपनी चारिका की यति धीमी कर दी । साथ ही मुहुल कंठ से प्रफुटित 'बुद्ध धारणं बज्जमि धम्मं धारणं मच्छामि सय धारणं मच्छामि' का मन्त्र स्वर पाठ भी दूँज उठा । उसे सुन जन समुदाय भी स्विच बिच से धवा स्थान ही खड़ा हो गया । सर्वत्र महासागर में सडे गगार के परचात् की प्रगाढ़ धान्धि जा परें जिसने धब बिधरणं का धीम्य स्वर दूँजता रहा ।

भिक्षु मणुसंवाहक इस समय चकित हुए से एक बुय विरोध का देखने में सस्तीन थे । पर्याप्त समय से उधर ही जयी धपनी बुष्टि को उधर उठा वह कुछ कइने की उद्यत ही हुए थे कि उनसे पूर्व ही उनके मुख से एक भारी धपान निबल चारों धीर में उच्छ्रवमित धातावरण में धैज कई । फिर जैसे धपने का ही सुनते हुए वह बोले— एव धमध्य राजा धेटन धब समध्य धम्यवा धाम्पानी का यह हृत्पाहन कथाविन होता ।

भिग साथ के पीछे पीछे केवल मलाप्पला राजा धेटक ही नहीं बरन् महाधत्ता बिहल विह धैनापनि विनिबधय महाधाय रिपुरमन महाधीर धणिय रलन एवं कोप्ल-धारिक मुयन को धात देल जनकी बुकड़ी लन गई । साथ ही धाम्पानी धाय एक दासी कम्पा की प्रदल सतराधिकार का धमरण बर उनके माथे पर धन बड़ गए । तथागत की धीर वह केवल तिरस्कार की ही बुष्टि से देख सके । भिक्षु समुदाय को देख कर तो उनका हृदय जैसे जगा मे ही धर गया ।

जना दुराधह भाव प्रबल हो उठा । धंनर में उठते बिचारों के धानेन में उनका धिगस्वर सहसा धनित हो धीर से बह उठा—'धायधपुत्र ! जमा यह धैये संभव है ?'

यह सुन निवट धई सभी धीर जनो का ध्यान मणुसंवाहक की धीर धाहृष्ट हो उठा । चकित हुए से वे उनकी धीर देख धपने मन में बहने लगे—'देरो ठी,

अज्ञातपद सामन्त को घाय मला यह क्या हो गया ।

तथागत इस समय तक कुछ घामे निकल चुके थे फिर भी गणसंबाहक का यह प्रश्न उनके विद्याम कानों से जा टकराया । वह वहीं रुक जाई हो गए । उनका अनुमान करना मिला सार्थ भी उनके साथ ही रुक गया । विशरथ का उच्चारण करता मुहुन कण्ठ स्वर भी सहसा मन्व हो निस्तम्भता में लीन हो गया । सबसे मन्तिम पंक्ति में पीछे-पीछे पा रहा बैधानी का धमिजात समाज गणसंबाहक के प्रश्न पर बने कीम्ब उठा । पर वह इस समय कहता भी क्या ? विद्योम के कारण उड़कड़ाते घोषों के साथ वह बिचलता से केवल लीन रह गया ।

ध्यानमग्न तथागत के धर्म निर्मित नेत्र इस मध्य प्रश्न कर्ता पर आ टिके थे । पर गणसंबाहक धम बाहू कर भी उनकी धीर बुद्धि न उठा सके । उनके मुख पर उमरा बुभिवा भाव धीर प्रगाढ़ हो स्पष्ट चारुधों में प्साधित हो उठा । इस प्रप्रत्याधित स्थिति को उरस्थित हुआ देख उनके प्रदीप्त नेत्र चिन्ता में डल हो रहे । बान्त्व में उनके मुख से जो कुछ भी निकल गया वा सङ्गुनि वह निरिचय ही कहने के धमिप्रय से नहीं कहा वा बरन् मानस के उद्वेगित विचार प्रवाह में वह स्वतः व्यनित हो उठा वा वह धम किकलव्यविमुह थे ।

इन मकर तथागत सर्वथा सीम्य भाव से मुह गम्भीर घोषपूर्व कण्ठ स्वर में पूछ उठ—“धामुप्मान् ही तो यह क्या है जो सम्भव नहीं ?”

गणसंबाहक की सारी धंठ चेतना उड़कत हो रही । विवेक मानों कुँठित हो गया । साहस का पाप भी लीला हो बिखर उठ्य । हतप्रम हुए से वह सप्रयास सोचते रहे—“उत्तर मे धम क्या कह करूँ ? धंठतः, किसी प्रकार अपने अंतर का साहस बटोर नतमस्तक हो बहु बाले—‘मगवन् ! यह नर्तकी धाम्नामी को आपने संघ में प्रविष्ट किया है इस पर नला मन्व नयो धापति होने लयी । जसने धपनी धामी सम्पत्ति जिन्नु संघ को भेंट की है इस पर भी मुझे कोई धारति नहीं मन्ते । ही मुझे यदि कोई धापति है तो केवल इस बात पर कि धाम्नायो ३ यदि धामी सम्पत्ति जिन्नु संघ को प्रदान की है तो शेष एक दासी कन्या को ; ता नया मन्ते एक दासी कन्या संघ के समकक्ष हो गई ?”

सामन्त अश्रदेव क इस तर्क को सुन जन-सागर में कीतूहल की एक महूर हिलोर उठी धीर सभी के नभ उल्लुखता से दीप्त हो गए । सबर राजा बैठक सिह सेन पति तथा महापीर अणिमरला इस विबाह पर विचलित हो उठे । किन्तु देवी धाम्नामी गणसंबाहक के प्रश्न का वास्तविक तात्पर्य समझ उधका उत्तर देने को व्यग्र हो उठी । तथापि उसने धपने को इस समय सर्वथा संयत रख धीन रचना ही अश्रदेव सपन्ना ।

तथागत ने धपने प्रश्न धिप्य धामन्व की धीर बुद्धि कैर कहा—“धामुप्मान् धामन्व ! देवी धाम्नामी अब जिन्नु संघ में नहीं आई थी तो उसका मुन्व धर्म क्या था ?”

धामन्व ने धपना नतमुख धीर धबगत कर कहा—“मन्ते ! लीला धास्ता ने कहा है, धर्म हिताय विधा जाने वाला कोई भी कर्म कर्तव्य है धीर कर्तव्य ही धर्म है ।



देवी आश्रमाधी मलयरत्न भी घट उसका नाम कमा था ।”

तथागत फिर पूछने लगे—“धीर धामुष्मान्, जब देवी ने कमा बर्म भी ग्रहण नहीं किया था तब ?”

“मन्ते तब वह एक युवक के बोम्ब धमी मुणों से सम्पन्न एक कुल कम्पा भी धीर कुल सेवा ही उसका मुख्य बर्म था ।”

‘तो धामुष्मान्, जिस प्रकार देवी आश्रमाधी हैं वहीं रहने पर भी समझांतर प्रवृत्ता बर्म से उसका बर्म रूप बरतन गया तो क्या इसी प्रकार उस दासी कम्पा का भी बर्म नहीं बरतन आया ।”

कौतूहल अधिमूल धीर बर्नों में यह सुन हर्ष की प्रवाह महर पीड़ गई । धीर ने उत्सृष्टि कष्ट स्वर से उच्चारण एवं तरलवात् सञ्चम का बध-बधकार कर उठे । किन्तु तथामत का मुक्त भाव पूर्वगत उदत्क बना रहा । निरुत्तरता का सा अनुभव कर गणसंवाहक क्षिप्त हो उठे । पर धयने शरण ही उनकी फीकी मुख धामा पर भाव-वैद्य की रचितमा फँस गई । वह सायेत बोम उठे—“किन्तु बैद्यनाथ की कुछ सुस्थापित परम्पराएँ भी हैं उसकी प्रपनी कुछ विधिष्ट साम्यताएँ हैं धीर व्यवस्था भी । मन्ते ! इसी व्यवस्था के अन्तर्गत कम्पा पीठिका की अधिष्ठात्री नियुक्त नहीं होती बरन् उसका चयन होता है ।”

इस पर उच्चारण ने पूर्वगत साम्य भाव से पुनः धयने प्रथम धिम्प को सम्बोधित कर पूछा—“क्यों धामुष्मान् धामन् जब देवी आश्रमाधी केवल एक कुल कम्पा ही थी तो उसने कमा बर्म क्यों ग्रहण किया ?”

यह सुन देवी आश्रमाधी उत्तर देने की अधिस्थापा ने पुनः शपथ हो उठी । उसे भव हुआ, धामन् तम्पो से अनभिज्ञ होने के कारण नहीं मिल उत्तर न है बँडे ।

इसी मध्य धामन् बहू उठा—‘मन्ते ! बैद्यनाथों ने नामक महानाम कम्पा को कमाबर्मापित सभी कुणों से सम्पन्न समस्त उद्ये अधिष्ठात्री के पद पर अधिपिबत किया था ।”

देवी आश्रमाधी की को अधिका भी बहू उचित ही रही । घट इस बार वह धयने पर निर्यन्त्र न रह सकी । धयने स्वाम पर लड़ी भी न रह सकी । कुछ क्षणों पूर्व तक उसके मुख पर जो उदत्क भाव था वह विधमित हो उठा । वह लाभम विनर घाटा लड़ी के सधर ही नी धीर बहू नी । उनके गभीर जा उनके धिम्प रूप को मन मस्तक ही प्रणाम किया धीर फिर, अवधान् ही जिसे नाम लिया है ऐसे कुट नी परिणाम कर सम्मान का भाव विनाशे हुए कुछ पीछे हट लड़ी हो गई । फिर धयन्त विनीत भाव से बोली—“मभवन् ! वह सर्वथा सत्य है कि युद्ध में कमा बर्मापित सभी कुण विद्यमान थे तथानि अधिष्ठात्री रूप में अधिविबत होने की मेरे मन में मेधमान भी इच्छा नहीं थी । कारण बैद्यनाथ के अधिजात बर्म ने धयने निहित स्वार्थों के कारण हम बीरकपूर्व पद की पुनीत परम्परा को नष्ट भ्रष्ट कर उद्ये धूमित बना दिया था । किन्ती भी स्वाधियानी कुण कम्पा का ही उस पद पर धामीन होना पौता की बात नहीं रह गई थी । मन्त मुझे उद्ये पद पर बमान् प्रालङ्घ किया गया अधिभोष के कारण आदम्त भंडारेय के प्रतिधोष के बर्मापित हीकर ही युद्ध उद्ये पद पर धामीन

कराया था।”

यह सुन सभी अस्मित बन खिन्न हो उठे। उनके सम्मुख अबैत सहपा क ई बड़ा भारी रहस्योद्घाटन हुआ हो। उनका मन प्रस्तुत बाव बिबाप की कल्पना तीव्र रोचकता से स्फुरित हो उठा। सभी क जस्तुक नेत्र पणसबाहक की ओर घूम गए।

शास्त्रासी के इन प्रहार पर सामन्त मंत्रवेव तिममिवा उठ। उत्तर में क्या कुछ कहें, धार्यिक प्रायेण के कारण वह उनका भी तरारता ॥ निश्चय करने में अबैत प्रसमर्न रहे। यत्त धरने ही पर शुद्ध हो उठे। साव ही धन्तर में प्रवाहित होता उनका उप भाव भी पुनर्विच में प्रस्यवनिष्ठ हो खपक उठा। प्राणय नेत्रों से बेबी शास्त्रासी की ओर देखते हुए वह उत्तर में कुछ कहने को सद्यत ही हुए ये कि इसी मध्य देवी शास्त्रासी किन्न बोस उठी—“घास्ता। कसा के उबिठानी पव पर रहते हुए वेने दृष्टता से पूव का कुछ पुनीत परम्पराओं का पालन किया है और अब उप पीरबनूमं प्रासन के लिए मैंने एक ऐसी कस्या को प्रस्तुत किया है जो कसाचम के पालन में सभी दृष्टियों से बल है। मन्ते कसा और बर्म पर सभी का समान रूप से प्रवि कार है और फिर वह बासी कस्या को मेरी सभी शिष्याओं में प्रमुक्त की।”

पणसबाहक प्रायेण के वृत्त स्वर में बोस उठे—“मन्ते। शास्त्रासी ने यह सब कुछ कर प्रबिकार का प्रबिकमण किया है। कसा-प्रबिष्प्रापी के पव पर किमी धार्य कस्या को ही प्रबिबिक्त किया जाना बैरानी की पुधनी परम्परा रही है। फिर इस परम्परा का एक बिसिष्ट रावनीतिक कारण भी तो है। मन्ते बैरानी की सब मुन्दरी का सभी समान रूप से उपमोग कर सकें यह उनका निश्चित प्रहस्य था।”

वह सुन शास्त्रासी का बाप धतराम फूटकर उठा। नोबाविष्ट उरुच कन्ठ स्वर में वह सप्तकारती हुई सी बोस उठी—“पणसबाहक बन करो। यह तुम्हारे पुत्र प्रह की प्रति ही तो है। मयथा किन बैरानी में महिपाओं से सविनय प्रणय निवेदन को परम्परा हो नहीं कमी सीम्बर्न के अनमोग की रूपित वृत्ति भी सम्भव हो सकती है ?”

इतर सभामत सर्वथा घान्त स्वर में पणसबाहक से पूछ उठे—“और प्रापुष्यान का सभी द्वारा उपमोग से तात्पर्य ?”

“मन्ते बिसकी भी कसा में खि हो।” पणसबाहक के मुख से यह अबैत ज्ञानायास ही निकल गया। तनिक उरु कुछ सोचते हुए वे वह फिर बोस उठ—“और मन्ते या भी गण मत्तकी के सीम्बर्न का इच्छिन पुरस्कार है सकं वह उसके उपमोग का प्रबिकारी था।”

उनके इन उत्तर पर बेबी शास्त्रासी पुन नोबाविष्पून हो उठी। ऊर्ध्वबाह हो वह साकेस बोनी—“मन्ते। यह एक बल मिष्या है। शास्त्रासी ने यह प्रबिकार क्वादि निधी को नहीं दिया। फिर मन्ते कसा संम ही का तो वूमरा नाम है।”

घामन्त प्रबिबिब इन बार कछ परस्स हुए सं धरारण कन्ठ स्वर में बोने—“मन्ते। संयम के नाम पर यह गण मत्तकी की हठ प्रमिता थी। बस्तुतः धरने धरने बर्म का

साधारण ही नहीं किया।”

देवी ब्राह्मपानी इस धारणा का उत्तर देने को जयत हुई ही थी कि धरुसा जन स्थित जन समूह एक स्वर में बह उठा— ‘अथ्य साधन का यह आरोप तो एक जन निराधार है। देवी ब्राह्मपानी ने हृदय अपने अनुपम मृत्य कौशल से उठा ही ता प्रभावित किया है।”

अधर से यह ध्वनि धाई की सामन्त मंत्रदेव ने जन धार तनिक धाम्नेय से देखा। किन्तु पीछ ही साधनान हो अपने धार को संयत कर पुन' उचानत की ओर बैठते हुए बोले— ‘अथे ब्राह्मपानी पर मेरा एक स्पष्ट आरोप है। उन' एक धार्य विन्त कथा को संघान्त समाज में बलात् प्रतिष्ठापित कर सामाजिक राजनीतिक एवं नैतिक-समी दृष्टियों से बंशानी का निरम नम किया है। परन्तु उसे मिसु संभ में प्रविष्ट होने से पूर विनिवचय-व्यमात्य के सम्पूर्ण उपस्थित होना होना। अन्ते बसने राजहोह का जन्म्य आरपम किया है जिसके लिए उसे कदापि क्षमा नहीं किया जा सकता।”

यह सुन समुदा जन-समुदाय पहले तो स्तब्ध रह गया फिर धीम ही उतर्के से एक कोनाहप धुंर उठा। इन कोनाहस का धान्य करने के प्रयास में मिसु समुदाय ने ‘धान्य धार्ये धान्य धार्ये’ कथना प्रारम्भ कर दिया।

नगसबाहक ने वैसे सभी ने सामने एक बटिल समस्या प्रस्तुत कर दी।

साध जन समुदाय कौतुहल एवं आश्चर्यजन्य बस्त धार से उदायत की ओर बैठने लगा। परन्तु उदायत स्वयं इस नवास्तन समस्या से सबका अधिकानित रह पूर्वन्तु धान्य स्वर में बोले— ‘धायुप्यान धान्य ! निजम क्या है ?”

धान्य ने नतमस्तक हो कहा— “अथे जिसे अधिकान्त जन स्वीकार कर लें, वही निजम है।”

“धीर जिसे सभी स्वीकार करें, वह क्या है धायुप्यान धान्य ?”

“बहु बड़ा नियम है अथे।”

“धीर धायुप्यान धान्य जिसे विपरीत वर्ग के भी अधिकान्त जन स्वीकार कर लें ?”

“बहु शास्त्र नियम है अथे।”

जन साधारण इस पर हर्ष प्रकट करता जारी करतात ध्वनि कर उठा।

किन्तु नगसबाहक अपने सम्बन्धत नष्ट स्वर में साधेय कह उठ— ‘अथे ! यदि वही धीर ऐना ही साधन नियम है तो फिर मैं उसे दूर ही से ननस्तकार करता हूँ।”

बोध न उनके मुख का शीतम नम प्रवाह हो गया।

परन्तु नगसबाहक ने उस ओर कोई ध्यान न दे उर्ध्वप शास्त्र स्वर में कहा—

“धायुप्यान धान्य !

“हूँ अथे” उनके प्रयास दिव्य ने तर्क की धीर नतमस्तक हो कहा। तथा यत में उदायबाहक प्रम विद्या— ‘धायुप्यान धान्य भला तर्क बड़ा धान कीन है ?”

धान्य ने उदायता से विनयातिरेक के नष्ट स्वर में कहा— ‘अथे ! प्रमा बुद्ध के धार जन नो- है।”

तबामत ने पुनः प्रश्न किया— धीर धायुष्मान् सामन्त जिसे दासी कम्पा कह सम्बोधित कर रहे हैं वह ?

वह कलाचर्म में दीक्षित एक मानव मात्र है मन्ते ।”

“धीर सद्बर्म क्या कहता है धायुष्मान् ?”

“मन्ते मानव मात्र के साथ सम मात्र का व्यवहार ।”

इस पर, गणसंवाहक कोबावेश क साथ जोस उठे—“धीर यदि कोई तबा-कथित सद्बर्म का न माने तो ?”

तयापत ने उचट कर प्रश्न किया—‘धायुष्मान् धामन्त धीर यदि कोई सद्बर्म को न माने तो ?”

धामन्त ने धाम्त याच से कहा—“मन्ते तो भी सद्बर्म सर्वभ्यापी है क्योंकि वह मानव मात्र के कल्याण के लिए है। बुराबह विचार है, धीर विचार की उग्रता ही पाप है ।”

तत्पश्चात् समूचा भिक्षु समुदाय ‘धार्म्यं पार्यं-धार्म्यं पार्यं’ का उच्चारण करता चारिका व्यस्त तबागत के पीछे-पीछे हो गया ।

वन समूह में पुनः हर्ष की एक प्रवाह महर शीड़ गई । पल्लववाहक भी उस वन समूह श्री सचन भार में बलात् धावे बड़ लिए । परन्तु साथ ही वह मन ही मन कहते रहे—‘तबामत यह सद्बर्म का बिनय नहीं धरन् हठ हुआ । संभवेन भसा जते क्यों स्वीकार करे ? मैं उसे क्वापि स्वीकार नहीं कर सकता ।





## पंच

जहाँ तक अधिकारों का प्रश्न है, शक्ति संघ के गतिमान जीवन में गणसंवाहक सामन्त ब्रह्मदेव धीरे-धीरे बलाभ्यस्त राजा बेटक दोनों ही का विधिष्ठ स्वामि था। निश्चिन्त संविधान प्रवेशी पुस्तक में निहित व्यवस्थाओं के अनुसार यदि सामन्त ब्रह्मदेव संघ की प्रभुता सम्पन्न गृह-सभा गण संवाहार के सर्वोच्च पद पर प्राचीन से तो राजा बेटक के दृष्टि इंगित पर उच्च शासन कार्य चला करता था। वह पूरा अधिकार प्राप्त गण शासन-परिषद अथवा कृष्ण के प्रधान पद पर सीमित थे। फिर भी जब वह संवाहार में उपस्थित होते तो उन्हें गणसंवाहक के पद के सम्मुख नतमस्तक होना पड़ता। अनुशासन की दृष्टि से राजा बेटक को सामन्त ब्रह्मदेव के प्रत्येक निर्णय को नियम रूप में मान उसका पालन करना होता। एक धर्म में वहाँ उनका कोई भी विधिष्ठ स्वयं न रहे संवाहार के बीच सभी सदस्यों के समान केवल सामान्य बनकर रह जाते। जैसे अन्य वैधानिक सदस्य रूप में राजा कहलाते वह भी वचन बंधी होते। फिर भी अपने कठिनपत्रों के कारण सभी के मध्य उनका विशेष सम्मान था। यद्यपि अपने सभी शासन कार्यों के लिए वह गण संवाहार के समस्त उत्तरदायी थे तो भी वैधानिक रूप में उनका बीच सभी सभासद्यों पर विशेष प्रभाव था।

धनु की दृष्टि से राजा बेटक सामन्त ब्रह्मदेव के समकक्ष ही थे। संभवतः वह एक दो वर्ष बड़े भी रहे हों। किन्तु दोनों के स्वभाव धीरे-धीरे दोनों में प्रायः अन्तर था। यदि सामन्त ब्रह्मदेव में अधिकांश कृष्ण का नीरवानिधान कूट-कूट कर अन्त था तो राजा बेटक सरल शक्ति एवं साधारण प्रकृति के आदर्शस्वभाव प्रतीक थे। बलाभ्यस्त होते हुए भी उन्हें हमेशा छू तक नहीं गया था। हठ उनमें नाममात्र को नहीं था धीरे-धीरे उदारता तो उनको जैसे बेटी बनकर रह गई थी। उनके विद्यालय कुर्ब के द्वार छद्म सभी के लिए समान रूप से खुले रहते। उत्तराधिकार में उन्हें भी सामन्त ब्रह्मदेव की भाँति विपणन सम्पत्ति मिली थी धीरे-धीरे उनकी दृष्टि में भी वह सुपरिचित थी। मन्थराज विन्धुसार के साथ उनकी बुद्धि के समानता का पालिपीठन हुआ था धीरे-धीरे उन दोनों के बीच ब्रह्मदेव की माता विद्याला उन्हें भी बहिन थी। तथापि उन्होंने अपने जीवन में धारण ही कभी बलाभ्यस्त का आचरण किया होगा। गणसंवाहक तीर्थ विहार को लेकर उनके सामान्य विचारों में जब विचारों के विरुद्ध युद्ध के लिए प्रेरणा क्रिया थी। उनकी विद्योपेक्षा साहित्यियों का सामना करने के लिए वह स्वयं वैधानिकों की पहिले पंक्ति में उतरते थे धीरे-धीरे बलाभ्यस्त रूप में केवल महावीर धीरे-धीरे उदात्त का ही

महौ बरन् धन्य सभी कामण सम्प्रदायों का समान भाव से भावर कर बहु सभी की दृष्टि में उन्हे उठ गए थे । परन्तु इनके प्रतिरिक्त भी उनका एक और विशेष गुण था जिसने उनकी यद्योबुद्धि में महत्त्वपूर्ण योगदान किया । वह सदा ही मण विचारों का स्वागत करने को उत्सुक रहते थे ।

इसके विपरीत सामान्य मन्त्रदेव निश्चय ही रुढ़िवादी स्वभाव के थे । उत्तरा विचार में उन्हें वहाँ मारी सम्पत्ति मिली वहाँ कुछ कुछ परम्पराएँ भी थीं वे परम्पराएँ ही उन्हें उनके जीवन को मार्ग-दर्शक रेखाएँ बन उठीं । प्रत्येक नये विचार का प्रतिरोध करना उनका सहज स्वभाव था । धतएव गण सचावार सङ्घ महत्त्वपूर्ण कामों के संघाटक पर पर सुशोभित होते हुए भी वह समाजों के उनके प्रियपात्र नहीं बन सके जिससे कि राजा बेटक । फिर भी सामान्य मन्त्रदेव का बैंगाली प्रेम बहिष्कृत के प्रति उनकी प्रवाह्य भावना पण सचिवाग के प्रति प्रकृत निष्ठा भाव से कुछ ऐसे गुण थे जिनके कारण सभी वैज्ञानिक उनकी मूर्ति मूर्ति प्रशंसा करते न आते थे । बहिष्कृत के विरुद्ध प्रत्येक युद्ध में वह भी राजा बेटक की प्रति मर्दन न केवल प्रथम पंक्ति में दिखाई देते बरन् सब की मान मर्माश की रक्षा करने भावों की भी बाजी लगा रिपुमेता पंक्ति में प्रविष्ट हो रहते । धतएव इन सभी कारणों से उनकी भी कोई कम प्रतिष्ठा नहीं थी । फिर भी जब कभी किसी वैज्ञानिक के सम्मुख प्रसंगवचनों के मध्य गुलना करने का प्रयत्न उपस्थित हो जाता तो राजा बेटक अत्यन्त ही उसके हृदय कोर का स्पर्श करते प्रतीत होते और वह रहस्य स्वयं गलसंवाहक सामान्य मन्त्रदेव से भी नहीं छिपा था । यही कारण है कि आज उनके घंटर में उठे विद्रोह के पश्चात् भी वह अतन्त केवल जिन होकर ही रह गए ।

सच्चा समय जब वह अपने आवास की ओर चले तो उन्हें ऐसा अनुभव हुआ जैसे वह स्वयं ही अपने जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण विषय को पराजय के हाथों में लीन लीट रहे हों । सदा की भाँति आज भी उनका विद्यालय घड़ बाहुर राजपथ पर जनरल के मध्य दरपट हीड़ता जमा का रहा था । किन्तु पथ पर पड़ती घरतों की तातपूर्व पदचार्णों से वह अस्तमित नहीं हो सके । और दिनों जब इन्हीं छेपकों की पथ धरति उनके कानों से टकराती थी तो उनके अंतर में बँठे पणसंवाहक का उदात्त नाथ और मुकुरित हो उठता था । पर गौरव से प्रवीण उनका मुक्त मार्ग पर धाते-धाते पौरवर्तों पर सहज अन्तनाम विद्येयता जमता । किन्तु आज उनके मन में न तो जब प्रवाह की ओर देखने का ही कोई उत्साह हीय रह गया और न वह धारतीयता का भाव हो । वे सभी तो उन्हें बहिष्कृत जैसे प्रतीत हुए । मार्ग में पड़ते सुपरिचित आवास भी उन्हें अपनी धार धाकूट करने में असमर्थ रहे । सारी बैंगाली ही उन्हें एक अनजान नगरी क सङ्घ प्रतीत होने लगी । और राजा बेटक महामत्साहित्य सिंह महामौर अेलिय एन सभी तो । उन सभी के प्दान भाव से उनके मन में तिक्त भाव समर धाया और फिर वह उनके मारे अंतराम पर व्याप्त हो गया ।

सम्मुख ही पश्चिम दिशा में सखीरा के उन पार यात्रा अहित तूरें रतिमर्मा अपनी विपरी मुस्लान के साथ अतिम रेमा पर अणकती का रही थी । उत्तरात्तर सीतु होखी का रही उनकी मक्ति धामा को देख आज न जाने क्यों उनके मन में एक

टोस सी उठ करी हुई। रथ से मुख बाहर निकाल वह जमीं धीरे निहारते रहे। मूर्ख अपना अस्मित्य धासोक शिक्षा अस्तावना में मुक्क रत्ना धीरे विग डूब गया। सी बने सने—  
‘यह जीवन भी क्या है ! मर्यादा-सूत्र के उस प्रचण्ड रूप का क्या हुआ ? धरे केवल वो पहर पश्चात् ही वह वो बन कर संस्कार में विसीत हुआ गया। मनुष्य का जीवन भी तो कुछ ऐसा ही है। धीरे मेरे जीवन की यह कैसा ?’

उनके मुख पर निराशा का प्रगाढ़ भाव छा गया।

हमी मध्य सरपट बीड़ता उनका रथ बरौता मुख्य राजपथ से उतर घासघास द्वार की धीरे मुड़ लिया।

द्वार मध्य में रुके रथ से जब वह नीचे उतर सोपान की धीरे बढ़े तो उन्हें सुरम्त देवकों की उपस्थिति का ध्यान हो घाया धीरे उनका स्वामी रूप मरुण हो उठा। उनके अन्तर का खिन्न भाव बँसि रहत नुप्त हो गया धीरे अयनरथ में प्रविष्ट होते ही उन्होंने उवा की भाँति धाम की ‘छाया छ पा’ की रट लगा दी।

बागी कन्या छाया रूप समय धामन कथा के ही एक कोने में कुछ सिमटी-सी बैठी थी। बास्त्र में स्वामी की प्रतीक्षा करते फरते वह अपने अन्तर में उठ भावों उवा उत्परात् विचारों की अंबर में कब समझ गई इसका उसे स्वयं कुछ मान नहीं रहा। अतः स्वामी का उष्य उसके कानों से टकघाया ती अंग हुई विचार लम्बा है साब वह कुछ चौंकी-सी गई। लघक दृष्टि से वह जैसे अपने ही में कुछ टटोलने का प्रयास कर लगी। स्वामी ने न जाने कितनी बेर लक प्रतीक्षा कर मुझे पुकारा होया इन माघक से उवावा सारा मात प्रकल्पित हो उठा। परन्तु फिर भी वह ही अपने को किसी प्रकार मंगत कर वह बलसंकाहक के सम्मुख सा उपस्थित हुई।

वह नयन मत्त किए लड़ी रही धीरे कुछ सामन्त संसंभ्रम दृष्टि से उनकी मुनठित वैह एवं मुख छवि वा निहारते रहे।

सामन्त अंतरेक के विचार-उद्देश्य अधिक अस्तिष्क को कुछ-कुछ विप्रांति का सा अनुभव हुआ। उनके मुख से संतोष की एक भापी श्वाभ निकल गई। कब में यत्र-यत्र उनकी सुसंभित धमक मूत्र रेखाएँ अंतर्द्वार से उठीं तथा बीच सिंघाएँ कुछ मचल-सी गईं। धीरे कुछ सामन्त धामु अधिक धीरे को तनिक विधाम देने की इच्छा से उम्मा पर भा बैठ।

बागी कन्या भी हाथ पर टिके रहत धाधार एवं उठ पर रथी स्वयं-मद्य पात्र को लिए, धाये वह स्वामी के समीप भा लगी हुई।

दावेक उनकी धीरे देखते रहे कुछ सामन्त ने रजत धाधार से मद्य पात्र उठा लिया। साब ही कहने लगे—“बागी कन्या छाया। नू भित्तों गुम्बर ही यदि धरती ही बाबाभ भी हूँ हागी तो मला बना ही मच्छा होना।”

कुछ स्वामी की यह बात उसे अन्तर में अस्विकार प्रतीत हुई। परन्तु प्रकट में उनके मुख पर लह्व संतोष का भाव उमर धाया। उनकी लमस्त कनारी-भाषिना से सिहर-सी गई।

साभग अंतरेक अपने धारों से मद्यपात्र को हटा पुन- बीन उठे—“बागी कन्या मुक में वह संतोष ! धरी धवागी यह संतोष धीरे यह मीन तो केवल धमिजात

रामा को ही योगा से सज्जता है जिस न उदर पोषण की विन्ता होती है धीर न किसी स्वामी को प्रसन्न कर पुरस्कार पाने की क्षमिताया ।”

रामो कन्या इस बार भी केवल मौन ही रही । हाँ उसके झोठकोर चिन्ता से प्रबल्य फैल गए ।

किन्तु सामन्त मन्त्रद्वय ने उस धीर विधेय ध्यान न दे अपना हाथ उसके मुँह की धीर बड़ा दिया । उनके विद्युत् को प्रगुनि के सहारे से तनिक ऊपर उठा बोस—  
“रामा ! इधर ला देव ।”

बुद्ध स्वामी ने यह सर्वथा अनुनय के छाड़ कण्ठ स्वर में कहा था तो भी वह बाती कन्या के लिए केवल धारण बन कर रह गया । स्वामी के धारण पर अपने लज्जामय दृष्टि को ऊपर उठाने का सा प्रयास किया । बुद्ध सामन्त ने उसकी संकोच बोधिन दृष्टि में शीघ्रत हृष्ट गहने तो अपने बर्राए कण्ठ को कुछ साफ किया तथा फिर उसको दृष्ट कराने का प्रयास करते हुए बोले— ध्याय प्रभा तेरा यह कर उठ बाती कन्या से कुछ कम चाहे ही है परन्तु ।” कहते-कहते उनका कण्ठ स्वर स्वतः प्रबल्य हो गया । परन्तु दृष्टि फिर भी कौमुद्गन से हृष्टप्रभ हा उसकी धीर देखती रही ।

द्विज बाती कन्या से, यद्यपि स्वयं सामन्त मन्त्रद्वय ने इसे स्पष्ट नहीं कहा तो भी वह उसे समझने में प्रथमच नहीं रही । सन्निवहक तल्ल कथित ने मध्याह्नो परान्त में परलुसबाहक को बताने से पूर्व ही उस सब कुछ बता दिया था । केवल बड़ा ही नहीं दिया था बल्कि उनके लक्ष्य को इसी प्रकार अपनी प्रगुनि के सहारे ऊपर उठा स्फुटित हो स्फुरित कण्ठ स्वर में पूछा था—“क्यों कुमारी क्या यह एक मुन्य कथा नही है ?” बाती कन्या छाया उठ समय भी मौन रही थी परन्तु प्रत्युत्तर में वह उदरबाहक तल्ल की धीर अपने नैव पलक उठा उसे देखने का मोम सञ्चरण नहीं कर सकी थी । तल्ल कथित के मुख पर छाए भाव को देख वह कुछ-कुछ केवल कुछ ही नहीं बल्कि प्रसीम गर्व का अनुभव कर उठी थी हृष्ट में एक स्फुरण का संचार हो उठा था नैव ध्याय से ज्योतिष हो गए थे धीर उसकी छापी वेह एक उच्छ्वास का स्वयं वा नबोधित ऊचा वैरा की भाँति अकथित हो उठी थी । उस क्षण का वह दृश्य उनके नेत्रों के सम्मुख साकार रूप में था उपस्थित हुआ धीर उसी के साथ एक भास्वर विधेय के साथ उनका रोम रोम गुनचित्त हो उठा ।

धीर हम सारी अर्थात् बुद्ध सामन्त निष्पन्नक हो उनकी मुख छवि को देखते रहे, कल्पना करते रहे कि क्या हममें धीर ध्यायवामी की जन विद्या में क्या प्रभुत्व होया । प्रथम वह यही भुन गए कि इस क्षण उनके समुच्च लक्ष्मी भी एक परिचारिता कधी है प्रथम यही बाती कन्या जिसे प्रायः ध्याय सम्पत्ति के उन्मोष का उत्तरा विद्यार मिता है । जैसे कोई उनके समुचे धर्तारण को कर्षाट-सा गया । केवल कुछ क्षणों पूर्व ही उनके नेत्रों में से प्रतिबिम्बित होता अनुनय का भाव प्रतिशोध भी कक-घटा में परिणत हो उठा । मध गर्जन सञ्च कडकते स्वर में बोस—“बाती कन्या देवना तुझे भी देवना ।”

यह सुन राजि का संघकार सहम गया धीर छाया बर्न उठी । कहीं स्वामी को साय रहस्य न सुन गया हो इस भय से उसका साय अन्तःपल प्रकम्पित हो



टीस ही उठ लड़ी हुई। रब से मुख बाहर निकाम बह उगी धोर निहारते रहे। सूर्य घपना धन्तिम घालीक शिखा घस्ताचन में बुरक रहा धोर दिन बूब गया। धोबने सने—  
‘यह जोषन भी क्या हे। मज्जाहू नूर के उस प्रणव क्य का क्या हुआ ? घरे, केवल धो पहर परचाए ही बह तो इन कर धनकार में विमीन हा गया। मज्जुय का भीषन भी तो कुछ ऐसा ही है। धोर मेरे जीवन की बह कैना ?

उनके मुख पर निराशा का प्रयाङ्ग भाव छा गया।

इसी मध्य सरपट दीङ्गता उनका रब धरिता बक्य राजपप से उतर घावात हार की धोर मुङ्ग भिया।

हार मज्जुय में रुके रब से जब बह नीचे उतर सीपान की धार बड़े तो उन्हें दुरन्त संवकों की उपस्थिति का ध्यान हो घावा धोर उनका स्वामी क्य सचेष्ट हो उठा। उनके धन्तर का ज्वलन भाव जैसे स्वतः कुप्य हो गया धोर धमनकन में प्रविष्ट होते हैं। घ-होने सवा की मीति घाव की ‘छाया छ पा’ की रट सवा बी।

बायी कन्या छाया इन समय धयन कस के ही एक कोने में कस सिपटी-सी बँठी थी। बास्त्रव में स्वामी की प्रतीक्षा करते-करते वह अपने धन्तर में उठे भावों सवा उपपन्नत् विचारों की संवर में कब सनभ गई इसका उसे स्वयं कुछ भान नहीं रहा। अतः स्वामी का धम्य उसके कानों से टकराया तो भान हुई विचार लम्बा के साथ बह कुछ चौक-सी गई। ससक दृष्टि से बह जैसे अपने ही में कस टटोलने का प्रयास कर उठी। स्वामी ने न जाने कितनी देर तक प्रतीक्षा कर मुझे पुकारा होगा इस धारणा से उसके सार्य मात प्रकम्पित हो उठ। परन्तु फिर भीष ही अपने को किसी प्रकार संवत कर बह पणसंवाहक के सम्मुख या उपस्थित हुई।

बह नयन नत किए लड़ी धोर बूब सामन्त संसंभ्रम दृष्टि से उसकी सुवन्ति रहे एवं मुङ्ग छवि का निहारते रहे।

सामन्त भंजरेव के विचार उद्रेप धकित मस्तिष्क की कुछ-कुछ विधाति का सा धमनन हुआ। उनके मुख से लतोप की एक धारी सवाध निकल गई। कस में धन-सम समी सुवन्धित धनक ब्रूम रेखाएँ संवडाई ने उठी सवा धीप सिखाएँ कस बचन-सी गई। धोर बूब सामन्त धानु धकित धीरों को धनिक विधान देने की इच्छा से धम्या पर धा बँठ।

बायी कन्या भी हाव पर टिके रजत धाधार एवं उस पर लखे स्वयं-बध पाव को लिए, धाने बह स्वामी के समीप धा लड़ी हुई।

धमक उनकी धोर देखते रहे बूब सामन्त ने रजत धाधार से मध पाव धठा भिया। धाव ही कहने लखे—‘बायी कन्या छाया। तु जितनी सुन्दर है धरि उतनी ही धावात भी हुई होती तो मसा क्या ही धच्छा होता।’

बूब स्वामी की यह धाव उसे धन्तर में धरविधर प्रतीत हुई। परन्तु प्रकट में उसके मुख पर सहज संकोच का भान धमर धाया। उनकी समस्त कर्णदटी मातिमा से सिहर-सी गई।

सामन्त भंजरेव अपने धीपों से मधनाव की हटा पुन- धोन लठे—‘बायी कन्या तुम्ह में बह संकोच। धरी धयानी यह संकोच धोर यह भीन तो केवल धधियात

बामा नो ही घोमा वे उचरता है जिसे न उचर पोपण की निम्ता होती है और न किसी स्वामी को प्रसन्न कर पुरस्कार पाने की अभिलाषा ।”

दासी कन्या इस बार भी केवल मौन ही रही । हाँ उसके थोथकोर चिन्ता स भवस्य फँस गए ।

किन्तु सामन्त भंडारेव ने उस घोर विक्षेप भ्राम न दे अपना हाथ उसके मुख की ओर बढ़ा दिया । उसके चिबुक को अपनी के सहारे से तनिक ऊपर उठा बोले—  
छाया ! इधर लो देख ।”

बुढ़ स्वामी ने यह सर्वथा अनुनय के धाँड़े कण्ठ स्वर में कहा था लो भी वह दासी कन्या के लिए केवल धारेश बन कर रह गया । स्वामी के धारेश पर उसने मजबानत दृष्टि को ऊपर उठाने का सा प्रयास किया । बुढ़ सामन्त ने उसकी संकोच बोधिम दृष्टि में झँकते हुए पहले तो अपने मर्राए कण्ठ को कुछ साफ किया तथा फिर उसको बुढ़ करने का प्रयास करते हुए बोले— छाया प्रभा ठेरा वह रूप उस दासी कन्या से कुछ कम लोड़े ही है परन्तु ।” कड़वे-कड़वे उनका कण्ठ स्वर स्वतः भवकण्ठ हो गया । परन्तु दृष्टि फिर भी कौतूहल से हतप्रम ही उसकी ओर देखती रही ।

फिर दासी कन्या से, यद्यपि स्वर्ब सामन्त भंडारेव ने इसे स्पष्ट नहीं कहा लो भी वह उसे समझने में असमर्थ नहीं रही । संदेसबाहक तक्षण कविन ने मध्याह्नो-परान्त में पण्डितबाहक को बताने से पूर्व ही उसे सब कुछ बता दिया था । केवल बता ही नहीं दिया था बल्कि उसका चिबुक को हठी प्रकार अपनी अंगुलि के सहारे ऊपर उठा ऊपर उठा हो स्फुरित कण्ठ स्वर में पूछा था—“क्यों कुमारी क्या वह एक सुन संवाद नहीं है ?” दासी कन्या छाया उस समय भी मौन रही थी परन्तु प्रवृत्तर ने वह संदेसबाहक तक्षण की ओर अपने नेत्र पलक उठा उसे देखने का सोम संवरण नहीं कर सकी थी । तक्षण कविन के मुख पर आए भाव को देख वह कुछ-कुछ केवल कुछ ही नहीं बल्कि अतीव गर्व का अनुभव कर उठी थी । हृदय में एक स्फुरण का संचार हो उठा था नेत्र आधा से खोले हुए गए थे और उसकी सारी देह एक चम्पूवास का स्पर्श या नबोधित अमा केना की प्रतिप्रसंगि हो उठी थी । उस क्षण का वह रूप उसके नेत्रों के सम्मुख आकार रूप में सा उपस्थित हुआ और जमी के साथ एक पास्तुहाद विक्षेप के साथ उसका रोम रोम पुनश्चित हो उठा ।

और इन सारी धर्मधि बुढ़ सामन्त निष्पत्तक हो उसकी मुख छवि को देखते रहे कल्पना करते रहे कि मसा इसमें और आश्रयानी की उचर त्रिप्या में क्या अन्तर होगा । प्रेउत वह यही मूम गए कि इस दण्ड उनके सम्मुख लगीं की एक परिचारिका लगी है प्रथमा यही दासी कन्या जिसे आज आज सम्पत्ति के उपभोग का उत्तराधिकार मिला है । जैसे कोई उनके समूचे अंतराल को कभीट-सा गया । केवल कुछ दण्डों पूर्व ही उनके नेत्रों में से प्रतिबिम्बित होता अनुनय का भाव प्रतिशोध की कर्क-पटा में परिलुप्त हो उठा । येप बर्जन सबूष कड़कते स्वर में बोले—“दासी कन्या देवुना तुम्हें भी देखुंगा ।”

यह सुन रात्रि का संभकार सहम गया और छाया कपि उठी । कहीं स्वामी को साप रहस्य न सुन गया हो इस भय से उसका सारा अन्तराल प्रकम्पित हो

उठा। सन्देशवाहक कविम की वह न जाने क्या मत कर बैठें इस भय से तो अपनी मनोदशा धीर भी अधिक बिभ्रसित हो उठी। प्रयत्न करके भी वह अपने को न संभाल सकी धीर न ही उस रक्त घावार को जो उसके हाथ पर टिका था। हाथ के कंप कंपाते ही रक्त घावार झपारता हुआ धरापायी हो रहा। धीर उसी क साथ मुख्य पात्र से मरिचा निकल कब्ज में वह मिक्ली। मरिचा की गंध समस्त वृद्ध में से प्रसङ्ग टिठ होती भीनी भीनी सुवास पर छा गई।

वृद्ध सामन्त ने समझा थाया ने एक सुद दासी कन्या को निजी धर्म सम्पत्ति पर निश्चित ही धर्म का अनुग्रह किया है। तभी तो वह अपना अनुत्पन्न को बेटी है। सम्भवतः, एक दासी कन्या धीर जैसे वह संकोच यह धर्म धीर उसका वह दुस्साहस। उनकी उत्तेजना ने उत्तरोत्तर उग्रतरण कर ले लिया। नीचे भूमि पर बिखरी बहुमूल्य मरिचा को देख वह धीर भी उत्तेजित हो उठे। घन्टर का घण्टा भाव ध्वनित हो उठा। कड़कते हुए बोले— बांझाल जोकरी जानती नहीं तू इसका मूल्य? जानती नहीं क्या कविमा के एक सार्वनाहू से वह पूरे एक घण्टा कार्यालय प्रति कुम्भिक के साथ पर भी गई थी।”

उनका शीघ्र माय कुरी तरह फूट गया। नेत्र धाँसे हो उठे। फिर भी उनके घन्टर में ही बैठ कोई उन्हें जैसे कुछ समझाने का प्रयत्न करता रहा। किन्तु, उनका प्रवर्धित क्रोध उतने ही परिहाराय से मरक उठा। उनका क्रोध स्वयं उनके बच में न रह सका धीर आदेश ने उठे हाथ ने दासी कन्या का बकेम ही तो दिया। धीर उनके इस प्रहार के फलस्वरूप दासी कन्या ही गिर ही गई, साथ में स्वयं उनके हाथ से भी चपक फूट गया।

बित्तरी मरिचा का स्पष्ट कर दासी कन्या के बीसे बरत उसके पाठ से भिन्नट मए धीर उबर वाग अधिकाधिक आर्तकित होता अपने में सिमटता जा रहा था। बरत हरिणी की आँति उसके नेत्र ईश्वर भाव से अनेकानिमित्त स्वामी की ओर देखते रहे।

परन्तु उसकी दृष्टि का सहसा कातर भाव सामन्त मंत्रद्वेष के आन्वेष नेत्रों को ठनिक भी अपनी ओर आकृष्ट करने में असफल रहा। उनके नेत्रों के सम्मूह तो इस समय कुछ धाँसे पूर्व की दासी कन्या का वह प्रफुल्लित मख वा जिसे देख उन्होंने अनुमान लगाया था कि आश्रयानी की पिठ्या के प्रथम भाव से वह कितनी प्रवर्धन हो उठी है। घण्टा उनके हृदय में प्रतिशोध की ज्वाला मरक उठी। धीर इस मरकते प्रतिशोध के साथ ही उनका हाथ सम्मूल पड़े धर्म-प्रतीक पर जा पड़ा। यह देख दानी कन्या कुरी तरह नाँ उठी। उनकी रीह से स्वेद बल फट निकला। हाथ में प्रतीक के साथ ही दण्डसहाहूक का उग्र रूप धीर प्रकण्ड हो उठा।

दासी कन्या प्रतापपात से कराह उठी। उसके मुख में निकला शीत्कार रात्रि के घन्कार में किसी हो जैसे प्रकम्पित करता रहा। घन्कार सिद्धर उठा परन्तु मण्डसहाहूक का उठा हाथ धीर भी अधिक धामेय के साथ उस दासी कन्या पर प्रहार करता रहा। धीर प्रतीक प्रहार के साथ वह मेव वर्जन सहस्र बण्ड स्वर में बहते रहे “मार्तुंगी रक्षता है सामन्त मंत्रद्वेष के बीवित रहते तुम्हें बैद्यानी में जैसे सना बिचार मिलता है।”

इसी मध्य यशु संभागाय का कौत्स बधियास 'टम-टन' का घातकार कर बन उठा।

रात्रि का सवन शंकर भी जब राती कन्या के भीतकारों को सहन करने में स्वयं घसमर्ष रहा तो उसने उसे प्रासाद के धोर छोर तक फँसा दिया। फलस्वरूप उसे तुन पश्य दास राती एवं भृत्य जन भी कक्ष की धोर बौह किए। सम्मुख पड़ी वैतुष छाया को देख जनका मन गणसंबाहक को विचकार उठा। प्रतोष प्रहारों से फले छाया के वदन भीषड़े होकर इतर-उतर छितरा गए वे भीर धन वह शायः गन्नावस्था में पड़ी थी। उसकी देह का रस भी नीला हो गया था। उसकी यह वसा देख उन सभी का हृदय फूटकार उठा। परन्तु विचसता से वे सभी मौन रहे। मन ही मन केवल इतना ही कहा—'स्वामी यह तो सचमुच घति है।

सामन्त भंडारें भी वहीं कड़े गू उसकी धोर देख रहे थे। प्रहारों के लक्षित क्षय से जनका बसास धुरी तरह फूल उठा। परन्तु दास-बाधियों को इस प्रकार एकत्र होते देख जनका विधाम करता खोब जैसे पुनः सचेष्ट हो गया। कुछ क्षण पर धादि कार का स्वाभाविक पक्ष भावक हो रहा। धारें के दूक, कर्कष स्वर से वह बोसे—  
"अरे मातुनी मेरा मुँह क्या ठाक रहे हो मे बायो न इसे।"

किन्तु उनकी यह अनकार निष्फल रही। भृत्य जन उन पर किंचित् भी नहीं हिने दुबे पायाग्य मूर्ति की मूर्ति बस छाया की धोर निहाये रहे।

उनके इस सवज्ञापूर्ण दुस्साहस पर भी गलसबाहक कुछ कहने को बचत हो उठे कि इसी मध्य समेसबाहक कपिल ने सहसा कक्ष में प्रवेश किया। नेत्रकारों से सम्मुख वैतुष पड़ी धपनी छाया को देख उसका हृदय छीस से कराह उठा। परन्तु प्रकट में सबा की मूर्ति इस समय भी गलसबाहक का समिवाहन कर वह बोला—  
"सामन्त मोष्ट। गणाध्यक्ष के पुर्व से समेसबाहक-प्रणाल धार्ब मृत्युंजय पवार है।"

किन्तु, सामन्त भंडारें के पूर्ववत् भावनेक में कहा—  
"तो फिर उपस्थित करो न।"

फिर भी कपिल प्रत्युत्तर में सबा के सहज भाव में बोला—  
"माले धार्ब मृत्युंजय कोई मोपनीय समेध नाए है धलएन उन्हीने एकाल का धनुरोप किया है।"

धोर छिद्र वह गलसबाहक के उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही वहाँ से चल दिया। बास्तव में वह कक्ष में जितनी देर खड़ा रहा वही उते भाटी बन धाया था। कक्ष के बाहर निकलते ही उसका हृदय लम्बा खोम्बि हो उठा और वेध भी सजस हो गए।

उपस्थित दास-बाती तथा भृत्यजन समेसबाहक कपिल का सचेष्ट समझ नहीं से छिटक गए। वैकल शानी कन्या ही धपनी वैतुष धवस्था के कारस जाने में घसमर्ष की को वह वहाँ पड़ी रही। उसे देख सामन्त भंडारें के लोबाधिनून मुख पर भी एक बार को चिन्ता की रेखा-सी छिन्न गई। धल वह तत्परता से उस मुनप्राप देह को धत्या के नीचे खिमकाने सगे, परन्तु इसी मध्य गणाध्यक्ष के समेसबाहक मृत्युंजय वन वहाँ या पहुँचे। वर पर एक मीवपूर्ण दृष्टि डालते हुए समझने गणसंबाहक का

अभिवादन किया और फिर नतमस्तक हो बोले—“सामन्त बघट ! बलाभ्यक्ष रावा बेटक ने धर्म की सेवा में एक धार्मिक संवाद निवेदन करने का आदेश किया है।”

मणसंबाहक ने किंचित् अशुभता का भाव प्रदर्शित करते हुए कहा—“निवेदन करो धार्युमान।”

मृत्युञ्जय बोले—‘धर्म ! बलाभ्यक्ष ने कहा है कि आज संझ्या से सुरता प्रमाण के पर पर तक्षसिता विद्यापीठ से धार्यु सख-स्नातक धार्युमान अजवर की नियुक्ति कर दी गई है।’

सर्वेसबाहक मृत्युञ्जय के मुख से यह संवाद सुन सामन्त अजवेव स्तब्ध रह गए। किन्तु, सीध ही आवाज से उनका मुख रक्षित हो गया। उन्हें प्रतीत हुआ कि बलाभ्यक्ष ने यह संवाद नहीं देना बल्कि अत्यन्त वच्य प्रहार किया है।

वह बोले— धार्युमान मृत्युञ्जय ! येही धोर से धर्म बेटक की सेवा में निवेदन करना कि बिद्यापी की सासन व्यवस्था में सुरक्षा प्रमाण का पर अत्यन्त महत्वपूर्ण है और उन पर पर एक ऐसे कुक की नियुक्ति की गई है जो न केवल ब्रह्मिक है बल्कि अज्ञान कुलसीन भी है और आज ही अनभिहित भी अतएव मैं अजकी इस नियुक्ति का विरोध करता हूँ।”

धर्म मृत्युञ्जय सामन्त अजवेव द्वारा प्रस्तुत धार्यु की नत मस्तक हो सुनते रहे। धार्यु की बुद्धि से यह प्रीड़ावस्था के अन्तिम धोर पर पहुँच चुके थे। उनके मुख पर इस समय नाम्नीय धोर विनय का अक्षुभ विधित भाव व्याप्त था। फिर धीर्धर-धरि से बलाभ्यक्ष के मुख में प्रमाण सर्वेसबाहक के पर पर आसीन होने के कारण उनके अन्तरिक धार तथा धीन से सुपरिचित थे। अतएव बलाभ्यक्ष के सर्वेस के उत्तर में मणसंबाहक ने जो कुछ भी कहा उसे सुनने के पश्चात् भी वह धीरे से किंचित् समय तक वहीं बड़े रहे। अन्ततः जब वह अत्यन्त हो गए कि मणसंबाहक को धन निविधत ही धोर कुछ नहीं कहना है तो वह ‘धर्म की आशा विरोधार्थ है कह, धरि वादन कर, कक्ष से बाहर की धोर चल पड़े।





**कृष्ण** पक्ष का पहलू तिमिर भी एक दृश्य विशेष को देख, उन्मुख भाव से विमर्शिता  
 घटा ।

मुख्य महानगरी से बाहर लहानीरा के बाएँ तट से सभी क्रमिकरों की बस्ती  
 में इस समय इर्ष्यासाह का प्रवाह यथिमान था । एक बूढ़ ने अपने से भी अधिक धान  
 की एक स्त्री के घिर पर जब बीर्य-धीर्य गंध मुकुट रखा तो बाएँ धोर से हँसी की  
 फूहार बूट पड़ी । बूढ़ा के घिर पर पर्य मुकुट रख रसिक बीबले बूढ़ ने बूटनों के बम  
 गठ ही अपने दोनों हाथों को सम्बर्धन धामिनय कुछ कहा भी था परन्तु उनके  
 ने सभी सब हँसी की उम फूहार में विभिन हो गए । साबास बूढ़ नर नाटियों की  
 अपार मीढ़ इस दृश्य विशेष को देख हँसी से बोट रोड हुई था रही थी कि इसी मध्य  
 एक बस्ती वाला ने अपने हाथ की सभी पुष्प भाषाओं एवं गबरों धादि को धारण उस  
 रसिक बूढ़ के सामने का पटक । किन्तु उसके मुख पर धारण से भी अधिक निराशा  
 का भाव व्याप्त था । धर्राए कष्ट स्वर में वह कह बड़ी— 'ओ ये तो सारी भाषाएँ  
 चितनी गूँधी भी सभी तो बच गई । ।

बूढ़ पहले तो हिलचिलाकर ईस पड़ा । फिर संस्थना क से धारणीय कष्ट स्वर  
 में बोला— 'धरी धो ओरुटी चकटाती क्यों है ? कम ही देख लेगा ये तो क्या उस  
 पुनी भाषाएँ भी गूँधी तो धोड़ी पड़ जाएगी । देवी धाध्रपामी की वह धिध्या कोई  
 ऐसी बँधी नहीं है । उसके अनुगत नृत्य के देखने वालों की एक दिन वह मीढ़ बना  
 करेगी कि तु, सब देखते ही रह जाएँगे ।"

यह सुन उस वाली का हँसी धा गई । वास्तव में वह उदाहान की हँसी  
 थी जिसके मध्य से उमका निराशा का भाव भी स्पष्ट रूप में प्रतिबिम्बित हो रहा  
 था । धर्य के से विन्न स्वर में वह बोली— 'किन्तुनी धीड़ बना करेगी यह तो धाब  
 ही विरिध हो गया । जसो वह कम भी दूर नहीं देखूनी वह मीढ़ कँधी मपती है ।"

उसके मुख की निराशा धोर प्रगाढ़ हो गई । बूढ़ इस बार कुछ कुछ उन्मास  
 के से स्वर में बोल उठा— 'बंधुजनों यह हमारे उदाह होनी का समय नहीं । एक दिन  
 हम में से किसी ने यदि कुछ लाभ कार्याण धारित न किए तो उनसे क्या ? क्या हमारे  
 लिए यह वर्ष की बात नहीं कि हम ही में से एक कम इस महानगरी की कमा धदि  
 प्तानो होने वाली है । देवी धाध्रपामी के स्वान पर जब वह निराधमान होगी तो  
 क्या हमें कुछ भी नहीं मिलेगा ? क्या हम सभी यहीं यही प्रकार रह जाएँगे ।

बूढ़ की इस बात का सुन सभी में हर्ष की एक सहर वीड़ गई । परन्तु वह वाला

उना उठी की भाँति पुष्पमालाओं का विक्रय करने वाली धन्य बालार्थें जैसे धारवस्तु हो सभी । एक दूसरी पहली वाली की ही भाँति मन्था उठी । फिर, धरिबराध के से दिखारे कण्ठ स्वर में बोली— 'बूढ़ बाबा यह तुम्हारा केवल एक स्वप्न है । जानते नहीं बैधासी के ये सामन्त कितने बलवान हैं ।'

यह कह कर तनिक रुकी । फिर बूढ़की बजाते हुए बोली— देखो तो ए, मैं देखते ही देखते इस बासी कन्या की समाप्त कर देंगे जिस पर कि तुम इतना बर्न कर बैठो हो ।'

एक धानत यौवना के मुख से यह सब कुछ सुन कर भी बूढ़ धिन्न नहीं हुआ । जस्टे उसके अन्तर का उन्हाह विद्रुहित हो उठा । उसके मेघ प्रवीण हो गए । धारमविश्वास के से बूढ़ कण्ठ स्वर में बोला— 'ऐसा कदापि नहीं हो सकता पुनिया । धीर बरि हुपा भी तो निगल होने की धारवपकता नहीं । मेरी धमापी पुत्रियो बास्तव में तुम्हारे अन्तर का साहस भर चुका है धीर भर चुका है तुम्हारा धारमविश्वास तुम्हारे स्वाभिमान का पना समक के कूर हाकों में चोट बिना है, जो धन केवल निराशा की ही मापा बीम समता है । धमया क्या तुम एकतम्य को समने देखकर भी इस प्रकार धरिश्वास की बात करती ? क्या तुम समझती हो कि देवी अम्बपाली ने अपनी धापी सम्पति देई ही बिना कुछ समने कून्ने, एक बासी कन्या को धीव रो है ? उसके पीछे भी तो कोई धमिती ही होगी ? यदि न होती तो तुम सभी धार देखते कि बैधासी में रस्त की नदियाँ बह उठी हैं ।'

एक ग्रीक कम्मकर इस पर उत्तुम्ता का सा भाव बिखाते हुए उत्परता से पूछ उठा— 'धीर बह धरिती कीम ती है महामाग ?'

इसी मध्य एक बूढ़ा कम्मकर उत्परता से कह उठा— 'रस्त की नदियाँ बरि धार न बहो तो कन बह जाएँगी पर एक बासी कन्या की किसी धार्य की सम्पति मिल जाए बैधासी में यह कोई साहस काम नहीं ।'

बूढ़ बस्ता बह मन इस बार कुछ बीभ-सा गया । किन्तु फिर भी प्रकट में किसी प्रकार अपने उन्हास को बनाए रख बह बोला— 'तुम्हारी यह निराशा स्वाभाविक है । कारण एक बीम धरिबि से बास क्य में जो हुमाध मय विक्रय होता था रहा है, धरते हुमाध धरिबास समाप्त हो चुका है परन्तु एक दिन तुम धरवरय ही देखोने कि हुमारा यह धरिश्वास धरिबर्नक था ।'

इस बाद-बिबाद में ह्योँकतास का बह रग स्वत-धीका पड़ जाता, जो कम्मकरों की इन बूझाकहित बस्ती में दिन के एक प्रसय को सुन इस समय धनायाह ही धारर्य हा गया था ।

इसी मध्य ह'क्ये धा रहे एक बास कम्मकर ने कम्मकरों की इन ग्रीक में प्रवेश किया धीर फिर अपने उन्हा कण्ठ स्वर में बोला— 'बन्धु बनो ! सुना तुमने धरे सुना नहीं क्या तुमने धार्य धामन्त धरिबर्नक में एक दान पुत्री जाया को किस बुी टाछ से पीटा है, इतना पीटा है कि अपना समूचा मात नीला पड़ सुन उठा है धीर बह धमापी धापी भी धरिबेध पडी है ।'

यह सुन सभी धरिबक रह गए । ग्रीक में से एक बूढ़ विजीन के बोधिन कण्ठ-

स्वर में कह उठा—“अबुबरो भयं रज्जो यह गणसबाहक का प्रतिघोष मान है, धीर केवल हठाद्य ही ऐसा धापरण करते हैं।”

पहले बापा कुछ बकता इस बार सावेद्य बोल उठ—“बैधे रज्जो ? किस बात का ? सामन्त है तो क्या वह एक बाघी कन्या को पान ही से मार देगा ? परे मान क्या भी तो कोई जीव होती है । याव धाज वह समर्थ है तो हम क्या जीवन को भी तरस बाढ़ेंगे ?

यह सुन मीड के बीचों बीच कड़ा एक प्रौढ कम्मकर जैसे कोत्र के पणविद्य में लसकारता हुआ-सा बोल उठ—“बुद्ध रहने को इस उपदेशना को नहीं चाहिए तुम्हें सुम्हारा यह साहस क्या तुम हर्षे इन प्रकार प्रोत्साहित कर धनकरी धनि ज्वाभावों की धीर नहीं बकेज रहे हो ? याव रज्जो सामन्त जब यदि एक बार भी प्रतिघोष की भावना से भयक उठ तां हमारा हम सभी का बहो ह्रास होना जो प्राण की लपटों में निरीह कीट पतंगों का होता है । घट कृपा कर, हमारी दशा पर दया कर हने बल नहीं रहने को वहाँ हम रहने जले धा रहे हैं । पूर्व बिनास हो इससे तो यही धेनकर है कि हमारा कँडा भी धस्तिरव जेप रह जाए । देवी धम्बपासी है तो यद्दु हमारे धस्तित्व को समूख लष्ट करने का ही धनुष्ठान किया है । बंधुधो ! उठे कृपा क्यापि न समझो धीर यदि जने कृपा समझो तो पहले धपने बिनास की बहना भी कर लो ।”

प्रौढ कम्मकर धावेठ में यह सब कुछ धराध पठि से कहता जसा मया । बहुत कुछ कह बुझने के पदबाए भी उठे जया बँस धमी धीर भी बहुत कुछ कहने को धीप रहे मया है । सभी उठकी बाउ को ध्यान से सुनते रहे धीर धानी धामार् उठके इन बाक सामर्थ्य पर मुग्ध हो उठी । धपनी ही बात का समर्जन होते देख उनके नेत्र प्रदीप्त हो उठ । परन्तु पहले बाला कुछ यह सब कुछ सुन न केवल धराध रहे मया बरन् उराठ भी हो उठ । एक धाली किधी धाधका से उठका समुधा धंतर प्रकल्पित हो उठा । कउ समय पूर्व तक क उनके उल्लाह-ज्योतिर नेत्रों में निराधा की गहनता छा गई । उनका मुह निस्तेज हा उठा जसा बह्र धाने को निर्बाध की गति धनुयध करने जया धीर, संहारे के लिए जसने निद्रुठ बैठे एक यक की धीर देखा । साध ही धम्य की बुष्टि भी उबर की धार जून गई । धपने धम्य एक धामबाठ दाखते मुक की देख ने सभी धंन रहे धए ।

मुक क मुह पर धाल्यविधास की मुस्कान खेल रही थी । वह धपने स्थान पर धपन्त धान्ठ भाव से उठ कड़ा हुआ फिर बोला—“महजनो !”

बास कम्मकर इस प्रकार के सम्वाधन के धम्यस्त नहीं है । धठ उम्होंने समझ यह मुक निरिक्थ हो उनका उपहास कर रहा है । परन्तु जने से धनेक ने उठे यठ दिनों से धपनी बस्ती में घाते जाते देखा बा धठ उपहास का धम धबिध बेर तक मन न टिका नहीं रह सका । फिर भी संतंभन बुष्टि से वे एक धुमरे की धार धधरप देखते रहे । मुक पुन बोल उठ—“महजनो ! धावध तुम सभी मेरे सम्बोधन पर कछ धनित हुए हा । पर क्यों ? क्या बैधासी में भी इस बात पर धकित होने की धावधपकटा है ? क्या तुमने धाज दिन में देवी धाधराली को यह कहते नहीं सुना कि कर्म ही धर्म है, धीर धाली कन्या धाली कन्या नहीं बरन् एक कसाकर है । उसका धम कसा है । मर



फिर भला मन्वान् तयागत हि भी बड़ा कोई भयानक है। जानते हो घाब उम्हूनि आपने प्रधान विषय से क्या प्रश्न किया था ? उम्हूनि धानन्द से पूछा था—“क्यों घामभान धानन्द भला इस संहार में सबसे बड़ा बाध कौन है ? जानते हो तब धानन्द ने क्या कहा था ? अज्ञातव्य धानन्द ने तब भवान् के विषय रूप को अस्तक मना कहा था— तयागत भला आपसे बड़ा बाध कौन है ?”

यह सुन मोठा कम्मकरों के बैच जैसे किसी नव प्रस्पृष्टित प्रालोक का स्पर्श कर प्रदीप्त हो उठे। एक प्रौढ कम्मकर के मुख से अनायास ही निकल गया—“बंभुवर हम उस समय भला बड़ा कैसे होते ? हम तो उस समय दूरस्थ ईश्वर कर्मात्मा में मुझाई कर रहे थे अथवा सेदही मित्राधिकारी की बड़ी-बड़ी पाठों को अपनी पीठों पर सार उसके श्रोतारों में पहुँचा रहे थे अथवा किसी अर्थ कर्मदाना में कार्य व्यस्त रहे।”

सुनकर इस मध्य जैसे उसकी बात को बड़े ध्यान से सुनता रहा। कम्मकर जब अपनी बात कह चुका तो सुनकर फिर बोला—“मित्रवर कार्य रत रहते तो बड़कर कोई पावन धर्म ही नहीं। किन्तु जो बात में कहने लगा था वह तो कुछ प्रीर ही है। जानते हो वैदिकी एक देव भूमि है ऐसी देव भूमि जहाँ सभी समान होने चाहिये। धीर जब वहाँ इस गणराज्य की स्थापना हुई थी तब यहाँ सभी समान थीं। इस देव भूमि का कमी भी सुख में विश्वास नहीं रहा। ही यदि कोई उस पर आक्रमण करे तो आसमरला में लड़े जाने वाला सुख सुख अथवा नहीं कहा जा सकता। तो जब वैदिकियों का सुख में विश्वास नहीं फिर विविधों अथवा विजयी का भेदभाव नहीं कहे जा सके। उम्हल विजयी लोगों ने ही तो विजितों को दास बनाया है। दास कौन है ? जो विजित है वे ही दास हैं। अम्हूदी कथावित् तुम मानव जाति के इन कर्म-पूर्व सभ्य को भुन गये हो। वैदिकी में कोई विजयी नहीं सभी समान है। क्यों ? क्योंकि उसने कमी भी किसी विजय के लिए सुख नहीं किया। फिर विजित कैसे ? दास कैसे ?”

अम्हूच ही लड़े एक कम्मकर ने सार्वभ्य पूछा—“बंभुवर तो फिर हम सभी यहाँ कैसे आए ?”

ब्रह्माभी बोला—“मित्र तुम्हारा यह प्रश्न तो सचमुच अर्थ करके आधा है। तुम अनायास ही तो एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न पूछ बैठे हो। तो फिर तुमो तुम्हारा धाब का यह अत्यधिक अम-नामर्ष्य बता रहा है कि अभी तुम भी अनायास रहे होये। ऐसी अन्ति तुम्हारी सहचरी रही होगी और ऐसी सिद्धि ने भी किसी दिन स्वयं अपने हाथों से तुम्हारे अन्तत समाप्त पर समृद्धि का तिसक लगाया होगा। धीर तब तुम भी इस माता अम्हूच की ओर से स्वच्छय कर स विश्वरत्न करते होये। तुम उस भू मान के निश्चय ही स्वामी रहे होये। तब किसी महत्त्वाकांक्षी पड़ोती ने ईर्ष्या-दृष्टि से तुम्हारी ओर देखा होगा उसी प्रकार जिस मति कि आज जगत् वैदिकी को धीर देखा रहा है कोसल कागी की धीर धीर अन्तिक का कोसामी की धीर धीर मगध ने तो अंग राज्य को अमी-अमी परास्त कर अपने में मिला भी लिया है। ऐसे ही एक दिन तुम्हारी भी पावन भूमि पर किसी ने क्रूर प्रहार किया होगा तब तुम

हार गए होने घोर से भीत गए होंगे। परास्त हथों को बन्धी बना लिया होगा घोर फिर धाप सभी को निस्सहाय अवस्था में यत्र-तत्र बेच दिया होगा। क्यों ? इसमिए कि कभी फिर तुम्हारा स्वाभिवान न बाप उठे। कहते-कहते वह सहसा रुक गया। उसका कण्ठ स्वर जैसे धारण ध्यानि से कुछ रोझिल-प्रा हो गया। उसके भाव निरन्तर प्रवीण तैयारी में धंतव्यथा का-सा भाव उभर आया। सभी एकत्र कम्मकर भन्न मुख हुए से उसकी घोर देखते रहे।

तनिक रुकने के पश्चात् वह मुख फिर बोला— घोर बन्धुवरो इन राज्य सिन्धु राजाओं के संरक्षक में फिर स्वार्थी साधुशार्थों ने बाधो का एक नियमित व्यापार ही प्रारम्भ कर दिया। जैसे वे मनुष्य नहीं बरन् कोई निर्जीव पदार्थ हों। घोर, तुम यहाँ मूल गए हो कि तुम कहीं से आए। पीढ़ी दर पीढ़ी घोर कामान्तर के बुदिनों ने तुम्हें इतिहास का केवल एक मूना भटका पन्ना बना कर छोड़ दिया है। किन्तु बैशाखी में

सहना राशि के उस धम्बकार में नगर की घोर से हीकते या रहे घरों की पद बाप गुंज डठी। उसे भुन सभी का ध्यान उस घोर घाहूट हो उठा। मुख भी कण्ठ से रुक गया। सभी उपस्थित कम्मकर इस समय प्रसक्ति प्रतीत हुए। पर बापों की धार्मिक स्वष्ट ध्वनि उनके इस मुख भाव को प्रभाव करती बनी। बस्ता मुख कुछ झपों तक उनकी घोर देखता रहा। फिर सहसा जैसे आह्वान करता हुआ सन्न स्वर में बोस उठा—“माता बसुन्धरा के उपेक्षित पुत्रो ! बैशाखी के गौरव के पतीक उस गए संपामार की घोर देखो जो तुम्हें विचार स्वात्म्य के धारण निस्वास के लिए सन्नकार रहा है, घोर सन्न स्वर में पुकार-पुकार वह कह रहा है कि किसी दिन बहिष्कृत किए गए घरों का यदि मैं चाहते हूँ तो मेरे इस स्वल्प निर्याण में तुम्हारा भी हाथ समा है यदि मैं धात्र बैशाखी का देव मन्दिर बन सका हूँ तो फिर मेरे लिए सभी समान हैं, समूची मागव जाति के लिए मैं समान हूँ। जो भी मेरी आचारक्षिमा में रहे धार्मिक का सम्मान करे, मैं उसी का हूँ। फिर क्या स्वामी घोर क्या दास ! यह सब कुछ भ्रम है। स्वार्थी का प्रपंच है। पर साहस कर मेरे आसिगन में आओ। जो कुछ मैं कह रहा हूँ तत्काल मे सहसे कुछ भी तो भिन्न नहीं कहा है। घोर देखो कर्तुनि अपने मितु संघ की—जय विष्णु संघ की जहाँ जगति मायित घोर देवदत्त धारण पुत्र तथा भोगलामन आह्वान सभी समान हैं—मेरे स्वल्प से प्रेरित हो रचना शी है। फिर मना तुम्ही मेरी घोर आविश्वास की दृष्टि से क्यों देख रहे हो ?”

मुख का कण्ठ फट गया, किन्तु फिर भी वह कहता रहा—“ये माता बसुन्धरा के बहिष्कृत, विरभुन पुत्रो पश्चात् की धरति के साथ बड़ते या रहे संकट से मत चरामो। तदागत मे धात्र हमें एक गई दिया शी है तथा जय विद्या में धयनर होने के लिए माव भी दियाया है। उनके सत्त्वर्म का आचरण कर हम प्रस्तुत सकट का विनय घोर धीम से सायना करेंगे। क्यों ? क्योंकि हमारा पद बसवान है।”

सहसा उसके कण्ठ स्वर पर पश्चात् की ध्वनि आच्छादित हो रही। धरन सर्वथा निरट पट्टेक खड़े हो गए। मुख तत्परता से चीक के मध्य से निकल घरना रोहियों की घोर वह फिर बोस उठा—“बन्धुवरो ! आश्वस्त रहो। इस संकट में मैं

सुन्दार साब है। हम एक हैं। जब एक हैं तो कोई भी हमारा कुछ नहीं बियाड़ सकता। हमारा नाम ही होगा हागि नहीं।”

कम्मकर कृष्ण धार्तिक और कृष्ण उत्सुक दृष्टि से उसकी धोर देखते रहे।

धरधारोहियों का एक पुरा दुस्म इस समय वहाँ था। उनमें से एक उत्तरता से अपने धर से उत्तरकम्मकरों के समुदाय की धोर बढ़ लिया। शेष धारोही भी धर से नीचे कूड़ गए। परन्तु वे धमी नहीं लड़े रहे।

बातावरण संशय हो पड़ा और कम्मकर समुदाय के पूरे धाकार प्रकार पर निश्चयता छा गई बँधे बढ़ किसी लुफ्तन से पूर्व की वाग्लि हो।

किन्तु धरधारोही ने सम्मुख बढ़े युवक का धरिधारण किया और फिर उत्तरता से एक पक्ष उसकी धोर बढ़ा दिया। जब तक युवक ने वह पक्ष पका सभी उपस्थित जन उसकी धोर हासुकता से देखते रहे। पक्ष पढ़ने के पश्चात् युवक बोला—“धरधारोही ने बना। गणायक राजा बैठक में मुझे उत्कास अपने दुर्ग में उपस्थित होने का धारेष दिया है।”

दिल धर के लड़े मरि कम्मकर यह सुन स्तब्ध रह गए। धारोका से उनके कलाठ मुकों की धिल्ल धाया और धीकी हो लठी। फिर भी वे सोस्ताइ एक स्वर में बोस लठे—“धरधारोही युवक तुम निश्चय ही हमारे बाता हो धरिधर की धारा हो हम तुम्हें इस प्रकार धरकी धरापि न जाने देंगे। हम सभी सुन्दारे साब बनने देंगे।”

युवक के मुख पर बँधे धिनय की सहाय मुस्कान खेल लठी। वह बोला—“नहीं धरधारोही ऐसी कोई बात प्रतीत नहीं होती और मरि हुई थी तो ।”

धोर फिर वह उत्तरता से एक कुत्र से बँधे अपने धरस की धोर धरधारोही बिया।





प्रस्थ के सूत्रके से कई रथ अनुक्रम से एक प्रासाद के द्वार को घाघेव के सान कीर्ण और भी अधिक तीव्र गति से घाघे की घोर बड़ लिए और फिर वे सभी बरति मुख्य राजपथ पर सरपट बीड़ चले ।

उनकी बड़बड़ाहट से महानपारी का बह प्रान्तर से गुरू ही उठा पीछे झुंटा हुआ मार्ग भी बहसता रह गया । तथागत के वर्धन को निकसे कल्पित नागरिकों ने बह इस देना विशेष में अभिमान का सा यह बुझ देखा तो वे सह्य गए । वे सभी वहीं रुक बड़े हो इस बुझ को देखते रहे ।

बुझों के भुरभुट में सभी-सभी पत्तियों का कसरत प्रारम्भ हुआ था । बरति रथों के इस बोलाहल में उनका यह समवेत स्वर किसीन हो गया और निकटवर्ती घाघावों में सोए पड़े नागरिक चौंक कर उठ बैठे ।

कई रथ निकल चुके थे फिर भी प्रासाद विशेष के द्वार मंडप के दोनों घोर सभी भी घम्य घनेक रथों की मम्बी पाठ बड़ी थी । सम्मुख प्रांगण में त्रिविकार्ण टिर्थों की घोर बुझों से घम्यों की बन्पाएँ बनी हुई थी । अभिवाङ्ग समाज के कुछ सरस्य था चुके थे, और कुछ घोरनाह सभी तक वहीं द्वार मंडप के पास परस्पर बातें करन थे । गणसंवाहक सामन्त भेदभेद प्रत्येक बातें हुए सामन्त घमवा वेठिबन को नमना की बरि प्रतिमूर्ति बन नल मस्तक हो बिना कर रहे थे और कह रहे थे—“घाघुप्यान ने इस घाघाव पर पधार सबमुख अत्यन्त हुआ थी है ।”

बह इस समय अत्यन्त प्रसन्न भिन्न थे । उनका अंगराल बन्पाहाब्धवाव से स्फुरित था और नैत्र धारन विषयाम से बजक रहे थे । महाभेष्ठी मणिरत्न जब चलने लगे तो उन्होंने उन्हें बरि भावविभोर हो अपने प्राणिवन-वास में ही रुक लिया । फिर बोले—“बन्धुवर ! प्राणि प्रात्यक्षों ने निरन्धव ही यह हमारी परीक्षा की है । किन्तु धाव की इस समा के अफल वायोजन को देख धम हमें निराश होने को घाघवकता नहीं रह गई । मित्रवर इसका धेय केवल भाव ही को है । यह बहन हुए उन्होंने प्राणिवन पास को घोर बड़ कर लिया और साथ ही निकट बड़े भेष्ठी भित्तिरथ की घोर बरि कैर पुछा—“क्यों घाघुप्यान मेरे हथके कुछ अनुचित तो नहीं कहा ?”

बहासंवाहक ने यह सर्वथा सह्य ढंग में कहा था फिर भी भेष्ठी भित्तिरथ के घपन को औरकान्धित हुआ अनुभव किया । प्रकट में उनके मुख पर सौम्यता एवं संकोच का सा मिथित भाव फेल गया । मतमस्तक हो बोले—“धाय भाव बातों ही तो अभिवाङ्ग समाज के वीर्य पूर्ण भुक्त है ।”

मह कह, खेप्टी निरुत्तविकर मे घपने समयवस्तु सामन्त कारतिकेय की ओर देखा । सामन्त कारतिकेय खेप्टी निरुत्तविकर की ही बात को बँसि घायी बड़ाते हुए बोस उठे— मित्र खेप्टिन् घापने मह उचित ही कहा है । तनिक खोखो तो इन दोनों अज्ञास्यबां के मत्तुत्व के अभाव में भसा हूपारी क्या मत तुरई होती ?”

इसी मध्य महापय्टी मणिरत्न सामन्त भवदेव के कले धालिगन में एक पय्ठी की शक्ति ककच्छा उठे । सकिनोद बोले— ‘अप्यवर, इस घायु में तुम्हारा मह बूढ घालि मन । इस संघर्ष में यदि तुम अकमे भी होते तो परपण्टि वा इतने धामुष्मानों को ब्यव ही भसा काहे कष्ट दिया ।”

मणुसंवाहक इस पर खिन्नचित्त पड़े । साब ही मध्य भी । तत्परवात् मणु संवाहक बँसि मन्त्रीर हो बोले— ‘मिअवर, इस अवाकल घालिगन का रहस्य जानते हो ?”

महापय्टी ने विन्तित वा कि मणुसंवाहक इसका क्या कपण्टु बटाएँगे मत्त मह केवल मुम्नुपते हुए उनकी ओर देखते रहे । किम्बुहार-मण्डप में पड़े मध्य सनी उनकी ओर उम्मुकता से देखते लगे । महापय्टी को मुम्नुपते बैठ मणुसंवाहक स्वयं ही बोल उठे—“महापय्टिन्, घालिगन की इस दृष्टता का रहस्य मैं धावुष्मान ही हूँ इनके अस्ताह में अवास मन की कितनी शक्ति प्रदान की, मेरे पल को कितना चुबुड किया है और उनके इस सहयोग से मैं परम्परया की रक्षा के प्रति कितना आजायान् हो उठा हूँ, यह सब कल इन्हीं धामुष्मानों की तो देन है ।”

इस पर सनी उपस्थित सामन्त एवं अठिअन् नर मस्तक हां बोले—“घायं इवें अमित्र न करें ।”

फिर, सामन्त कारतिकेय का अकेला स्वर बोल उठा—“घायं घाउने इस विष्मान धोम्य बपस का ब्यान न काठे हुए भी इस संघर्ष में वा आह्वान किया है वह इन सनी के हितों की दृष्टि ही से तो किया है । वापका अतये निज का भसा क्या स्वाम वा ?”

समी कह उठे—“अनुवर कारतिकेय ! तुमने मह तो सचमच इन सनी के मन की बात कह बाकी ।”

मणुसंवाहक उच्च स्वर में बोल उठे—“धामुष्मानो तुम्हारा मह विमम अन्न कुल पीरबोचित ही है । साथी शक्ति आवरण करते रहने के परवात् भी तुम्हारा मह परवाह शिककर मुझे तो सचमुच नर्ब का अनुभव हो रहा है ।”

तनिक इक मह फिर बोले—“अस्यों की कीर्ति पत्रका कहउने वाले धावुष्मानो ! हाँ एक बात तो मैं तुम समी से कहना जून हूँ गया । घायं पति यहाँ क्या कल मंगला हुई है अभी उस कुण्ट रकना ही अवरकर है । उसका मीर कुनठे ही विनधी अवेध हो उठेने और हम संघर्ष का साहम आ बँडेगे । अथ एव घोर से पूर्व आबधान रहने की धावस्ववता है ।

समी एक ररर न कह उठे— ‘घायं आस्वव रहूँ ।”

तलावकम्, वे एक-एक कर एक कुनठे से अस्ताव विद्या लेते हुए घपने-घपने बाहन की घार बड़ लिए । वे क्या बड़े जँस बैशाखी का काई अटना कम हो घाने की घोर बड़ दिया ।

अवर, अठिअं पर घोर की कृती प्रथम किरण के साब-साब एक मर बाहन

पवन पति से दौड़ता बेबी घाज्रपासी की घट्टालिका के निकट पहुँच सहसा रुक खड़ा हो गया।

बाह्र के इकते ही उनमें से एक युवक संमिद्ध की सी उत्तरता के साथ भीचे उतरा। प्रातः काल क बायु श्मेको से उसका उत्तरीय कुछ-कुछ अभ्यवस्थित हो उठा था। वह बाएँ हाथ से उठे संशारता तथा बाएँ हाथ से धिर के बिलारे केनों को उत्तरता से अभ्यवस्थित करता धाये बढ़ रहा था। किन्तु उसने धमी कछ ही बय रखे होंगे कि वह सहसा रुक खड़ा हो गया उसको दृष्टि सम्मुख लक्ष्मी घट्टालिका पर केन्द्रीभूत हो रही। नील बर्णा घट्टालिका के मध्य रूप पर प्रातः बैजा की पड़ती स्पर्शणम मूप रक्षिमयों के सहशोभ में उसका सुशोभित रूप धीर मुकरित हो उठा। उसकी यह छवि देख युवक की मुख प्राना भी प्रविद्ध परिमाण में प्रदीप्त हो उठी। उनका धीर बर्न जम्भत तमाट उठी नासिका विद्याल बलस्वस सुशोभ सुसुन्दर तथा नेत्रों में से झँझला धारवविरवाण स्पष्ट ही उसके कृतीन होने का परिचय दे रहे थे। परन्तु उसकी नेत्रदृष्टि में कुछ धीर प्रसाधारण भी था और वह था उसके हृदय का कोमल भाव जिसमें से प्रतः बेचना की एक क्षीण रेखा स्पष्ट झलक रही थी। धपनी इस सुनेहन धीन धार्ड दृष्टि के साथ वह प्रिध किसी की धोर भी देख लेता उनमें सहस्र ही से धारमीयता के भाव का संचार हो उठता।

वह कछ धणों तक वहीं खड़ा रह जैसे घट्टालिका के मध्य रूप को निहारता रहा। उसके मुख पर एक व्यथा भाव झनक धावा धीर धिर उन पर धीध ही एक सहस्र मुस्कान फैल गई। बाह्र निकलते बसाध के साथ उनका भी धाँध भाव ध्यनित हो उठा। वह बोला—“बेबी धिय्या सधमूध तुम धरपन्ध धबोध हो धन्यधा क्या धाव इस घट्टालिका ने यह कछ रूप धारण किया हाठा।”

धिर, जैसे धपने ही को समझता मन ही मन में ‘बसो कोई बात नहीं कहता हुआ यह युवकी हा उत्तरता के साथ घट्टालिका के मुख्य प्रवेध धार की धोर बढ़ लिया।

बेबी घाज्रपासी की घट्टालिका पर धारी रात्रि वृद्ध पहुँच रहा था और प्रधान धारपान संदुक्त पहरे को धमी धमी धिधिम कर मुख्य धार के ही सम्मुख पड़े एक धिना खंड पर धाकर बैठे था। रात्रि धिना किसी ग्यापात के धीत लक्ष्मी इस पर उसने मन ही मन धारों सम्योप का धनुसध किया। प्रतः धिनाखंड पर बैठे ही उसके निद्रा-बोधिन नेत्रों में एक झरझरी सी धा गई। किन्तु केवल कुछ धणों परधात् हो दब उनके कानों में दब-ध्वनि टकराई तो वह पुनः संवेष्ट हो उठा। चौककर वह धिनाखंड से उठ खडा भी हो गया। धन्यधिक बधा होने के कारण कदाचित् कुछ मस्माया भी। निद्रा धातस्य से धार्ड जम्हाई के साथ उनका सुमा मुख कछ बढ़-बड़ा भी उठा। बोला—“धरे धो धार्नुधपुधो धव क्या यही बेबी घाज्रपासी बैठी है जो इस प्रातः बैजा में पूँ धिर पठकने धा पड़े।”

किन्तु धिर धीध ही उध जैसे कोई बात स्मरण हो धार्ड। वह धरक हो उठा धीर हाथ वध धाँध से स्भत धार्ड धोर सजटते उध्पकोप पर धा पड़ीथा। बक दृष्टि से धार्नुधुध की धोर देखता तानधान हो वह धार धिद्र क सम्मुख तन कर खड़ा हो गया।

धार धिद्र पर खड़े हो उसने इस धार धन्य नेत्रों को पुरा धात धीनी दध्तिधे

घातुक की घोर देखा किन्तु सीमा ही अपने प्रति उपेक्षा का सा भाव दिखा अपनी बुद्धि को समेट नी लिया। वास्तव में एक हीय प्रवृत्ति से बेनी घातुपत्नी की सेवा में निपुण रहने के कारण इस प्रकार प्रथम में पावै सभी जनों के प्रति उपेक्षा का भाव दिखाता उसके स्वभाव का प्रमुख रंग बन चुका था। कभी-कभी जगत्त हठा प्रवृत्ति विभिन्न-प्रकार प्रवृत्ति में आए किसी सामान्य प्रवृत्ति-युक्त को तो वह जैसे साधारण प्रकार भी उठता था।

किन्तु घातुक मुक्त जब सर्वथा परिवर्तित रह महत्ता उनके सम्मुख ही था बड़ा हुआ तो वह निर्विषय ही स्तम्भ हो उठा। मुक्त की डिठई पर नहीं बरग उठके इस प्राकृतिक प्रवृत्ति पर। अपने हाथ ही उसके मुख का भाव परिवर्तित हो रहा। स्तम्भना से प्रवृत्ति रसक प्रवृत्तियों में नबोस्ताह का संसार हो उठा घोर मुख का भाव बर्ष प्रस्तास स दीप्त ही गया। मेघ भी बमट उठे। वह हृत्पतिरेक से पुनः कृत हो उठा। अपने प्रोत्सास अपने भाई घोर मरुते कोच में से कल्प को लीला फिर दोनों हाथों को हवा में उछालते हुए वह स्फुटित कण्ट स्वर में बोला—“घातुक विरु की बय हो। भाव इस मैना में प्राण के सुम बहन कर यह संसृष्ट सप्तम्य पाय हो गया है महामनी।”

उसके लम्बे अंतपाल में भावोत्पत्तियों की एक साथ ही तो सहासों भारी कूट निकलीं। उसका कण्ट स्वर यह कहकर भी घोर अधिक प्रवेश के साथ बदनहाटा रहा। किन्तु वह घोर अधिक कुछ न कह, अपना अस्वक गत कर, सान्त भाव से ऐसे बड़ा हो गया जैसे कोई प्रवेश प में की प्रतीक्षा कर रहा हो। विनम्रता से उसका अस्वक अधिक बिक गत होता रहा किन्तु साव ही वह सही परिमाण में बर्ष का जी अनुभव कर पड़ा।

संस्कृत द्वारा प्रस्तुत इस प्रवृत्ति-प्रवृत्ति के अंतर में घातुक मुक्त का मुख भी एक सहास मुक्तान दिखैर उठा। साव ही अपने कण्ट स्वर में जैसे धरवर्षिक धरनीयता का भाव सिमट आया। पूछने लगा—“क्यों विरुवर संसृष्ट सब सहास तो है न?”

सीमाका हीसते प्रवाल द्वारपाल का मरुतक इस प्रश्न के अंतर में सौम्य से घोर प्रवृत्ति हो गया। उसका रोम-रोम जैसे कृतज्ञता का अनुभव कर उठा। बोला—“यह सब स्वामी की ही कृपा है घातुक कि रात्रि बिना किसी व्यावाह के बीत गई।”

तनिक रुक वह फिर कुछ व्यथित हुए से कण्ट स्वर में बोला—“किन्तु स्वामी देवी सिध्या ने लम्बी रात्रि ही तो बुविधा में बिताई है।”

“कता क्यों संसृष्ट?” घातुक सिध्या के मुख से यह प्रश्न जैसे स्वतः निकल गया। किन्तु प्रश्न के साथ ही उसका मुख भाव जैसे कुछ विचलित हो पड़ा।

संस्कृत ने अंतर में अपने मेघ पलक उठार उठा घातुक सिध्या की घोर देखा। वह कुछ रहने को प्रयत्न भी हुआ कि अपने पूर्व स्वयं घातुक सिध्या कह उठा—“संसृष्ट देवी सिध्या की बुविधा से मैं अनभिज्ञ नहीं। उसकी यह प्रतीक्षा स्वाभाविक ही है। तो भी उसे अपना शायित्त्व तो समझना ही चाहिए।”

देवी सिध्या की कता क्या बुविधा होगी घोर इस बुविधा के भय भी उसे अपना कौन-सा शायित्त्व समझना चाहिए, संसृष्ट भी उससे अनभिज्ञ नहीं था। तो भी वह इस समय मौन रहा। फिर स्वयं ही उठत मौन को रंग कर, अस्वक कण्ट स्वर में बोला—“कता घातुक इस प्रवृत्ति के समाचार को सुन देवी सिध्या निर्विषय

ही हृदित हो चट्टी सतएव मुष्टि संवाद निवेदन का धारदा करे ।

प्राथम्य सिध्य भी दृष्टि इस समय अट्टालिका पर केन्द्रित थी घोर प्रसका मन बुद्धिवा वस्तु देखी सिध्या की ही मूठ बाठ लोच रहा था । घात वह अपनी समन मनःस्विष्टि के कारण संभूक के प्रवन का तत्परता से उत्तर न दे सका । इनी मध्य संभूक पुन बोले उठ—“प्राथम्य जब तक मैं स्वामीनी के पास संदेश पहुँचाने की कुछ व्यवस्था कर, आप प्राप्तागापार में बजार विभाम करे । महाप्रभो इसमें धा/को कोई कष्ट तो न होया ?”

प्रथम दृष्टि में ही बात बातीम दीकने वाले द्वारपाल के मुख से चिष्टाचार की वह भाषा सुन भाषाव सिध्य अचिंत हुए बिना न रहा । परन्तु धारदर्भ से भी अधिक उसके संतर में घाथा का संभार हो उठा घोर फिर साध ही जैसे किसी की उपनीय स्थिति का ध्यान कर उसका हृदय टीय से कराह उठा । मन में अपने में ही बोला—“जबबर, मानव के अन्तर की एकाधिकार की स्वार्थपूर्वक महत्वाकांक्षा ने देखो तो अपना ही रूप कीटा विकृत कर लिया है । एकाधिकार की इस पुणित महत्वाकांक्षा ने युद्ध की कीटी-कीटी जराबहू जिन्मीपिकाओं को बन्ध दिया है । फिर भी वह उस पर लज्जित नहीं बल्कि जस्टे जस्टे गर्व है गर्व है इस बात पर कि उसने अपने ही स्वामिनाम को कुपल बना है और वह एक ऐसी परम्परा का सुत्रपाठ करने में सफल हुआ है जिनमें उनकी धाने वाली सभी पीढ़ियाँ भयावस्था पहुँची । अन्तस्करण वह अपने ही प्रति संविग्न हो उठा है । संवेह के बपीमून हो कर वह एक हृदये का मला बोंगे पर उठाक हा गया है । बास्त्रव में निरौह मानव ने जब युद्ध का सुत्रपाठ किया वह उस समय वही भूत गया कि उनकी विजय कोई स्वामी विजय नहीं है । किसी दिन वह स्वयं भी विजित हो सकता है और जैसे वह किसी को विजित कर उसे दास बना सकता है जैसे ही वह स्वयं भी इतिहास के क्रूर हाथों के कथाभास से दास बन सकता है और एकाधिकार का स्वामी बनने वाला जीवन के आचार भूत अधिकार से अचित हो एक बभू का जीवन बिताने के लिए भी बाध्य हो सकता है ।

अपने इस विचार प्रवाह में वह जैसे नटक-सा गया । जबको पचापूर्व गतिनामू देख वह पुन अपने ही से बोला—“जबबर, इसका कोई संत नहीं और यदि अन्त है तो तत्काल का वह आर्ष है जो युद्ध-वस्तु लभुके मानव क्रमाज को उद्भाव की ओर आह्वान कर रहा है और अचुकरलीय है देवी प्राप्तागापी का वह त्याग निष्कले प्रतितार्थ रूप में प्राप्त इस देवी सिध्या का दूखन हुआ है ।

अहमा वह संभूक की घोर दृष्टि कर बील उठा—“जबबर संभूक, देवी प्राप्तागापी ने एक महान् त्याग कर दीवानी के जीवन में एक पुनीत परम्परा की स्थापना की है । देवी सिध्या को उसने जो कस भी प्रदान किया है उसके फलस्वरूप वह निरिचत ही एक अत्यन्त अविध्य की प्रतीक बन उठे है । देवी सिध्या को इस संदर्भ में केवल मुस्कान ही उभोया देता है तिम्नता क्वापि नहीं । संभूक, देवी सिध्या को एक दिन अपने यह दासित्व समझना ही होया ।”

संभूक ने उत्तर में कस कहना प्रारम्भ ही किया था कि इसी मध्य एक घोर रव साक्षेय दीवता उबर की ओर धा पहुँचा । संभूक के मुख से निकले सन्त उठकी



बरधराहट में ही मिलीन हो गए । वह सर्वत्र दृष्टि से उस घोर देख पडा । रब के बफ्टे ही उससे से एक साथ कोई बस ससलन ब्यक्ति सावेग भीके रूप पड़े । उसरी दृष्टि बसात् मिळट में कजे घाबार्म दिव्य की घोर नून गई । जसे निरसलन देख लसके मुच का माडा रब श्रीका पड गया । घाबार्म सिष्य न बान नम्मकरी की बरतो में क्या कुण कहा पा, वह जके सुन बुदा या घोर पलासंकाहक ने प्रतिभोप के बचीभूत घापी नम्या छाया की क्या बसा कर बी थी वह भी जसे विदित हो गया ना घोर फिर देवी घाबार्माली न मिळु नम में प्रविष्ट हुाने से पुर्व उससे क्या कळ कहा या ये मनी बरते ती उसके मन्तिष्क मे एक साथ सावेग बन गई । वह घाबार्म दिव्य घोर देवी सिष्या की रसा के सिप देवी घाबार्माली से बचन बड का पठ वह इस समय जैसे भारी बुविना में पड गया । घाबार्म दिव्य को इन समय निरसलन देख वह क्षिन्न ही उठा । परन्तु इस समय न तो बुविना का समय ना घोर न ही क्षिन्न होये का ।

रप से उसरे लैतिक गारम उसी विद्या में बड़े धा रहे के घोर इस समय एक सर्वत्रा निबट पहुँच चुके थे । उन्हें इस प्रकार सग्निक देख संबुध को तात्काल बस वही उपयय सूझा कि वह उत्तरता के साथ अपने स्वान से हट घाबार्म दिव्य के सम्मुख घा गया घोर जसे अपनी घोट में ले लिया । किन्तु स्वयं घाबार्म दिव्य इस पर क्षिन्नविद्या पडा । जसे इस प्रकार हुँगते देख संबुध कळ धम्मा-सः गया पर वह घाबार्म दिव्य से कुछ न कह सका सम्मुख से माते सलिको को ही नसकार पडा । बबरा कडप तो रोप से बनी का निकल ही चुका था वह जसे ऊपर हुआ में तागते हुए कळ बडबडा भी उठा, परन्तु इनसे लैतिकों का बहना नहीं कळ सका । के उठी प्रकार घाये की घोर बडते रहे । यह देख संबुध का बीयाकार रूप प्रबंड ही पडा । वह अपने ऊपर निरं गय न रब सवा घोर इलते पुर्व कि के कोई प्रहार करे सावेग उनकी घोर बडने को उलल हो उठ । घाबार्म दिव्य इस पर जोर से विस्मा पडा—“निन संबुध !” परन्तु संबुध ने जैसे जसे धनधुना कर रिवा । सम्मुख विद्या से माते लैतिक जसे इस प्रकार प्रहारोवल हुपा देख बड़ी उळ कडे ही गए । केवल कडे ही नहीं हो गए बरन् हुतप्रम भी ही रहे । घाबार्म दिव्य पुन विस्मा पडा—“संबुध तुम्हें सायब धम हो गया है, के गल्लसंकाहक क ब्यक्ति नही बरन् पण पका ही है ।”

संबुध यह सुन बड़ी बक गया । किन्तु इनके सुन पर घाबार्म का नाब कीम उठ । जसने बचित दृष्टि से पहले तो प्रायभूक सधसल लैतिकों की घोर देखा घोर फिर घाबार्म दिव्य की घोर । सारे अनुमान लगाने के गरबाद् भी वह जैसे कुछ न समक सता । इनी मध्य लैतिकों का वह समूचा प्रस घाबार्म दिव्य का धमिबार्न कर उठा ।

संबुध इन वृष को भी केवल बचित दृष्टि से देखता रह गया ।

किन्तु घाबार्म दिव्य ने धर घोर ब्यक्ति विनम्र न कर जने बताया—“निन संबुध देवी सिष्या की रसा का मार पक केवल तुम्हीं पर नहीं मुझ पर भी है घोर के लयी लैतिक धाब से बड लक मकर की स्थिति सामान्य नहीं हो जाती तुम्हापे इस भार्य में महायता करेने ।

लैतिक कळ कळ इस बार कचित्त यस्काग के साथ बोला— निन संबुध तुम्हापे

भावाय सिध्द इस समय कोरा धाचार्य सिध्द ही नहीं बल्कि बैसासी का सुरक्षा प्रभान भी है पौर साथ ही

शंभुक इस संवाद को सुन प्रसन्न हो उठा। हर्षातिरेक में वह अपने एकाकी किन्तु बाड़े स्वर में भावाय सिध्द का जय-जयकार भी कर उठा। किन्तु मगन शण्ड न जाने किस बात का ध्यान घाटे ही उसके मुख का प्रफुल्ल भाव नुन हो गया। सुरक्षा प्रभान धाचार्य सिध्द जैसे उसके कारण को उत्काम चाड़ गया। धर ॥ शंभुक की पीठको नरपपाठे हुए बोला— भिन्नतर यवराघो मझे, अद्यात्मिका के सुरक्षा-वाचित् पर तुम्हारा घनी भी एकाधिकार है ये सभी सैनिक तुम्हारे घषीन होये।”

इस बोपण्या पर सभी उपस्थित सैनिक शंभुक का घमिवादन कर उठे। शंभुक का बसन्तन पर्व का धनुमन कर फूल गया। वह धाचार्य सिध्द का घमिवादन कर नत मस्तक बोला— यह सब धार्य की ही कृपा है अथवा बैसासी में मला कमी कोई धार्य मस्त पुल्प किसी बात बासीय के घषीन रहा है।”

इसी मध्य सभी का ध्यान द्वार कपाट की घोर से घानी बपनपाहट की ध्वनि को सुन उठी घोर घाहृष्ट हो उठा। घोर उठे सुन शंभुक को उत्तरया न घसी घोर बढ़ लिया। छिन्न में से घृक कर देना ती विस्मित हो उठा। बेबी सिध्दा एवत धाचार पर धर्म सामघी से अद्यात्मिका की सभी परिचारिकाओं के साथ स्वयं द्वार पर घा उपस्थित हुई थी।

शंभुक के मुख पर हर्ष का प्रगाड़ भाव छा गया। पर धाचार्य सिध्द ने जब यह सुना तो वह संशोध एवं धानन्दी-ध्वान का स्फुरण एक साथ ही धनुमन कर उठा। संशोधनय वह उस समय वही से भाग लड़ा होना चाहता था किन्तु धानन्दी-ध्वान से सुरगुवाठा मात जैसे वह स्वीकार न कर सका।

शंभुक ने कपाट खोल दिए। कपाटों के लुचठे ही परिचारिकाओं से घिरी बेबी सिध्दा घाने बढ़ने को घघत हुईं। फिर धाचार्य सिध्द भी लड़ा न रह सका। मधु पर्व वाले नृत्य के परवाद् जिसे धाचार्य सिध्द ने एक नहीं घनेक बार नेत्रकोरों से टटोलने का प्रयत्न किया था घान उठी के साक्षात्कार का वह जैसे साहस को बैठा। घंठव उच्छ्वसित हृदय घोर संशोध लोभिन घेरी से जब वह लचर की घोर लता ती नयन नत हो रहे घोर कपोलों पर कभी धाकनं भासिमा प्रगाड़ हो उठी।

बेबी सिध्दा वाली कथा ने घपने ठग्ने भाग पर इन समय भीने बरन का घसरीय डान रला वा घोर यह घसरीय धीप पर से छिन्नक नीचे नासिका तक घठर घाया था जिसेने उहृज ही में धनगुंठन का रूप ले लिया। धनगुंठन की घोट में से घृकता बेबी सिध्दा का सीम्य रूप जैसे त्रिगुणित हो उठा।

धाचार्य सिध्द को सम्मूत बैब बेबी सिध्दा के नत नयन घोर घननत हो रहे। पर धाचार्य सिध्द का संशोधनीय मन घन का धनुमन कर उठा। किसी घासीय की कृपा घोर से जैसे माघ घंतवंगत नव्यद् हो नय्य कर उठना है कुछ बैना ही घामाघ इस घल धाचार्य सिध्द को हो रहा। संशोध का स्थान ललाहीध्वान ने ले लिया। बेबी सिध्दा का संशोध भाव घोर संकुचित हो घपने में सिमट बटा। उसके मुख पर घनी घी बुधिया का घा भाव बीध रहा था। अस्त- किसी प्रकार साहृ कर

उसने धरती काज में रखे ब्रह्म को अपने हाथों पर सजा उसे आचार्य सिष्य की प्रीति मना दिया। तबएण आचार्य सिष्य ने अनुभव किया जैसे किसी बेबी का हाथ पूर्व हाथ उसकी पार बढ़ा जाता था रहा हो। तबएण, बेबी सिष्या को आमास हुआ जैसे उसके अनु हाथ ने ऊपर मथ में बेरीप्यभाव किसी गलाव के स्पर्श का प्रयास किया हो। इस मृत्यु को देख मनी मृगाल कण्ठ से बोनो का बय जमकार कर उठ।

तबएणएण आचार्य सिष्य ने बोपला की—“बेबी सिष्या यत्नाम्भत उभा बेटक में एक सादेस कर मुझे कृतार्थ किया है। जानती हो बेबी इस धर्मरूपम को आपरा प्रतिभावरक बनने का सीमाय प्राप्त हुआ है।”

उतर में बेबी सिष्या कुछ कहन को उचत हुई पर उनके हृदय से निकले शब्द केवल शोषों में ही व्यक्त कर रह गए। विचलता से वह अपने माथा टोकती रह गई, प्रकट में नहीं मन ही मन में।

बिन्नु आचार्य सिष्य ने उसकी हृदय विचलता को माँप लिया। फिर भी वह पूछ उठ—“क्यों बेबी क्या आपके मेरा यह परम सीमाय स्वीकार है ?

बेबी सिष्या ने हम बार बसे अपने अंतर का साहस बटोरने का प्रयास किया। पर वह सीमा ही नेकों में अनु-कण बन कपोम पर बसक रहा।

उसके मुख से भी एक निश्वास निकल गया। फिर तब मस्तक ही सप्रवास बोली—“आचार्य सिष्य यह तो मेरे जीवन का बुरा मुमगल प्रयास है, इस पर तो मैं बितना भी गर्व करूँ।

उसके मुख पर पुनः सशोक विचलता एवं दर्द का मिश्रित भाव प्सावित हो उठा और सीमाविरिक में कपोलों की रक्तिमा प्रपाक क्षामिमा में परिणत हो उठी।

और प्रतिभावरक आचार्य सिष्य ?

वह केवल अपने सीमाय को ही सहायता रह गया।





गणसंवाहक ने जब यह समाचार सुना तो वह एक कड़वी बूट पीकर रह गए। पर  
 सेप धमिकाएत सम्राज उसे मुन उत्तमित हो उठा। उनमें से प्रसिद्धांत गणसंवाहक  
 के पास बीड़े-बीड़े भी आए। सातेस बोले— 'धायवर यदि सामन पन का धाग हर  
 प्रहार इनी प्रकार सहन करते रहे तो वह अपहरण ही यह समझ बैठेना कि हमने उसके  
 सम्मुख धाय समवण कर दिया है।' इस पर बयानुठ सामन्त हुंसे बिना नहीं रहे। बोले—  
 "धायुप्यानी यदि वह ऐसा समझ ले फिर तो बस यही समझे कि हमने मार्ग धीर  
 भी ग्रास्य हा जाएगा। धीर विपक्ष जिस समय प्रयास में होया हम धनवर वा जब  
 पर कोई देवा प्रहार करेंगे कि वह केवल बेचना रह जाएगा। परन्तु धायुप्यानी यह  
 निमित्त ही नून होनी। यथा चेटक प्रपना इन धायुप्यानी के वास्तविक सुनमार  
 सेनापति बिह कोई कम नीतिपटु नहीं। धायुप्यानी विरवास एको विह सेना  
 पति बिदना उच्च कोटि का सैनिक है जगता ही वह राजनीति में भी एख है।"

गणसंवाहक के मुख से सेनापति विर की इस प्रकार प्रसंसा सुन उनमें से कुछ  
 को इस प्रकार प्रसंसा करना हमारे लिए उचित है?"  
 धायुप्यानी यह तो मैं भी  
 जानता हूँ कि उचित नहीं। किन्तु विपक्षी का जब वास्तविकता से कम धाँपना भी  
 तो कोई दुखिमता नहीं। किन्ती भी सर्व्व प्रपना मुठ के प्राण में विपक्षी को सदा  
 धपने से धमिक बलवान समझ कर उत्तरना चाहिए, धीर जब उनमें एक बार कून पड़े  
 तो फिर केवल समान ही नहीं बल्कि उठे निर्दय मनके देना नीतिकारों ने कहा है।  
 केवल नीतिकारों ने ही बरन् मेरा निज का भी तो नहीं समझ रहे हैं।"

सभी उनके इस तर्क को सुन नीम हो गए। परन्तु गणसंवाहक उन्हें जैसे सम  
 झट्टे हुए फिर बोल उठ— 'सभी धायुप्यानी धारनस्त रहे धनवर जाने पर कुछ सामन्त  
 कभी बुझने वाला नहीं है वह प्रहार करके ही रहेगा।  
 धीर इन बातों को धमो पूरा एक सप्ताह भी नहीं बीजा होया कि गण महा  
 नदरी में एक प्रथ्य समाचार विद्युत लहर की भाँति सर्व्वर्य्य फैल गया।  
 सेठी नून कल्पित लक्ष्य लक्ष मास पूर्व्व सरव् अनु के प्रारम्भ में यचना सार्ध  
 से पक्षिम दिशा में साँघार राष्ट्र की धीर बगा था। धूर् तो वह प्राय प्रतिधर्ष ही  
 यचना सार्ध उबर ले जाया था परन्तु चार मास से धमिक का समय कमी भी न  
 भपाता। परएन इनके लौटने में इन प्रकार बिलम्ब हुआ ऐल कोटिन्द्रों का विष्ण-

धस्त हो बैठता स्वामाधिक था। सन-धन-बहु धिन्ता जैसे सभी बीछासिकों की चिन्ता बन गई।

इसी बीच पश्चिम दिशा से आए एक संवाद विशेष ने सभी पीर जनों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। सभी के मुख चिन्ता से मलिन हो उठे और यह संवाद विशेष था— गांधार देश से इन्डस नदी के उस पार एक पुरी की पुरी बन्धु जाति पश्चिमोत्तर मार्ग पर आते-जाते छात्रों का मूठने में व्यस्त हो उठी है। अतएव जितने भी यह संवाद सुना वह इस प्रसंग विशेष से अत्यधिक चिन्तित हो गया। मूम कन्याएँ तथा नव बधुएँ पूर्व उपाठ स्थित विशेष मणिमन्त्र के शैत्य के सम्मुख जा अपना मस्तक तथा धार्द्र कंड स्वर में श्रेष्ठीजुष कपिन के सुरमिन्त्र महानगरी मीठने की याचना करने लगीं।

नव नियुक्त सुरक्षा प्रधान आचार्य शिष्य ने भी इस सम्बन्ध में विशेष उत्तरता दिखाई। संवाद मिलते ही उसने पुरे बीर ससस्त्र अस्त्रारोहियों का एक दल महा बलपथ की ओर प्रेषित कर दिया था। किन्तु पुर एक अत्याह बीन जाने के पश्चात् भी जब उस ओर से कोई संवाद नहीं आया तो जन साधारण ओर आसकर्म समान रूप से व्याकुल हो उठ। अग्निवात समाज ने तो इस सम्बन्ध में उनसे भी अधिक व्याकुलता प्रकट की। केवल व्याकुलता ही नहीं बल्कि यह अत्यंत व्यथ भाव से नए सासन तथा विशेषरूप में सुरक्षा प्रधान आचार्य शिष्य की भयना में व्यस्त हो उठा। इन्डस इस प्रकार न बीछासिकों के सम्मुख एक पीर नई समझा लासित कर दी।

यस महानगरी की परम्परा थी कि व्यापार कार्य अथवा किसी अम्ह धर्म-मान पर पए किसी भी पीर जन के सम्बन्ध में यदि कोई दुविधापूर्ण संवाद मिलता तो उही संघा को उत्तरता से स्थल यात्रा के संलक्षक देश विशेष मणिमन्त्र के शैत्य के सम्मुख विशेष नृत्य समारोह का अनुष्ठान किया जाता। यह आबोजन यदि पर्यन्त चलता रहता। अब तक इस नृत्य समाज का अनुष्ठान स्वयं कला पीठिका का अधि-प्यात्री बला कल्याणी देवी आभ्रगाली सम्पन्न किया करती थी। परन्तु इस समय यह बर रिकत था। देवी आभ्रगाली एक प्रकार से अपनी ही एक शिष्या देवी शिष्या को सम-रु लिए सर्वथा शोष्य शोषित कर गई थी परन्तु उनके अधिपक की शिखा में सभी न जाने कितनी बाधाएँ बीच रही थीं। अतः अधिप्यात्री पद की यह रिकतता इस समय सभी पीर जनों की भुगी तरह खटकने लगी। नागरिकों का यह संग्रोप घातक बर्ष के लिए अग्नि शिष्य चिन्ता का कारण बन उठा। पर अधिवात समाज को जैसे एक सर्वांग भयकर ही हाथ लग गया।

प्रत्येक पीर जन की रक्षा का मुख्य दायित्व सुरक्षा प्रधान के ही कंधों पर था। अतएव इन समय सबीर उसके मुख पर चिन्ता की गहरी रेखा बिंधी दिखाई देती। जनका मस्तिष्क प्रत्येक क्षण ही कोई मुक्ति काव निकालने में व्यस्त रहता। बिपत्ती इस अथसर का साम उठ नहीं कठ करन बैठे इस पीर से भी लगे प्रति धल सावधान रहना पड़ना। आस्तव में अपने दायित्व भार की वह जिस तरारता एवं कीघर से निरत रहा था उससे आसक्त बर्ष तो प्रगल्भ ही ही उठा जनसाधारण में भी अधि-काय उसकी मूर्ति मूर्ति प्रदर्शना करने लगे। परन्तु कुछ नागरिक जन अधिवात समाज के

स्वर में स्वर मिला सुरभा प्रवाल पर अनुभव हीनता का आरोप लगा, उसकी कटु घातोचना करने में व्यस्त हो उठे। सुरभा प्रधान के साथ-साथ अब तो जुने हीर से समूचे घातक वर्ग की तथा उसमें विशेष रूप से महाबलाधिकृत सिंह सेनापति की निंदा होने लगी। इस प्रसंग में सिंह सेनापति पर केवल एक ही आरोप लगाया जाता। घोर यह था उसने एक अज्ञात-कृत सुखानु को प्रथम देने के लोभवश समूची बीडाली हित का ही परिहास कर दिया है। जब जनताचारण में भी कुछ को इस प्रकार सिंह सेनापति अथवा मण्डाम्बल राजा नेटक की घातोचना करते हुए अज्ञानता समान के बहसियों ने गुना ही उनका मन प्रसन्न हो उठा। इनके मुख पर विजय की मुस्कान फैल गई।

परन्तु आचार्य सिध्द न तो अपनी प्रशंसा पर फूला घोर न ही घातोचना से झुंझ हुआ। उसे तो केवल यही विन्ता रूढ़ी कि बच्छी-पुत्र कल्पित किसी प्रकार सकुशल बापस लौट आए। अतः उसने इस बार उत्प्रेरता से यक्ष शासन में अथवा उससे बाहर नगरिकों के बिलने भी हुसनामी धरु के उनका खपन कर उन पर विस्वस्त ईतिकों का एक ग्रन्थ बन उठी घोर चेन्न दिया।

घोर एक दिन जहाँ स्वयं गणाम्बल राजा नेटक के पास जा उनसे बोला—“घाय की बरि स्वीकृति मिल जाए तो यह अकिंचन-वसोय परिणाम की उपासना की समुचित व्यवस्था का कुछ प्रवास करे।” इस पर गणाम्बल ने उत्तर में कहा—“घायुम्मान् जो भी उचित समझे अवश्य करे, अस्वास्त्य-पूर्वक घायके साथ है। अज्ञानता समान की घोर से ही उही घातोचना की घोर भी विशेष ध्यान देने की आवश्यकता नहीं। पर ही एक बरत की घोर से मैं घायुम्मान् को अवश्य सामयान कृपा चाहूँगा घोर यह यह है घायुम्मान् कि बीडाली बीडाली नया समूचे बन्धु सब में जनमत का विजय सम्मान होता है।” यह कह गणाम्बल ने आचार्य सिध्द की घोर देखा। आचार्य सिध्द नर प्रसन्न हुआ मण्डाम्बल की बात को पूरे ध्यान से सुन रहा था तथा साथ ही यह समझने का भी प्रयास कर रहा था कि कहीं यह कोई बात अत्यन्त में तो नहीं कह रहे। अतः मैं यह कुछ कहने की उद्यत हो उठा कि इसी बीच फिर गणाम्बल बोम उठे—“परन्तु घायुम्मान् राष्ट्र के जीवन में ऐसे लाल भी घाले हैं जब जनमत की अवहेलना तो नहीं ही उसका नर-निर्माण अवश्य करना होता है। क्या हम उही संकल्प काम में से नहीं प्रभर रहे ? घोर घायुम्मान् की तो यह अग्नि परीक्षा है ही।”

यह बरत मुक सुरभा प्रवाल का अंतराल मानों किसी अवश्य साहस से स्फुरित हो उठा। नरप्रसन्न हो बोला—“धर्म की आत्मा सिरोधार्य है। यह परीक्षा उत्साह भी प्रदान करे, इस समय बरत मेरी यही एक इच्छा है।”

घोर फिर जहाँ महाबलाधिकृत सेनापति सिंह के आदेश की घोर बरत पड़ा। सेनापति सिंह ने उसे अत्यन्त आत्मीय भाव से समझाया—“घायुम्मान् नारायण की बीर न बौदं। यही समय है जब हमें अपने अज्ञानताचारण का परिचय दे पुरयदाव आचार्य बहुलाक्ष हाथ इतित मार्ग पर अग्रसर होना है। अन्तु जो प्रतिरोध हीन रहा है वह वायु के केवल एक अंगके के समान है अतः अस्मिक भी।”

आचार्य पुत्री देवी रोहिणी भी उस समय वहीं बैठी थी। उसने अपने निरु

शिष्य मुक की पीठ पर अत्यन्त बुनार से हाक फेरते हुए कहा—“भायुष्यान् यह केवल धारणी ही नहीं बरन् इन सभी की जो एक महत्त्वपूर्ण कार्य में सतम्न है यन्नि पटीका है। विरवाम रजो एक विन् ह्य समस्य सफल होंगे।”

परन्तु ये सभी आश्वासन एवं मर्मर्षन प्राप्त करने के पश्चात् भी सुरक्षा प्रदान के सम्मुख एक विशेष समस्या प्रस्तुत थी और वह समस्या भी स्वयं देवी शिष्या की ओर है।

देवी शिष्या बितनी तीव्र-मुखी की उतनी ही स्वभाव से बम्बीर भी अतः मित भाषिणी थी। हृदय में क्या कुछ है यदि यह उसका अन्तर्मायी भी जान लेता तो वह निश्चय ही अपने को बच हुआ समझता। परन्तु धार्चार्य शिष्य का अन्तर्मायी कुछ ऐसा अनुभव करता कि जैसे उसने देवी शिष्या के मनोभावों को निश्चित ही कुछ-कुछ समझा है अतः वह मन ही मन गर्व का अनुभव कर उठता। इन दिनों अत्यधिक कार्य व्यस्त रहते हुए भी वह प्रायः प्रति दिन ही उसके आशय का बचकर सगा घाटा तथा उसे अनुभव देख वह मनसोय की सोच लेता परन्तु साथ ही वह अनुभव भी कर उठता कि उसके मन के सम्मुख वह आज कम से भी अधिक परास्त हो लौटा है। देवी शिष्या जैसे उसके निकट प्रति दिन ही अद्वितीयक रहस्यपूर्ण पहेली-सी बनती जा रही थी।

परन्तु वास्तव में वह उतनी रहस्यपूर्ण नहीं थी बितनी कि धार्चार्य शिष्य समझ बैठा था। उसके अविनाशक को इन दिनों क्या चिन्ता है, वह उतने न तो अविनाश की ओर न उदासीन ही। वास्तव में उसे इस प्रकार निरंतर चिन्तागुर देख वह अविश्व ही उठी थी। परन्तु अविश्व हो कर भी वह धार्चार्य शिष्य के सम्मुख सहानुभूति का एक शब्द भी मुख से न निकाल पाती। यह उसका स्वाभाविक संकोच ही था जिस पर वह कभी-कभी अपने पर ही झुका उठती। परन्तु धार्चार्य शिष्य के वहाँ से प्रस्नान करते ही जैसे उसके संकोच का यह आवरण बिलन हो उठता। खेपी पुत्र के सम्मुख में धार्चार्य शिष्य के मुख से कोई शून्य संवाद न मिलता तो वह और भी अविश्व हो उठती तथा अविश्व जाव से कना देवी की प्रतिभा के सम्मुख जा उपस्थित होती। प्रतिभा के चरणों पर अपना शीव रख पाचना के हे हीन स्वर में कहती—“क्यों पाठ्य देवी क्या खेपी-पुत्र के अनुग्रह लौटने के लिए गुप्त शून्य नहीं कर सकती।” उसके शेष संवत्न ही उठते।

कभी-कभी वह विशेष मणिमह के शैत्य के सम्मुख संवत्न कामना मृत्यु के लिए भी अर्पणित हो उठती। परन्तु फिर बैशाखी की कमलपूर्व स्थिति का ध्यान कर उसकी यह अर्पणता स्वयं शान्त हो जाती। वह नहीं चाहती थी कि ऐसे चिन्ताप्रसक्त जगों में रहने प्रसंग प्रदान को छोड़ा जाय। किन्तु साथ ही वह सोचती—“पर अब जससे बचना भी तो असम्भव है।

इसी मध्य अविनाश समाज ने जैसे अपना अन्तिम प्रहार किया। महाभारत के धोर धोर से टकराता सर्वत्र यह संवाद कैन गया कि देवी शिष्या आज संप्या ही विशेष मणिमह के सम्मुख मृत्यु करेगी। जन-साधारण को उसके मृत्यु के प्रति कोई दुराह्व नहीं था। वास्तव में दुराह्व तो दूर की बात वह अब मन ही मन उसके मृत्यु को देखने की अर्पणित था। परन्तु जब उसने इस सम्मुख में एक अन्त्य प्रसंग को कैनते सुना तो

सभी मील हो रहे। अभिजात समाज के सदस्य जनसाधारण में बूम-बूम प्रचार करते फिर रहे थे—“मला यह कैसे सम्भव है कि मंगल कामना नृत्य के लिए रैत्य क सम्मुख एक बासी कम्पा प्रस्तुत हो। यह कोई साधारण नृत्य तो है नहीं। इसमें तो समूचे नगर की कुल कन्याएँ तथा नव बच्चुएँ उपस्थित होती हैं। तो फिर क्या एक बासी पुत्री उन सभी की शौर्यस्व बन प्रायोचन का संयोजन करेगी। नहीं बन्धुधो नहीं बैशासी में यह न कभी हुआ है न होगा और न होने ही दिया जायगा।”

देवी सिध्दा ने भी यह सब कुछ सुना। अभिजात समाज की धोर से क्या कुछ कहा जा रहा है उसके तो वह भित्ति नहीं हुई परन्तु हाँ उसे एक बात पर प्रबन्ध प्राप्त हुआ। मंगल कामना नृत्य के लिए वह घाब सम्भा ही रैत्य के सम्मुख उपस्थित होने वाली है और स्वयं उसे इसका पता तक भी नहीं। उस सगा आचार्य सिध्द ने यह प्रबन्ध ही अत्यधिक आत्मविश्वास से काय लिया है। परन्तु मार्ग में बाटे बाटे नव कुछ नागरिकों ने कौतूहल से आचार्य सिध्द को टोक यह पूछा तो वह स्वयं आश्चर्य भक्ति हो उठा। वास्तव में अकित होने से भी अधिक वह धुम्क ही गया। अपने से बोला—“अबबर, माना कि तु देवी सिध्दा का कुछ भी न सही पर अभिजातक तो है ही। देवी सिध्दा को तुम्हसे प्रबन्ध पूछना चाहिए था। जनों यदि पूछा नहीं तो कोई बात नहीं। फिर भी कम से कम अपने इस निषय की बात तो उन्हे सर्व प्रथम तुम्हें ही बतानी चाहिए थी।

यह सोचते-सोचते जैसे कोई उसके सारे संतराम को झिन्डेड़ गया। उसको मुस्र आसा खिलता से फीकी पड़ गई। उसे कुछ ऐसा आभास हुआ कि वह घनाबास ही कुछ को बैठा है। उसे कुछ बुटन का सा अनुभव हुआ और उसी के साथ उसने अपने घर की बला की सावेस खीच लिया। घर भी अपनी बीबा की मुमा पीछे की धोर सीट लिया। किन्तु, घर की पीठ पर एक कनाटे-कनाटे आचार्य सिध्द की सहसा कुछ ध्यान हो आया। बाहर निकलते निश्वास के साथ वह अपने ही से कह उठा—“अबबर। तु केवल अभिजातक ही नहीं सुरक्षा प्रदान भी है।”

वह सचेष्ट हो उठा। साथ ही उसके खिल मुस्र पर प्रसन्नता का आन भी छा गया। बोला—“अबबर, जनों देवी सिध्दा नृत्य की किसी प्रकार उद्यत तो हुई, वह क्या कोई कम महत्वपूर्ण बात है।”

उसका घर बर फिर अट्टासिका की दिशा में सरपट बीड़ लिया। परन्तु उसे मना जैसे केवल कुछ ही कालों के संतर से वह पुनः परास्त हो उठा है। किसी धोर से नहीं बरन अपने ही से अपने ही किसी मनोभास से खिचे खर्क कर भी वह उस पर बघ नहीं पा सका था।

प्रथम द्वारपाल संकु सदा की भाँति द्वार पर उपस्थित था। आचार्य सिध्द के काम्बोज की परचार्यें धव उसके कालों के लिए उपस्थित नहीं रह गई थीं। वह उन्हें दूर ही से मुन स्वागत के लिए आनमान हो रहता।

दूत पति से दोड़ता था रहा आचार्य सिध्द का घर द्वार के सम्मुख पहुँच तक रहा। जैसे उसके रुकने में भी उत्साह का आयेस था।

संकु ने सदा की भाँति नमस्तक ही अभिवादन किया किन्तु आचार्य सिध्द



से इस समय जैसे इस ओर कोई ध्यान ही नहीं दिया। वह घबराव को प्रीका पर ही बसाव को बेंक उत्तरता ही घबराव की ओर बीड़ लिया और धंभुक केवल बकित हुआ-सा उसकी ओर देखता रह गया।

देवी सिध्वा साधु श्री गता मध्य के पास बाधे सिमाखण्ड पर बँठी थी। घोर दिनों उसका जो मुख भाव हुआ करता भाव प्रत्यक्ष में उसमें क्रिचित भी तो परि वर्तन नहीं आया था। वह ऐसी बँठी थी जैसे उसने कुछ सुना ही नहीं। फिर मना हुआ प्रकट में सोपती ही क्या? किन्तु ऐसी बात नहीं थी। भाव वह केवल कुछ सोच कर ही नहीं रह पाई, बरन् विचारों के प्रवाह में उसका मन दूर विगंत में पहुँच बटक गी गया था। सो भी धार्धार्य सिध्वा जब उसके समीप पहुँचा तो उसके मुख से केवल यही भाव परिमलित हो रह गया कि बँठी वह कल भी भाव थी है। धार्धार्य सिध्वा का सम्मुख देख वह झड़ी हो गई और जब वह सिमाखण्ड पर बँठ गया तो वह भी उसके एक कोने पर बँठ रही। धार्धार्य सिध्वा के घंटराल में उठते भाव भी जैसे धास हो गईं बर। किन्तु उसने नैत्र कोर उठी की घोर निहाये रहे और वह जब सरक कर देवी सिध्वा से सट बँठ गया इसका उसे मान तक भी नहीं हुआ। वह नवन वृत्त किण मौन ही जैसे कोई पाषाण मूर्ति हो बँठी रही।

भाव केवल कुछ क्षणों पूर्व ही धार्धार्य सिध्वा का मन उससे न जाने क्या कुछ पृथने को विद्रोह कर उठा था। वास्तव में उनसे जब पुनः अट्टानिका की ओर मस्य को मोड़ा था तो उन समय वह प्रकट में आये कुछ भी क्यों न सोचकर रह गया हो, पर मुन पर प्रसन्नता का भाव आने के पश्चात् भी उसके घबराव के किसी प्रकट प्रकट में एक-एक कर अनेक प्रसन्न एक साथ उठ जाये हुए थे। घोर प्रत्येक प्रसन्न के साथ ही उसके मन का विज्ञान अधिकारिक होता जाता था। किन्तु जब वह सिमाखण्ड पर बँठा तो जैसे वे सभी निरवक प्रतीत हुए। उसे जना जैसे कुछ भी तो नहीं हुआ था—फिर में मना व्यर्थ ही में उस पर क्यों इतना क्रुद्ध हो गया। वह जैसे अपने ही से वह प्रसन्न कर उठा और फिर उसी के साथ प्रसन्न-भाव का सा अनुभव करने लगा। उसकी इच्छा हुई कि वह देवी सिध्वा से इसके लिए जना भाव से किन्तु इसी मध्य उसने देखा, उसका हृदय देवी सिध्वा की पीठ पर पहुँच गया है। जैसे पहुँच गया वह इस पर स्वयं बकित रह गया बरन्तु उसीके साथ इसके घंटर में उठा प्रवाह प्रसन्नोपता का भाव जैसे उठे जैसे देवी सिध्वा के घोर अधिक निकट समेट लाया। उसका पीठ पर रखा हुआ देवी सिध्वा की घोर अधिक समीप बीचों बीच भी धातुर हो उठा किन्तु प्रबल इच्छा होकर भी वह ऐसा नहीं कर सका। फिर उसकी इच्छा हुई कि वह उसके दूरी घोर के प्रवृत्तिमोघ्य कपोल पर धपना करतल रस उठके सुख को बलात् धपनी घोर केर से किन्तु वह ऐसा करने में भी असमर्थ रहा। फिर उसके मन में हुआ कि वह सिमाखण्ड से उठ जाया हो और फिर उसके चिबुक को ऊपर उठा उसके नैत्रों में ही अर्क से देखे तो ऐसा बनने क्या है, और क्या है उसके घंटर में जो उसके घंटराल में इस तरह बँठ गया है। बरन्तु उसके लिए भी जैसे वह बाह्य बटोरी में धनमर्ष रहा क्योंकि वह पाषाण मूर्ति की भाँति मौन हो बँठी थी।

किन्तु, देवी सिध्वा भाव अधिक भीन नहीं रह सकी। धार्धार्य सिध्वा को कुछ

ऐसा धारणा हुआ कि उसके घोड़ लुप्त रहे हैं और इस घोट के इच्छे ही जैसे कोई संजोई निवि बिलर उठी है। आचार्य सिध्द का मन बिल उठ्य ह्वित होता जिमा बंड से उठ अपने उत्तरीय के पल्ले को फैलाता देवी सिध्दा की वृष्टिछाया में जा बैठा।

परन्तु इस पर देवी सिध्दा के नेत्र न तो मुस्कराए धीरे न बह हँसी ही। किन्तु आचार्य सिध्द ने इससे किंचित् भी हठोत्साहता का अनुभव नहीं किया उष्टे उसके सौम्य रूप पर मुग्ध हो उठा। इती मध्य जैसे देवी सिध्दा की भी भाषा स्पष्ट हो बनी धीर उठने जो कुछ कहा आचार्य सिध्द के कानों की स्वप्न सुनने में असमर्थ नहीं रहे। उसे धुन आचार्य सिध्द बोका जैसे फिर प्रगटे अण ही उसके मुख का धोर-ओर व्यंगला से मोठ प्रोठ हो गया। उसकी संकुलि वन वति से देवी सिध्दा के विदुष के नीचे जो टिकी। फिर उसे बलात् उमरे उठा आचार्य सिध्द ने कातरं प्राय स्वर में पूछा—“क्या कहां घुमे। गत रात्रि तुमने स्वप्न देखा वा ?”

देवी सिध्दा ने यह बातें सर्वथा सहज ढंग में कही थी। किन्तु आचार्य सिध्द संकित हो उठा। कदाचित् वह उसकी चेपनी ही मन स्थिति की जो मेष्ठी-गुन कल्पित की इस प्रस्तुत समस्या को लेकर बनी हुई थी। जबवा वह उसके स्वभाव का ही धंग वा। कुछ भी हो देवी सिध्दा इतने कहीं पड़े बात का उसके मन पर प्रतिकूल ही प्रभाव पड़ा। उसका मन सधीर हो उठा धीर सधीर मन उत्पत्ता से स्वप्न जानने के लिए धातुर हो रहा था। उसके कंठ स्वर में स्पष्ट ही धातुर का प्रभाव था। पूछने लगा—“देवी सिध्दा भला क्या स्वप्न वा बह ?”

किन्तु देवी सिध्दा आचार्य सिध्द को इस प्रकार आतंकित हुआ देखकर भी प्रकट में सर्वथा धिक्कित रही। यथापूर्व नठ वृष्टि रखे उसने आचार्य सिध्द के प्रश्न का उत्तर देने का प्रयास किया। वास्तव में उसने प्रश्न को सीधा उत्तर न दे जैसे संजोई ही मन की किसी बात को धाने बर्खाया बोली—“आर्नेरल प्राय मीरे एक निश्चय किया है।”

देवी सिध्दा के मुख से निश्चय निश्चय सन्ने आचार्य सिध्द के कानों में जैसे बूँद उठ्य। उसे ध्यान हो धांका देवी सिध्दा के लिए तो कई निश्चय सम्भव है और उसका एक निश्चय-विशेष तो धातुर-बर्ने को बीच में मध्यार तक में डुबा सकता है। प्रत्येक बह पहले से भी अधिक प्रधीर हो उठ्य। पूछने लगा—“धीर बह निश्चय क्या है देवी सिध्दा ?”

परन्तु देवी सिध्दा ने इस बारे में कोई सीधा उत्तर न दे केवल धाने ही मन में रखी किसी बात को धाने बर्खाया। बोली—“मेष्ठी-गुन के सम्बन्ध में जब तक कोई भी संवाद प्राप्त नहीं हुआ है धीर इस पर मुझे विशेष चिंता हो उठी है आचार्य सिध्द !”

यह कहते हुए जैसे उसका कंठ स्वर धकना गया। उसकी यह धातुरता आचार्य सिध्द के किसी संतर्भाव को किम्बोड़-सी गई। साध ही उसके मुख से मेष्ठी गुन तथा उसके प्रति व्यक्त चिंता के साथ ‘विशेष’ शब्द का गुन आचार्य सिध्द को क्याभात का वा अनुभव हुआ। उसके धातुर में बीठी धारपीयता का सहज धातुरिके-बाध स्वप्न स्थित हो गया। वह कराह उठा धीर जैसी के साथ आचार्य सिध्द की

की धोर हट गया। किन्तु घणसे घण ही सावेन घाये बड़ उसने देवी सिध्दा के नेत्रों में लक्ष्मी का प्रयास किया। पर वह नभन गत किए ही बैठी रही।

घाचार्य सिध्द श्लोभावेद्य में अपनी पूरी पक्ति के साथ जोर से चिल्ला उठा—“देवी सिध्दा !”

धीरे उसके मुख से निकले इस उत्तेजनपूर्ण सम्बोधन की प्रतिध्वनि घबिहा विक वेन से बड़ी के कानों में नूजती रही। उसका कण्ठ श्लोभावेद्य की तपस से धुंफ़ हो उठा। उसका मन हुषा इसी कसस नहीं से घायल बड़ा हो किन्तु धामिल भार बैठे पुन कसका माने रोक बड़ा हो गया।

किन्तु इतना सब कुछ होने पर भी देवी सिध्दा सर्वथा धमिलकित्त रही। पूर्ववत् सहज घाय से वह पुन बोली—“घार्यरत्न देवी शाल्लपात्री मैं अपनी इस कुछ सिध्दा पर जो दाशित्व भार लीया है मैं उससे अनभिज्ञ नहीं थीर न ही उस धोर के उदासीन हूँ। मुझे श्रेष्ठ है कि मैं अभी तक शार्बनिककण से न तो कुछ बंधना कर घकी हूँ थीर न कलादेवी की उपासना ही। यदि घाय लक्षित सवमें तो मैं घाय ही संघ्या बैधानी संघाय के सम्मुख बंधना के लिए कपस्वित हुषा चाहूँगी हूँ।”

देवी सिध्दा अभी कुछ धीर कहा चाहती थी कि इसी मध्य घाचार्य सिध्द कस्तुष्ठा बध पूछ बैठा—“तो फिर क्या स्वयं देवी सिध्दा ने ही नवर में यह शमाचार प्रचारित किया था ?”

इसके उत्तर में भी देवी सिध्दा ने कुछ नहीं कहा। केवल देन समक उठकर घाचार्य सिध्द के मुख पर केन्द्रित कर दिए थीर घाचार्य सिध्द इस पर बैठे घास्वस्त हो गया।

देवी सिध्दा पुन बोली—“घार्य रत्न। येथ हूधरा घनुरोच है कि नृम का यह शायोत्रम यदि मसेध नलिमय के बीच के सम्मुख ही हो तो न केवल श्रेयकर, बरन् प्रथित भी होना ऐसी ‘प्रवेष्टी पुस्तक’ में स्पष्ट ध्यक्स्था है।” यह कह देवी सिध्दा शिभाकण्ठ से उठ खड़ी हुई।

घाचार्य सिध्द केवल उसकी धोर देखता रह गया। वह अभी कुछ ही घाये बड़ी होनी कि घाचार्य सिध्द भी उसकी धोर उत्प्रेरता से बड़ गया। उसका माने रोक उसकी बाहुओं को अपने हाथों में बूझता से पकड़ लिया। हूधर से कड़ी किती एक नाच हिमोर के साथ शीम्य बीजती देवी सिध्दा को यथा-शक्ति श्लोभावेद्य हुषा उन्मसित कण्ठ स्वर में बोले उठा—“देवी सिध्दा ! देवी सिध्दा ! लक्ष्मण तुम हिमालय से भी ऊँची धीर महासागर से भी गहरी हो।” धीर फिर वह उनी नाच हिमोर की तरंग में देवी सिध्दा को छोड़ “हारपास शंभुक नायक धमिकड्ड” की शब्द स्वा मे रट नभाता मुख हार की धोर बीड़ लिया। उनके निष्क जा पूर्व से भी धमिक उन्मसित कण्ठ स्वर में, किन्तु श्लोभावेद्य की बूझता के साथ बोला—“शंभुक हार से तुम्हें पूर्व नाह ही।”

धीर फिर अपने महायक धमिकड्ड की दोनों बाहुओं को पकड़ ह्योत्साह के उन्म श्लोभावेद्य हुष बोला— शंभु धमिकड्ड नगर के कोने-कोने में उसके पूरे धोर में घोबला करवा हो, बैधानी के शीम्य बनी देवी सिध्दा घाय इसी संघ्या से पूर्व

संघेय वलियुक्त के वीर्य वाले प्राणलु से देवी की उपासना के लिए उदात्त होगी ।

अनिच्छद अपने प्रधान का वह धारण सुख हृदित हो बन पडा । किन्तु आचार्य विष्णु ने उसे पुनः टोक कहा—“निज अनिच्छद उद्बोधकों से कहना कि मे कहूँ देवी सिध्दा ने धमिनाथ समाज की चुनौती को स्वीकार कर लिया है और इन प्रकार वह उसी की प्रेरणा पर नृत्य के लिये प्रस्तुत होगी ।”

इस पर अनिच्छद ने अपना मस्तक नत कर कहा—“कमल बबुवर यह तो क्षमर्ष की आर्षवस्य देना हुआ । धमिनाथ समाज वह नून एकवच ही तो उद्वेगित हो उठेगा । न जाने विकटास हन भी के के ।”

“किन्तु इससे क्या अनिच्छद ! उन्होंने ही तो यह प्रचार किया था । फिर हम ही उनके प्रहार को कब तक सहन करते रहेंगे ?”

और फिर वह उत्तरता से अपने मस्त्र की मे धारें बढ़ लिया । धरवाकड़ होते-होते धंभुक की धोर वृष्टि सेट बोला—“निज धंभुक, अद्वैतिका की रसा का पूर्ण भार धव केवल तुम्हारे ही कंधों पर है ।” फिर अनिच्छद की धोर देखते हुए बोला—“निज देखो देवी सिध्दा का बाह्य भाव दूरे बीच विस्मयत लघुत्व भवचारोहियों से अनुभूत होता ।”

वह कह धरवाचय विष्णु ने मस्त्र को एक धोर की एड़ मवाई ।

मस्त्र भी उसे से हनु मति से धावात की धोर हीड़ लिया और वह नमर पव उसकी पदचारों से धून उडा ।





यह कोई सीधे वृह की बात होगी ।

मणसंबाहक सामन्त भंडवैव इस समय महाधेयी के ही आसार में अपस्मित के धीरे उनके परिवर्तित सामन्त कीतिकेय सामन्त बीरमह धेयी धनबंध धेयी मिठबिदक धादि भी नहीं आए हुए थे । सभी के जब सूर्य नाथ धीरे उत्पत्ता की घोषणा सुनी तो उनके मुँह निस्तेज हो गए । विपदा के इस नव प्रहार पर क्षिप्त दृष्टि से वे एक दूसरे की ओर देखते रहे । कुछ समय तक कक्ष में केवल मौन छाया रहा । अंततः उसे भंग कर महाधेयी बोले— 'क्यों बंधुवर सामन्त मत्ता धन क्या होगा ? फिर तो कार्तिकेय को भी कुछ कहने का साहस हुआ । कहने लगे— 'धर्म यह तो निश्चित ही अब अटल स्थिति बन गई है ।'

सामन्त धीरे मंत्र की क्षिप्तता इस समय तक स्पष्ट ही आदेश में परिणत हो चुकी थी । बात यह बँटे नहीं रह सके । उठते हुए उत्तमिष्ठ स्वर में बोले— 'क्या धर्म सब भी धमिभाव समाप्त को धर्म ही से काम लने का परामर्श देंगे । धर्म धर्म ही न जानें पर, मेरी तो यही निश्चित धारणा है कि विपदा को जब तक साहस कर कोई कष्ट उठाने नहीं दिया जायगा यह इसी प्रकार प्रहार करता रहेगा धीरे अंत में सचका परिणाम होगा हमारा समर्पण धात्-समर्पण धर्म !'

किन्तु, इस रोच प्रकृत से भी बलासंबाहक का मौन भंग नहीं हुआ । उन्हें मौन देख धेयी धनबंध कुछ क्षीण से गए । बोले— 'सामन्त धेय्य जब इस प्रकार निष्क्रिय ही रहना है तो फिर ध्येय में क्यों विरोध बढ़ाया जाए । फिर विरोध भी उनसे जो सत्ताबद्ध है धीरे एक प्रकार से आसक्त धर्म बने हुए है ।

इस बार मणसंबाहक भी नहीं रह सके । बोले— 'धातुध्यान् में नहीं तो सोच रहा हूँ, सोच रहा हूँ कि उन्हें सत्ताबद्ध किया कितने ? मैंने तुमने तथा जन साधारण सभी ने तो । धीरे इस समय हमारा लक्ष्य भी नहीं है कि जन-साधारण को अपने पक्ष में किया जाए । धातुध्यान् धेयी बंधासी में सक्षम प्रतिरोध की नहीं बरत जन-मणम पर अधिकार की धातुध्यान् है धीरे उठके सभी उपाय इस समय हमारे पास है समय हमारे साथ है ।'

'तो कैसे सामन्त धेय्य ?' धेयी मिठबिदक ने उत्सुकता से पूछा । किन्तु मणसंबाहक ने धेयी की इस उत्सुकता की धीरे जैसे कोई ध्यान नहीं दिया । उनके मुँह भाव से प्रतीत हुआ जानों यह किसी समस्या विक्षेप नर बड़े ही मूढ धन से लोच रहे हैं । फिर, सहना मौन भंग कर धेयी कार्तिकेय की धीरे धपनी दृष्टि करते हुए

बोले—“वर्षों प्रायुष्यान् भ्रमा प्रायुष्यती ज्योत्सना की प्रायु इत समय क्या होगी ?  
यह तो वह निश्चित ही विवाह योग्य हो गई होगी।”

कहीं बैयाली की एक बचनंत समस्या थीर कहीं केवल पारिवारिक बन्ध का  
यह प्रश्न। गणसंबाहक के मुख से यह सुन सभी की धारक्य हुआ यही तक कि स्वयं  
उनके बाल-सखा महाशेष्ठी की भी। सीधे बने—“यह तो निश्चित ही कुछ  
सामान्य पर बचन का प्रभाव प्रतीत होता है।” परन्तु वयु महामहरी में पारिवारिक  
कृपण सेव धरवा उसके सम्बन्धित कोई भी प्रश्न धारक्य प्राप्तीबता का घोरतक समझ जाता  
था। जिससे भी वह पूछा जाता वह उसे अपने लिए धीरक की बात मानता था। अतः  
शेष्ठी कार्तिकेय ने इस पर अनुग्रह का आन प्रकट किया धीर फिर विनय एवं संकोच  
के मिश्रित स्वर में बोले—“हो धार्य हो तो गई है।” यह कहते हुए वह तनिक रुके।  
फिर जैसे मानस पटक पर सहसा कोई बात उभर आई ही। उत्पत्ता से बोले—  
“किन्तु धार्य वह धय पहले जैसी बचन नहीं रह गई है। धार्य को यत्ना वह बटना कुछ  
भार है ?”

गणसंबाहक ने इस पर तनिक हर्ष प्रकट करते हुए अनुमोदन स्वरूप धरना  
धीर्य क्षिप्ता। फिर बोले—“हो प्रायुष्यान् सभी भांति धार है ?” कहते हुए  
कन्होंने इस बार अपनी वृष्टि महाशेष्ठी की धीर की। बोले—“बन्धुवर भ्रमा तुम्हें विवित  
है क्या हुआ था। एक दिन मेने उसे बोध में बैठाया तो उसने मेरे धयकुटेस ऐसे सीधे  
ऐसे सीधे कि मेरे मुख से ‘जी’ निकल गई।”

गणसंबाहक के मुख से यह बटना सुन सभी हँस पडे। महाशेष्ठी मस्तिरल  
भी हँसी परन्तु धाम ही यह भी तोचते रहे कि गणसंबाहक ने धाधिर यह बात इन  
अनम किध जरेस्य से कही है। मन ही मन बोले—“यह धामल बड़ा कुटिल है। वह  
विना किसी प्रयोजन के यह बात कहने वाला नहीं था। जब सभी की हँसी का नम  
समाप्त होता था तो वह गणसंबाहक की धीर उत्पुठता से देख उठे। गणसंबाहक  
नेत्र कोरों ने कम्पन सभी की धीर देखते हुए घंठ में ईसीर कण्ठ स्वर में बोले—  
“धामुष्यानों मेरा एक प्रस्ताव है।” यह सुन सभी उत्पुठता से उनकी धीर देखने  
लगे। गणसंबाहक लभेक रुक जैसे सहज भाव से बोले—“प्रायुष्याना मेरा प्रस्ताव है  
कि यदि धामुष्यती ज्योत्सना का इस धाधर्म सिध्य से

उनके मुख से निकलती वह बात धधुरी ही रह गई। वह क्या कुछ कहने वाले  
हैं शेष्ठी कार्तिकेय इतने भर से ही सभी भांति समझ गए। वह उत्तवित हो उठ  
इतने उत्तेजित कि कोच से उनका सारा पाठ काँस बछ। सारेस्य बोले—“हय धार्य  
का धाधर करते हैं पर उत्तका यह धय करवायि नहीं कि धार्य हमें इन प्रकार धर  
भांति करें।”

इस पर, धीप सभी स्तम्भ ही उठे। परन्तु स्वयं गणसंबाहक एक उच्च  
छटाका से, हँस पडे। पर महाशेष्ठी मस्तिरल इन सब कण्ठ से भी सर्वथा धविचलित  
रह यथापूर्व उत्पुठता से उनकी धीर देखते रहे। शेष्ठी कार्तिकेय सभी भी कोवा  
विद्वृत थे धीर उसके धधिरिक के कारण कण्ठ भी कहने में धपने को धधनर्ष धधुमध  
कर रहे थे। गणसंबाहक बँडे से उठ बडे हुए। शेष्ठी कार्तिकेय के कँधे पर हाथ धी



यह कोई सीसरे गहर की बात होगी ।

मणसुबाहुक सामन्त धनदेव इस समय महाभेटी के ही प्रासाद में उपस्थित थे और उनके परिवारित सामन्त कार्तिकेय सामन्त बीरमल भेटी वनदेव भेटी निरतिविकक धारि भी वहीं घाण हुए थे । सभी ने जब पूर्व नाव और उत्पलत् की बोपला सुनी तो उनके मुख निस्तेज हो गए । विपल के हाव जब प्रहार पर क्षिप्त दृष्टि से वे एक दूसरे की ओर देखते रहे । कुछ समय तक कक्ष में केवल मौन छाया रहा । अंततः उसे मंत्र कर महाभेटी बोले—“क्यों बंधुवर सामन्त मना अब क्या होगा ?” फिर तो कार्तिकेय को भी कुछ कहने का साहस हुआ । कहते लगे—“भार्य यह तो निश्चित ही अब अटिल स्थिति बन गई है ।”

सामन्त बीर मल की क्षिन्नता इस समय तक स्पष्ट ही धारण में परिलक्षित हो चुकी थी । बात यह बँटे नहीं रह सके । उठते हुए उत्तेवित स्वर में बोले— क्या भार्य अब प्री धनिभाव समाज को धरें ही से काम लगे का परामर्श देंगे ; भार्य मने ही न मानें पर, मेरी तो यही निश्चित धारणा है कि विपली को अब तक साहस कर कोई करारा उत्तर नहीं बिना जायमा वह इसी प्रकार प्रहार करता रहेगा और धरें में उसका परिणाम होगा हमारा समर्पण, धारण समर्पण धार ।”

किन्तु इस रोष प्रकट से भी मणसुबाहुक का मीन मंत्र नहीं हुआ । उन्हें मौन देव भेटी वनदेव कुछ क्षीभ से गए । बोले—“सामन्त भेटी अब इस प्रकार विधि ही रहना है तो फिर धरें में क्यों विरोध बढ़ाया जाए फिर विरोध भी उनसे को सत्ताक है और एक प्रकार से साहस नग बने हुए है ।”

इस धार मणसुबाहुक मौन नहीं रह सके । बोले—“धामुष्मान् में वही तो सोच रहा हूँ मोच रहा हूँ कि उन्हें सत्ताक किया किसने ? मने तुमने तथा जब साधारण सभी ने तो । और इस समय हमारा मन्त्र भी यही है कि जन-साधारण को अपने पक्ष में किया जाए । धामुष्मान् भेटी बीधाली में सत्तरण प्रतिरोध की नहीं करन जन-साधारण पर अधिकार की धारणकता है और उनके सभी उपाय इस समय हमारे पास है समय हमारे साथ है ।”

“ता बँडे सामन्त भेटी ? भेटी निरतिविकक ने उत्सुकता से मुखा । किन्तु मणसुबाहुक ने भेटी की इस उत्सुकता की धोर जैसे कोई ध्यान नहीं दिना । उनके मुख भाव से प्रतीत हुआ मानों वह किसी समस्या विरोध पर बड़े ही सूझ बंध से सोच रहे हूँ । फिर, सहसा मीन मंत्र कर भेटी कार्तिकेय की धोर अपनी दृष्टि करते हुए

बोले—“क्यों धामुप्पाम् ममा धामुप्पती ज्योत्सना की धामु इस समय क्या होगी ? यह तो वह निश्चित ही विवाह योग्य हो गई होगी ।

कहीं बैंगाली की एक उपलब्ध समस्या धीरे कहीं केवल पारिवारिक शक्ति का यह प्रश्न । पण्डितबाहक के मुख से यह सुन सभी को आश्चर्य हुआ यहाँ तक कि स्वयं उनके बात-सखा महाशेष्ठी को भी । सोचने लगे—“यह तो निश्चित ही कुछ सामान्य पर वयस का प्रभाव प्रतीत होता है ।” परन्तु गण्य महात्मनी में पारिवारिक कुशल लोक व्यवसाय उससे सम्बन्धित कोई भी प्रश्न अत्यन्त आसानीयता का घौंठक समझ जाता था । जिससे भी वह पूछा जाता वह उसे अपने लिए गौरव की बात मानता था । घट-घेटी कार्तिकेय ने इस पर अनुग्रह का भाव प्रकट किया और फिर विनय एवं संकोच के मिश्रित स्वर में बोले—“हाँ धार्य हो तो यह है ।” वह कहते हुए वह ठनिक दके । फिर जैसे मानस पटक पर सहसा कोई बात उभर आई ही । उत्पत्ता से बोले—“किन्तु धार्य वह सब पहले जैसी बचन नहीं रह गई है । धार्य को मत्ता वह बटना कुछ बाद है ?”

पण्डितबाहक ने इस पर ठनिक हर्ष प्रकट करते हुए अनुपमिजन स्वक्य धपना शीघ्र हिलाया । फिर बोले—“हाँ धामुप्पाम् ममी मति वाव है ? कइते हुए ज्योत्सना इस बार अपनी वृष्टि महाशेष्ठी की धीर की । बोले—“बंसुवर ममा तुम्हें विहित है क्या हुआ था । एक दिन मैंने उसे बोध में बैठाया तो उठने मेरे वनमुकेषा ऐसे लीच ऐसे लीच कि मेरे मुख से भी निकल गई ।

पण्डितबाहक के मुख से यह बटना सुन सभी हँस पडे । महाशेष्ठी मणिरत्न भी हँसे परन्तु साथ ही लक्ष्मी सोचते रहे कि पण्डितबाहक ने धाखिर यह बात इस समय किस उद्देश्य से कही है । मन ही मन बोले—“यह सामान्य बड़ा कृटिम है । वह किना किसी प्रयोजन के यह बात कहने वाला नहीं था ।” अब सभी की हँसी का क्रम समाप्त होता जाता तो वह पण्डितबाहक की धीर उत्सुकता से देख उठे । पण्डितबाहक ने धीरों से क्रमशः सभी की धीर देखते हुए, घंटा में धीरों कष्ट स्वर में बोले—“धामुप्पामो मेरा एक प्रस्ताव है ।” यह सुन सभी उत्सुकता से उनकी धीर देखने लगे । पण्डितबाहक लगे एक एक जैसे सहज भाव में बोले—“धामुप्पामो मेरा प्रस्ताव है कि यदि धामुप्पती ज्योत्सना का इस धार्याय विध्य से

उनके मुख से निकलती वह बात धामुपी ही रह गई । वह क्या कुछ कहने वाले हैं घेटी कार्तिकेय इतने जर से ही मनी-मति समझ गए । वह बलवित हा उठ उठने उतेवित कि कोच से उनका सारा मात कान उठा । लक्ष्मी बोले—“हम धार्य का धावर करते हैं पर उसका यह धर्म कवापि नहीं कि धार्य हूँ हम प्रकार धर मानित करें ।”

इस पर, शीघ्र सभी स्वम्भू ही उठे । परन्तु स्वयं पण्डितबाहक एक उच्च व्योका से हँस पडे । पर महाशेष्ठी मणिरत्न इस सब कल से भी सर्वथा धिक्कित रह गयापूर्व उत्सुकता से उनकी धीर देखते रहे । श्रेष्ठी कार्तिकेय धभी भी कोका विभूत के धीर उनके धिक्कित के कारण कल भी कहने में धपने की प्रमदध अनुभव कर रहे थे । पण्डितबाहक जैसे से उठ लगे हुए । घेटी कार्तिकेय के जैसे वर हुए की



बपकी देते हुए बोले—“घायुष्मान कृपित न हों मैं तो केवल यह देख रहा था कि यदि इस प्रकार की बात उद्य धार्यायं द्विष्य धीर महापीर येष्टी-युव श्रेणियरत्न की बहिन मंत्रिका के सम्बन्धों को लेकर यदि नगर में कोई बात फैलाई जाए तो बला उसकी क्या प्रतिक्रिया होगी। नगर में कौन नहीं जानता कि धार्यायं द्विष्य एक शब्दात् कुल मुक्त है।

“परन्तु उतसे हमें इस समय क्या भाव होना बंधुवर ?” महायेष्टी ने प्रश्न किया।

नगर्षबाहूक ने उत्तरता से उत्तर में कहा—“जान ? उतसे निश्चित ही हमारा ज्ञान होगा। महापीर श्रेणियरत्न उसे मुझे तो अवश्य ही ब्रीक उठेंगे। यह धार्यायं द्विष्य के प्रति जेष्ठा का भाव भी दिखाएये जेष्ठा का भाव ही नहीं बरन निरा के भय से अपने प्राणात् से भी निकाल देंगे धीर इस पर सेनापति सिंह अवश्य ही क्रुद्ध हो उठेंगे। फिर जेष्ठी परस्पर कलह बढ़ जाएया धीर यही तो हम चाहते हैं बंधुवर। विपत्ती का सबसे बड़ा बल एकता तो ही है जिसे हम नष्ट करना चाहते हैं। धीर फिर उबर बन-साधारण भी तो अपना कुछ मत बनाएया।” यह कहते हुए उन्होंने कमरा सम्मुख बैठे सभी सामन्त एवं येष्टी-जनों की ओर देखा।

सामन्त कार्तिकेय सबसे इतर की ओर बैठे थे। नगर्षबाहूक की दृष्टि दर धन्तः उन पर आ स्थिर हुई तो वह अपना मत प्रकट करते हुए बोले—“घार्यं यदि राजनीति दूरदर्शिता पर ही आधारित है तो धार्यायं यह प्रस्ताव पक्षरथ मान्य है, एवं हम सभी इसका पालन करें, यह भी अनिवार्य है। धार्य ही धनी से यदि हम उसका प्रचार करें तो अवश्य ही उसका कुछ लाभ होगा। तो भी इस जनव ह्वारे सम्मुख एक तात्कालिक समस्या है धीर उसका धनी इसी अर्थ कोई निश्चित उपाय खोज निकालना नितात् आवश्यक है। यह समस्या है या तो यह वाली कन्या का बलात् मनुजमय के बीच के सम्बन्ध जाने से बलात् रोका जाय यवना फिर कोई दूसरा उपाय निकाला जाय।”

सामन्त कार्तिकेय की पहली वाली बात केवल सामन्त बीरबन्ध के किसी धीर की नहीं बची। कारण, नगर्षबाहूक तो उसके कसिताभों का अनुमान तथा उते विवेकपूर्ण नहीं समझते थे धीर महायेष्टी की जेष्ठी स्वाभाविक परिचाय नहीं थी। फिर भी वे दोनों दोनों ही गहरी बरन उसके साथ येष्टी जितविकर नयेत् सपुत्र येष्टी बर्ष एक बात के लिए उत्तर था। मुह-मुह की स्थिति में वे पूर्ण सहयोग को ब्रह्म थे। किन्तु साथ ही प्रकट में जाने को तैयार नहीं थे। उम्होंने यह बात कभी स्पष्ट तो नहीं कही तथापि नगर्षबाहूक उतसे परावृत्त नहीं थे धीर न ही यह जनते इससे परिष्क की धार्या रक्षना दूरदर्शितापूर्ण समझते थे। यत् हम सारी स्थिति को ध्यान में रख यह बोले—“घायुष्मानो नक्षत्र संघर्ष ही बात को बार-बार कहना व्यर्थ है। उसके काण्ड स्पष्ट है। एक तो नहीं कि हमें बीघाली की पुत्री परम्परा का पालन करना है। साथ ध्यानी बीघाली की पुत्री परम्परा है कि जब तक कोई उस पर स्पष्ट ब्रह्म न करे, नहू स्वयं प्राये बढ़कर देता कदापि नहीं करती। जब हमारा बाहर भागों के साथ यह धार्यायं है तो फिर बर में भी हमारा यह व्यवहार क्यों न हो ? दूसरे घायुष्मानो,

बोहा सोड़े की काटता है। हमें पर्यंत्र का पर्यंत्र से घोर नीति कौशल का केवल उही से उत्तर देना है। इसी प्रसंग में मैं धामुष्याजी, जब यह भी कहना चाहूँगा कि धर्मिणात समाज को इसी समय एक ऐसी कला बल एवं सुवीर्य कर्मा की आवश्यकता है जो धाम संस्था ही वाली कर्मा के प्रत्युत्तर स्वरूप मृत्यु संघ पर अवतरित हो सके। धामुष्य में यह एक समस्या है जिसका समाधान करना ही होया।”

यह सुन मंत्री स्तब्ध हो उठे। पर महाशेष्ठी का मुख धीरे धीरे तो धक्कामात् ऐसा मुप्य हो उठा कि उनकी कला धीचनीय प्रतीत होने लगी।

परन्तु गणसंवाहक ने जैसे खग घोर कोई ध्यान ही न किया। उसी प्रसंग में वह धामे बोले—“धामुष्याजी, मेरे इन प्रस्ताव पर विशेष चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं। धाम कलाचित् पुष्टिमें क्यों? इस प्रसंग के उत्तर में मुझे केवल इतना ही कहना है कि हमें प्रत्येक क्षण की कला कर्म में स्वीकार करना चाहिए घोरवह एक सर्वथा जायज स्वमान क्षण है कि महाशाय कर्मा धामुष्याजी ने कला धामिष्ठाभी के पर को निरिचित ही नीरवपूर्व बनाया है। कलने निरिचित ही उसे एक पुनीत स्वस्व प्रदान किया है। पर एक यदि धाम किसी भी धामिणात कुल की कर्मा इस नीरवास्व पर के लिए धामनर होती है तो धाममें प्रविष्ट की कोई हानि न होती। मंत्र है, धामिष्ठा में यह पर घोर भी धामिष्ठा नीरवपूर्व हो उठे।”

परन्तु इसके पश्चात् भी महाशेष्ठी मणिरत्न का धिन्न धाम धामपूर्व बना रहा। वास्तव में गणसंवाहक का लक्ष्य धिन्न है, वह उसे कभी मति समझ चुके थे। पर उस पर गम्भीरता से मनन कर रहे थे। मनन करते हुए यदि वह कभी मुप्य हो उठते तो कभी धामने ही विचार प्रवाह से धिन्न भी उठते। परन्तु कल प्रवाल के पश्चात् भी वह किसी निष्कर्ष पर न पहुँच सके। धाम धाम भी इस समय जैसे इसी कलस्या पर गम्भीरता से धामने में धिन्न थे। कहला सामन्त धीरमन्त्र बोले उठ—“परन्तु धामे क्या बैधानी में इतनी धीर कोई योग्य कर्मा मुलभ हो सकैगी?”

गणसंवाहक सामन्त मंत्रदेव इस प्रसंग के उत्तर में धाम धिन्नास का धाम धाम दिशाते हुए बोले—“क्यों नहीं धामुष्याजी! प्रमा ऐसा क्या है जो बैधानी में मुलभ नहीं। बैधानी धामुष्याजी की कला धामिष्ठा में केवल एक वाली कर्मा ही तो नहीं थी धामिणात समाज की भी कई धामुष्यातियों ने उल्ल कर्मा की धामिष्ठा धामिष्ठा की है। घोर धामने से कई को तो कर्मा धामिष्ठाभी की धामुष्ठा धामिष्ठा होने का भी धाम प्राप्त हुआ है।”

यह कह उन्होंने इन धाम सर्वथा स्पाट कर्म ने धामनी धामिष्ठा महाशेष्ठी मणिरत्न के धाम पर धामिष्ठा कर की। बोले—“धामुष्ठा महाशेष्ठी, यह बैधानी एवं धामनी परन्तु धामों के जीवन-धाम का प्रवाल है। घोर महाशेष्ठी ने धामने बनाए रखने में नहा ही बहुस्वपूर्व योगदान किया है। तो क्या धामिणात समाज धाम धामने इन धाम मण्ट के धाम में महाशेष्ठी की घोर केवल धामिष्ठा धामिष्ठा में धामना यह धामना?”

गणसंवाहक ने जैसे इन धाम महाशेष्ठी ने कोई स्पाट प्रस्ताव किया। उठे मुन महाशेष्ठी धामाधिक धामिष्ठा हो उठे। उत्तर में नया कई घोर क्या न नई यह उस पर धामिष्ठा कर्म से इती धाम केवल एक धाम में ही धामने के लिए धामना हो

घट। सभी उनकी ओर त्रासुकता से देखते रहे। अंततः महाशेष्ठी बोले—“बन्धुवर, धामुष्मती राजकमल कमल मेरी प्रपौत्री ही नहीं आपकी भी है। अतएव उसके अविध्वं के सम्बन्ध में कोई भी बात सोचने का बोना ही को समान रूप से अधिकार है। तो भी मेरा एक मात्र मित्र ही है। धामुष्मान् भूयत इस समय बीकानेर से बाहर है। अतएव यदि वह धाम के मूल में देखी सिप्या को परास्त भी करे तो उसे अधिकारी पर पर अधिकार करने का प्रस्ताव धामुष्मान् मुझ के जाने तक स्वमित रखा और इस सम्बन्ध में उनका ही निर्णय अन्तिम होगा।”

महाशेष्ठी के मुख से यह बात सुन सभी “बन्ध-बन्ध कह उठे। सामन्त और भद्र सोझास उच्च स्तर में बोले—“महाशेष्ठी आपसे समुष्मा धामिजात बर्ष उपकृत हुआ है। और फिर वह इसी की रट मगरी हुए कष्ट से बाहर की ओर दौड़ लिए।

महामती में यह समाचार भी बिद्युत तहर की भांति फैल गया।





**कोई** बार मास पूर्व की बात है। तब घर खलु रही होगी।

एक दिन मध्याह्न के केवल कुछ समय परचात् ही एक भूमि-भूतरित प्रदवा रोही न गण महानगरी के एक विद्यालय प्रासाद की परिधि में प्रवेश किया और वाटिका पथ को पार कर मुख्य द्वार के सम्मुख था एक खड़ा हो गया।

इसी प्रासाद के छत्रों पर बैठी घर की इकती-सुहृदी भूप का मान्य सैती को आगत यौवनाथों ने उसे आते देखा पर जसो कोई धाया होया वह छोच दे फिर वाटिका-भ्यस्त हो गई।

भांगतुक प्रस्वारोही ने कुछ समय तो इतर उतर देखा, फिर जसो उसकी दृष्टि उतर उतर ही की ओर जमी गई। "जलो-कोई है। इस बात पर वह मन ही मन प्रसन्न हो उठा। परन्तु मुख पर जमी भूमि के आकरण में उसका वह प्रसन्नता का भाव केवल प्रसर तक ही रह गया बाहर प्रकट नहीं हो सका। उसका कंठ स्वर उस्तसित हो उठा। सम्मुख बैठी कुवतियों को देख वह बोला—“धुमे।”

किन्तु छत्रों पर बैठी जन श्रोनों ने कुछ ऐसा भाव दिखाया जैसे कुछ मुता ही नहीं।

घरबापोही ने इस पर पहले से कुछ अधिक उच्च स्वर में पुन पुकारा—“धुमे।”

उसका कंठ स्वर कुछ-कुछ क्लेश प्रतीत हो रहा था। परन्तु क्लेश में भी इस समय मृदुलता का पुट था। यह उसने निश्चित ही उन श्रोनों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। तो भी उन्होंने भांगतुक के सम्बोधन का कोई उत्तर न दे किन्तु मौन रखा। मास्तव में मौन भी नहीं रखा वे विचलितता नहीं। साथ ही उतर देखा और फिर मौन हो बैठ गई।

इस समय तक उनका वाता कम गग हो चुका था।

भांगतुक को कुछ भी तो समझ में नहीं आया पर वह इतना अवश्य समझ गया कि हो न हो कोई बात उठी को लेकर है। तथापि उस ओर विशेष ध्यान न दे वह पुन पूर्व से भी अधिक उच्च कंठ स्वर में बोला—“धुमे क्या महाराजी भेसियरल का आवास यही है?”

वे दोनों इस बार फिर हँसि बिना न रह सकीं और हँसते हुए दोनों एक साथ स्वर से स्वर मिलाती हुई बोलीं—“धम्यायत वह हम अवश्य बतार्नी परन्तु उसके पूर्व हमें यह तो बताओ, क्या हम एक है घबवा सो?”

घरबापोही उनके इस अपहास का आशय समझ अपनी ध्याकरण की भूम पर

मग ही मन ही बिना नहीं रहा। परन्तु साथ ही उसे स्वीकार करना उचित न समझ बोनों ही की धीर समान रूप से दृष्टि विस्फुरित करता हुआ बोला—“तुम्हें जब स्वर समान हो तो धनेक भी केवल एक बनकर रह जाते हैं। धीर फिर बहिर्गुमाक्य दृष्टि धामा में धाकर भी यमोचर धमका मोल बना रहे तो वह भी धनंत होकर केवल एक ही है। तो तुम्हें क्या धम बताएँगी कि महापीर पेरियम रत्न का धावास यही है?”

बोनों की संभ्रम दृष्टि प्राणतुक पर टिक गई। उसके प्ररग को सुन जनमें से एक लो कहने की उद्यत हो उठी—“हाँ धम्म्यागत यही है, धाघो। किन्तु इसी समय बूखटी का कळ स्वर सहसा ध्वनित हो कळ उठा—“धीर धम्म्यावत यदि यही धनंत मुलम हो केवल दृष्टिधाया में ही न धा वरन् सर्वथा सन्निकट भी धा पहुँचे तो?”

धरबारोही इस प्रस्न को सुन हतप्रम हो गया पर साथ ही संयत हो बोला उठा—“तुम्हें वह निस्संदेह धहोभाष्य है, स्वागत योग्य भी तो भी बहुत्वान्ध है क्योंकि यही तो मोह है। धीर तुम्हें माह भेद का धनक है, भेद प्रभेद संवर्ध क्य कारण है संवर्ध बूडा का बूणा मुड का धीर मुड विनास का। धीर फिर तुम्हें विनास क्य-कृकर का धुम-धधुम का समान क्य से संहार कर उठता है” कहते हुए उसने अपनी दृष्टि ऊपर उठा इस बार केवल उसी एक पर टिका दी। धुबली ने उत्तर कर प्रस्न किया—“धीर धम्म्यावत यदि विनास को साकार मान निधा प्राय तो? वह धामेक कही। फिर, स्वर्ध ही उत्तर बेटे हुए बोली—“भला उससे बडा समदृष्टि धीर कौन होया? धीर धम्म्यावत समदृष्टि ही स्तुरव है।”

इस पर धार्मंतुक मुबक प्रस्न पीठ पर बैठे न रह सका। धस्नधित हो वह उससे नीचे कूद हाथ की बल्गा को उसकी धीबा पर चेंक धपने बोनों धाधों को ऊपर उठते हुए बधुस्त कळ स्वर में बोला—“तुम्हें बन्ध है तुम्हें लचमुच बन्ध है वह ज्ञान तो मैं क्या बताऊँ, निरधम ही धाधार्ध बहुमान्ध की विधापीठ में भी नहीं पा सका।”

इस पर धुबली बधित रह गई। जैनों की विस्फुरित करते हुए पूछा—“तो क्या धम्म्यावत का इस समय उच्छसिता महाविधापीठ से ही पबधमा हुआ है?”

धार्मंतुक ने गत प्रस्तक हो कहा—“हाँ तुम्हें यहीं से धाना हुआ है। यहाँ से मैं बहुधनानिधिरुध विह के यहाँ धाया या धीर उगहोने धम तुम्हें यहाँ पाया बधुधरत की धेबा में उपस्थित होने का ध देण किया है।”

यह सुन बूखटी धुबली यहाँ धीर धधिक बीठी न रह सकी। मुख्य द्वार पर बन्धुधर विह के यहाँ से कौई धधिधि धाया है उसकी सूचना देने वह धोस्साइ धन्धर की धीर बीड़ सी।

जो गई वह धेष्ठी-धुभी नजरिका भी धीर जी यहीं बीठी रही वह उसी की एक समधधरका कली धाधस्थिता की धाने बाला धाधार्ध शिष्य धधधधर बा।

धीर धाधार्ध शिष्य धधधधर तभी से यही धाधवास में है। धानन्धधुभी धाधस्थिता भी पूर्व की धधिति यहाँ धाठी धाठी रहती है। परन्तु धाकर भी वह समध्ठी है धधे उधध धाया नहीं हुआ क्योंकि नेनकोरों से मग के ब्रह्म धाधों के साथ तह धिधे ध्यो नहीं धाठी है वह धधे बीक नहीं पाठा धीर यदि वह बीक भी गया तो फिर स्वर्ध धधके लिए यहाँ धिके रहना धधधधव ही पाठा है। फिर भी वह नग ही नग एक

निश्चय किए बिना नहीं रहती। उसने निश्चय किया हुआ है कि यदि आचार्य सिध्द मित्र तो उनके पूर्व—'क्यों महामन्त्र कोई बुद्धिछाया में घाकर भी क्यों सुप्त नहीं हो पाता? सुप्त होना तो दूर की बात साम्निध्य साम से भी वह बंधित रह जाता है।' परन्तु दूसरे साथ ही उसे ध्यान हो जाता—'देखो तो सभी मंत्रिका साम्निध्य प्राप्त करने के परचाट भी केवल जिन जमी जाती है। तो फिर क्या जीवन में बाह्य रूप और साम्निध्य निस्सार और बुद्धिछाया केवल भ्रम मान है।

उपर मंत्रिका सोचती—'सभी आरस्मिता भी कितनी महामान्य है। उसकी जीवन बानिका में सामन्त पुत्र क्या प्राया भागों स्वयं अनुप्राप्त जला प्राया है। उस दिन उनके दरबंदी वह सभी सामन्त पुत्र की प्रसंसा कर न जवाबती थी। तथा संतुष्ट प्रस्वारोही की घोर उसे देखने तक में प्राप्त स्व प्रवीत हुआ और यदि देखा भी तो परिहास कर बैठी। वह परिहास उन्माद ही हो या। और वह आस्त्रार्थ ?

आचार्य सिध्द मन ही मन अपने से पूछता—'महा वह चुन मुझी कौन थी जो बुद्धिछाया में घाकर भी जमी गई। प्रासाद में जब कभी भी वह जाता तो उसका मन भागों उसे देखने के लिए प्राप्त हो उठता। केवल देखने के लिए ही नहीं बल्कि इसी मन के पर बालों के लिए मन प्रान्दोलित हो उठता। परन्तु साहस कर मंत्रिका से कुछ पूछ न पाता। मंत्रिका के सेवा भाव से वह स्वयं को अनुप्राप्त हुआ अनुभव करता था। पर संकोच वह उस भाव को भी प्रकट न कर पाता। मंत्रिका इसे अपने प्रति आचार्य सिध्द का केवला उपेक्षा भाव ही समझती। अतः अन्तर में मन का अनुभव करते हुए भी वह प्रकट में केवल जिन रह जाती। आरम्भ में तो वह उसे आचार्य सिध्द का सहज-संकोच समझती रही पर कम तक अपने को ऐसे समझती रहती अपने आप से कहती—'महा ऐसी क्या है वह देवी सिध्दा ?

अतः भाव जब आचार्य सिध्द ने सीखाह उन्मत्त कण्ठ स्वर में उधरे देवी सिध्दा के नृत्य आयोजन की बात कही और फिर साव ही चलने को अनुप्राप्त किया तो वह उस पर अन्तर में प्रसन्न होकर भी प्रकट में 'हाँ' न कर सकी।

'क्यों न कर सकी री ?' आरस्मिता ने मंत्रिका से प्रश्न किया। बास्त्रम में इसी समय वह बर्हा या पहुँची की घोर मंत्रिका ने उसे सब कुछ बता दिया था।

मंत्रिका सोचने लगी—'महा इसका क्या उत्तर ? और जो उत्तर है उसे क्या आरस्मिता स्वयं नहीं जानती। जानती है फिर भी क्यों पूछ रही है ? अंततः अपने आरस्मिता के उत्तरीय के पल्ले का सहारा लिया। उसे अपने हाथ में ले और फिर उसी के साव नैनकीरों के दृगित से उसे खींचते हुए उसे कम से बाहर लिया गई। आरस्मिता भी भागों सहज भाव में खिंची जमी घाई। पर उसके अन्त में पूछे बिना नहीं रहा गया। किईसती हुई बोली—'जो कुछ कहना था वहीं क्यों नहीं कह दिया या री।'

मंत्रिका ने धीमे से उसके कान में बताया—'वह जमी नहीं जो है।

अब तो आरस्मिता को जैसे वह पूछने की भी चुन नहीं रही कि अब वह बर्हा से तो दिखाई क्यों नहीं दिए। मंत्रिका के हृदय से चम्पा छुड़ा केवल मापते ही बना। परन्तु मंत्रिका ने उससे भी अधिक उत्तरता से सफर उसके पल्ले को कम कर

बन्द लिया । कुछ संकोच कुछ हँसी धीर कुछ बीभत्स से बोली— 'ऐसे नहीं जाने दूँगी । "तो फिर कैसे जाने देनी ?" कहते हुए वास्तवता के धोर से अपना पल्ला खींचा । किन्तु वह संशयिका के हाथ में ही रह गया । साब ही उसकी कैद राशि मुझ पर प्रसंग बिखर उठी ।

यह देख संशयिका हँस पड़ी धीर उसी के साम धाचार्ज सिप्य भी ।

बहु कम नहीं आ चढ़ा हुआ दोनों में से किसी को भी इसका पता न बना । अतः उसकी हँसी से एक नारपी दोनों सहज ही गई । सहमी-सी चढ़ी रहीं । धाचार्ज सिप्य हँसता भी रहा धीर भेज कोरो से उन दोनों की ओर देखता भी रहा । संशयिका की ओर इस घास्य से कि कहीं वह देख तो नहीं रही धीर वास्तवता की ओर इस प्रयोजन से कि तनिक अपनी दृष्टि ऊपर तो उठायो खुश मुझे तुम से बहुत कुछ कहना है ।

किन्तु एक ही दृष्टि में सब हो-दो वार्ने माव-माव उभर आए तो बाबा का उपस्थित हा उठना स्वाभाविक है । अतः मन की बन्धा को तनिक केटी हुए वह बोला— "तुम्हें अब साम्प्रिय मुमन होने पर भी कोई मौन रहे तो वह नवा है ?"

संशयिका को लगा धाचार्ज सिप्य ने यह प्रश्न अवश्य ही उठे सक्य कर किया है । अतः वह सहज संकोच से अपने में सिमट गई । किन्तु संतरान उठने ही बेच से मुखरित हो उठा । अत्युक्त दृष्टि से अपने वास्तवता की ओर देखा धीर दुविधाप्रस्त वास्तवता को मालों अवलम्ब निज गया । स्पष्टिण मुझ बाधा पर पड़ी वयान्त कैद राशि को अर्धणिम हाथों से हटाते हुए वह बोली— "धाचार्ज सिप्य, वह यदि एक ओर घातकीयता के सहज विश्वास की परतकण्ठ है तो दूसरी ओर अतिकार की महत्वा कासा ।"

धाचार्ज सिप्य बोला— किन्तु मुझे महत्वाकांक्षा यदि एक पुनीत भाव है तो मन का विकार भी । वही बीरानी में देखो न एक महत्वाकांक्षा बंधुवर वेस्तिम एल की है धीर दूसरी सामन्त पुन अलंकरण की । परन्तु, दोनों की विचार विमल है ।"

प्रस्तुत बातों में अवाह मे अन्तर्भाव की सामन्त पुन अलंकरण के नाम का अन्वेष को उठने से वास्तवता कुछ विचलित-सी हुई परन्तु संवर ही संवर । संशयिका को भी कुछ दुविधा का अनुभव हुआ । अपने धाचार्ज सिप्य की धीर देखा किन्तु वह कुछ भी समझने में असमर्थ रहा । वास्तव में उसका संत धीर ध्यान ही नहीं गया । उत्तर के लिए केवल वास्तवता की ओर देखता रहा । वास्तवता संत कण्ठ स्वर में बोली— "धाचार्ज सिप्य अतः ठीक कहते हैं । महत्वाकांक्षा मन का पुनीत भाव भी है धीर मन का विकार भी । संशयिका से मैं केवल यही तो कहती रहती हूँ ।" वह कहते हुए अपने संशयिका धीर धाचार्ज सिप्य की ओर देखा ।

संशयिका इस दृष्टि के सम्मुख लड़ी न रह नाग पठी । वास्तवता उन्मुक्त धान के क्षिप्तता पड़ी । किन्तु धाचार्ज सिप्य के साथ एकाकी रह जाने पर अपने कण ही संकोच से अपने में सिमट रही ।

धाचार्ज सिप्य अब भी इतक ही हुआ संशयिका की ओर देख रहा था । फिर, अपनी दृष्टि सद्गता वास्तवता के सुख पर केन्द्रित कर बोला— 'बेबी, इस दिन मे

घापके विवेक पर चकित ही उठा था और घाम में इन रजाग के सम्मुख मन मस्तक हुआ है । बिचारों और भावनाओं पर यह तो घाप का समान अधिकार हुआ है ही ।”

औरवर्णा वाकस्मिता उत्तर में कुछ न कह सकी । हाँ उसके रक्तिम कपोलों पर प्रयाद मानिमा अक्षय्य फीम बरि संकोच की सहज मुस्कान थी । तत्पश्चात् मठ वृष्टि किए ही मुहुन कष्ट स्वर में उमने पूछा—“आचार्य शिष्य है ही विद्या सङ्ग्रह तो है न ?”

उसके मुख से यह प्रकल मुन आचार्य शिष्य न जाने क्यों अतिमूढ हो उठा । अस्तरे हुए मद्बद् कष्ट से बोला—“है ही । यह तो सचमुच है ही विद्या का सोदाय्य है और सामन्त पुत्री घाप निस्संदेह मज्ञान है ।”







यद्यपि देवी सिध्दा बँदानी के एक अत्यन्त विचार की सुख भूमिका बनी हुई थी फिर भी बँदालिकों ने उसे सब तक केवल एक बार देखा था वह भी मधुपर्न के उत्सवसमय जबसर पर, जबकि समूह परण मन के धोर-धोर पर स्वयं देवी प्राप्त पानी पूर्व रूप से छाई हुई थी। फिर देवी प्राप्तपानी ने उस दिन भी उसे बिना किसी पूर्व प्रस्तावना के ही मंच पर प्रस्तुत किया था। वृं सभी उसके मूल्य कोणन पर मुख हो उठे थे ता भी मंच के अतिमान कम में व्यस्त बहनों ने के किसी का भी उस धोर विषय ध्यान नहीं गया। किन्तु, मूल्य की समाप्ति पर जब देवी प्राप्तपानी ने उसके बाती कम्पा होने की घोषणा की तो इस रहस्योद्घाटन पर सभी अनिश्चित बन बहिन हो गये। अल्पक में सभी ने मंच की धोर देखा पर ठक ठक वह बहों से जा भी चुकी थी।

उसके पश्चात धाम ही यह हुमरा जबसर धारा था। अतः नागरिकों ने जब इस घोषणा को सुना तो वे सभी पूर्व कुण्डलों को धारने मानस पटन से बनेव कौशु हुमराज उसे देखने को सामायित हो गये धोर फिर केवल कुछ समय पश्चात ही जब अन्तिमात समाप्त बानी घोषणा भी सुनी फिर तो जो सचारीन बर्न था वह भी अस्मरित ही उठा। वृं महादेवी मणिलाल की प्रवीषी कुवापी रत्न कमल के धमूव गोमरुई की सर्वत्र बर्न थी पर किसी ने उसे कथानित ही देखा था। जब देवी प्राप्त पानी बहों की तो कुवापी रत्न कमल नित्य बहकी कला पीठिका में मुख बीजा की बाती थी। पर वह कम बँदि धोर किस मार्ग से निम्न बाती किसी को इसका पता तक भी न बमता धोर धम बहों बार्बनिक रत्न से सबसे सम्मुख मुख मंच पर अक्षरित हुनी यह सुन सभी के धामरुई का ठिकाना न रहा। बसुर्वबाहूक सामन्य बंरुवैव क इत बुद्धि कोणन की सभी मुक्त बन्ध से प्रसंसा कर गये। बाप ही सुरजा प्रकाश धामरुई सिध्दा के साहज को भी सराहने लगे। कारण विपक्षियों की धोर से होते धोर प्रतिरोध के पश्चात भी उठने देवी सिध्दा को इस प्रकार मंच पर प्रस्तुत करने का धार्नरव ब्रमास किया था।

इस-मूल्य के स्वरूप की कथनात से एक धार को समूची महात्मयी उत्साह के उच्छ्वास से स्फुरित हो गयी। किन्तु सब ही बँदालिकों के मन किसी धार्नका से भी सिद्ध, फिल हो गये। मार्गों उनके सम्मुख एक अस्पष्ट अन्धिय का प्रिथिव पतपटा बसा।

सुरजा प्रकाश धामरुई सिध्दा के र्थत्व की धोर पाठे हुए मार्ग में इस घोषणा

को घुना था।

उसे मुन वह स्तब्ध हो सटा। पर, दूबरे ही धण कर्तव्य भावना से अनुमोहित भी हो रहा थीर उसका धरम पूर्व से भी अधिक बेम से राजपय पर बीड़ मिया।

बैकते-बैकते ही गण महानगरी की मुरझा व्यवस्था मुदुङ्ग हो सठी थीर वीर वीर विद्या में बाते सभी मार्गों पर जन-सागर लहराने लवा। प्रावास-भूट नर-नारी सभी सभी थीर प्रस्थान कर उठे। कपस्वका भीम प्रान्त का नृत्य मंडप प्यार उस्मसित जन-सागर में एक द्वीप की मीति प्रतीत होने लवा। मृत्य मंडप के उल्लिखट पहुँचने की होङ्ग में सभी नागरिक एक दूबरे की बकेमते-घं(ते) जैसे प्रवाण कर उठे।

धीर, इस महारत जन-सागर में इस समय सुरक्षा प्रदान सबसे अधिक विधित थीर रहा था। किन्तु विधित हाकर भी वह सबसे अधिक यथिमान था। धारी सुभ-भुभ धीर वह व्यवस्था व्यस्त था। वह धरि धमी यहाँ बीकता तो धवसे ही धण दूबरे धोर पर पहुँच रहा। हंगित से धपने धधीनस्व धीनिकों की सावधान कटा धधवा धादेध देता धीर धिर उत्तरधा से धागे बङ्ग लेता। जन-समुदाय के इस प्रवाह धापर में कौन धा बुका है धीर कौन धा रहा है जना यह ध्यान देने को उसे इस समय कहां धधरर था। धी कबी-कमी स्वाभाविक रीति से धनायास ही उधकी उठी दृष्टि जन समुदाय के धाकार प्रकार पर धधधय धैम रहती। उध धेष्ठी धुरी मंडरिधा को लमवा हो न हो धाधार्थ धिधय ने उसे धधधय ही बैक मिया है। धत वह धन ही धन संकोध का धनुमन कर धपने में धिमट-ठी बाठी। सामन्त धुरी धाधस्मिता इस पर उधका हाव धीध धधर ने धाने का प्रवास करती धिधर कि इस धार धाधार्थ धिधय धधरर हीया। मंडरिधा उसे यथाधस्ति धिधरीव धिधा में धीधती। धीधठाती का यह कम धर्वाध समय तक ललता रहा किन्तु तो भी यथाधस्ति ही धनी रही। धारन धुर्या प्रधान को धनके धाने का कुछ पठा नहीं था, धीर धन धोगों को उधके धिकट धाने से भी अधिक इस धीधठाती में ही धानन्ध धा रहा था। सहसा धानन्धो ललवा धी उठी एक धरंभ में मंडरिधा ने धपना मुठ धाधस्मिता के धानों के धरयन्ध धमीय ने का धुमधुवाते हुए कहा— सखी धध धैने जाना कि तूने धाम मुझे धधों धाङ्कत किया है।”

मंडरिधा के धधिया धुनधुवाते धवाध ने धध धाधस्मिता के धानों का धधर्ष धिया धी उसे धुरधुरी धी हा सठी। उधके धानों का रंग प्रवाङ्ग हो धठा धीर धाध धुरधध नवा। धुरधुरी के धाय धधने धिधित मंडरिधा की धीर बैकता धीर धिर धधर्षत धीमे धधर में धीली—“धधों री तू ने धया धाना धीर धैने तुझे धैसे धरकृत किया ?

‘वही कि तू धैरे धाध को धाई। जलत कहीं धामन्ध धुन का धाय धीर कहीं इस मंडरिधा का।’

धाधस्मिता की दृष्टि इस समय कहीं दूधरी धीर व्यस्त हो उठी थी। उधर बैकते हुए ही उधयन कध धधर में धीली—“धधों धया धिधी धलध-उधयन सखी के धाय धैना कध कध धामन्ध की धात है।”

यह वह उधके धुन पर धधधता की सहज मुस्कान धीध धई। उधकी धीर धैधरी धई यह धुन धीली—“धधों मंडरिधा धैने इसमें कुछ धनुधित तो नहीं कहा ?”

अमेरिका ने उसकी घोर दिकते हुए कहा—“मला मेरी मन्नी कमी कोई समुचित बाप क्यों कहते लगी परन्तु सामान्य पुत्र भी तो यहाँ नहीं बीक रहे।

बाहस्मिता कछ बीक-सी गई। बोली— लयी ! वह बाबकन यहाँ है ही कहीं लो पड़े।”

अमेरिका हँस पड़ी। फिर हँसने को रोकने का प्रयास करती हुई बोली— “तभी तो मैं बेय रही हूँ कि सामान्य पुत्रो कछ कोई-कोई सी है। कहीं पए है टो मला वह ? या बिना बताए ही पिय परदेन पए ।”

बाहस्मिता हँस पड़ी। बोली—“अच्छा येवटी पुरी घान लो तम्हे भी कविता मुझ पारि है।”

अमेरिका अपने अंतर के न जाने किस भाव बय इन समय अपनी इन विद्वत लम सखी के सम्मुख भी मला गई। किन्तु अपने अण ही बिहँस बोली—“मुझ दर दर न मुना यह बता यहाँ पया है तेरा वह ?”

अभ्यमनस्य बाहस्मिता के मुख ने बनाए निकल बया—“लकी यह राजपूह पए हुए है।”

अमेरिका यह सुन जैसे कुछ बीक-सी गई। परन्तु प्रकट में सर्वथा संवत ए बोली—“बंघाली का यह घानम्य छोड़कर वह सामान्यपुत्र राजपूह पया है। और वह कहते हुए अमेरिका के नेत्र आश्चर्य से विस्फारित हो उठे। तनिक रुक फिर बोली— ‘अचमुच लह टो आश्चर्य है। या फिर यहाँ कोई राजपुत्री । लकी नू लो अच-मुच बड़ी भीली है। जानती नहीं किन्ती राजपुत्री के इन्द्रजाम में एक बार कोई उठा नहीं कि फिर उसका बय निकलना एकदम ही धनमन्य है।”

अमेरिका ने यह बात कैबल विनोद में कही थी फिर भी वह जैसे बाहस्मिता के किन्ही मर्मस्पर्श का स्पष्ट कर उठी। एक बारगी यह सिहर सी गई। किन्तु सीध ही आत्मविश्वास के से कुछ स्वर में सगर्व बोली— लकी यह तेरा भय है वह लो अपने किन्ही निजी काम से यहाँ पए है अक्षरमाए कोई महत्त्वपूर्ण काम को निकल आया था।”

“ऐसा क्या महत्त्वपूर्ण कार्य था मला ? क्यों मन्नी तुम्हें यह क्या यह सब कुछ नहीं बताते ?”

इन पर बाहस्मिता ने जैसे कुछ रिक्तता का सा अनुभव किया। वह बंजी हो उठी। बोली— ‘अमेरिका अब तक लो नहीं बताते थे। परन्तु ही, अब कुछ ऐन अनुभव कर रही हूँ कि भविष्य में उन्हें बताकर ही जाना होगा।”

अमेरिका ने उत्तरता से प्रारंभ किया— किन्तु लकी क्या हमें पुरय से यह लो जानने का अधिकार है ?

बाहस्मिता ने उत्तर से पून अमेरिका की घोर देखा। फिर बोली— ‘अबो लकी अधिकार लो जानने से बनता है अन्वया—”

अभी वह कुछ घोर वह ही रही थी कि इन्ही बीच अमेरिका की घोर से पूर्वनिगत हो अल घोर अपनी प्यनि जानी में पड़ते ही अण-अमुदाय के मध्य से उठता नोना अण साम्य हो गया। लकी के नेत्र आश्चर्य से अमेरिका की घोर देख उठे। अण-मुपपला

बाग ही बरतों को संभाल लवें हो गए ।

बाबस्मिता ने मंत्रिका के हृदय को क्षिप्रत बहाया घोर फिर उसे निम्नोड़ते हुए मेनकारों के इगित से उसे कुछ विज्ञाने का प्रवास किया । आचार्य विष्य इस समय सार्धे मुह-मुह बोये मंडप की घोर साय रहा बा । मंत्रिका अभी उस घोर बैब ही रही की कि इसी मध्य बन-समुदाय मारी हृदय ध्वनि कर उठा । इस पर उसकी दृष्टि हृदयत् मंत्र की घोर भ्रम गई । घोर फिर, वहाँ उठने को दुःख बेबा उससे वह मन ही मन किसी अनिष्ट की प्रासका स सहम सी गई । बाबस्मिता ने उसके कंधे पर हाथ रख उसे बबोनेते हुए कहा— 'सभी मयनीत न हो सब कुछ ठीक हो जाएगा ।'

किन्तु मंत्रिका धास्वस्त न हो सकी । विद्युत् कच्छ स्वर में बोली— 'बाब-स्मिता ! प्रादुर्भवे तो मुझे इस बात का है कि गणाध्यक्ष राजा नेटक घोर बन्धुनर सिंह प्रपचा श्रेणियरल कोई भी तो इस समय यहाँ उपस्थित नहीं । आचार्य विष्य को प्रकने ही "

बाबस्मिता उररता से बोली— 'तो जन्ते क्या आचार्य विष्य केवल जन्ती के बन पर तो सुरक्षा प्रदान नहीं बना उसकी धपनी भी योग्यता है ।'

इस पर मंत्रिका का कच्छ स्वर सहसा तिष्ठ हो गया । बोली— 'सामन्त-पुत्री बना अर्थ के लिए तुम्हें केवल यही सबसर रह गया बा ।

वह कहने को यह कह गई, पर उस पर स्वयं ही चौंक भी उठी । बाबस्मिता ने उत्तर में केवल नेत्र ठरेरते हुए उसकी धार बेबा । तब मंत्रिका दीनता से बोली— 'सभी मना मैं भी क्या कह गई । अरे, कहीं मैं विक्षिप्त तो नहीं हो उठी हूँ ।'

बाबस्मिता इस पर हँसि बिना न रही । हँसी को रोक बोली— 'भेय्डी-पुत्री सचमुच वह अर्थ ही का घोर वृ विक्षिप्त भी हा गई है ।'

मंत्रिका उसे कुछ भी न समझ सकी । कुछ बोली भी नहीं । कबल प्रासका से मंत्र की धार बेबती रही ।

सुरक्षा प्रदान के मंत्र पर पहुँचते ही तुरंत निनाद बन्द हो गया घोर बनसमुदाय उसे बेब पूर्व से भी अधिक बेय के साथ करतल ध्वनि कर उठा ।

करतल ध्वनि का यह मतिभ्रम जब पर्याप्त समय तक चमता रहा तो संतत बबोदूह मणुसंवाहक सामन्त मंत्रबंद ने सुरक्षा प्रदान की घोर देखा । फिर उसी की घोर बेबते हुए वह कुछ मुस्कराए भी । इस पर सुरक्षा प्रदान ने मत मस्तरक हो मीन ध्ये से उनका समिवाहन किया घोर फिर बन समुदाय के सम्मुख दृष्टि कर धपनी बोनी बाहुओं को ऊपर उठाया । घोर उसी के साथ करतल ध्वनि का क्रम सहसा बन्द हो गया ।

जब सागर के घान्त हँसे ही सुरक्षा प्रदान की उठे बाहुर्ध्व भी नीचे गिर गई । फिर दूर विद्यत को प्रदर्शित करता मंगल मुबक बस बज उठा घोर उसी के साथ-साथ बहिपारों की भ्रकारपूर्व ध्वनि से वह साध मीनण धनुपागित हो गया ।

जब यह सब कुछ भी समाप्त हो गया तो इस बार बबोदूह मणुसंवाहक ने बन समुदाय की घोर धपनी दृष्टि कैशित कर ऊर्ध्व बाहु ह्वे अपने स्वामाधिक मंत्रौर उच्च स्वर में कहा— 'बैजान्ती के अत्र जनो ! प्रायुष्मानो ! प्रायुष्मिदी ! सभी की

मंत्रिका ने उसकी धोर बंधते हुए कहा—“अब मेरी सभी कभी कोई अनुचित बात क्यों कहने लगी परन्तु सामन्त पुत्र भी तो यहाँ नहीं बीच रहे ।

बावस्मिता कुछ सीन्ध-सी गई । बोली— सच्ची ! वह धावकन यहाँ है ही कहाँ जो घाते ।”

मंत्रिका हँस पड़ी । फिर हँसी को रोकने का प्रयास करती हुई बोली— ‘तभी तो मैं देख रही हूँ कि सामन्त पुत्रो कछ कोई-कोई ही है ; कहाँ गए हैं वे यहाँ वह ? या बिना बताए ही पित्र परवेश गए ।”

बावस्मिता हँस पड़ी । बोली—“अच्छा श्रेष्ठी पुत्री जान तो उन्हें भी कविता सुक पाई है ।”

मंत्रिका अपने घंटर के न जाने किस भाव बस इस समय अपनी इन निकट तम सच्ची के सम्मुख भी लजा गई । किन्तु अबसे धरा ही विह्वल बोली—“तुम्हें इतर धर न बुझा यह बता कहाँ गया है तेरा वह ?”

अप्यमनस्क बावस्मिता के मुख ने बचाव निकल गया— सच्ची वह पत्राई गए हुए हैं ।’

मंत्रिका यह सुन जैसे कुछ चौंक-सी गई । परन्तु प्रकट में लज्जा बंधत रहे बोली—“बँधाली का यह धामन्त छोड़कर वह सामन्तपुत्र राजपुत्र गया है ।” धोर वह कहते हुए मंत्रिका के नेत्र धारण्य से विस्फारित हो उठे । तन्निष्ठ वह फिर बोली— “सचमुच यह तो धारण्य है । या फिर वहाँ कोई राजपुत्री । सच्ची पू तो कल्प-भुव बड़ी भोली है । जानती नहीं किसी राजपुत्री के इन्द्रजाल में एक बार कोई उठा नहीं कि फिर उसका बच निकलना एकदम ही असम्भव है ।”

मंत्रिका ने यह बात केवल विनोद में कही थी फिर भी वह जैसे बावस्मिता के किसी मर्मस्वल्प का स्पष्ट कर उठी । एक बारभी वह सिहर सी गई । किन्तु बीम ही धारण्यविश्राम के से बृह स्वर में सगर्भ बोली— सच्ची यह तेष प्रम है, वह तो अपने किसी निजी काम से यहाँ गए हैं अकस्मात् कोई महत्त्वपूर्ण काम जो निकल आया था ।”

‘ऐसा क्या महत्त्वपूर्ण कार्य था वना ? क्यों सच्ची तुम्हें वह क्या यह सब कुछ नहीं बताते ?”

इन पर बावस्मिता ने जैसे कुछ रिक्तता का सा अनुभव किया । वह बीरर हो उठी । बोली—“मंत्रिका अब तक तो नहीं बताते थे । परन्तु ही अब कुछ देना अनुभव कर रही हूँ कि धारण्य से उन्हें बताकर ही जाना होगा ।”

मंत्रिका ने उत्तरता से प्रश्न किया—“किन्तु सच्ची क्या हमें पुरव से वह सब जानने का धारण्य है ?”

बावस्मिता ने उत्तर से पूव मंत्रिका की धोर देखा । फिर बोली— ‘अबोध सच्ची धारण्यकार तो जानने में बनता है धारण्य—”

धमी यह कुछ धोर वह ही रही थी कि इनी बीच मंडप की धोर से पूर्व दिशा में ही उठा धोर उन्की धरि कानो में पकते ही जन-समुदाय के मध्य से उठता कोला-का मन्त्र तो गया । मन्त्रो के मंत्र उन्की धोर से उठे । मन्त्र-मन्त्र साक-

भाग ही धरनों को समाप्त करे हो गए ।

शास्त्रिता ने मंत्रिका के हाथ को क्षिप्त बनाया और फिर उसे किन्धोरते हुए शेषकारों के इंगित से उसे कुछ दिखाने का प्रयास किया । आचार्य सिष्य इन समय छोटी भुज-भुज बोले मंत्र की धोर भाग रहा था । मंत्रिका अभी उस धोर देख ही रही थी कि इसी मन्त्र जन-समुदाय मारी हर्ष ज्वलि कर उठा । इस पर उसकी दृष्टि हठात् मंत्र की धोर भूम गई । धोर फिर, वही उसने जो दूर्य देखा उससे वह मन ही मन किसी अलिप्त की प्राप्त का है सह्य सी गई । शास्त्रिता ने उसके कंधे पर हाथ रख उसे बबो-बते हुए कहा— 'सकी भयभीत न हो सब कुछ ठीक हो जाएगा ।'

किन्तु मंत्रिका पावसत न हो सकी । विषुम्ब कष्ट स्वर में बोली— 'शास्त्रिता ! आर्यर्ष तो मुझे इन बात का है कि बलात्कृत राजा नेटक और बन्धुवर सिंह अथवा अलिप्तल कोई भी तो इस समय यहाँ उपस्थित नहीं । पापाय सिष्य को भक्त है ।'

शास्त्रिता उत्तरता से बोली— 'तो उमसे क्या पापाय सिष्य कप्त उन्हीं के मन पर तो सुरक्षा प्रदान नहीं बना उसकी अपनी भी योग्यता है ।'

इस पर मंत्रिका का कप्त स्वर सहसा तिक्त हो गया । बोली— 'सामन्त-पुत्री क्या ध्वं के लिए तुम्हें केवल यही अवसर रह गया था ।

वह कहते को यह वह गई, पर उस पर स्वयं ही शोक भी उठी । शास्त्रिता ने उत्तर में केवल नेत्र ठरेते हुए उसकी धोर देखा । तब मंत्रिका धीनता से बोली— 'सकी जना मैं भी क्या कह गई । धरे, कहीं मैं विभिन्न तो नहीं हूँ उन्नी हूँ ।'

शास्त्रिता इस पर हँसे बिना न रही । हँसी को रोक बोली— 'वेटी-पुत्री सचमुच वह ध्वं ही था धोर तू विभिन्न भी हो गई है ।'

मंत्रिका बसि कुछ भी न समझ सकी । कुछ बोली भी नहीं । केवल पापका से मंत्र की धोर देखती रही ।

सुरक्षा प्रदान के मंत्र पर पहुँचते ही तुर्य निगाह बन्द हो गया और जनसमुदाय उसे दक्ष पूर्व से भी अधिक नेत्र के साथ करतम ज्वलि कर उठा ।

करतम ज्वलि का यह अतिक्रम जब पर्याप्त समय तक चलता रहा तो अंततः बबो-बुद्ध अतुल्यबाह्य सामन्त मंत्रदेव ने सुरक्षा प्रदान की धोर देखा । फिर उसी की धोर देखते हुए वह कुछ मुस्कराए भी । इस पर सुरक्षा प्रदान ने गत मस्त्रक हो मौन भाव से उनका अलिप्तल किया और फिर जन समुदाय के समुक्त दृष्टि कर अपनी दोनों बाहुओं को ऊपर उठाया और उसी के साथ करतम ज्वलि का क्रम सहसा बन्द हो गया ।

जग साबर के घात होते ही सुरक्षा प्रदान की उन्नी बाहुर् (मी नीचे गिर गई । फिर दूर स्थित की प्रवर्तन करता समय सूचक ध्वज बज उठा और उसी के साथ-साथ अलिप्तल की अकारण्य ज्वलि ने वह साथ प्रीकण्य अनुशामित हो गया ।

जब यह सब कुछ भी समाप्त हो गया तो 'यु' बार बबो-बुद्ध अतुल्यबाह्य ने जन समुदाय की धोर अपनी दृष्टि क्षिप्त कर ऊर्ध्व बाहु हो धरने स्वामाधिक मंत्रीर उच्च स्वर में कहा— 'बीतापी के भद्र बना ! धामुप्यना ! धामुप्यतिपी ! मंत्री की

विदिन है कि यथा महात्मनः की अपनी कृष्ण पुत्रीत परम्पराएँ हैं और अनुशासन का पाठन प्रत्येक नागरिक का मुख्य दायित्व है। यद्यपि सामुदायिक एवं सामुदायिकों में प्रायः सम्मुख मत मतक ही एक साधारण नागरिक के कायें ही कुछ निवेदन करना चाहता है। मुरदा पत्र पर मैंने सामुदायिक की नियुक्ति का किन्हीं विविध कारणों से विरोध किया है। तथापि कम पत्र के प्रति सर्वथा सम्मान भाव दिखाते हुए, तथा वह इस पत्र पर प्रकाश है इस उम्भ को केवल उम्भ भाव मानते हुए और सभी विरोधों को वर्तमान में स्वीकृत करते हुए, उन्हें धार के इस धायोजन का अभिप्राय स्वीकार कर, इन्हें-मृत्यु के लिए अपनी धनियुक्तमिन् महाबेटी मखिरल की प्रौढी सामुदायिक सुख की पुत्री सामुदायिकी रत्न कमल को उनके समस्त प्रस्तुत करता हूँ।

गणसंवाहक की इस चौपट्टा को सुन प्रांगण में उपस्थित समूचे जन समुदाय में हर्ष की लहर दौड़ गई। उसाह धार्य में जारी करतल ध्वनि करता जन समुदाय यहि कभी गणसंवाहक का नाम से उनका बच-बचकार कर उठता तो कभी सुरक्षा प्रदान का और फिर जब कुमारी रत्न कमल का उतने जयजयकार करना प्रारम्भ किया ता वह पर्याप्त समय तक धराधर पति से चलता रहा।

किन्तु इस सारी धराधर में अमेरिका भय से काँपती रही। उसे हुआ, कृष्ण सामन्त की यह दिनभरा धराधर सहज स्वीकृति नहीं है बल्कि किसी भीपण प्रहार की भूमिका भाव है। मन ही मन वह यथेष्ट मणिमन्त्र के सम्मुख कर-बद्ध हो बोली—“हे महाप्रभु! तूने धार तक न जाने कितनों की रक्षा की है। धारार्थ सिध्द को भी तूने ही यहाँ सकु शान पहुँचाया है। तो क्या फिर वह धार तेरे धार्य के सम्मुख ही।” उमका कण्ठ भर धारा। किन्तु वह फिर भी आगे बोलती रही—“हे महाप्रभु! यहि धार मेरे मे धारार्थ सिध्द सर्वथा सुरक्षित प्रस्ताव भोट जाएँ ता मे तुम्हें अपने कृष्ण नभिन कोप से पूरे का महत्त्व स्वर्ण कार्यालय धरित करनी।”

उत्तर करतल ध्वनि का कम धराधर होते ही गणसंवाहक ने पुनः ऊर्ध्वबाहु हो कृष्ण कहना प्रारम्भ किया। वह बोले—“सुरक्षा प्रदान धारार्थ सिध्द सामुदायिकी रत्नकमल का धरिभाषक मैं हूँ। धरिभाषक कर मैं मे उने प्रायः सम्मुख प्रस्तुत कर रहा हूँ। यद्यपि धार से उतकी रक्षा का भार मुझ पर नहीं बल्कि धार पर होगा। सामुदायिक को वह स्वीकार है?”

धारार्थ सिध्द ने मत्त धरतक हा कहा—“धार्य की धारा धरिधार्य है।”

इस पर वह विस्मृत प्रांगण पुनः भारी करतल ध्वनि से अनुधागित हो उठे। जब वह पति प्रवाह साधत हुआ तो मन संवाहक पुनः ऊर्ध्वबाहु हा उच्च स्वर में बोले— सामुदायिक धारार्थ यह इन्हें-मृत्यु कितने महत्त्व का है वह किन्हीं से छिपा नहीं। सभी धार प्रतिधारों को धार में रत्न में वह मिनाम धारधरक ममप्रता हूँ कि धार की इन धमनतुर्ब नृत्य धरिभोगिता का निगमिक कोई निवृत्त कला विद्यारथ हो। यद्यपि इतत सम्माननीय पत्र के लिए मैं धार्य किन्तु धरिधरक धाराधर पुत्र्याध धारार्थ की धरिधरित धारों का नाम प्रस्तावित करता हूँ।”

धारार्थ सिध्द न करतल ध्वनि के मध्य पुनः नम धरतक हो कहा—“धार्य का यह प्रस्ताव मैंने प्रीतिकर है।”

“केवल प्रीतिकर ही नहीं बल्कि उनका निर्गम भी माग्य होना यह कहो प्राप्पु प्मान् ।” बरुसंबाहक ने तनिक बृद्ध स्वर में कहा ।

बरुसंबाहक का यह आदेशात्मक कथन आचार्य सिष्य को अरुचिकर प्रतीत हुआ । तो भी प्रकट में आदेश का कोई भाव न दिखा वह पूर्वजन्म मन्त्र भाव से बृद्ध सामन्त की घोर देखते हुए बोला— अज्ञातस्व ! इस निर्णीत सेवक को पूज्यपाद आचार्यकी बहुलास का एक सुच्छ सिष्य होने का परम लीलाग्य प्राप्त हुआ है । अतएव नियम क्या है और नियम के सम्मुख व्यक्ति का क्या स्वल्प्य है वह इसे भवि भवि भागता है । फिर बैद्यनाथी में तो नियम का ही आसन है । आर्य इस आयोगन के अविच्छाता की प्राप क्या आदेश नहीं कर रहे हैं ?

बयोबुद्ध बरुसंबाहक को यह आचार्य सिष्य की बुद्धता प्रतीत हुई । परन्तु साथ ही उसके आह्व को देख वह अचिंत भी हो उठ । उसकी भाषाति को सर्वथा उचित समझ, बोले— मायुष्मान समा करें । वास्तव में यह बुद्ध सामन्त इस कला संरूप को भी नख संस्वापार समझने की भूल कर बैठा था ।”

इसी मन्त्र बन समुदाय के बलिष्ठ छोर पर हुए एक कोलाहल ने सभी का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया । महाशेष्ठी प्रणीवी एत कमल की शिबिका की ओर जाते हुए सुरक्षा प्रदान आचार्यसिष्य ने भी जब उस ओर देखा तो उसके मुख पर एक अह्वन मुत्कान फैल गई । ऐसी शिष्यों का आह्वन प्राया देख बरुसंबाहक भी तुरंत निवार कर उठ । जब निवार को चुन कोलाहल आन्त नहीं हुआ बरन वह पुन उच्च जय घोषों के भाटी कोलाहल में परिणत हो गया ।

जय घोषों के मध्य देवी शिष्या आन्त आह्वन से भीषे उठरी । उसे देख मह पता बनसामर यथा स्थान लड़ा न यह उका उखाह के आशेष में अस्तुक श्रुति से उठी घोर आग लिया । अत आचार्य सिष्य ने कमाटी एतकमल की शिबिका के अग्रस्थ समीप पहुँच उस पर गई कौपेय वस्त्र को उतार उठाया और फिर नतमस्तक हो बोला—“मायुष्मती कला का ज्ञान बुलभ है । अत कलाकार होना अत्रमुच परम लीलाग्य की बात है । और भी अपने इस लीलाग्य पर संकोच का अनुभव कर, भला बनते बड़ा महाभाग कौन है ।” कहते हुए अने शिबिका की ओर अपना हाथ बढ़ाया । फिर बोला—“अब यह इस आयोगन के अविच्छाता ज्य में मैं आपका स्वागत करता हूँ । मृत्यु देवी प्राप संघ पर पधारें यह अनन्यमुदाय न जाने कब से आपकी प्रतीक्षा में आतुर है ।”

इस पर महाशेष्ठी प्रणीवी ने नेत्रकारों से आचार्य सिष्य की ओर देखते हुए उसके हाथ का अवलम्ब ले लिया । फिर लकोच से दबी स्वर में बोली—“आर्य की आज्ञा शिरोधार्य है । आर्य आज कछ मन्त्र के निग मेरे भी अविभायक बने हैं इसे मैं आना परम लीलाग्य मानती हूँ ।”

वह शिबिका से उतर आचार्य सिष्य के हाथ का अवलम्ब लिए निग ही संकोच बाधित भीनी पति से संघ की ओर बढ़ ली । इनी मध्य देवी शिष्या भी बड़ा पहुँच चुकी थी । दोनों की उपस्थिति में न केवल मृत्यु संघ बरन् नारा प्रान्कल अनुष्ठाणित ही आह्व से अकृष्टि से उठा ।

ये दोनों ही देवी आननामी की प्रमुख शिष्या थीं अज्ञातस्व दोनों में बस



प्रतिस्पर्धा का उत्साह होते हुए भी उनके हृदय में एक दूसरे के प्रति स्नेह एवं समानता का भाव विद्यमान था। मौन रहे-रहे ही उन्होंने नेत्रकारों से एक दूसरे की घोर देखा घोर इन्धित ही इन्धित में धमिवाचन का धारण प्रदान भी किया। समुक्त लहरते बन समूह को देख बोलो ही के अन्तर में उत्साह का संभार हो उठा और प्रस्तुत ईश का स्मरण कर उनके मुख कमल पर जो धारण विश्वास का भाव परिलक्षित हुआ उसे देख धर्म से यह कहना असम्भव था कि धाम की विजयधी का योग उनमें से किसीको मिल सकेगा।

सहसा बाह्य शून्य शून्य हो उठा। सुरक्षा प्रदान के अनुवाय पर आचार्य धर्म रक्षित धर्म भी इस समय तक निर्णायक का धारण कहना कर चुके थे। बोलों। करवट हो मस्तक नत कर पहले तो उनका धमिवाचन किया और फिर प्रीक्षण में सह उठे बन समुवाय को।

धीरे, बन समुवाय बोना ही के प्रति स्वागत भाव विज्ञा उनका समान रूप से भाव-बदकार कर उठा।

बीबाती के तार अंकार उठे। उसकी अंकारों को सुन बैसा का भी कोपल कस्त स्वर फूट निकला। बांसुरी भी किसी के अन्तर के स्पर्श से रोमांचित हो मूक उठी फिर बन सभी का स्वर एक दूसरे के सहयोग में अंतरता स्वर संवाप्या, सर्वत्र भूवत् भ्रमसर हो सिवा भ्रमसर होता रहा कि मृग पर सहसा पड़ी एक बाप से विरक्त मंत्र पर सभी एक ठेक से ठिठक वह यथास्थान खड़ा ही गया। धीरे जब पश्चात्त से अन्धित क्रिस्त भी शान्त हो गए तो बेबी सिध्या ने अपनी बाईं पार लड़ी कुमारी रत्न कमल की घोर नमस्कार से देखा जैसे कोई प्रस्ताव किया। रत्न कमल ने भी उसी प्रकार अपने नेत्र कोर से उसके प्रस्ताव का मार्ग अनुमोदन कर दिया और फिर आचार्य सिध्या की घोर वृष्टिपल किया। आचार्य सिध्या भी उसके इन्धित का माधव समस्त उसके समीप आ खड़ा हुआ। बेबी सिध्या ने अपनी वृष्टि शून्य में ही स्थिर रख कुछ कहा और फिर आचार्य सिध्या अर्ध बाहु हो बोल उठा—“मह जनो! बेबी-सिध्या कहती हैं हम एक ही पीठिका की सहपाठिनी हैं और हम दोनों को एक ही धर्मि प्याभी की सिध्या होने का समान सौभाग्य प्राप्त हुआ है। परंतु इस प्रकार सार्वजनिक रूप से हम एक दूसरे के निकट प्रतिद्वन्धी रूप में प्रस्तुत हों यह कला पीठिका की प्रतिष्ठा के सर्वथा प्रतिद्वन्धी है।”

मह सुन मरुसंवाहक स्वयं रह गए। आवेक्षपूर्व वृष्टि से उन्होंने समीप ही महाभेटी की घोर देखा।

बन समुवाय भी निराशा की क्षिणता से मंत्र की घोर देखा उठा।

आचार्य सिध्या केवल तटस्थ भाव से इस सारे पृथ को देखता रहा। वह धर्म की यथापूर्व अर्धबाहु रह खड़ा हुआ था। विवित मीन के पश्चात्त वह पुन बोला—“सौम्य जनो! ती भी।

सभी अपनी सार सार उल्लुपता से अपनी घोर देखने लगे। गणसंवाहक की पार तनिक देखा वह धार्य बोला—“बेबी सिध्या इस प्रसंग में कुछ कहा चाहती हैं। वे कहती हैं कि एक दिन कला पीठिका में बड़ी ही विविध बात हुई। सभी बेबी

बैतानी की वरक पुत्री

शिष्याओं ने मिल बट सकस्याए एक निषय किया। उन्होंने निषय किया कि घाब संघा ही देवो धिष्यात्री की उपासना की जाए। यह अणराहू की वाग है और वरकर की शत्रु तो थी ही। बाटिका में प्राण जो बोड़े बहुत पुण्य किते के उन्हें शिष्याओं ने श्रु पार की उमंग में पहल ही तोड़ अपने-अपने जूबो में गूथ लिया था। घाब उपासना के लिए बाटिका में अब एक भी पुण्य नहीं रह गया था। तो फिर बिना पुण्य देवी धिष्यात्री की उपासना किस प्रकार हो ? तो सौम्यजनों इस प्रकार सभी देवी शिष्याओं का उमंगता उत्साह समस्या की सहनता में डबक गया।

“तब दो देवो शिष्याओं ने सहसा एक प्रस्ताव किया। वे बोलीं—“बसो हम उपासना की नैस। एक कही से पुण्य ले घाती है, और फिर के कुछ निषय कर नहीं है प्रस्ताव कर उठीं। वह उनका अनुपम पुण्य धर्मिदान था। किन्तु खेद है कि उनमें से केवल एक ही सपुत्रा लोट पाई। तो सौम्य जना घाब के देवी शिष्याएँ घायक सम्मुख माना बसो पुण्य धर्मिदान मृत्यु प्रस्तुत करती है।

वह सुन मणुसंवाहक का मुख खिल गया और जन समुदाय उत्साह से हर्ष पति कर उठा। बाब बुध भी अंधारता हुआ प्रारम्भ हो गया।

बोलीं देवो शिष्याएँ अब अपनी सभीक सब भीमतायो द्वारा सब सभी शिष्याओं से कह रही है—“अरी दो मुनयायो घाब तो हमने देवी धिष्यात्री की उपासना का निषय किया था और तुमने पहले ही से सभी पुण्य बून कर अपने इन जूबो में मूथ लिए। बाटिका में एक भी पुण्य नहीं छोड़ा। अब बलायो मसा उपासना के समय देवी धिष्यात्री के क्रोधल बरालों पर क्या धरित करोगी।” वह सुन सभी शिष्याएँ विचिंतित हो उठती हैं। मंच पर कवल दो ही शिष्याएँ हैं परन्तु बसंकरजना को प्रतीत हुआ बहाँ अनेक शिष्याएँ हैं और उन्हें सभी के चिंतित मुख बीच रहे हैं। तब वे दोनों शिष्याएँ कहती हैं—“बसो कोई बात नहीं हम कही का पुण्य ले घाती है।”

इस पर सब सभी शिष्याओं के मुख कवल की नाति धिम उठते हैं और वे संनल कामना प्रकट करती हुई अपनी दोनों सबियों को बिदा करती हैं।

पुण्य धर्मिदान के लिए बसो इन देवी शिष्याओं को बसंकरजन भी अय-अय कार करता हुआ उनकी प्रोत्साहित कर उठा। किन्तु वे सभी बसो ही भी कि उनके पाँच मार्ग पर पड़े काँटों से बिज सए। जन समुदाय भी पीड़ा से ही कर उठा। किन्तु वे कानों मोन रहे ही अपनी मुख मुद्रायों के प्रीति से परस्पर मन्मापण करती हैं। एक कहती है—“धिय सबी धर्मिदान में यदि ये बाबाएँ न पाईं तो फिर उसका उच्छ्वास ही क्या हुआ। बिना बाधायाँ के वह तो नीरज है।” दूसरी उत्तर देती है—“हो सबी पुण्य टोक कहती हो। वे फिर चल पड़ती हैं। सो अब एक नदी ही या रई और शत्रुपुत्र की उपत्यका न जाने धरमी और किठनी दूर है। फिर परस्पर ही कह उठती है—“बसो किठनी भी दूर है अब बापस गो भोटा नहीं जा सकता।” और यह कहते हुए अब वे अपने धरबीबक को संधानती संनल-संनल पग रखती नदी के जन की पाह सेतीं जाने बडीं तो उस समय सभी के सम्मुख एक पर्वतीय नद का वास्तविक दृश्य उपस्थित हो गया। जन-समुदाय चिन्मिखा-ता मंच भी घोर बैठता रहा और दोनों देवी शिष्याएँ नदी को पार कर बसो बड़ निरती। घंटे में

आसुराज की उपरदका धाती है। सर्वत्र हरी भरी धीरे उसकी बुर विप्लव एक जैसी हरीविभा पर पुनर विभे है। इन पुणों को देख कुमारी रत्न कमल प्रतापनी में उन्हें सोचने का उद्यत हो उठती है। परन्तु देवी शिष्या उसे टोक कहती है—“प्रिय सखी मे तो बोधी के नुर हूए। भया बेबी धमिप्यटाकी के बरगुणों पर बुराए पुण बड़ाएमी।”  
 ‘हाँ ठीक कहती हूँ’—कहते हुए रत्नकमल ने अपना बड़ा हाथ आपस समेट लिया।  
 ‘परन्तु अब क्या करोगी?’ कुमारी रत्नकमल ने फिर उत्सुकता में प्रश्न किया।  
 देवी शिष्या ने कहा—“बसो स्वयं आसुराज के पास जमती है।” फिर वे उसे खोजती खोजती-सी चल पड़ती हैं।  
 ‘पर यह क्या! आसुराज तो समाधि बनाए बैठे हैं अब क्या होगा?’ महादेवी-प्रतीची ने प्रश्न किया। देवी शिष्या ने तब इंगित से बताया—  
 “प्रिय सखी अब तो केवल नृत्य ही उपाय है। किन्तु रत्नकमल प्रश्न करती है—  
 ‘समाधि भंग होने पर आसुराज कहीं कृपित न हो जाए?’ “नहीं प्रिय सखी आसुराज और वह नृत्य से कृपित हो जाए।”

इसी मध्य मूर्धन पर सहना एकाकी भाव पड़ी। दोनों अब नृत्य नृत्य के लिए प्रस्तुत हुईं। बाधनृत्य किञ्चित् विद्याम के परचाठ पुन प्रारंभ हो उठ। नृत्य-कर्म-रिचों के रीतों के किमण भी बन उठे। बाधनृत्य नृत्य के साथ धीरे नृत्य बाधनृत्य के साथ गति लेता जाता। नमी मंत्र मुग्ध हो उनकी गति को निहार उठे मन ही मन कहते रहे—“बस ही प्रभाव गति है।” धंरत गति का प्रवाह इतना वेगवान् हो उठा कि शर्याओं की दृष्टि में गति प्रकट हो उठी धीरे केवल अनुभूति ही रह गई। परन्तु नृत्य का प्रवाह अभी भी गतिमान था बसि तीव्र-गति में निर्णायक शक्त की धोर प्रचरन हा उठा हो। सहना देवी शिष्या को हुआ कहीं से कुछ स्वाभाव उपस्थित हुआ है। बाध नृत्य के स्वर-ताम्र ठीक है। फिर उतने कुमारी रत्न कमल के बिरफेले रीतों की धोर देखा और फिर देखा तैमकोरों में उसके मुख की धोर। इंगित ही इंगित में उसकी प्रोत्साहित किया। वह मूल गई कि उनके साथ नृत्य करती हूँगी उधकी कोई प्रतिहंही है।

बसोमृत निर्णायक अपनी दत्तचित्त वृत्ति से बहुत्र कष्ट दिग्गने रहे और वह धीरे धावधान हो उठ।

कुमारी रत्नकमल की मन गति को देवी शिष्या के इंगित से कुछ बल मिला और वह पूर्व से भी अधिक उन्माह से नृत्य व्यस्त हो उठी। देवी शिष्या का साथ देनी रही। परन्तु अब तक दनी रहती। देवी शिष्या ने पुन उधकी धीरे देखा। तब झूट्टे देखा कुछ खीमी थी। पर, उधकी खीम में तिप्यता नहीं बरन् वह स्नेह भाव का भी प्रोत्साहित कर उठता है। निर्णायक ने यह देखा ता मन ही मन प्रमत्त हो रहे। किन्तु दुबरे ही शक्त अपने सम्मुख के नृत्य को देख वह भवभीत हो उठे। कुमारी रत्न कमल अपने प्रवस्था में मंत्र पर पड़ी थी। गलतबाहक की मूल पाया निरीत हो उठी धीरे महाभयौ व्याप्त हो उठ। किन्तु देवी शिष्या सखी का साथ छूट जाने पर भी नृत्य व्यस्त थी। वह नृत्य करती रही। सहसा मूर्धन पर पड़ी एक पाप के साथ गति प्रकट हो गई। मन नमुनाय ‘साधु-साधु’ का उन्मारण करता अब मोच कर उठ। फिर करतल ध्वनि का जो मन प्रारंभ हुआ तो वह प्रभाव गति में प्रकटा

रहा। जन मन्त्रालय में वास्तविक कुमारियों और नववधुओं ने अपने जूहों में गुंथे पुष्प निराम उसकी ओर खेंक दिए, और फिर इन पुष्पों को देख पुस्तकों में भी अपने-अपने तरीके से धामूपणों को सत्कार मंत्र पर खेंक दिया।

और इस सारी व्यवधि देखी दिव्या सभीके सम्मुख अपना आचमन करने लगी रही। अंततः अपने आचमन में इन सभी अज्ञित अर्पित पुष्पों एवं धामूपणों को समेट जन समुदाय की ओर से मुक्त के अंत्य के सम्मुख उपस्थित हो गई। मृत्यु पमना रहा।

इसी मध्य अयोध्या निर्णायक आचामधी अर्पितवित्त धर्मा उठ ऊड़े हुए और ऊर्ध्व बाहु हो उन्होंने घोषणा की—“महाजनो ! आयुष्मानो ! परिणाम इत्यं है।”





अभिवात समाप्त अपनी इस पणवचन पर अत्यंत खिन्न हो अन्ततः धीमे उठा।

गणसंबाहक क्या स्वयं महाशेष्ठी का यह बूढ़ विश्वास था कि कुमारी रत्न कमल जब मृत्यु मंत्र पर उपस्थित होगी तो उसे देख देवी सिध्दा निश्चिन्त हूँ हलोरसा हित हो उठेगी और फिर बर्षक जन ही बना एक अभिवात कम्बा के सामने किसी बासी पुत्री में क्यों प्रतिक्रिया दिखाने लगे। किन्तु कुमारी रत्नकमल ने मध्य मृत्यु में प्रवेश हो उन सब की आशामो पर ही सुपारपाठ कर दिया। इस पणवचन पर महाशेष्ठी ने जैसे भारी आत्म ग्लानि का अनुभव किया। लम्बा से उनका चिर ही नहीं उठ पा रहा था वह कुछ बोल भी नहीं पा रहे थे। गणसंबाहक की मन स्थिति भी अत्यन्त दुःखिणी हो उठी। मृत्यु के आदिभार के कारण जैसे कोई समस्ता प्रब विकराल रूप ग्रहण कर उनके सम्मुख था उपस्थित हुई। वह उसे देख विचलित हो गयी हूए, परन्तु एक रिकतता विशेष का अनुभव प्रकट कर उठ। उत्साह की पति महसा मन्त्र पद प्रकट हो गई और श्रेष्ठी मिलनिश्चक को तो ऐसा लगा जैसे निराना का कोई भारी पहाड़ सहसा उन पर भारी पड़ा हो। किन्तु सामन्त कार्तिकेय स्वयं ही उत्तेजित होख रहे थे। उनके मतिन मुन्नों की देख वह धीरे उत्तेजित हो उठे। बोले—  
“भार्यवर ! अब इन सभी बातों का मोह छोड़ना ही हमारे लिए हितकर है अन्ततः आत्मसमर्पण प्रकट विनाश निश्चित है।”

इस पर सामन्त औरमन्न बोल उठे—“बन्धुवर ! अत्यंत मुझ से आत्मसमर्पण की यह बात सुनकर मुझे तो अत्यन्त आश्चर्य हुआ है। अभी से आत्मसमर्पण की बात कहना क्या पराजय की स्वीकार करना नहीं हुआ ? परन्तु इन पणवचन हूए ही क्यों है ? संघर्ष की दिशा में वह पहला ही तो पय है उनके आचार पर कोई दूषण माने अपनी ही बात कहो तो उचित भी है।”

सामन्त कार्तिकेय ने पूछा—“और क्या वह दूषण मार्ग नहीं था है बन्धुवर ?”

बोनों ही सामन्तों के मध्य का यह वाद-विवाद किस दिशा विशेष में बढ़न जाता है श्रेष्ठी निश्चिन्त जैसे समझने में असमर्थ नहीं रहे। वह तबैय अपनी पीठिका से उठ, गणसंबाहक की धीरे देखते हुए बोले—“ज्यों भार्यवर, क्या आप इन कर्मसंत प्रश्न को बला संभावना के सम्मुख प्रस्तुत नहीं कर सकते ?”

सामन्त भंडरेय श्रेष्ठी निश्चिन्त के इस प्रश्न का उत्तर देने को उत्तम ही हुए थे कि इसी मध्य कार्तिकेय जैसे फूटकर उठे। बोले—“भार्यवर ! यह नायकों का प्रस्ताव है हताश नहीं। अभी उपस्थित जन काग कागकर मुन से इस महत्पण

प्रश्न का निपटारा गण संवागार में नहीं बरन् श्यामी के राज पर्वी एवं शीपियों में होना उचित निपटारा तर्क विरक्त प्रथमा वाद-विवाद नहीं बरन् कड़ग करेगा। यदि गण महानगरी की शीपियाँ रक्त रंजित भी हो उठें तो हर्ष हर्षयें किंचित् कुछ न होगा। क्यों बंधुवर बीरमद ! मैंने कुछ प्रमुचित तो नहीं कहा ?”

यह कह सामन्त कार्तिकेय ने सभी उपस्थित मामन्तों एवं अस्थीयों पर दृष्टि पाठ किया। खेटी भित्तविरक्त बोले उठे—“जानने हो किन सामन्त आपने धर्म यह जो कुछ कहा है उसका क्या धर्म हुआ ? उनका स्वप्न ही धर्म हुआ ब्रह्मसंघ की सत्तासम्पन्न ब्रह्म संभा के प्रति अविश्वास और उसके अधिकार को चुनौती। वैधानिक यदि उसके अधिकार को चुनौती दें तो वह निश्चित ही बिरोह हुआ सामन्त बिरोह नहीं बरन् गणराज है।”

यह सुन सामन्त कार्तिकेय पहले से भी अधिक उत्तमिण हो बोले उठे— ‘मच्छिन् जो तुम कह रहे हो वह निश्चित ही कार्यों की भाषा है गण राज की बात कह, क्या तुम हमें भी हठोन्माहित कर मोह बनाना चाहते हो ? परन्तु विरक्त रक्षा हम भी बने बाने नहीं हैं। गण संवागार में तुम हम प्रश्न को प्रस्तुत कर लक्ष्य के पीछे केना ही तो चाहते हो और अन्तत चाहते हैं समस्या को स्वयं प्रकृत करवाना जब कि उसका उत्काल निपटारा होना चाहिए। धर्म ही और धर्म-धर्म विरोधक जब कि विपक्ष धर्म ही हम विषय पर हृदय मना रहे हो। उसकी वह विषय और यह हर्ष भी यदि हमारे लिए चुनौती न बन गयी तो फिर ऐसा कौन-सा प्रश्नर माएगा जब हम अपने कर्ण उठा उन्हें उठ के लिए समकार सकेंगे।

सामन्त बीरमद जैसे कार्तिकेय के एक-एक शब्द से सहमत थे। वह धर्म की पीठिका से उठ गएसंवाहक की ओर दृष्टि केन्द्रित कर अन्तमस्तक हो बोले— ‘धर्म पर सामन्त कार्तिकेय जो कुछ भी कह रहे हैं उसे धार इनका केवल धारणा न समझे वह एक निश्चित प्रस्ताव है जो विचारणीय है विचारणीय ही नहीं बरन् उसके पक्ष में धर्म निर्णय कर हमें कुछ संकल्प भी होना होगा।

महाभेटी हठ वाद-विवाद को सुन जब तक जैसे सचल हो चुके थे तो भी उन्होंने धर्म मौन रक्षना ही उचित समझा। मौन रहे-रहे ही उन्होंने खेटी भित्तविरक्त की ओर देखा। खेटी भित्तविरक्त गणसंवाहक की ओर दृष्टि कर बोले— ‘धर्मवर तो फिर मेरा भी कुछ मत है कि इस प्रश्न को संवागार में प्रस्तुत किया जाए। क्यों ? क्योंकि हमारा वह मुख्य बाधक है। श्यामी की एक परम्परा की रक्षा के लिए उसकी ही एक दूसरी परम्परा की जो उससे भी नहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है, हम प्रकार उद्वेग करना न तो हमें सोचना है और न ही वह समूचे ब्रह्म संघ के हित में है। धर्मवर सामन्त कार्तिकेय हम समय आना में हैं। हमें से ऐसा प्रस्ताव कर रहे हैं और उसके विनागकारी परिणामों पर नहीं साध रहे। क्या मैं बंधुवर सामन्त से कुछ मरुता हूँ कि बिरोह की अंततः मैं अपने राजा के विरक्त बिरोह कर, अपने यहाँ एकदम प्रशासी को समाप्त कर अन्ततः बाग्ययां क हम संघ में सम्मिलित होना क्यों स्वीकार किया ? वेदम एनोमिए तो कि बहूँ के धर्म प्रजा बन हम संवागार से धाड़ल हुए थे और यदि हम धर्म स्वयं ही अपनी हम प्रचार उद्वेग करें तो मभा से क्या सोचेंगे ? और

साथ ही मयक कापी वसत धारि के देरनुस्ते क्या कहूँगे ? वे सभी यही तो कहूँगे कि वेत बिना वेत बिना क्या वास्तवों के इस आत्मस्वभावावाचक के प्रतीक को जो एक वाच्यारण ही समस्या को भी सुलझाने में असमर्थ रहा । धीरे इस प्रकार हमारी सभी वास्तवों का केन्द्र बिन्दु सर्वत्र उपहास या विषय बनकर रह जाएगा । धार्यवत वह क्यापि नहीं हो सकता ।

महाशेष्ठी मरिणाल श्रेष्ठी मित्तविकक क इस लक्ष पर मन ही मन प्रसन्न हो बैठे किन्तु सामन्त भीरवज उससे सहमत होकर भी उसे स्वीकार न कर सके । बोले— 'अच्छिन् वास-वासी पुत्र अथवा पुत्रियाँ धार्म सम्पत्ति के उत्तराधिकार के धारिकारी हैं अथवा नहीं । वह सर्वथा बैसायी का एक निजी प्रश्न है । मानवों अथवा वस्तुओं का उससे क्या सम्बन्ध हम इस प्रश्न का जैसे चाहें निपटाएँ । इसमें जना के क्या हस्तक्षेप करें ? अच्छिन् यदि आप अपने मन में से भय को निकाल दें धीरे साथ ही उस लीम को भी जो आपको अमरीत बनाए हुए है तो आप भी निश्चित ही इसी निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि बिना सत्य उठाए इस समस्या का समाधान असम्भव है । विपन्न जब कुछ सफल हो तो फिर हमारे लिए धीरे विकल्प रह ही क्या गया है ? जानते हो अच्छिन् धाम जब वह समाचार वास कम्मकपों की बस्ती में पहुँचा होगा तो वे किस प्रकार उत्सहित हो उठे होंगे ? क्या वे कम उर्ध्व हो हमारा धामना नहीं करेंगे ? हमें लक्षकार भी सते तो इसमें क्विचित् भी आश्चर्य न होगा । अतः हमारे लिए अब वस यही भय स्कर है कि हम सत्य उठाएँ जो इस पक्ष में नहीं वे जने ही हमसे पूर्वक हो जाएँ ।

वह कह सामन्त काठिकेय अपनी पीठिका पर बैठ गए धीरे उनी के साथ सामन्त भीर वज उठ बैठे ही गए । वह कुछ कहने ही जने कि इस बार बलासंवाहक बोध पठ । बनेँ कथाचित वह वास-विवाह प्रकाशिकर सवा । सभी उनका कण्ठस्वर शोभित हो उठ । कहने लगे— 'आपुमानो ऐसा प्रतीत होता है कि धाम की इन पराजय से आप सभी असंतुष्ट निराश हो उठे हैं । किन्तु क्या हमें इस प्रकार निराश होना सोना देता है । निराशा से बिम्ब ही अथवा खीर कर यदि हम एक दूसरे पर इस प्रकार आक्षेप करेंगे अथवा केवल अपने ही मत को सर्वोपरि मान उस पर दृढ़ हाँ खींने फिर तो गतिरोध का हीना परिचार्य ही है । धीरे जब एक बार गतिरोध धा गया तो फिर सचपराज इस संघर्ष को समाप्त हुआ समझी । किन्तु तनिक वह भी तो सोचो कि हम यही किस उद्देश्य के लिए एकत्रित हुए हैं । आमुष्मानो उद्देश्य महत्त्वपूर्ण है उद्देश्य ही के लिए संघर्ष है, संघर्ष के लिए उद्देश्य नहीं । धीरे संघर्ष में कभी विजय है तो कभी पराजय भी किन्तु यदि हम उद्देश्य के प्रति आस्थावान् हैं धीरे हमारा विरासत दृढ़ है तो विरवास रहो एक दिन हमारी विजय निश्चित है । धीरे जब विजय निश्चित है तो फिर सभीर होने की क्या आवश्यकता है ? आमुष्मानो इन प्रश्न को नए संवाचार में प्रस्तुत किया जाए, मैं इस पक्ष में नहीं । वह किसी प्रकार भी बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं ।'

बलासंवाहक की बात मध्य ही में रुक रही । कारक बाहर ने घाटी किरी की पथ ग्राह्य उनके कारी से धा टकराई थी ।

सहसा एक मूक बासी ने कल में प्रवेष्ट किया । उसने लजेक तो नेत्र कोटों से बस खोजा धीरे फिर वह महाशेष्ठी के सम्मुख एक पक्ष रख उत्पत्ता से बाहर

निकल गई। इस प्रकार एक पत्र धावा बैठ सभी चकित हो उठे। सहसा कभ का गटावरण अत्यंत नमीर हा उठा।

महाशेखरी पत्र को पठ-पढ़ते ही अपने धातन से उठ खड़े हो गए और उनका मुख उम्रौंसा हा बना।

उनकी यह परिचित मनीहटा देख यणसंबाहक भी उठ उनकी घोर बड़ लिए। उनके मुख पर भी व्यग्रता का भाव अलक पाया। महाशेखरी के कंधे पर हाथ रख पूछने लगे—“क्यों मित्रवर सब संकुचन तो हैं न ?”

इस पर महाशेखरी का कण्ठस्वर धीर बोधित हो उठा। बोले—“विष मंत्रदेव। धामुष्पती की क्या चिन्तावनक हो गई है। प्रभेतावरणा में धव उठने न जाने क्या कुछ कहना प्रारंभ कर दिया है। यह पत्र देखो न।”

यणसंबाहक ने पत्र पढ़ा तो वह स्तम्भ रह गए। किन्तु किन्तु एक क्षण के अंतर से ही उनके मुख पर धावस का भाव छा गया। बोले—“क्यों बन्धुवर यह पत्र तो उठी आचार्य शिष्य ने भेजा है न ?”

यह सुन, सभी लालेय अपनी-अपनी पीठिका से उठ खड़े हुए और प्रायः सभी एक स्वर से ही संबिस्मय पूछ उठे—“आचार्य शिष्य ने ? और वह भी महाशेखरी के प्रसार से ? धार्यवर, यह क्या ?”

फिर सामन्त कार्तिकेय का प्रथमा स्वर उठ कर ये बूब उठा। कहने लगे—“धार्यवर और वह बाठी कम्पा भी यदि इस समय नहीं उपस्थित हो तो कोई धार्यवर नहीं।”

सामन्त धीरमत्र बोस उठे—“यह तो सचमुच धार्यवर की बात हुई। उससे भी अधिक धार्यवर तो यह है धार्यवर कि आचार्य शिष्य का नहीं धात का साहस कहे हुआ या फिर उसके प्रवेध पर नहीं कोई प्रतिबंध नहीं है।”

यणसंबाहक को लना यह तो बगते प्रथम की आचार्य शिष्या ही सिद्धक पड़ी। तो भी उन्होंने प्रकट में निराशा का कोई भाव नहीं दिखाया। सामन्त धीर मत्र पर बुद्धि केन्द्रित कर वह बोले—“धामुष्पान्, महाशेखरी पर प्रसावधानी का वह धार्यवर निराधार है। वह तो नृत्न समाधि के समय से ही हमारे साथ नहीं मंत्रला अस्त है। यह तो निरिधत ही उठी आचार्य शिष्य का दुस्साहस प्रतीत होता है जिसने महाशेखरी की अनुपस्थिति का लाभ उठाने की धृष्टता की है।

इस पर सामन्त कार्तिकेय बोल उठे—“तो फिर धार्यवर क्या हम उसके इस मार को भी निरदर वाले देंगे ? हम सभी को इती दल महाशेखरी के प्रसार को घोर प्रस्नान कर उस मारुय पुत्र से पूछना होगा उससे कहना होगा—“क्यों दे तेरा यह दुस्साहस ! क्या तेरे आचार्य बहुसावन ने तुझे यही सिखा भी है कि जब विपत्ती अनुपस्थित हो तो पीछे से उसके आचार्य पर ही धावा बोल दो। धार्यवर यह तो सचमुच दुस्साहस धीर निर्भयता की पराकाष्ठा है।”

उत्तर में यणसंबाहक बोस पड़े—“निरसदेह धामुष्पान् किन्तु उसके इन धार्यवर का एक पत्र धीर भी तो है।”

“वह क्या धार्यवर ?” सामन्त कार्तिकेय प्रपाङ्ग उन्मुचता का भाव दिखाते हुए





**आ**चार्य सिध्द जब अपने घाघात में लौटा तो उस समय तक रात्रि के पूरे दो प्रहर बीत चुके थे। किन्तु इतनी रात्रि भए भी जब उसने अपने कक्ष में मंत्रिका को उपस्थित पाया तो उसे आश्चर्य हुए बिना न रहा। वास्तव में उसे आश्चर्य व भी अधिक कुछ और अनुभव हुआ। वह क्या था उसे वह स्वयं समझने में असमर्थ रहा। उसे मना, मंत्रिका ने इस समय उपस्थित ही उसे इस प्रकार अत्यधिक अनुग्रह भार से भारने का प्रयास किया है। उसे उसका यह प्रयास किंचित् भी रुचिकर न लगा और इस अनुग्रह विधेय के विरुद्ध जैसे उसका हृदय विद्रोह कर उठ। उसका मन में आया वह इसी मण कक्ष से बाहर निकल करहीं भाग जाऊ हो। साप ही वह रात्रि के इस थिमटो स्वप्न में किसी धामत योगना को इस प्रकार अपने अति निकट देख संकोच का अनुभव भी कर उठ। किन्तु वह सोचने लगा—“यह धामत योगना कोई अपरिचित भी तो नहीं। पूर्व के न जाने किन अज्ञात संस्कारों बल परस्पर केवल साक्षात्कार होकर भी नहीं रह गया है। बीघानी में धाने के समय से ही वह मेरी सेवा में व्यस्त रही है। तो भी कुछ ऐसे मनोबोग से जैसे वह अपनी सारी शक्ति लगा किसी पूर्व जन्म के ऋण से मुक्त हुआ चाहती हो। यह सोचते हुए आचार्य सिध्द मन ही मन अपने पर जैसे बिना नहीं रहा। किन्तु अपने लख ही उसका सारा अंतराल पीड़ा से कराह उठा। वह अपने से ही बोला—“अजय्यार, तुने इस जीवन में न जाने कितनों को बिनय की साकार मूर्ति बन नतमस्तक हो अपने को सगर्भ अकिंचन कहते हुए सुना होया। यह उनका अभिनय ही तो है और नवाचित् सत्यसमाज का सुस्थापित जीवन भी। पर, मेरे जीवन में तो यह केवल वास्तविकता ही बन कर रह गई है ऐसी वास्तविकता कि त्रिधने । आचार्य सिध्द जैसे धाने कुछ भी सोचने में असमर्थ रहा। हाँ अन्तर का अन्धा भाव प्रवस्य प्रयाइ हो उठ। जो सहज ही में उसकी दृष्टि में भी उभर पाया। उसकी अन्धा-बोभिल दृष्टि बलात् ऊपर उठ, सामुद्र लड़ी मंत्रिका पर का टिकी और मन बीजन के न जाने किस अस्पष्ट पन्ने को निस्तंकोच भाव से उसे सुनाने को दायुर हो उठा। धारी निःस्वात उसके मुल में निकल कक्ष में उँन गया। और फिर वह किसी विचाराता का अनुभव कर जैसे कठिन-सा हो उठा।

किन्तु मंत्रिका को ऐसा लगा जैसे उसे जीवन में जो सब कुछ नहीं मिल सका था वह धाम केवल कछ लोगों में ही धनापात प्राप्त हो गया। आचार्य सिध्द की अविष्ट दृष्टि का स्पर्ध कर उसका अंतराल एक अर्थरत अनुभव कर उठा और अनुभव कर उठ एक ऐसे अज्ञत भाव को जो जीवन भार से दबी संकोच से सिमटी और न

जाने किम ज्ञान एवं अज्ञात धर्मियाओं बरा धपने को धम्मजात दुर्बल समझने वाली मारी को बशासता का सहज सामाध करा जाता है। मंत्रिका ने धात्र धपने में मर्ब प्रथम एक ऐसे मयत्व का धम्मुरव हाते देना वा को क्षीमजतम होकर मी सबम होना है। उते हुषा बहु साधिकार धपने इन रोमस प्रतीत होते हाथों से मी व्यक्तित्व-सुख्य धाचार्य सिप्य को—जैसे बहु एक धवोम बाकक हो—बलात् धपने शंक में क्षीप फिर मी धर उते संयेदते हुष सात्वना प्रशम जाने को क्षमता रखती है बहु मव का धनु मव कर उटी। किन्तु फिर मी न जाने क्यों बहु इस समय धपने इस सर्व बध धर्मित धधिकार का धनयाव न कर सकी। धाचार्य सिप्य के हाथ से उत्तरीय को ले इस उम मन्हालती गू वई। तो मी बहु इतने मर में ही न जाने क्या कुछ धनुमव कर उटी। इस मयव उमका धनुषा धंतराम ही युक्तिरिठ वा। किन्तु प्रदट में खबवा मीमोर एड बहु सहज इव में बोमी—“धाचार्य सिप्य बैशाखियों को धपनी एक बात का बरा वषे वा कर धव देखती हूँ उनका बहु मव केवल निरवक ही वा।”

धाचार्य सिप्य समुके दिन धीर रात्रि के बीते इन दोनों प्रहर्गों में मी निरन्तर व्यस्त रहा वा धत धव धव श्रम्यं में मारी स्वाति धनुमव कर रहा वा। वास्तव में धप प्रार्थ्य से मी धधिक उते धपना मन्दिपक बका प्रतीत हुषा धत केवल मीन रह धम्माकद हुमा वाहुता वा। फिर मी उत्तुष्ठा वध उनके मुख में जैसे बलात् स्वाभा धिक, पर उम्यन भाव से निष्कम बदा—“क्यों देखो ऐसी बहु कौन-सी वाग मी ?

मंत्रिका पुत्र के ही सहज इव में बोमी—“धाचार्य सिप्य बैशाखियों का धनु माल वा कि उनकी मल महात्मपरी बैशाखी के उम वष तो क्या मीधियाँ मी धादन्त बोमी धीर सरम हैं पर देखती हूँ जैसे धाप तो धपमें मी धटक सछते हैं।”

यह कह मंत्रिका क मुख पर एक पाड़ी मुस्कान फैल गई कर्मगटी धरणिम हो उठी धीर कृष्टि ? उतमें जैसे कोई स्वप्न डगर धावा। धीर उतने को कुछ कहा वा उठ पर धाचार्य सिप्य को जैसे हँसी धावा वाहुती थी। किन्तु उते न जाने किस बात का सहता स्मरण हो उठ। धीर फिर जैसे उठी के धाप किन्तो कुछ माल में धटकता कोई सिप्य भाव मी डगर उमर उनके कनीत निर्मम धीकते मुख पर छा गया। पर बहु जैसे कण्ट स्वर को किसी प्रकार संयत करने में सफल रहा। सप्रदाय सहज इव में बोला—“धेप्टी-मुषी कुछ भी हो हूँ तो मैं धपनी तक एक वैदिकिण ही।”

यह कह उनके मुख का धवधिप्ट सिप्य भाव एक मुस्तराम में धिन्नर गया। वास्तव में यह कुछ धीर कहने को मी उचन हो उठ। यह कहना वाहुता वा—“बैशाखी में इस मयव केवल वा ही तो वैदिकिण है—एक तो स्वर्भ में धीर धूपरी देवी सिप्या देखा देवी सिप्या वा मुख धाक किन्ना महुरवपूर्ण वा फिर धी वहाँ न तो मन्माभ्यत राजा धैटक धाए धीर न बंपुनर सिह सेनापति ही धीर न ही बहावीर धेसिय रात। क्यों ?” परन्तु यह धपनी इस बात में न जाने क्या धनुधित समझ केवल शठना ही कह कर रह गया।

धीर धाचार्य सिप्य ने जितना कुछ कहा उतने भाव से ही मंत्रिका को मया जैसे उम पर कोई बन्धप्रहार हुषा है। पर यह क्या बहु कथागत का धनुमव करके मी उते सहर्ष धदून कर गई, का ही नहीं गई, वरन् जैसे यह उम कुछ बिना

किन्ती प्रयास के ही केवल स्वाभाविक गति से होकर रह गया। धीरे इसमें उसे कुछ-कुछ गर्ब का भी अनुभव हुए बिना न रहा। सोल्हाह बोली—‘घाचार्य सिष्य ऋतुक्रमे की बात तो मेरे मुख से यूँ ही निकल गई। वस्तुतः मैं तो यह सोच रही थी कि क्या इस बैशाखी में घाचके लिए कोई धीर पत्र नहीं रह गया था जो इतनी उचित पत्र तक भी विग्राम नहीं मिल पाता। धीरे फिर, बख्त महानगरी की घबर्बैसी स्थिति बन गई है, उसे देख तो मेरे मन में न जाने कब से केवल एक ही प्रश्न टकरा रहा है। मैं सोच रही हूँ घाचार्य सिष्य कि क्या अब क्या होगा?’

यह कहते हुए मन्त्रिका की मुख मुद्रा संवीर हो उठी और साथ ही उस पर प्रगाढ़ चिन्ता की गहनता छा गई।

किन्तु घाचार्य सिष्य मन्त्रिका द्वारा व्यक्त इस प्रगाढ़ चिन्ता को सकारण एवं उचित समझ कर भी इस समय न जाने क्यों ठन्का दे हूँ न पड़ा। यह देख मन्त्रिका कुछ सन्निकट हो रही हतोत्साहित भी हो गई। पर घाचार्य सिष्य अपने हाथ ही अपनी हँसी को रोक सहा संवीर हो उठा। बीसा—‘येष्टी-पुत्री सिष्य के प्रति चिन्ता का ही ज्ञान स्वाभाविक है पर साथ ही निरर्थक भी। क्यों? क्योंकि यह धनुष है। उस पर बहिर्बर्ष करो तो वह क्षोभास्पद नहीं और यदि उसके प्रति निराश हों तो वह घातमत्त के समान है।’

मन्त्रिका को सवा बीसा उसे कोई धक्काम्ब मिल गया। उल्हाह का अनुभव कर उत्पत्ता से बोल उठी—‘किन्तु घाचार्य सिष्य जाने जाने कब की धीरे से घसा बचान रहना भी तो कोई दूरकथिता नहीं।’

घाचार्य सिष्य चम्पा पर बैठ बोला—‘येष्टी-पुत्री घाच सरव कहती है।’ पर खुले सत्य भसा कभी तटस्थ रहा है? रहस्यपूर्ण बीसता उसका स्वस्व सवा ही तो परिवर्तन धीम रहा है। अपने को विकासोन्मुख कह सत्य में कब किसी नहीं ऋतु-काया है। घाच ही की बात को ले जो न! यदि देवी शिष्या के स्वान पर महायेष्टी प्रप्रीती निजदी पीपित कर बी जाती तो एक सत्य प्रक्षेप बन रहे जाता और दुःख सत्य मुकारित हो विजयभी का किरीट चारण कर पर्व में घपना पीप ऊपर उठा कहता—‘मुनो भद्रजनो! सत्य में है। येष्टी-पुत्री उचित धनुषित की बात में नहीं करता परन्तु वह सध्य तो बनकर रहे ही जाता। उसे न मैं धस्वीकार कर सकता था और न कोई धाम ही।’

यह कह कर भी घाचार्य सिष्य न जाने क्या कुछ सोचता-ना रह गया। उड़की उठी बुद्धि समुच्च की एक पीप शिष्या पर जा किम्रित हुई।

मन्त्रिका किञ्चित् सोच बोल उठी—‘धीरे घाचार्य सिष्य अब सरव ही तटस्थ नहीं तो फिर जो गुम्बर है वह ही स्वायी कहाँ हुआ?’

यह गुन घाचार्य सिष्य मीन ही रहा। मन्त्रिका भी उत्तर की प्रतीक्षा में भोम रह घाचार्य सिष्य की धीरे देखती रही देखती रही कि उनकी बुद्धि में देता क्या स्थिर हो उठा है। किन्तु उसके व्योमित्ति मीनों को देख वह केवल धनुमान ही लजा सकी। किञ्चित् मुस्कान के साथ बोली—‘घाचार्य सिष्य क्या देख रहे हो?’

घाचार्य सिष्य ने दीपशिला पर पूर्ववत् बुद्धि रख कहा—‘देवी जो देख रहा

हैं वह मनुष्य है घत रहस्यपूर्ण है।”

मंत्रिका विभिन्न मुद्रान के साथ बोली—“धाचार्य सिध्द हृदय के उगार है नयाविद् इसी से उनकी दृष्टि में सब कुछ रहस्यपूर्ण है।”

धाचार्य सिध्द मंत्रिका की यह बात सुन हृत्प्रम हृत्प्र बिना न रह सका। दीपशिखा से दृष्टि हटा उसने मंत्रिका की ओर फेरी। धीरे धीरे बिरमय का सा भाव प्रकट करते हुए कुछ कहने को उद्यत हो उठा। किन्तु इसी मध्य मंत्रिका हस पड़ी। उसकी हँसी रिक्त नहीं थी उसे स्पष्ट ही उसका बोध हुआ। वह धीरे की धार्मिक विस्मय से उसकी ओर देख उठा देखता रहा। धंत में घम्या से उठ, उसकी ओर बढ़, बोला—“मच्छी-मुनी ठीक ही कहती हैं कि वो सुन्दर है, फिर बड़ी स्वामी नहीं हुआ। किन्तु देवी उसका रहस्योद्घाटन कीतुहम है धीरे कीतुहम प्राकपेण।”

यह कह उसकी दृष्टि मंत्रिका के मुख पर केन्द्रित हो गई। मंत्रिका ने कुछ कहने की विद्या में घनने पसन्द कर उठाए तो वे बस उठे ही रहे पए। धाचार्य सिध्द आहूकर भी अपनी दृष्टि मत न कर सका। सहसा कुछ बैठा—“तो तुने क्या उचारता सचमुच कोई शोध है ?”

मंत्रिका ने अपनी दृष्टि मत कर पग्यीर हो कहा—“धाचार्य सिध्द यग की स्त्रियता बीषन का धनुशानन है धीरे उगाव की एक व्यवस्था थी।”

“तो फिर सोच का संशय क्या घात्ता काहन नहीं हुआ तुने ?” धाचार्य सिध्द ने सतट कर, बँते धाकुलता से प्रश्न किया। मंत्रिका भी उतनी ही उत्तरता से उत्तर में बोल उठी—“है धाचार्य सिध्द धवस्य है किन्तु उसकी भी अपनी मया बाएँ है।”

धाचार्य सिध्द ने बँते इत बार धाप्रम विरवाच की बुद्धता से कहा—“देवी मुझे विदना स्वरुह है, मने कम से कम मयाँया का उत्तमयन नहीं किया। क्या मे देवी से उगपत नहीं हुआ है। मने विरिधत ही उगकार का उत्तमयन नहीं किया है, देवी उसके साथ विरवाचघात तो एक दूर की बात है।”

धावेध के धाचार्य सिध्द का कण्ड स्वर कुछ बुद्ध हो गया धीरे कर्नाठ मुख पर सत्वेचना की लालिमा उभर आई। मंत्रिका ने सहसा उसका हाव पकड़ फिर उन पर अपना करतल रख कहा—“धाचार्य सिध्द, कयाचित धावेधित हो उठे है। नबीया की बात मने स्वाधिकार के प्रम बरा कह ही थी किन्तु धाचार्य सिध्द धापरके मून से उगपत हुमा’ दुन तो मने घनने को विरिधत ही लालिधत हुमा धनुमय किया है। मने धारण्य में इतनी हननाय तो नहीं हूँ।”

मंत्रिका जो कुछ कह रही थी धाचार्य सिध्द उसे धात्यम ध्यान से सुन रहा था। किन्तु धन्तिम बाधय की सुन कर तो वह बँते स्तब्ध रह पया। उत्तर में बना बँदे बना न नरे बन् यह मोध ही रहा था कि मंत्रिका मुल्हा उठ खड़ी हुई धीरे लामेन बना से बाहर निकल गई।

धाचार्य सिध्द उसके परवाद् कुछ भी सोचन में धसमर्ष रहा किसी विधान पर पहुँचना तो बँते उसके भिष् लामण्य से बाहर की ही बलत बन गई।

धीरे, गिरव की भीति धायी प्रकट देना में भी सब मंत्रिकता कस में आई तो

धाचार्य दिव्य को अपने नेत्रों पर विश्वास नहीं हुआ। उसने समझा था कि ओष्ठी-पुत्री अब कभी भी नहीं आएगी। अतः उसने सोचा था—'प्रातः होते ही मैं स्वयं उसके कमरे में जाऊँगा और उसके सम्मुख अपना निश्चय प्रकट करूँगा। उसने निश्चय किया था—'मे ओष्ठी-पुत्री से जाकर कहूँगा श्रीम्यमुक्षी इस घाटी धराधि मैंने तुम्हें कष्ट ही कष्ट दिया है मला कब तक ऐसा करता रहूँगा क्या मैं नहीं से कही धर्म्य नहीं था सकता। उसे विश्वास था कि ओष्ठी-पुत्री अबकय ही कहेगी—'धाचार्य दिव्य मला मैं तुम्हें रोक भी किस प्रकार सकती हूँ। पर धाच ही वह सोच उठा क्या वह बस इतना ही कहकर रह जाएगी। वह निश्चित ही कहेगी—'धाचार्य दिव्य मैं क्या यह तो कोई भी कह सकता है कि देवी शिष्या की अट्टालिका बंभी सुनिचा मला नहीं कही है। 'और यदि उसने वास्तव में ऐसा ही कहा' वह सोचता रहा 'तो मैं अपने स्पष्ट ही कहूँगा—'देवी तुम्हें केवल भ्रम हुआ है और यदि ऐसी ही बात है तो फिर वह भी निश्चित समझे कि वह बचकर बैशाखी में भी नहीं रहेगा यदि एक दिन वह यहाँ आया था यदि ही जला भी जाया उसने निश्चय किया कि यदि प्रातः होते ही मंत्रिका न भी मिसी तो मैं फिर स्वयं जाता बन्धुवर से कहूँ धाऊँगा या फिर कहूँगा बन्धुवर ओष्ठीपरल से। यह सुन वह अवश्य ही धारण्यचक्रि हा उठेन कदाचित कारण भी पूछेंगे पूछेंगे तो क्या हुआ? मैं कल्पे नतपस्तक ही उचितम कहूँगा—'क्यों बन्धुवर, अकारण ही धाचको जो इतना कष्ट है बीठा क्या वह परान्त नहीं? फिर बन्धुवर किता कारण भी तो इस संसार में बहुत कुछ होता रहता है। परन्तु, इसी के साथ वह अपने निश्चय पर यदि पुनर्निचार के लिए बाध्य हो रहा। अपने ही ही बोला—'अपने इस निश्चय को मैं जाता बन्धुवर धराधा बन्धुवर ओष्ठीपरल के सम्मुख प्रकट करूँगा यह कुछ धारण्यक तो नहीं। बैशाखी से जाने मला तो क्या मैं बन्धुवर बिह मा देवी रोहणी से कहने देंगा और यह बात देवी शिष्या से कहने की भी क्या धारण्यता पड़ी है। किन्तु देवी शिष्या का ध्यान आते ही वह सोचने लगा—'बैशाखी से जाने की बात किसी से कहूँ ना न कहूँ, देवी शिष्या से तो कहनी ही होगी। क्यों कहनी होगी? वह इसका अपने से स्पष्ट उत्तर चाहता था देख वह कह कर ही नहीं रह गया बल्कि भागुर ही उठा। उसे लगा देवी शिष्या यदि स्वयं ही उसके सम्मुख आकर बड़ी ही कई ही और उसकी इस बुनिचा पर मुस्करा कह रही हो—'क्यों धाचार्य दिव्य प्रकण जहाँ समाप्त होता है क्या नहीं से उत्तर स्वतः धारण्य नहीं हा जाता? विशेष के इस साहम्बर ने तो उसके मध्य में ही धारण्य की घोट बड़ी कर दी है। धाचार्य दिव्य देवी शिष्या के मुख से यह सुन धरणा पर सेटे-सेटे ही यदि नत मस्तक हो रहा उल्लसित भी हो उठा और जो कुछ उसने उसी के भाष्यम से उल्लसक्य में कहलबा दिया था उस पर मनन करता रहा। मनन करते करते ही उसे एक हल्की-सी कपकी धा गई थी कि मंत्रिका की पत्र पाहट से वह भी मंत्र हो रही।

मंत्रिका को सम्मुख देख कर भी धाचार्य दिव्य को अपने नेत्रों पर विश्वास भले ही न हुआ हो परन्तु धारण्य धरनक हो रहा। उसे इस बात का धारण्य हुआ कि इतनी रात्रि बए सांकर भी वह शिष्य की भाँति नियमित समय पर यदि उठ बैठी। देख वह बैठी ही नहीं बरन् यहाँ भी धा पहुँची यदि कल कुछ भी तो नहीं हुआ।

किन्तु जब उसका नेत्र दृष्टि स्वतः हो उसके मुख पर जा टिकी तो वह केवल स्तब्ध रह गया। ध्वपा पर सेटा भी नहीं रह सका। उसके निद्रा मोझिम नेत्रों को देख विस्मय से बोला—“देवी क्यों क्या प्राण सारी रात्रि ही नहीं सोई ?”

मंत्रिका प्राचार्य सिध्द के इन प्रश्न का जैसे लाकार काई उत्तर देने में असमर्थ रही। हाँ अन्दर की विचाराता घोर क्षिप्तता सिमट कर एक पीकी मुन्कात के साथ मुख पर प्रसरण फैल गई। घोर फिर मन में सहसा उठी किसी हिनोर के साथ नेत्र झमल हो छठ। वह कक्ष से पुन भाग निकली।

प्राचार्य सिध्द तथेक ही किर्णर्ण्यविमूढ़ रह उठी विद्या में देखता रहा घोर फिर वह भी जैसे हठात् उठी विद्या में धाम जाड़ा हुआ। उत्तरता से बड़ मंत्रिका की बाहुओं को पकड़ वह उसका मार्ग रोक्ता हुआ जाड़ा हो गया। उसका कण्ठ स्वर घाँरी हो उठा। बोला—“देवी क्या तुम मुझे क्षमा नहीं कर सकती देवी विरहास करोगी ? मैं इस समय परवन्त दुखी हूँ।”

मंत्रिका जैसे इस बार भी उत्तर देने में असमर्थ रही। मनका विद्रोह करता मन बिह्वल हो उठा। तो भी उसने कुछ कहन का प्रयास किया। किन्तु छब्द केवल कण्ठ तक ही धाकर रह गए, अवरोक को पार नहीं कर सके। तो भी वह कुछ सोचती रही सोचती रही कि कहूँ—“मैंने प्राचार्य्य वह तो धार्य मुझे कोई कठोर दण्ड दे रहे हैं।” वगन्तु वह बड़ सोचकर ही रह गई।

इसी मध्य प्राचार्य सिध्द उसकी बाहुओं की सिन्धोरते हुए पुछ उठा—“क्यों, देवी क्या तुम मुझे लक्ष्मण क्षमा नहीं करोपी ?”

मंत्रिका को हृथा वह पाप छाड़ा कर भाग जाए पर भावने की सामर्थ्य ही उनीसी। न वह भाग ही सक्ती घोर न प्रश्न का उत्तर ही दे पाई। प्राचार्य सिध्द घोर स्बध हो उठा। इस बार बाहुगाय को छोड़ उसने मंत्रिका के चिबुक का स्पर्श कर बलम्ब उठे अन्तर उठाया घोर फिर मोझिम कण्ठ स्वर में बोला—“मुझे इस जीवन में न जाने कब से उपकारों से ही लपटा जाता था रहा हूँ, इतने उपकारों ने कि अब उनका घोर अधिकार बहन कराना मेरे बच की बात नहीं रही, फिर भी धार्य देवी एक घोर उपकार पाने की इच्छा बलपती हो उठी है। देवी कहो कब हो कि प्राचार्य सिध्द तुझे क्षमा नहीं किया जा सकता।”

मंत्रिका ने इन बार जैसे प्रथम प्ररित ही अपनी द्वाष्ट लभिक अन्तर उठाई घोर प्राचार्य सिध्द की घोर देखा। कहा बड़े घोर क्या न कहे वह सोचने का जैसे उसे समय ही नहीं मिला। उनके मुख से बानो हठात् निकल गया—“प्राचार्य सिध्द जीवन में मे कमी उद्दं बन्, यह देवी अधिमाया करायिनहीं रही घोर न ही यह अधिमाया है कि अनुभूति के विरहीत प्राचरण कके घोर वह भी किनी ऐसे से।” सहता छठका कण्ठ स्वर प्रसरण हो गया। प्राचार्य सिध्द अलमुकता से उमकी घोर देखता रहा। लक्षण बदने के परबन्त मंत्रिका ने माली अपने अन्दर की सारी सक्ति एकत्र कर पुन कहा—“का मैं बहूनी प्राचार्य सिध्द क्या उम पर विरहास करे ?”

प्राचार्य सिध्द उत्तरता से बोला उठा—“देवी विरहास करो अधिरहास का वह लक्षण परराज भी कक ऐसा साहस दे बदावि नहीं कर सकता।”

मंत्रिका तनिक पीछे हट, बोली—“घाचार्य सिध्द तो फिर मुझे धापने मुक्त से उपहृत हुआ वह मेरे सीमाप्य पर ही ही लीकन लगाया है। क्या किसी का बर्ष विरहृत हाकर भी बीन रह सकता है ? घाचार्य सिध्द ने धापको लक्ष्मण बना नहीं कर सकती।”

घाचार्य सिध्द को लगा जैसे उसे लक्ष्मण उसका धमीण मिल गया हो। इर्षा-विरेक में वह मारों बिम्बा उठा—“देवी धात्र तो मैं लक्ष्मण बन्य हो गया हूँ। लक्ष्मण बन्य हुआ हूँ देवी। वह कहते हुए कब उसके हाथ दूर लकी मंत्रिका तक पहुँच गए और कब बड़े हाथों ने उसे लीक पापवत कर बस से सिध्दता लिया इनका न उसे स्वयं पता बन सका और न मंत्रिका को हा।





गुल संवाहक सामन्त मंत्रदेव मध्याह्न का भोजन कर, धनी-धनी सम्राट पर सेठे से कि संवेद्यवाहक कवित कल में था पहुँचा । मठ मस्जिद हो, वह तबिनज बाबा—  
 “मार्ग मास्थानावार में कोई बंधितिक बिभकार प्राया हुआ है ।”

एक बंधितिक बिभकार के घामे की बात सुन गुलसंवाहक का कल धारण्य हुआ । उनके मुँह पर कौतूहल का भाव भी लैल रहा । वो भी वह कल सोच बोले—  
 “मायुम्मानु, तुम वो देख रहे हो भाव प्रात ही से मैं कितना व्यस्त हूँ क्या वह तीसरे प्रहर तक प्रतीक्षा नहीं कर सकता ?”

इस पर संवेद्यवाहक पूर्व से भी धार्मिक विनीत कल स्वर में बोला—“धार्मिक वह धनुरोध मे कलसे पहले ही कर चुका हूँ पर उसने उत्काल वर्णन का विधीय प्रावह किया है ।”

यह सुन गुलसंवाहक को धीरे भी धार्मिक धारण्य हुआ । कौतूहल का भाव भी प्रगाढ़ हो गया । फिर भी ब्रह्म में कुछ उपेक्षा का हा भाव लिखा वह मार्गों बाटी मन से बोले—“मच्छा मायुम्मानु ही फिर धमी लिखा जायो ।

उत्तरवात्स यह बंधि धपने ही की कुछ सुनाते हुए से बड़बड़ा उठे । संवेद्यवाहक कवित मे कल से बाहर निकलते हुए वह सब कुछ सुना किन्तु सुनकर भी प्रसन्न कुछ समझने में धरुण्य रहा । बस धनुदान लगाता रह गया । बास्तव में धार्मिक प्रति प्रात ही से प्राप्ताद में फिर जैसे किसी मंत्री मंत्राला का कम गतिमान या धीरे कमरों की बस्ती से प्राप् एक संवाद विधीय को सुन धर्मिजात समाज में धारी स्वार प्राया हुआ था । फिर संवेद्यवाहक को उस बात का भी स्मरण हो प्राया वो बाटी कन्या प्राया मे उसे बढाई थी । वह उस समय धरुण्य कितनी बढपाई हुई थी इस बात का ध्यान प्राते ही उसके मन में उसके प्रति इस समय भी कारुण्य का संचार हो उठा । संवेद्यवाहक फिर धपने ही से बोला—“बाटी कन्या का धरुण्य उठना स्वाभाविक ही तो था । धर्मिजात समाज के उस निर्धन जो सुन मत्ता कीन धार्मिक न हो उठेगा ।

किन्तु गुलसंवाहक के मन में इस समय कोई दुःख ही दुःखिया थी । वह सोच रहे थे कि यदि किरात मे कमरों को भी कही उत्तन परिगत कर दिया तो फिर कोई भी ऐसी धर्मि नहीं जो बंधामी में गृह मूढ को विधीयिका को रोक सके । धीरे मंत्रदेव यह धपने ही से कह उठे ‘बन्धि तू मे उसे रोकने का प्रयास किया भी तो मे बस सामन्त पुत्र तुझे भी धपने में से निकाल बाहर करले । धीरे कीन जाने मुझे



मंत्रिका लनिक पीछे हट बोली—“आचार्य सिध्द तो फिर मुझे आपने मुझ से उपहृत हुआ कह मेरे सीमास्य पर हँसि ली मीछन लगाया हँ। क्या किसी का बर्न तिरम्कृत होकर भी मीन रह सकशा है ? आचार्य सिध्द मे आपको सचमुच समा नहीं कर सकती ।

आचार्य सिध्द को जगया जैसे सचे सचमुच ससका मभीष्ट पित नया हो । हर्ष-तिरेक में वह मानो चिन्ता सठा—“जैसी आन तो मैं सचमुच बस्य हो गया हँ । सच मुच भस्य हुआ हँ बेबी ।” यह कहते हुए कब उसके हाथ दूर लड़ी मंत्रिका एक पहुँच गए और कब बड़े हाथों ने उसे सींच पासबस्य कर बस से सिमस्य लिया बसकन न सचे स्वयं पता बस सका और न मंत्रिका को ही ।





चौदह

गण संवादक सामंत मंत्रदेव मध्याह्न का भोजन कर धमी-धमी चप्पा पर लेटे थे कि संदेशवाहक कपिल कक्ष में था पहुँचा। गठ मलक हो वह तबिनय नामा—  
“धर्म्य दासनागार में कोई वैदिक चित्रकार धाया हुआ है।”

एक वैदिक चित्रकार के घाने की बात सुन गणसंवादक का कठ धारण्य हुआ। उनके मुख पर कीनूहन का भाव भी फँस रहा। ठी भी वह कुछ सोच बोले—  
“धामुष्मान्, तुम ठो देख रहे हो धाम प्रात ही से ये कितना व्यस्त हैं क्या वह ठीक से प्रहर तक प्रतीला नहीं कर सन्ता ?”

इस पर संदेशवाहक पूर्ण से भी धधिक विनीत कष्ट स्वर में बोला—“धर्म्यवर वह धमुरोच से उत्तसे पहले ही कर चुका हैं पर उत्तसे तत्काल धरान का विशेष धायह किया है।”

यह सुन गणसंवादक को धीर भी धधिक धारण्य हुआ। कीनूहन का भाव भी प्रयाङ्ग हो गया। फिर भी प्रकट में कुछ उनेन का सा भाव दिखा वह धार्गो धारी मन से बोले—  
“धक्का धामुष्मान् ठी फिर धमी लाया साधो।

तत्परवात् वह जैसे धपने ही को कुछ मुनते हुए से बड़बड़ा उड। संदेशवाहक कपिल ने कक्ष से बाहर निकलते हुए वह सब कुछ सुना किन्तु धुनकर भी प्रत्यक्ष कुछ समझने में धसमर्ष रहा। वह धमुरान लघाउा रह गया। मास्त्र में धाम धति प्रात ही से प्रानाव में फिर जैसे किसी बंगीर मंत्रणा का कम पठिमान था धीर कम्मकरों की बस्ती से धाय एक संवाद विशेष को सुन धभिजात सभाज में धारी ध्वार धाया हुआ था। फिर संदेशवाहक को उस बात का भी स्मरण हो धामा को धारी कन्या धाया ने उते बताई थी। वह उस समय लधमुच कितनी धबधई हुई थी इस बात का ध्यान धाते ही उडके मन में उतके प्रति इस समय भी कावध का मंधार हो उठा। संदेशवाहक फिर धपने ही से बोला—  
“धारी कन्या का धबध उठना स्वा धामिक ही ठो था। धभिजात सभाज के उस निर्णय का सुन मना कीन धार्तिक्रत न हो उठेगा।

किन्तु गणसंवादक के मन में इस समय कोई धुनगी ही धुनिका थी। वह सोच रहे थे कि यदि किरण ने कम्मकरों को भी कही तत्न पधित्त कर दिया तो फिर कोई भी ऐसी धकिन नहीं जो वैधानी में नूह मुख की विभीषिका को रोक सके। धीर मंत्रदेव वह धपने हो से कह उा—  
“यदि तू ने उने रोहने का प्रयाग किया भी तो ये उध सामंत पुत्र तुझे भी धपने से से निकाल बाहर करेगे। धीर, कीन जाने मुझे

घपने मार्ग की बाधा समझ मेरा ही ।”

गणसंवाहक जैसे घपने ही विचार प्रवाह से मयमोत हो उठे । वह घपने नेत्रों पर हाव रख तनिक विधाम की सोच लिया ही चाहते थे कि संवेधनाहक कथित धार्यतुक विचकार को धाम से कक्ष की घोर घाटा प्रतीत हुआ । गणसंवाहक सचेष्ट हो उठे । उन्हें अत्यंत निकट घामा समझ धम्या पर उठ भी बैठे । धीरे बच ने कक्ष में प्रविष्ट हुए तो वह धम्या से उठ घपने दोनों हाथा को पधार उन्मत्तित कष्ट ॥ बोले— ‘घापो धार्य घापो ।’

धीरे इतनी-सी बेर में ही गणसंवाहक धार्यतुक को एक छिद्रान्धेपक की सी दृष्टि से घापावशीर्य देख गए । धार्यतुक इस बात को समझ गया तो भी इतने प्रकट में इस स्वापठ पर घारी हुर्य ही प्रकट किया बाधा बकिष्ठ उसका मुक्त शिख छत्र । पधसवाहक का घदिवादन कर वह सविनय बोला— ‘धार्य न मरे बिधीय माण्डू को लीकार कर मुक्त पर निविचत ही घति उपकार किया है । धीरे, धार्य के इस विधाम में ही दृष्टावध को विध्वन करने का धपरध कर बैठे हैं । घापा है धार्य इस प्रकि-वन को घबक्ष ही घमा कर बने ।’

धार्यतुक के मुक्त से वह मुन गणसंवाहक के मुक्त पर उह्व संकोच का भाव उभर घामा । वह बोले— ‘धार्य मन्नाइसमें धपरध की क्या बात हुई ।’ फिर सन्मुख रही स्वर्ध पीठिका की घोर हाव से सकेष्ट कर कहने लगे— ‘धार्य उध पर विराजमान हों ।’ धीरे वह कह वह स्वर्ध नी धम्या पर बैठ गए ।

धार्यतुक ने जैसे घपने की उपकृत हुआ धनुष्य किया । पीठिका पर बैठे हुए बोला— ‘धार्य का यह स्वापठ भाव विस्सिंह उन्म कुल वीरव के धनुष्य ही है । कर घाम का कक्षा त्रम भी तो तर्ध निविध है, तभी तो यह सेवक इतना बाहस पर सका ।’

‘नहीं घाम यहाँ घा घापने वह तो मुक्त पर धनुष्यमा की है । किरी कक्षाकार हा में स्वापठ कर उर्ध्व यह तो मेरा परम सीमाय्य है ।’ यह कह पण संवाहक ने अपनी दृष्टि ऊपर उठई अनेक विचकार की घोर बेसा । धीरे फिर उले संवेधनाहक कथित की घोर केरते हुए उठे जैसे वहाँ से जाने का सकेष्ट किया ।

धार्यतुक विचकार इस नम्य उत्सुक दृष्टि से बयादुख धाम्य की घोर लिता रहा । गणसंवाहक भी उधभी घोर विचकारों से देखते रह विधाम की इधम ॥ धम्या पर बैठ गए । धीरे उधवचात् उधभी दृष्टि जैसे स्वग कक्ष की छत पर केन्द्रित हो उठे । एक निस्वाप भी उनके मुक्त से निकल कक्षा के भीन बातावरण पर जा गया । तब में उधवचात् जैसे पतिरोध का सा बातावरण बन गया ।

अंत में इस पतिरोध की अंश किया स्वर्ध गणसंवाहक ने । पूछने लगे— ‘धार्य घापी में बच घाना हुआ ? मगध में सब कोई कुधल से तो है न ?’

उधके मुक्त से यह मुन धार्यतुक विचकार बकिष्ठ हुए बिना न रहा । परन्तु अंत में तर्धवा घदिचलित रह विनक का भाव दिवाघात तत मस्तक हा बोला— ‘धार्य की हवा चाहिए ।’

उधवचात् धाम्य अंशरेव उभी प्रकार घपनी दृष्टि छत की घोर केन्द्रित रख

बोले— 'धर्म का कष्ट स्वयं प्राप्त परिचित प्रतीत हो रहा है परन्तु धामु की धीर म मन में तनिक भ्रम है । फिर धर्म मेरी यह कृपावस्था ठहरी । स्मरण धर्म का शीघ्र हो जाना स्वाभाविक ही है । अतएव पूरी धर्मिता लगा कर भी यह स्मरण नहीं कर पा रहा हूँ कि धर्म के कब धीर कहीं वर्णन हुए थे ?

सामन्त अजबेब के इस कथन से धार्मिक भाव का रहा-सहा भ्रम भी दूर हो गया । तथापि यह सर्वथा संयत रहा । उत्तर में कुछ भी न कह उतने विचकार की भावकता से उनकी धीर एक विचक्षणक बढ़ाते हुए कहा— "धर्म के विरिधत हूँ कहीं वर्णन किए हैं तभी तो यह विचक्षण संभव हो सका है ।"

सामन्त अजबेब ने सैटे-सैटे ही उस विचक्षणक को अपने हाथ में ले लिया । धीर फिर बड़े धम्ययन की ही व्यस्तता से उसे देखते रहे । अंतत एक निजवास के साथ बोले— "धर्म, विच तो निस्संदेह सुखर धीर वास्तविक बन पड़ा है तो भी मुझे एक धारणित है ।"

"बहु नया है धर्म ।" धार्मिक विचकार ने विज्ञासा का भाव विज्ञा तलरखा से प्रस्तु किया । उत्तर से पूब सामन्त अजबेब धम्या पर उठ कर बैठ गए । फिर विचकार की धीर तनिक मुस्झान के साथ बोल बोले— मागध विचकार ने जैसे रीझ भाव से अपनी प्रबाढ़ मास्या विज्ञा अपने विच में मेरी धारणपूर्व मुसमुझा को ही प्रबा नता प्रस्तु की है ।"

गणसंवाहक की इस धारणित पर भाव विचकार कुछ ठिठका । पर साथ ही सर्वथा सहज रूप में बोला— धर्म की धारणित सर्वथा उचित ही है । तो भी धर्म धार यह जानकर धम्ययन प्रस्तु होंगे कि यह विच केवल दो दिन में ही बनकर तैयार हुआ है अतएव सामयिक है धीर विधेय महत्वपूर्व की ।"

यह सुन गणसंवाहक के मुख पर किंचित उत्तेजना का भाव उभर धारा । वह धम्या से उठ अड़े हो गए । फिर कदा में धारिका व्यस्त हो जैसे किसी महान समस्या पर विचारने लगे । सहसा कुछ कष्ट स्वर में बोले— "परन्तु यह एक वैदितिक कलाकार— विधेयकर भाव का अधिकार कदापि नहीं हो सकता धर्म ।"

धार्मिक कलाकार भी पीठिका से उठ अड़ा हुआ । गणसंवाहक के सम्मुख मग्न प्रस्तु हो वह बोला— 'धर्म कलाकार हीमाधों की बाधा को स्वीकार नहीं करते ।"

यह सुन सामन्त अजबेब बोले— "धर्म, कलाकारों के इस विधेयधिकार को मैं भी स्वीकार करता हूँ । परन्तु प्रस्तुत विच में तो धर्मिधाय स्वयं प्रस्तुत रहा है अतएव यह हस्तगत है । यह कह यह तनिक अके । फिर कुछ सोचते हुए से कष्ट स्वर से संयत करने का सा प्रयास करते हुए बोले— "धर्म बेधाली में कलाकारों को निस्संदेह पूर्व स्वतन्त्रता का धारणित प्राप्त है किन्तु उनका यह विधेयधिकार तभी तक सुर धित है जब तक कि वे विधेययन की धार्मिक समस्याओं को अपनी धूमिका का विधेय नहीं बनाते धीर इस प्रकार उनमें हस्तगत नहीं करते । किमी वैधार्मिक विचकार को यह धारणित भी प्राप्त है, किन्तु यदि कोई वैदितिक विचकार यह वेष्टा करे तो जानते ही धम्यायत उनका नया परिणाम है ?"

धार्मिक विचार ने पुनः गत गस्तक हो 'सैनिय' कहा—“जाता है धर्म  
उपके लिए बैतानी में प्राण खंड की व्यवस्था है परन्तु वह विनीत सेवक ठीक इस समय  
दूत रूप में प्रस्तुत हुआ है।”

“परन्तु किसी भी दूत के लिए क्या वह उच्च वेत किसी प्रकार घोसा देता है  
मायब सम्राज्य बर्षकार । फिर, वैदिक दूत का स्वागत करने का अधिकार कबवा  
वाचित भी तो मेरा नहीं है । इसके लिए तो बकि धाय परछायाय राजा केरक के पास  
गए होते तो वह न केवल घोसास्वय बरन् उचित भी होता । आपने इस प्रकार यहाँ  
या बैतानी में मेरी स्थिति घोर कुचिन्ता पूर्व बना दी है।”

मानव सम्राज्य उत्तर में बोला—“यह मैं जानता हूँ धर्म । किन्तु मैं धर्म की  
सेवा में एक विशेष प्रयोजन से कास्वित हुआ हूँ । साथ ही मुझे एक बात धीर निवे  
दन करनी है।” यह कह उसने परछायाहृद की धीर सेवा । गणसंवाहक के उद्योगी  
दृष्टि में छिपे धाय को मनी गति समझ कहा—“धर्म वास्तव में है।”

इस वास्तव के परचात् भी मायब सम्राज्य ने मुब की ही सर्वक दृष्टि से नारों  
घोर सेवा । पूर्वतः सावधान हो बोला—“धर्म यद्यत्तु उच्च क उच्चप्राय में उच्च  
को भी यहवाकांक्षा को लेकर उच्चपुत्रों के मध्य परस्पर संघर्ष अनिवार्य है धीर इस  
संघर्ष में बैतानी पुत्र कुमार कोरिहक की विजय भी निश्चित है । इस कार्य में यद्यपि  
उन्होंने सभी पुत्रोद्दिन कुलों की सहायता प्राप्त है तो भी उन्होंने भास्वा रूप में दूत रूप  
है निर्णय महाभयमण नयमान महावीर का उपासक होना स्वीकार किया है, धीर तथा  
वत के निम्न संन को गच्छ अर्थ करने के लिए उन्होंने इस समय उनके एक प्रधान सिध्य  
देववत के साथ दूत सवि भी की हुई है । उच्चधी पर पूर्णाधिकार प्राप्त करने की  
दिशा में उनकी प्रायः सभी योजनाओं की सफलता निश्चित है, परन्तु उनकी कार्य रूप देने  
से पूर्व यह धर्म को सहायता भी अनिवार्य समझते हैं । धीर नयमान महावीर के  
समान रूप से सहायक होने के साथ उन्होंने धाय से इस सहायता की सहाय भवेदा की  
है । अतएव धर्म को भी उचित समझे, उत्परासर्ष प्रधान कर इस सेवक को  
समृद्धि करे।”

मयब सम्राज्य की बात को वह धीरे से सुनते रहे । जो कुछ सुना उसके  
समीर मुख पर एक मुस्कान फैल गई । धर्म का सा साथ प्रकट करते हुए बोले—  
“धर्म कुमार कोरिहक ने अपने सहाय स्वभाव यह मुझे जो घनावाप है । इतना महान  
से जाना है । उनके लिए मैं उनका दूत से सामाटी हूँ । परन्तु धर्म एक बात विचार  
णीय है । मानव की उच्च धी के प्रकट को लेकर यदि राजहृद क उच्चपुत्रों में परस्पर  
कोई संघर्ष उत्पन्न है तो धमा कोई भी वैधायिक संघर्ष नवा भेददान कर सफल है ।  
यह तो सर्वथा मानव प्रजा की घातक समस्या है जिनमें किसी भी वैधायिक का  
हस्तक्षेप करना उचित नहीं । फिर धर्म बजिजसंघ ने किसी भी भिन्न राष्ट्र के धार्मि  
क संघर्ष कबवा घातिपूर्व जीवन में हस्तक्षेप न करने की नीति अपनाई है । भिन्नका  
पामन करना प्रत्येक वैधायिक का गुणीत कर्तव्य है ।

गणसंवाहक की यह बात सुन मानव सम्राज्य की कुछ हतोत्साह हुआ । परन्तु  
प्रकट में सर्वथा धीरे साथ के बोला—“धर्म यह तथ्य मुझ से छिपा नहीं है, धीर मैं ही

विमो घन्य रे । प्रत्येक वैशाखिक गण संस्मागार के निर्भवों के प्रति कितना मिष्ठा-  
मान है यह सर्व विदित है । किन्तु कुमार कोणिक ने यह सहायता बहिष्करण से नहीं  
करने स्वयं धार्य से मांगी है । बैशाखी में बास बर्ग को भुक्त कर उसे प्रतिष्ठापित  
करने का जो प्रयत्न किया जा रहा है और उसका धार्य ने जो बटकर प्रतिरोध किया  
है उसका कुमार कोणिक ने न केवल समर्थन किया है बल्कि मूर्ति-मूर्ति प्रशंसा भी  
की है । कुमार कोणिक इस प्रसंग में धार्य को पूरी सहायता देने को उद्यत है । और  
धार्य प्रायः यह तो जानते ही हैं कि मगध साम्राज्य में धर्म को मिलाने के बाद से  
समा पर कुमार कोणिक का कितना प्रभाव हो गया है ।”

मागध सम्राट का जिस धोर संकेत या गणसंबाहक उसे भसी भांति समझ,  
तनिक समझ कर बड़े हो गए । फिर सहायक रंग में बोले—“धार्य सामन्त मंत्रदेव ने  
अपने जीवन के पूरे लक्ष्य एक वैशिक के रूप में बिताए हैं । यद्यपि वह वैशाखा  
राजनीति की बटिक भाषा को क्या समझे । यद्यपि कुमार कोणिक का जो भी  
प्रस्ताव है धार्य उसे निस्संकोच मान ले स्पष्ट कर में कहने की कृपा करें ।”

उत्तर में सम्राट् बर्षकार ने पहले जैसे अपना कण्ट साध किया फिर बोला—  
“किन्तु धार्य उससे पहले दूत को स्पष्टोक्ति का अधिकार मिलना चाहिए ।” यह कह  
उत्तम मणसंबाहक की धीरे धीरे दृष्टि से देखा । उनकी मुसमुसा पूर्ववत् मन्त्री  
की कित्त नेत्रों से उत्सुकता का स्पष्ट आभास मिल रहा था । बोले—“धार्य धार्य  
स्त र्हे ।”

तब मागध सम्राट् ने उनका अत्यंत सपीय वा गुप्त मंत्रणा के से धीमे स्वर में  
कहा—“धाय कुमार कोणिक ने कहा है कि यदि मणसंबाहक सामन्त मंत्रदेव  
नखा बेटक के हीद्विधों—

हृय-विहृय—की सहायता न कर मुझे सहायता प्रदान करें तो उतका बहिष्करण के एक  
उपाधिकार सम्मन राजा के रूप में अधिकार किया जा सकता है और स्वयं मगध  
साम्राट् कोणिक अपने हाथों में उनका राज्याधिकार करेंगे ।”

मागध दूत ने जैसे पुनः कहने का प्रयास किया । बोला—“धार्य कुमार कोणिक  
न यही कहा है कि यदि मणसंबाहक सामन्त मंत्रदेव नखाध्यम राजा बेटक के हीद्विधों—  
हृय-विहृय—की सहायता न कर मुझे सहायता प्रदान करें तो उतका बहिष्करण के एक  
उपाधिकार सम्मन राजा के रूप में अधिकार किया जा सकता है और स्वयं मगध  
साम्राट् कोणिक अपने हाथों में उनका राज्याधिकार करेंगे ।”

मणसंबाहक ने जिस प्रकार के प्रस्ताव का अनुमान किया था ठीक वही उनके  
सम्मुख प्रस्तुत था । फिर भी उसे सुन बह्ममन ही मन चकित हो रहे । परन्तु प्रकट में  
देखा कोई भाव न दिखा अंतर में पर्याप्त समय से कभी कभी की मारी हुंकार के साथ  
बाहर छोड़ते हुए बोले—“धार्य कुमार कोणिक का प्रस्ताव निस्संदेह महत्त्वपूर्ण है  
और विचारणीय भी । परन्तु फिर भी एक बात में धाय के सम्मुख स्पष्ट निवेदन कर देना  
चाहता हूँ और वह यह है कि वैशाखिक अपनी पासन पद्धति के प्रति अत्यंत भावुक  
हैं यद्यपि इस दृष्टि से कुमार कोणिक ने मेरी धमिन का मूल्यांकन करने में अक्षय ही  
आगे मूल की है । वास्तव में मैं स्वयं यह समझने में असमर्थ रहा हूँ कि इस प्रसंग में  
जमा में किस प्रकार उनकी सहायता कर सकता हूँ ।”

मागध दूत ने उत्तरणा से कहा—“कुमार कोणिक ने वह भी उपाय

है धार्यवर ।”

“बहु क्या है, धार्य ? प्रश्न के उत्तर की धमिलाना है गणेशबाहक ने उत्तुक बृष्टि से मायब धमार्य की घोर देखा । मागब वृत्त ने भी उनकी घोर देखा । फिर अपने मुँह को घबराहक के कानों के धरयत समीप से जाते हुए बर्षकार ने कहा—  
“धार्य बैद्यन्ती की वर्तमान ज्वलंत समस्या गृह युद्ध के लिए पर्याप्त है । कुमार कोशिक का अनुरोध है कि धार्य इन घबराहक का धनस्य लाभ उठाए ।

यह कह नामक वृत्त कुछ पीछे हटा । तनिक रुक पुन बोला— धार्यवर, कुमार कोशिक न कहा है कि गणेशबाहक धार्यवत्त रहे ही स्थिति का मैं स्वयं सम्मान लूंगा ।’

वृत्त बर्षकार के मुँह से कुमार कोशिक के इस प्रस्ताव को सुन गणेशबाहक पापाय मूर्ति की भीति निरवश बड़े ही बए । ध्यानरु हो मानों प्रस्ताव पर गम्भीरता से विचार कर रहे हा । धीर उनकी सम तात्कालिक धुआ विषय को देख नामक वृत्त के लिए झिंझी भी निरवश्य पर पहुँचना कठिन प्रतीत हुआ । फिर भी उसने धनु मान लगाया कि गणेशबाहक इस समय धनस्य ही कोई निर्णय करने की स्थिति में पहुँच बके है । अतएव धनुकुल घबराहक समझ उसने प्रस्ताव को धीर धार्य बढ़ाते हुए कहा—“धार्य भावकता राजनीति की सबसे बड़ी कुर्वन्तता है धीर संकीच अवधि में बाधक है । धरय की वधि के प्रवाह को रोकना सबसे बड़ा धर्मिक है । धार्य समूचा धार्यवर्त इस समय एकसत्तात्मक शासन पद्धति की घोर घबराहक है । केवल घबराहक ही नहीं बरन् बहुपक्ष के प्रथम अंकि के समान धार्य बड़ रहा है धीर उसकी वधि को रोकना धन धनस्य है । धीर धरि किसी ने घटे रोकने का प्रयास किया भी तो धार्य धार्य भी जानते हैं समय की वधि बड़ी बलवान है जिसके समुच्च सभी को संतत नष्ट मस्तक होना पड़ता है । धार्य हम धार्यवर्त में धन केवल बर्षिकसंघ धीर मन्त्रदेव ही तो देने रहे वये है जो धनी भी अपनी पुरानी विधी-विधी परम्परा से मुक्त रहे हैं धीर इस प्रकार धार्यवर्त की धनस्यता के प्रति भावा स्वस्य बने हुए हैं । धार्य बिस्वास रखें एक सत्तात्मक प्रणाली ही ऐसी है जिससे इस समूचे बन्धु नृणाधीन का कल्याण एवं मुक्त समुच्च सम्भव है अतएव धार्य धरि कुमार कोशिक के प्रस्ताव पर सम्मीरता से मनन करें तो धनस्य ही हम निरवश्य पर पहुँचने कि अंत में न केवल धार्यका धरना बरन् बर्षिकसंघ का भी केवल बर्षिकसंघ का ही नहीं बरन् समूचे बन्धु जीव का कल्याण है । परिधोत्तर की घोर से होने वाले बिर्षानियों के धार्यमलों की देखते हुए भी यह सब कुछ नितागत धार्यवर्त है । धार्य यह देना बलिनी की एक प्रवन्तक मान है धीर बहुहम संतत स्वीकार करनी ही होनी ।” यह कहते हुए यह तनिक रुका । फिर मानों कुछ लोचता-ला बोला—“धार्य बिस्वास रखें बर्षिकसंघ धार्य ही के पास रहेगा धीर उसके राज्य बिहासन पर भी धार्य ही मुसोजित होंगे । धार्यके परचात् धार्यवर्त धार्यवर्त उतका उपभोग करेंगे । धोह धार्य धार्यवर्त का भी क्या ही मुन्दर नाम है मानो समय की पुकार ने स्वयं उनका नामकरण किया हो ।”

दत्तुर्षबाहक इन पर तनिक निराशा का भाव प्रकट करते हुए बोले—“परन्तु धार्य की बर्षिकस्य यह बिर्षित नहीं कि मैं धार्यवर्त धार्यवर्त की घोर से किठना

उदासीन है। तनिक रुक, एक निरबाम के परचात् फिर बोले—“धर्म पास्तव में उसका कोई भी तो ऐसा धारण नहीं जो बैसाखी का कहा जा सके धरएव उसकी पोर ने निरंतर चिन्ता बनी रहती है।” वह कहते हुए वह कुछ धिक्क मन से चम्पा पर बैठ गए।

मानव दूत बोला—“धर्म तो सामुझान् की घोर से भय ही उदासीन है। सामुझान् केवल महत्वाकांक्षी ही नहीं दूरदर्शी भी है। धरएव यणधामन पदति के प्रति बैसाखीकी भी भावुकता को वह केवल मूर्खता समझते हैं। यदि उनका दय करने को वह एक क्षण में ही उसका सामुझान् उन्मूलन कर उसके स्थान पर समय क सामुझामन प्रतीक—एकसत्तात्मक धामन को प्रतिस्थापित कर दें। वह इस विद्या ने प्रयत्नशील भी है धर्म से कदाचित् वह छिपा नहीं है। वह केवल उचित धननर ही भी तो प्रतीक्षा में है। धाम जाहें ता उन्हें सहयोग प्रदान कर उनके लक्ष्य को उन्नत बन सकते हैं। और धर्म उनका यह स्वप्न उनके उन्नत कुच गीरन के समुह ही तो है। उनकी समनियों में धर्मियों का हो तो रक्त प्रवाहिन है। यदि उन्नत चम्पी का उन्माप धर्मिय नहीं करते तो चला क्या हम चाहण करते ?”

वह चुन लखसंवाहक की रक्त समनियों में भी एक बारपी उन्माह का संचार हो पठा। परन्तु किम विद्या में यह समुमान लगाना समभव था। उनके प्रनीत मुक्त एवं समोचित मनों को वेक धामन दूत ने समस्त चलो धरना कार्य समाप्त हुआ। फिर भी वह कुछ समय तक यीन रहे लखसंवाहक के मुख की घोर देखत हुए तथा साक ही उनके मुख से परिमलित होती दूध-सदृश मनोभावों का सम्ययन करते हुए किसी निष्कर्ष विधीय पर पहुँचने का प्रयास करता रहा। अन्त में पीठिका से उठ बोला—“धर्म एक इस सेवक को जाने का धारण करे, पर्यन्त विनम्न हो गया प्रतीत होता है।”

लखसंवाहक की मारों विचार उन्नत भंग हुई। विह्वलते हुए बोले—“धर्म को चला ने किम अधिकार से धारण कर” मेरा अधिकार तो केवल धम्पापत की सेवा करना है।”

मानव दूत ने मठमस्तक ही कहा—“धाम के स्वाकत भाव को दैक में निरिचत ही बनून् हुआ है। धरएव उसके लिए हृदय से सामापी है।”

लखसंवाहक के पूर्व की ही भाँति विह्वलते हुए कहा—“वह मेरा सीमाध्य है धर्म।”

मानव दूत ने चलते चलते कहा—“धर्म के इस सहज सीन समभव को देख चला कीन ह्वित न होना। मैं धाम का धर्मिधावन करता हूँ।”

लखसंवाहक वहीं खड़े रहे जाते हुए मानव दूत की घोर देखते रहे। उनके मंतर से बनान् एक बखान बाहर फूट निकली जो पर्यन्त समय तक कक्ष में मारों बँधरानी रही। एक बार तो वह जैसे निव के ही विचारों में यथनीत हो उठ। फिर धाम को ही मुनते हुए बोले—“अजरेन मानव दूत डीक ही कहता है समय तकपुच क्या समभव है।”





अप्य विना की प्रवेष्टा घात धाचार्य द्विप्य मय्याहोपगत समय से कुछ पूर्व ही अपने धाचार्य की घोर जोर लिया। उसका सुपरिचित धरक—काम्बोज—नगर के मुख्य राजपथ पर सरपट दौड़ता जाता था रहा था। नूँ अचक्रे इस धरक की गति को धन्य विना की प्रायः ऐसी ही दौरी की परन्तु धाच यह विचिचल रूप में घटा-घारण प्रतीत हुई। घट प्रायपथ पर घाते जाते नागरिक जनकी घोर केवल विस्मय से देखते रह गए।

ऊपर छान्नी पर बँटी मंत्रिका ने भी धरक की यह चापी का दूर ही से पहचान लिया। गति का अनुमान लगा यह कुछ अचिचल ही लगी। कभी-कभी उत्सहित भी हो लगी। वास्तव में धरक की पड़ती हुई प्रत्येक पद चाप के चाप जनको मनोबद्धा परिवर्तित हो लगी। घट में वह न जाने क्या कुछ बीच उत्परा से द्वार की घोर बढ़ सी।

धाचार्य द्विप्य धान निरस्तदेह उल्लाह के धानेन में था। द्वार मंडप के सम्मुख पहुँच चलने अपने धरक को बन्धा लीचते हुए रोना घोर अपने शक्ने ही वह धानेन कीचि दूर पड़ा। बन्धा को भी धरक की ही पीठ पर केंद्र विधा फिर बन्नेह उलकी पीठ को कुछ पपपपाया की। उत्पराहाह लगी उल्लाह धानेन में वह धाने धाचार्य को घार बढ़ लिया।

मंत्रिका को सम्मुख देख वह उत्सहित कण्ड स्वर में बोला—“धुने। मुना दूने देवी द्विप्या की अट्टालिका के प्रायया में धन नित्य ही संग्रह धनाक लपा करेवा।”

यह यह यह एक धान सुलभ ह्योस्ताह की ली धर्मन में ‘धनी लपा करेवा लपा करेवा’ की रट लगाता धान लीकता लानी पीठता हुवा नृत्य करन की उत्तर ही लटा किन्तु ऐसा कर नहीं लका। उल्लाह के धानेन में बस मंत्रिका की मुवाधे को बबोध लटा। फिर लठे धारादपीर्य म्मम्येरेते हुए पूर्व से भी धनिक धमपते बन्ध स्वर में बोला—“देवी देवी द्विप्या का नृत्य लपधुध धनुयम है। लनी ने ली लठे मुलत बन्ध से लराहा है। लकली धान सर्वन लर्वा है। घोर मंत्रिके यह हुनारी महान् विजय है।”

“घोर धाप ली केवल लराहा ही नहीं रहे, लरन बीरा से ली गए है।” मंत्रिका के मन में धाया, धाहृष कर यह कह है किन्तु इस समय केवल लठके लैव मुकटा कर रह गए। धीप मुक पर बिभ्रता का नाच लयर धाया। ली ली धाचार्य

विषय जैसे पूर्व से भी अधिक प्रसाह का अनुभव कर उसे मरुभोर उठा। मरुभोरसे हुए घुसने लगा— 'क्यों घुमे घाब तो तुम भी जलोयी न ?

मंत्रिका का हाव मन स्पष्ट रूप में बूझता से वह उठा— "नहीं" —पर उसके मुँह से जैसे अनात् निकल गया— घबराव जर्मनी आचार्य विषय बदरप जर्मनी आचकी देनी विषय का नृत्य घोर में न देखूँ मसा यह कैसे संभव है !'

मंत्रिका के मुख से यह मुन आचार्य विषय का हृदय मुबमुबा पूराविन में हिमोर उठा उस हिमोर में वह झूम-सा गया। घोर, भावातिरेक में उसने मंत्रिका को दूध आसिभन पाठ में हटेक लिया। उसे अपने चिर से भी ऊपर उठा उछामठा सा बोला— "घुमे तुम सबमुच बढ़ी घबड़ी हो।"

घोर चिर उठी आयोग के साथ वह मंत्रिका को अपने पास से मुक्त कर सोल्मास कम की घोर हीड़ लिया।

कुछ समय पश्चात् जब आचार्य विषय स्नातागार से लौटा तो मंत्रिका कम में ही थी। घाब उसने न केवल अपनी बेहू पर लुहचिपुर्न बरन बारण किए ये बरन् आचार्य विषय के लिए भी अपनी ही एचि के बरन निकाले थे। उन्हें व्यस्तित्व करते हुए उसने तनिक आचार्य विषय की घोर देखा फिर कहने लगी— महाप्रभो आपको चितनी बार कहा है कि न तो यह उमाधिमा है घोर न आचार्य बहुनास्व की विद्या पीठ ही बैचारी है—बैचारी।"

वह अपनी कुछ घोर कहा जाहती थी कि आचार्य विषय बीच ही में उत्परता से बोस उठा— 'क्यों घुमे मसा यह कैसे संभव है ? पहली बार ही तो कहा है घोर यह रही हो कि कितनी ही बार कहा है।

मंत्रिका ने किञ्चित् मुस्करा कर कहा— 'यह संभव की मून नहीं आचार्य विषय बरन् अपने सुना नहीं होगा। हर समय कहीं प्यान जो मटका उछता है।"

'मसा कहां ?' आचार्य विषय ने नतममता मंत्रिका के मुख पर दृष्टि पकाले हुए मुडुम जम्ब स्वर में उत्परता के साथ पूछा। फिर तनिक रुक बहुपुन बोला— "घुमे तुमने कहा हो घोर मेने न सुना हो मसा यह संभव है ?' फिर उसक घोठों के पास अपना मुख ले जा आसक्त बीने से कहा— 'जब समय घिये तुमने अबस्य कहा होगा पर नग ही मन कहा या ना ?

आचार्य विषय के मुख से निकरी सहज हस्के निरवासों का स्पष्ट या मंत्रिका के भीबबोव्य कपोलों का अक्षयिम रग सातिमा में परिणत हो उठा पाठ गुडगुडा-सा बदा घोर समुबा अंतराल एक उच्छ्वास बिजये का अनुभव कर स्फुरित हो उठा। बरन् साथ ही जैसे अज्ञे मज्जा के भारी बोझ से नत हो रहे कपोलों का प्रपाङ्क रंम आरुण फँस कुछ मुस्करा सा गया। उत्तर में उसने कुछ भी न कह केवल हस्के से चिर दिना दिया जर्मनी उम्मुस्त केरा रागि मुककी घोर हुपक सी गई। यह देल आचार्य विषय जैसे हलप्रम हो उठा उसकी दृष्टि एक बार जो मंत्रिका के मुख पर पाकर टिकी तो वह कम दसचित्त होकर ही रह गई। बरपना भी रुक जैसे धाम्मठाउ करने के लिए मचत थी गई। मंत्रिका भी घोर मुण घामा पर पड़ी वयामत केरों की छाया जये सोणर्ये है इन मनिवीप जगत में एक समूह संधि प्रतीत हुई ऐसी धमूद कि

शिसमें धनुभूति मारी हलनन का अनुभव करके भी बस ठपी-ठी रह जाती है। एक साथ ही वह न जाने क्या कुछ कहने को धमिमूत हो उठा परन्तु कहीं उसके परचाप भी कहने से कुछ रोप न रह जाए, इस भय से वह उसे भी जो मन में चाया था प्रकट न कर सका। धत वह भीन रहा भीन रहे ही सीम्वर्य की प्रस्तुति होती किरणों को भागों अन्तर में उठारता रहा।

धम्वत वह उठ उठा हुआ। उसके मंभुभियाँ घनायास ही संबरिका के मुख पर पड़ी केच-रेबाधो मे उलझ, उसे हटाने में व्यस्त हो उठी। संबरिका के बोधिन पलक भी उठ रहे केचो की मीनी स्पामल घोट में से उसके नेत्र जैसे मप्रपात निस्स कोच भाव से झाक उठे। उसकी पुरित-रियर बुष्टि के समुच्च प्राचाय शिष्य का जैसे सभी कुछ परास होकर रह गया। परास कण्ड स्वर में वह भीने से पूछने लगा— 'प्रिय, सच बताना मन ही मन मना कियेनी धार कहा था कभी तुमसे स्पष्ट क्यों नहीं कहा ?

संबरिका अब आरम्भ का अनुभव करके भी संकोच से शिमटी लड़ी थी। किन्तु इस बार प्राचार्य शिष्य के मुख से निमसा परिसमित करते प्रश्न को सुन उसके मुख पर किन्तु चपलता का सा भाव रोच उठा। फुसफुसाते से कण्ड स्वर में वह बोली—'एक बार भी तो नहीं कहा वह तो मैं ही मुख से निकल गया था।'

प्राचार्य शिष्य को जैसे इस पर विश्वास नहीं हुआ। परन्तु यह ऐसा धमिस्वास था जिस पर उस सहज ही में विश्वास नहीं हो सका उसे मन पर अपना कोई भाव निरोप धीर प्रमाइ हो सफल हो उठा। प्राचार्य शिष्य की मुख धामा भक्ति नहीं बरन् प्रदीप्त हो उठी। उन्मथित कण्ड स्वर में वह कह उठा—'मूठ देवी एक बम ही तो मूठ कहती हो।'

संबरिका के मन में चाया कि वह जोर से बिलबिताई उस पड़े धीर हँसती रहे पर वह हँसी नहीं। अपनी मुख सुत्रा को पग्मीर बना जैसे साजिनम सहज भाव में बोली—'प्राचार्य शिष्य विश्वास करो मे मूठ नहीं बोल रही।'

प्राचार्य शिष्य उसके नेत्रों में झाँक उठा। बाता—'देवी यदि इस बार बानी बात सत्य है, तो फिर गहरी बानी निरन्ध्र ही मूठ हुई। यह अर्थमय है कि दोनों सत्य प्रथवा मूठ हों।'

संबरिका के मुख की चपलता धीर प्रमाइ हो गई धीर वह चमने को उद्यत हो उठी। किन्तु प्राचार्य शिष्य ने उसका हाथ पकड़ छोड़े बरन्ध्र रोक दिया। समिच दिईस वह बोली—'धम्वत देवी तुने जो कहा मैंने नहीं मान लिया है।'

संबरिका भी धामे न बड़ बस नहीं लड़ी हो गई।

सहसा प्राचार्य शिष्य को ध्यान धामा कि उसे तो तुरन्त ही देवी शिष्या की घट्टासिका की धीर नीटवा था। धत कुछ धम्व हो उठा। बाता—'पर यह तो बिलम्ब हा गया देवी। देखो तो मय, देवी शिष्या गया गहरी होयी।'

यह सुन संबरिका जैसे क्रिया बाधा का अनुभव कर उठी। उसके धीर का सारा धम्व-मपाह भिन्न हो उठा। धम्व-धम्व शिषिन हो गए तथा मुख धामा निरन्ध्र हा गई। विरुध्य हृदय में उसने बहुत कुछ कहना चाहा किन्तु स्पष्ट भाषा

के धमाक में बस मौन ही रह सकी । पर वह मौन भी ध्विक बेरन टिक सका । बोली—  
—“धाचार्य दिव्य अभी तो मुझे कुछ समय धीर भगेवा घत जब तक धाय प्रस्थान  
करें ।”

वह सुन धाचार्य दिव्य भी कुछ खिन्न हो उठा । बोला—“मुझे विमन्त्र  
धमस्य हो रहा है देखी परन्तु इतना नहीं । तुम्हें धाम मेरे साथ चलना ही होगा । या  
ठिर यदि कोई धम्य संकोच हो तो वह दूसरी बात है ।”

मंत्रिका उत्तर में कहना चाहती थी—“धाचार्य दिव्य भना धीर संकोच बना  
होता धीर जो संकोच है वह मैं कह भी तो नहीं सकती । इसी मध्य उसके मुख से मनों  
बसात् निकल गया—“धाचार्य दिव्य मैंने तो केवल विमन्त्र के कारण ऐसा कहा  
सच्चा समान तो अब प्रति दिन ही भगेवा घत में किसी धीर दिन हो बसा बतूनी ।”

धाचार्य दिव्य उसकी धार देखते हुए बोला—“धीर देखी मेरी मनोकामना है  
कि धाय धाम ही बचें विमन्त्र होता हो तो होने दो ।”

मंत्रिका का मन जैसे क्षिप्त उठा ।

किञ्चित् समयान्तरात् गण ध्वज कहणता पुरक सुरला प्रदान का रय जब भेटी  
प्रासार से निरुत्त, बाहुर राजनय पर धाया तो उसने धारने को सचन बन प्रब ह के मध्य  
पाया ।

बैधासी ने अब कदाचित् ही कोई ऐसा व्यक्ति रहा होगा जो धाचार्य दिव्य  
को न पहचानता हो सभी उसके जय-जयकार कर उठे धीर वह सुने रय में सब  
का धमिवादन स्वीकार करता खड़ा हो गया । उसके मुख पर इन समय परोक्षित  
नाभीय विद्यमान था जो नागरिकों के जयजयों के मध्य जैसे क्षिप्त उठा । धस ही  
बैठे मंत्रिका इन दृश्य पर मन ही मन मुग्ध हो बर्ष अनुभव करती रही पर उसके  
नेत्र जन-दृष्टि के सम्मुख उठ न सके । कारण सभी नागरिक उसकी धीर विस्फुरित  
मनों से देख रहे थे धीर फिर उसी दृष्टि से धाचार्य दिव्य की धीर भी । गण  
महानगरी के इस गण प्रमी-मुगल को देख सभी के नेत्र लघोस्मास से शीघ्र हो उठे,  
उनके संस में कौतूहल जाग उठा ।

धाचार्य दिव्य भी नागरिकों के इस माध विधेय को समझे में असमर्थ नहीं  
रहा । घत धमिवादन के धादान प्रदान में पूर्वत-ध्वस्त होकर भी उसके नेत्रकोर  
धमसर या पदा-कथा मंत्रिका की धीर देख लीते । उसके मुख पर इस समय कुछ  
धाह्वार कठ पव धीर कुछ संकोच का धन्मुत मिश्रित भाव ध्याप्य था । पर, कभी  
कभी धाचार्य दिव्य के मन में उठी एक संका भी उसे सहता झिम्मेड़ सी जाती । तब  
वह सोचने समता—“पता नहीं बंधुवर सिंह को यह सब कुछ कैसा द्ये । संभव है वह  
कुछ भी हो बैठे धीर कहने समें ।

धेनापति सिंह धाचार्य दिव्य के धयत्र बुद बंधु से धीर इन माते वह जनका  
धार्थ धार करता था । साथ ही उसे जनक धन्मुख धार्थ संकोच का भी अनुभव  
होता था । घत जब भी यह संका उसके मा में उदित होती वह विहुर-या उठता ।  
उत्थल उठे प्रतीत हाता जैसे बंधुवर सिंह उनके सम्मुख धड़े उठे विचार रहे हों  
धीर कह रहे हों—“जनों धायुष्मान यह विरवाधपाठ नहीं तो धीर क्या है ? उनकी

सह प्रताड़ना सुन वह कल्पना ही कल्पना में उनके सम्मुख विनीत भाव से ततमस्तक हो पड़ता और कहता—“धाम सगा करे, किन्तु विश्वास रखें मेने स्वयं ह्रममें कुछ नहीं किया मैं समझे, बस धनायास ही हो गया है।

यह सब कुछ सोचते विचारते हुए ही वह प्रागे बढ़ा जा रहा था। उसका एक बँसे स्वतः मेजरिका का उसके साथ लिए जाने बड़ा जा रहा था और ज़री के बेग में वह एक प्रसहाम भी गाँठि यह सब कुछ सोचता विचारता प्रागे बढ़ा जा रहा था। किन्तु राजपथ के गतिशील बन प्रवाह ने उसे विचार उग्रा में नहीं दूबने दिया। अन्तर में हम्स होते हुए भी वह धारमान हा उनका अभिचारन स्वीकार करता रहा।

बास्तव में पौरजनों ने फिर से नियमित नृत्य समाज अपने की घोषणा क्या सुनी जैसे पस महानगरी का कोई खाँवा बीमर ही लोट पाया। राजपथों एक बीबियों में सब बीमर का सचार हो उठा और मुख्य राजपथ पर ? उस पर तो जैसे कोई समारोह स्वयं सज्जन कर भूमिधाम के साथ हर्षोन्माय और उस्ताह के धारि में बड़ा चला जा रहा हो। साबेन बीहठे रवों की गड़गड़ाहट, सरपट भागते घसों की टाल पुर्न पदबाप तथा पैदल चलते नागरिका का घोस्ताह बान्ताय और फिर उठ पर छाया हुआ एक नही अनेक प्रेमी युवसो का मदमाता उच्छ्वास हास-परिहास और उठमें से दबा कया गूबते धन्डू हँसी के ठहाके इस सबको देख धारार्थ सिध्द मन ही मन बर्ष का अनुभव कर उठा और हृषित हो उठा यह देख कि आज धंतत महानगरी के कम्मकर भी साहस कर तटबची न कर इन गतिमान प्रवाह में उहसा उठर जाए हैं। स्वेर बन से सजपथ उनक सरीर पर इस समय भी बीर्न-धीर्न बस्त्रों को देख तथा यह देख कि उनके मुख पर अभिभक्त का भाव व्याप्त है उतका हृदय मारी टीस से कपाह उठा। और धन्स पौरजन कम्मकरों के इस प्रवेध पर विस्मित हुए बिना न रहे। किन्तु वे केवम विस्मित होकर ही रहे पए, उन्होंने कोई प्रविरोध नहीं किया। और कौटारो पर पाटों को बीठे हुए कम्मकरो ने जब इस घोषणा को सुन एक हुनरे के कान में कछ कुनफुगा उस्ताह का ना भाव दिहाया तो सेट्टी निरतिबक उन्हें समकारता हुमा साबधान कर उठा। सेट्टी बनबप की कर्मचामा में भी टीक बीठी ही स्थिति बन धाई। कमाँठी पर कार्ब व्यस्त कम्मकरो को यह भूचना कछ बेर से मिली और तब तक अभिजात समाज के तामन्त बन अपने बर्मे प्रतोरीं को हाथ में सम्हाल उन्हें पटकारते धरबाकड़ हा वहाँ पहुँच चुके थे। किन्तु कम्मकर प्राय जैसे हूत सफ्म्य थे। हा में सनसनात प्रतोरो की धार्तिकि करती कर्कष ध्वनि पुनकर भी उनका उस्ताह मंद नहीं हा तथा बरन पिछली रात्रि में ही प्राचाम धिध्व के हाप कही गई कोई बात उनके धंतमस्त में धरिधाधिक बेग हैं साथ नून ज़री और धंततः ध्वनित हा ज़री वही उनके मुख में भी। उनका मुख आज सर्व प्रथम रूप से अपने अपने स्वामियों हैं गम्भुब सुन साहस कर कह उठा—“स्वामी यदि बालों के इन मत्तुराम्य में भी ह्यारे धन्डर सोया मानव न जाय सजा ती फिर भला हुमारा और वहाँ उठार हो सनेगा ?

और बीबी-मुख के इस धोर मुन्न राजपथ पर इस समय की बहून पहन का जला क्या बहना। जम प्रवाह वहाँ धनरख हा सजम हो उठा। और इन सजमता में

यदि यत्र-तत्र छिटके प्रमी-मुगल अपनी विभिन्न भाव भविमाया के कारण धारक्यण के पात्र बने हुए थे तो बुरी घोर दासी कन्याएँ, जो पर्याप्त बिनो पश्चात् केत अपने उद्यम के कारण दासा से उत्सर्गित हो उठी थीं । यथा सामर्थ्य रंग बिरंगे वस्त्र धारण कर वे योवतोष्णाह से भरे कण्ठ स्वर में पुकार पुकार सभी धात जाने नागरिकों का ध्यान आकर्षित कर उन्हें अपनी घोर समेटने में व्यस्त थी । यद्यपि एक-एक को कई-कई उच्छ्वसित प्रमी मुगल धरे लड़े थे तो भी जैसे उन्हें संतोष नहीं था ।

बूढ़ी बैसा चमेली हरगुजार प्रादि प्रादि के खिल पुत्रों एव उनकी मीनी-मीनी सुवास से दासी कन्याओं की प्रतिभा मरमा ली उठी । अपने नेत्र हृषित से वे दूर लड़े दुविधा प्रस्त मुगल को अपनी धार लीचने का प्रयास करती मुख से पुप्य-जूड़ा प्रपवा मातापों का माध ताव करतीं घोर यश-कश प्रेमी मुगल के पुस्य पात्र क किसी परिहास का विह्वलती भाव भविमायों से उत्तर भी दे उठतीं ।

आचार्य सिष्य न भी नेत्रहोरो से हम सजीव वृष्य को देखा । मन में एक हिलोर-सी भी उठी । हिलोर की एक तरफ ने जैसे बचात् उसे उस धार बकनेने का प्रयास किया । वह मंत्रिका का हाथ पकड़ रच से नीचे कूबने को उद्यत हो उठा परन्तु सभी पशोचित मांभीर्य ने उसे जैसे बरबस रोक लिया । उनसे मंत्रिका की घोर देखा । उसे लगा जैसे वह अपना कोई लोम मंत्रण नहीं कर पा रही है । प्रत-मारी मन से वह प्राये बड़ता रहा । घट में बस को स्वामाविक मति में पशोचित मांभीर्य पर निजय पाई, रच भी सहुना रुक गया और वह मंत्रिका का हाथ पकड़ नीचे उतर लिया । रच क्या कका भीड़ ने उन बोलों को बेर लिया ।

मार्य प्रवस्तु हो उगा ।

आचार्य सिष्य अपने को हम प्रकार बिनोन्मत्त उरनाही भीड़ से बिरा देव उदात्ता का अनुभव कर उगा और साथ ही संकोच का भी । किन्तु, उसक मुख पर जैसे बरबस एक मुस्कान फैल गई । उन समुदाय में होते हास-परिहास पर मन ही मन मुस्कणते हुए उनसे अपना हाथ मंत्रिका के कण्ठ पर टिका दिया ।

मंत्रिका का मात गरिमा-सा गया ।

वह एक साथ ही न जाने कितने मंत्रियों का अनुभव कर उठी और एक रुच-विविता की भांति वह उमपते पैरों से प्राये बड़ ली । आचार्य सिष्य भी जानों सभी के सहारे एक दासी कन्या की घोर बड़ता रहा । दासी कन्या एक मुगल क साथ इतनी भीड़ को घाते देव धारक्य-विकित हो उठी । मंत्रिकात् वह इस समय आचार्य सिष्य को पहचानने में प्रसमर्थ रहा । कारण प्राय उनसे मंत्रिका के विशेष अनुरोध पर ब्रह्माणिकों का उच्छ्वाप धारण किया था और उसमें उनक प्रस्तर केस तो बुबक ही गए थे मुख भी कुछ-कुछ परिवर्तित हुआ सा दीव रहा था । और मंत्रिका ता एक प्रकार से उनक तिए आरिजिना की ही । हमने पूच यदि वह अपने किसी प्रेमी क साथ घाई होती तो पहचान भी लेती । यकिनांग मापारेक भी कदाचिन् उसे पहचानने में प्रसमर्थ रहे । किन्तु वेबन कुछ दिन पूच ही अभिजात समाज द्वारा मयर में प्रचारित एक समाचार विरोध के सापार पर लहूँनि अनुमान लगा लिया हा न हो वह महातीर सेणिय रण को बहिन मंत्रिका ही है । कुछ भी हा पर, यह मुगल मुन्दर बन गया है

नागरिक मन ही मन कह उठ। बकेबल अपने से ही यह कह कर समुप्ट नहीं हो गए, परन्तु संकेतों में उन्होंने यह एक घुसरे से भी कहा। बैशाखी में किसी भी नए प्रेमी युवक को बाब से बैसना और उस पर अपना मत अधिभक्त करना, जैसे एक परम्परा बन चुकी थी।

धीरे इस समय सभी एक झुसरे को बपल भाग से हाथ की कोइली मार मारों घाबमान करत समुप्ट के एक दुबल का देखने में व्यस्त थे। आचार्य शिष्य के मुक्त पर संकोच का भाव प्रयाह हो उठा। आकर्षण सारा भाग अक्षुण्ण हो गया। फिर भी बंदि यह सप्रवास किन इयित का अवलम्ब से मंत्रिरिका से कुछ कह रहा था। वह क्या कह रहा था उसे मंत्रिरिका क्या समझ रहे थे। वह बैस भीड़ में से कोई, सहसा सोस्वाह कण्ठ स्वर में यह उठी— 'क्यों सभी क्या तुम्हारे इन्होंने बाब मील बत पारस किया है। वो बोलते नहीं।'

यह कह वह अज्ञात यौवना अपने घास पास की मीड़ को बंदि बलात् बकेल उठी और बढ सी।, किन्तु तब तक मंत्रिरिका प्रफुल्ल पुण्यों से अर्पित एक बूड़े पर अपनी समुची रख चुकी थी। बगम बर्खा बासी कम्पा ने उसे उठ घाचार्य शिष्य की धार बढा दिया। धीरे, प्रणव नियमों से सर्वथा अधिन्न आचार्य शिष्य ने उसे ने सतं कोच मंत्रिरिका की धोर बढा दिया।

सभी उपस्थित जन इस पर खिलखिला उठे। समुस्त हास्य की इस ध्वनि से आचार्य शिष्य भीचबका-सा रह गया। मंत्रिरिका अरबस समझ गई परन्तु समझकर भी जब उसने बूड़े को अपने कोभापास पर बाँधने के लिए हाथ उठाया तो पास ही खड़ी उस अज्ञात यौवन ने मुफ्करा बलात् उन रोक दिया। बोली— 'मन्त्री यह क्या ? मदी यह घुरखा प्रयाग है तो क्या हुआ ? प्रलय पर भी क्या धब उनका आदेश बसेया ?'

इस हस्तधेन से मंत्रिरिका का हृदय घुबनुवा उठ। आचार्य शिष्य कण्ठ लबा सा गया। अज्ञात यौवना ने इस बार आचार्य शिष्य की ही धोर इयित केर सोस्वात कहा— 'सौम्य मुक्त। यह आचार्य बहुलावन की विद्यापीठ नहीं बरन् बैशाखी है वह बैशाखी जिसने प्रणव के अयन नियम है। क्यों की अय्यीपुरी के कैच पर बूड़ा बाँधने में आपको संकोच क्यों हो रहा है ?'

आचार्य शिष्य उत्तर में केवल मुफ्करा दिया। धीरे फिर मंत्रिरिका के हाथ ने बूड़ा ने उसके कैठपास पर बाँध दिया। सभी उपस्थित जन इस नास्ययुक्त घुबल पर करतम ध्वनि कर खिलखिला उठे।

इसी मध्य अज्ञात यौवना के साथ पाया प्रेमी युवक हँगत हुए बोम उठा— 'आचार्य शिष्य बैशाखी में सुरखा प्रयाग के पत्र का भार बहन करना अत्यन्त बरन है परन्तु इनकी यह सीना तो बस अपरम्पार ही ममका।' यह बहते हुए वह उसके शरीर ही पहुँच गया। फिर बोला— 'अधर इममें घधीर होने की कई बात नहीं र्थ रकी र्थ र्थ सब अन्वस्त हो जायोगे।'

आचार्य शिष्य इस पर तनिक भुम्कग बोसा— शिष्य बन्धु जब धाप बैसा उबार सहायक बैशाखी में विद्यमान हो ता मजा घधीर होने की क्या आश्चर्यकटा है।

जब वह पहले एक बार मेमबारी से उसके साथ साईं घायल यौवन को देखा और फिर मंत्ररिखा की धीरे दृष्टि केर बोझा—“देवी कम से कम तुम्हें इनका धन्यवाद तो करता ही चाहिए। देखो तो सुममुत्ती में श्रीधर्म और चपकटा का क्या ही धन्यवाद मिलए है।”

मह सुन, वह घायल यौवना लम्बा गई। मंत्ररिखा भी संसंकोच मुस्करा उठी। और शाली कन्या धमी भी हृत्प्रम हुई आचार्य विप्य की धीरे देख रही थी। फिर कुछ पर्व का सा अनुभव कर उठी। वास्तव में उनका नाच होते इस हास-परिहास से जैसे उसे यह दृष्टित मिल चुका था कि यही वह महाभाव आचार्य विप्य है।

संलग्न आचार्य विप्य मंत्ररिखा को साथ ले चम पड़ा। शाली कन्या कुछ मूय-मूय सी खोई चन्नी की धीरे ताकती रही। सहाज उसे ध्यान प्राया कि पुरता प्रवाल ने मूम्य तो बुझाया ही नहीं। जो मुकक केवल बाड़ी रेर पूर्व ही परिहास कर रहा था वह उसके इस भाव को भांप गया। पहले तो उसने अपने साथ साईं प्रेयसी को नेत्र इमित से कुछ बताया और फिर वहीं लडा-लडा धीरे से चिन्ता बटा धरे दो बन्पु धीरे भापको वह शाली कन्या तो स्परण करती ही रह गई है।

आचार्य विप्य को मुकक का यह परिहास प्रीति-सा लना परन्तु जब उसे वास्तविकता का ध्यान प्राया तो बस हकडा-बकवा रह गया। कारण वह घाने साथ एक भी कार्यालय नहीं सामा था। व्यग्रता से हचर जयर देखने लडा और फिर किन्त दृष्टि से मंत्ररिखा की धीरे देखा। मंत्ररिखा जमकी इस व्यग्रता को देख कर भी जैसे ठटकर बनी रही।

मह नाटकीय दृश्य उपस्थित हुआ देख सभी उत्सुकता से आचार्य विप्य की धीरे देख उठ देखने लगे कि देखो अब समयता का किस प्रकार समाधान होता है। इसी मध्य जब मुकक ने इमित ही इमित में बस शाली कन्या को भी उकसा दिया और वह उत्परता से आचार्य विप्य के समीप जा टकी हुई। परन्तु निश्चित ही अपना इन समय अधिग्राम मूय लेना नहीं जरूय आचार्य विप्य को धीरे बुविधा में डालना था। मह इसके मुख पर कम समय टाई चपकटा पून मुस्कराहट से स्परण परितसित हो उठा।

धीरे आचार्य विप्य इन समय लम्बा से नी अधिक धरमान का अनुभव कर रहा था।

धन में सभी धीरे से निरास हो उसने सहायता की सी कालर दृष्टि से मंत्र रिखा की धीरे देखा। और मंत्ररिखा? वह भी सभी के साथ इन समय आचार्य विप्य के साथ होने परिहास का मन ही मन रन से रही थी। शाली कन्या का हास धमी भी उठी भी धीरे बडा हुआ था। मंत्ररिखा ने जगदी धीरे देखा तो शाली कन्या ने धपनी चरन दृष्टि के इमित से मार्गों कहा—“नहीं, धमी रहने दो।”

आचार्य विप्य के मुख पर स्के-भय उभर पाठ। वह परणत हुआ ता बोला—“क्यों धूमि कडा मुम भी अपने नाच कोई कारीरग्य नहीं साईं?”

मंत्ररिखा उत्तर में कहा चाहती थी—“हाँ मैं तो साईं हूँ पर मान क्यों नहीं साप ?” परन्तु अपने पूर्व ही उस पुन बानी धूमती ने उत्तरा हास परद कडा—



“देवी इनसे पहले यह तो पूछो कि फिर कभी तो ऐसी भूम नहीं करोगे ?”

प्राचार्य शिष्य को इस पर कुछ संकोच का अनुभव हुआ परन्तु साध ही समस्या को मुसमल समझ उसकी बुद्धिधा भी लुप्त हो रही । हँसकर बोला—“देवी इसके सामुख तो नहीं परन्तु हाँ धाम तुम्हारे सामने अवश्य कान पकड़े बैठा है ।” फिर उस मुद्रक की ओर बहिष्ट करते हुए बोला—“बचुनर, भला इनके साम तुम्हाय कैसे निर्वाह होता होगा ।

यह मुद्रक हँस उठा । फिर बोला— निर्वाह हो न हो परन्तु करना तो होता ही है प्राचार्य शिष्य ।”

इसी मध्य मंत्रिका ने प्राचस से एक स्वयं कार्पाण्ड निकाल प्राचार्य शिष्य की ओर बढ़ा दिया और प्राचार्य शिष्य ने जब उसे भेने को धपना हुप पठाया तो समी करतल धनि कर उनका परिहास कर उठे । परन्तु इस परिहास से यह तनिक भी पिडा नहीं न ही धम्य हुपा उठे उसे एक धानम्बोच्छ्वास का अनुभव हुपा और इस धानम्बोच्छ्वास में उसे मया बँधे मंत्रिका छसडे और निकट धा गई है । यह मफुस्त हो मन ही मन कह उठा—“धनवर, बैशासिकों का यह हास-परिहास नहीं स्नेह है यह स्नेह है को ।

और, जब तक उसने कार्पाण्ड ने दामी कन्या की ओर मुद्र किया तो देखा यह वहाँ से चली गई है और मपने स्वान ही से खड़ी खडी कह रही है—“भार्य में भ्रण में सिमा कार्पाण्ड नहीं सेठी जब कभी धपना बने तो वे जाना ।

किन्तु प्राचार्य शिष्य नहीं माना । कार्पाण्ड को उसकी ओर फँक तनिक हँस कर बोला—“कोई बात नहीं धुने । कभी-कभी धपने बत को तोड़ देने का भी विदीध धानन्द है । धात्र यही कर देखो ।

यह धुन बासी कन्या का धारा बात मुद्र-मुद्रा उठा । हुबन न जाने क्या कुछ अनुभव कर रह मया ।

और प्राचार्य शिष्य का रव तपरता से देवी शिष्या की घट्टालिका की ओर बढ़ लिया ।





सम्प्रा होने-होते कमा-तीर्ष लण-सङ्घीय घट्टामिका का विस्तृत प्रांगण घासतुकों की मीड़ ल सहनहा उठा । इधर प्रांगण जन-समुदाय से धोत-धोत या धीर उधर नख द्वार से से समयने छा रहे गर-मारियों का प्रवाह भी पतिमान या बने कोई बहलर अपने लटबगधी को लोड चारों धीर जन प्पावन कर उठा हो ।

चारों धीर उत्साह का सावर उमड़ता देख घट्टामिका का अन्ध रूप भी घबि क्रामिक मुकर हो उठा । घट्टामिका की परिवारिकाओं का मना घाब क्या रहता । उनके लिए मारों धीर की नई स्वल्पिण फिरण फूटी हो धीर फिर उसी के दाब कीबन ने भी एक नई करबट से भी हो । उत्साह के धारध में उनके वीर भूमि पर नहीं पड़ पा रहे थे बरन् तरपित हो वीरते से प्रवीत हुए । सभी के मुख कमन की भांति खिल उठे ।

इस समय उनकी पतिविधियों का भी कोई एक निश्चित रूप नहीं था । विभिन्न शर्मों में विभक्त हो वे मज-सम धीन मंज पति से सभी धावरयक कार्यों को निपटाने में व्यस्त हो उठीं । इनका एक घातकन मुख्य द्वार बर छाड़ा धरनी मन्वी-मन्वी भूज ए फंका घासंतुकों पर सुवासित जन-कल फुहार रहा था धीर एक दूगरा रन अपने हावों बर टिकाए धर्म सामर्थियों मूत्र रजत धाधारों को से जन-समुदाय के मध्य भूम रहा था । सभी के लगाट बर जनन का धारध कर वे प्रमानता से फूरी नहीं समा रही थी ।

इसो मध्य परिवारिकाओं का एक घम्य दान सोस्ताह बुद्धिर्षा धर-जट, इरा साम धकीर फेंकता उधर धा निकला धीर सम्प्रा का मुख बलिग्न ही उठा । धामन्नी-ष्ठाकास के इन बातावरण में प्रेमी युगतों के लिए किसी एक म्भाग बर बैठे धरका खड़े रहना उँते धरंभध था । धरने ही मध्य सिद्धे किनी प्रसव के प्रवाह में चारिका करते करते वे प्रांगण के धीर-धोर का स्वर्ण कर बज उँते लोण रहने उँहें स्वयं इगका पत्रा नहीं बल पाठा । कोई जनकी धीर देख भी रहा है इमरी भी उँहें उँते कोई भुज नहीं थी । पर, धीर सभी उँहें देख मन ही मन बह उँटा—'धरे बही हैमूरी ठी धीरन है ! 'परन्तु उनका जीवन कैबन इमी तक सीमित नहीं था । वहाँ मामने—'पठा कुंज के पास एक प्रेमी मुक्क सन्साह से उँधाय से लना मुन बर जिते पुन की तोड़ने का प्रबल रन रहा था । धीर फिर पुन टूटने पर दोनों ही किग प्रकार विचबिमा पने । प्रदमी धरने प्रेमी ॥ धम्यन्त बाब से बैध पाग में धनी पुन को लपका उमप उँडे । उनके इन समय के उँज प्राज्ञाद एवं पने का क्या बहना धीर क्या बहना उँस

“देवी, इनसे पहले यह तो पूछो कि फिर कभी तो ऐसी भूम नहीं करोगे ?”

भाचार्य शिष्य को इस पर कुछ संकोच का अनुभव हुआ परन्तु साथ ही समस्या को सुलभ समझ, उसकी बुविधा भी सुप्य हो रही । हँसकर बोला—“देवी इनके सम्मुख तो नहीं परन्तु हाँ धात्र तुम्हारे सामने प्रबच्य कान पकड़े लता हूँ ।” फिर उस मुबक की धोर दृष्टि करते हुए बोला—“बन्धुवर, मना इनके साथ तुम्हारा कैसे निर्बाह होता होगा ।”

यह मुबक हँस उठा । फिर बोला—“निर्बाह हो न हो परन्तु करना तो होता ही है धाचार्य शिष्य ।”

इसी मध्य मंत्रिका ने धात्र से एक स्वयं कार्यालय निकाल धाचार्य शिष्य की धोर बड़ा दिया । धीरे धाचार्य शिष्य ने जब उसे लेने को अपना हाथ पसाय तो सभी कष्टम ध्वनि कर उनका परिहास कर उठे । परन्तु इन परिहास से वह तनिक भी बिड़ा नहीं न ही धुब्य हुआ उन्हे उठे एक धात्रमोच्छ्वास का अनुभव हुआ । धीरे इस धात्रमोच्छ्वास में उठे मया जैसे मंत्रिका उठके धीरे निवट धा गई है । वह प्रचुम्भ ही मग ही मग कह उठा—“ध्वजवर, बैद्यनाथों का यह हास-परिहास नहीं स्नेह है वह स्नेह है जो ।

धीरे जब तक उठने कार्यालय ले जाती कन्या की धीरे मुख किया तो देखा वह नहीं से बनी गई है । धीरे अपने स्वान ही से बड़ी-बड़ी कह रही है—“धाय मैं शूल में सिमा कार्यालय नहीं लेती जब कभी अपने बने तो दे जाना ।

किन्तु धाचार्य शिष्य नहीं माना । कार्यालय को उसकी धोर फेंक तनिक हँस कर बोला—“कोई बात नहीं सुने । कभी-कभी अपने धर को छोड़ देने का भी विरय धात्र है । धात्र नहीं कर देखा ।”

यह सुन जाती कन्या का धारा नाथ गुरु-गुवा उठा । हृषय न जाने क्या कुछ अनुभव कर रह गया ।

धीरे धाचार्य शिष्य का रव तत्परता से देवी शिष्या की अट्टालिका की धोर बड़ सिमा ।





साम्या हाठ-होठ कला-लीन सप्त-सप्तमीय घट्टानिका का बिसुत प्रांगण प्राबंतुकों की मीड़ से महकहा उठा । इधर प्रांगण बन-समुग्य से घोर-घोर वा घोर उधर मुख्य द्वार से से समपने वा रहे नर-नारियों का प्रवाह भी वतिमान वा, जैसे कोई महानर अपने तटवर्गों को छोड़ चारों घोर कम प्लावन कर उठा हो ।

चारों घोर उस्ताह का सागर उमड़ता देख घट्टानिका का मध्य रूप भी घमि काबिक मुलत हो उठा । घट्टानिका की परिवारिकाओं का मना धाव बना कहना । उनके लिए मार्गों घोर की गई स्वर्णिम किरण फूटी हो घोर फिर उसी के साथ जीवन के भी एक गई करबट से भी हो । उस्ताह के प्रायेण में उनके वर मूमि पर नहीं पड़ पा रहे थे बरन् तरंगित हो ठीठे से प्रतीत हुए । सभी के मुँह कमस की प्रति चिन्त उठे ।

इस समय उनकी वतिविवियों का भी कोई एक विरिचत कर नहीं था । विभिन्न रत्नों में विभक्त हो, वे मध-तम फँस संघ गति से सभी आवश्यक कार्यों को निपटाने में व्यस्त हो उठीं । उनका एक घटपल मुख्य द्वार पर बड़ा धपनी लम्बी-लम्बी मूत्र ए फँसा प्राबंतुकों पर मुबासित बन-कण फुहार रहा था घोर एक दूनरा इन अपने हाथों पर निकाले धर्म्य धामग्रियों मुक्त रजत प्राचारों को से बन-समुग्य के मध्य भूम रहा था । सभी के समाट पर बन्दन का प्रातेप कर वे प्रसन्नता से फूली नहीं बना रही थीं ।

इनो मध्य परिवारिकाओं का एक मध्य दल उस्ताह मुट्टिम्य मर मर, हरा सात घबीर फँकता उधर सा निकला घोर उम्भ्या का मुख बलिम हो उठा । मानग्यो क्लावात क इन बाठाकरण में प्रमी सुवर्ती के लिए किसी एक स्थान पर बैठे प्रबधा खड़े रहना जैसे धर्ममव वा । अपने ही मध्य जिड़े किमी प्रसभ के प्रवाह में चारिका करते करते वे प्रांभ के घोर-घोर वा स्परी कर कम जैसे सीट रहते उन्हें स्वयं इनका पता नहीं बन पाया । जैसे उनकी घोर देख भी रहा है इसकी भी उन्हें जैसे कोई मुष नहीं थी । पर, तीप सभी उन्हें बेल मन ही मन कह उठने— धरे यही बैसुबी तो भीषण है ! 'परन्तु उनका जीवन केवल इनी तक सीमित नहीं था । बहाँ सामने—पटा कुंभ के पास एक प्रमी मुदक उस्ताह से उधोग से सता मूत्र पर जिसे पुन को तोड़ने का प्रयत्न कर रहा था । घोर फिर पुन टूटने पर दोनों ही किन्न प्रकार लिपबिसा फने । प्रपमी अपने प्रमी से धरयत्त बाव से बेच पाज में उनी पुन को मगवा समग घरी । उनके इन मधम के उम प्राह्लाव एवं मई का बना कहना घोर बना कहना उन

रक्षक मुक्त का जो धम उठके बिबुध को ऊपर उठा उसके नेत्रों में अँधेरे जीवन प्रथमा किसी रहस्य को या उस भासा के सौन्दर्य-मर्म को विस्फुरित नेत्रों से निहार रहा था।

सहसा सिंह द्वार की ओर से सूर्य निनाश हो उठा। जब वहाँ मह बिबिध हुआ कि स्वयम्बु यणाम्यस राजा चेटक पचारे हैं धीर साय ही महाभक्तानिष्ठ सिंह सनापति धाचार्य-पुत्री रोहिणी महापीर येप्रिय रत्न धीर विमिश्चय धमारय रिपु दमन भी घाए हैं तो सारे जन समूह में उत्साह की प्रगाढ़ लहर बीज गई। सभी उस धोर भाग से लिए। धाचार्य दिव्य श्री जगम संजरिका का हाथ पकड़ उस धोर बहन को उल्टे हुमा किन्तु संजरिका ने उसे बसाए पीछे की ओर खींच लिया। धाचार्य दिव्य कब हुतोस्त-हित हो पूछ उठे—“क्यों क्या बात है, सुने ?”

संजरिका की दृष्टि मत्त हो रही। फिर जैसे साहस कर उसने अपने नमन ऊपर उठाए, उन्हें धाचार्य दिव्य के मुख पर स्थिर करने का सा प्रयास करती हुई वह बोली—“बन्धुवर के सम्मुख जाते हुए मज्जा सी जाती है। धीर फिर, देवी रोहिणी के बिनोषी स्वभाव से तो घाय भी परिचित हैं ही।”

धाचार्य दिव्य के मुख पर एक सजीव मुस्कान खेल उठी बोली—“तो फिर क्या हुआ, सुने। एक दिन तो यह रहस्योद्घाटन होना ॥ है फिर धाम ही क्यों न हो।”

संजरिका सगर्भ कुछ झुझा-सी गई किन्तु मुख दीप्त हो उठा कर्णपटी नातिमा गई। फिर धीमे से बोली—“जब होया स्वयं हो जाएगा।”

धाचार्य दिव्य इसके पश्चात् भसा धीर क्या बहता। उसके मुख से केवल ‘बल’ निकल गया।

इसी मध्य मृतक मंत्र की ओर से बाध-बन्धु परस्पर स्वर ताल मिनाता मंजार उठा। उसकी सरसता से मजरिका अभिमूठ हो उठी धीर संख्या का धूमिल रूप भी प्रखर हो उठा। धामलोच्छ्वास से उत्थित होते जन समूह के मध्य संजरिका ने जगम कब धाचार्य दिव्य के हाथ का प्रथमत्व ले लिया वह उसे स्वयं विहित नहीं हो सका। वह सा सी गई। उबर मंत्र की ओर अचसर हाते-हीते धाचार्य दिव्य का हाथ भी जैसे स्वत मजरिका के कटि प्रवेष्ट पर का बड़ा। फिर लते नहीं उठे वह उनके महारे से मजरिका को घाने की ओर ले बड़ा। मजरिका इन पर कुछ ठिठकी परन्तु साय ही कोई प्रतिरीच भी नहीं कर सकी।

दोनों घाए बड़ते रहे धीर उठी के साथ बहता रहा धाचार्य दिव्य के यस्ति-इ में कोई विचार प्रवाह भी। उठी के साथ धारिका भी यति भी ठेक होती बसी दपनी ठेक कि संजरिका का उसक साथ चलना प्रथम हो गया। परन्तु मन की जयप वा ठहरी वह चलती गई किन्तु धाचार्य दिव्य के संतर में उस किन्ती भाव-उग्र म एक भारती उसकी सारी चितन चेतना को झिझाड़-ना दिया। वह साधन गया—“क्या घाचू क्या न मोचू।” वह न जाने क्यों वह कुछ विचलित-सा ही उठा। भाषों के बानाव कब तो दम उसका बिकेक अनचना उठा धीर अनमना उठा उसके अंतर में प्रवाहित होता का मुक्त नाव भागों वह अपने लटकन लीज प्रथम भथा दना चाहता हा। संजरिका

के कटि प्रदेश पर रखा उसका हाथ कौरुपा उठा मबिरिका भी तिहर उठी । काउर स्वर में यह ब्रिजे शोक कह उठी—“बन्नी!”

धाचार्ये विष्य सचेष्ट हो उठा । धामे विपिन हाथ को दृढ़ करता हुआ—आ ब्रिज नष्ट स्वर में बोला—“देवी क्षमा करना ब्रिजे ही मन कहीं दूर दिग्ग में पटक गया था ।”

परन्तु जो कुछ उसने कहा उगधे यह धामे को तो क्या मंबरिका को भी धारण्य नहीं कर सका । यह विष्य हो उठी ।

इसी मध्य परिचारिकाओं के घट दोनों ने इधर-उधर सवन या दण्डामारों पर गधे शीशों को प्रदीप्य कर दिया और यह धारा प्रायस्य धारोक्त हो उठा ।

धीरे धीपदिशाओं के इस प्रदीपित प्रकाश में वे दोनों न तो धागे बड पाए और न पीठे ही इट सके । धागी सड़े से बस बड़ी बैठ गए ।

बाध-बृन्द का अंधारता घटिनय यथापुर्ब बनता रहा और सग्या धर्म धर्म यति में परिणत होती बनी । किन्तु पर्याप्त धबधि बीच जाने क परचात् भी बस देवी विष्या मंच पर उपस्थित न हुई तो नृप्य प्रवी जनों के उदासत मन धमीर हो बठ । एकन बरतमुग्ध के पाठ भाग में कुछ-कुछ कोमाहक-मा मुरमुरा उठा ।

बजोबुद्ध मछाध्यय राजा बैठक क संप्रद देव मानो बठ खोजने हुए से इधर उधर देखने लगे और संतत निकट ही से बंठे महाबनाधिकृत निम्न सेनापति के मुख पर केन्द्रित हो रहे । इन पर सिंह सेनापति संविक की ही सरारता स उठ मछाध्यय के सम्मुख आ सड़ हुए । सरारवात् धयना पीव नर बोल—“धाय धाना करे सबक प्रस्तुत है ।”

दण्डाध्यय उच्च पदाचिन धयने धीरमन्त्रो बण्ट स्वर में पूछ उठे — ‘बरी धायु ध्यानु सिंह क्या धाक के इन महासेन के सविष्णता धानुप्यान ध्वजपर नहीं है ?’

महाबनाधिकृत सिंह ने दण्डाध्यय के इस प्रस्न पर ब्रिजे कुछ ताग्या वा सा अनुभव किया । परन्तु प्रकट में सबका मदन यह वह विनीत भाव से बोले—“अच्छा स्वर ! परदेन यह निश्चित ही धानुप्यान का सविष्ण है और कताय के प्रथि उमरी इन उराठीनता की देव में धबराय हा मन्त्रा का अनुभव कर रहा हूँ धार्यवर ।”

इन पर दण्डाध्यय धारपीय भाव से बोले—“धायुमान को इसमें सविष्ण होने की निश्चित भी धावरायकता नहीं । धानुप्यान ध्वज दधम की दृष्टि से धरने सविष्ण क प्रति बड़ी धधिध कायण्ड है अतएव यह निस्संदेह नर का विषय है । बासठ में मैं तो उनकी अनुसन्धित से चिन्तित हा उठा हूँ । नगर की सन्धित ता धायु प्यान से भी नहीं छिगे है ।”

निकट से ही बंठे महापीर सेलिधरस धीरे देवी रोहित् । का भी उध समब ध्याम उधर ही था । धानों ने जब यह सुना ता उनके मुख भी बिजा में बनिन हो रहे । देवी रोहिणी तो ध्याहुम ही हो उठी । धरिय मन्त्र ध्वज भाव से बोले—“अधुवर सिंह धार्ये को बिठा धारारण धनपि नहीं हो सकनी अतएव इस विधा में नन्धान कोई धराय धनिधर्म है ।”

देवी रोहिणी जैसे प्रसहाय दृष्टि में धामे पति सिंह की धरे देव उठी । मन

ही मन सोचती रही—'महाप्रभु करें कुछ भी अनिष्ट न हो और यदि कुछ हो गया तो हम किसी प्रकार भी पितृवर को मुंह दिखाने योग्य नहीं रह सकेंगे। वह हमें निश्चित ही भिन्नकारते हुए कहेंगे—'क्यों धामुष्मती क्या इसी धाया है? हमने अपना एक प्रिय शिष्य तुम्हारी सेवा में भेजा था ?

यूँ महाप्रभुवाचिहृत सिंह भी कोई कम चिंतित नहीं हुए थे। फिर भी उन्होंने अपना सर्व्य नहीं खोया था। अज्ञान पर धारण भी मन पर उपस्थित न हो वह उन्हें सर्वथा प्रसन्न प्रतीत हुआ। परन्तु हठात् व्यक्त कहीं क्या कुछ नहीं टटामता। उनकी दृष्टि हठात् एकत्र मन समुदाय पर स्थिर हो गई। विहंगम युधि जामते हुए उन्होंने चारों ओर देखा। फिर उनकी दृष्टि किसी एक स्थान विशेष पर अनेक के लिए स्थिर हो रही। उनके मुख पर कभी सख्त मुस्कान को देख देवी रोहिणी ने भी उबर ही देखा ही बह चक्रित हो उठी धाय ही विमुग्ध भी हो रही। उसके मुख पर एक मुस्कान फैल गई। वह उत्पत्ता से उठ उठी विद्या में जैसे बौद्ध-सी ली।

धाचार्य शिष्य यही भी विचारों में डीया सा यानों उभा घोर से हेतुम हुआ बैठा था। प्राय बैठी ही बसा मंत्रिका की भी भी परन्तु वह इस समय उदात्त धारण थी। देवी रोहिणी ने जब उन्हें दोनों ही को इस मनोरथा में देखा तो वह हतप्रभु हो उठी। अनेक कुछ सोच वह मंत्रिका का स्पर्श कर बोली—'क्यों भी तुम दोनों यहाँ बैठे हो और यहाँ तुम्हारी आज्ञा हो रही है।

देवी रोहिणी की सख्त ध्वनि कानों से टकराते ही धाचार्य शिष्य चौंक-सा गया और मन ही मन कुछ लज्जित भी हो रहा। पर देवी रोहिणी ने जैसे उठ घोर कोई ध्यान ही नहीं दिया। किंचित् मुस्कान के साथ वह बोली—'क्यों धामुष्मान प्राय तो कदाचित् तुम यही भूल गए कि हम महात्वन का अधिष्ठाता कीन है ?'

देवी रोहिणी ने यह सब कुछ सर्वथा विनीत के ढंग में कहा और उसकी सरसता ने धाचार्य शिष्य के अन्तः हीर का स्पर्श भी किया। फिर भी वह मन ही मन अत्यन्त-ताप का सा अनुभव कर उठा। तो भी जैसे विचर ही वह मन की घोर बौद्ध लिया। उसके योग्य पर चढ़ते चढ़ते बाध मूल्य सहसा रुक रहा और जब वह मंच पर पहुँचा तो समूचा प्रोक्षण मापी करतल ध्वनि से मूल उठा।

घोर निकट ही घोट में जाती देवी शिष्या के प्रतीक्षा वातुर मुख पर भी सन्ध्या मुस्कान की रेखा खिले बिना न रह सकी। परन्तु उसकी इस मुस्कान की न तो धाचार्य शिष्य ने देखा और न मंत्रिका हो देख सकी। कदाचित् कोई भी उसे न देख सता और जैसे वह केवल स्वयं में ही सिमट कर रह गई।

मंत्रिका देवी रोहिणी के धनुरीय के पश्चात् भी अथ स्थान ही बैठी रही। उत्सुकता से मंच की घोर निहारती रही। उसने देखा धाचार्य शिष्य के ऊपर हाथ उठाते ही जन मायर के मध्य से बहुता करतल ध्वनि का प्रवाह महता रुक गया है। यह देख वह मन ही मन बोली—'सचमुच धाचार्य शिष्य ने इतनी ही अस्यावधि में अत्यन्त पर किन्तु अधिकांश कर दिया है।

वह सब कुछ भूल एक बार फिर सर्व का अनुभव करने की जैसे शाय्य हो गई।

उत्तर करतल अन्ति के सान्त होते ही आन्ध्र सिध्य ने कर बन्ध हो मास्तक मयाते ह्य् अत्यन्त बिनीत भाव से कहला प्रारम्भ लिया—“अज्ञास्यद मयाध्यता पीर सोम्य जनो, अत्र मे यण महा लक्षरी बैद्यकी के सभी नृत्य प्रमियो की धोर से देवी सिध्या से समुरोध करता हूँ कि वह आत्र की ह्य सग्ध्या बैजा में अपनी कला के समुपम क्रीडन से ह्य सभी को प्रसाहित करें।”

उत्तरित मापरिक भारी ह्य अन्ति कर जैसे ह्य समुरोध का समुमोहन कर सत । बाध-भूय ब्रम पठा । हाय ही वैपथ्य की धोर से किन्तु-अन्ति के मध्य जब देवी सिध्या अपने सुन्न परिचान में भंवर गति से मच पर घबतरित हुई तो सभी को मया—‘यह तो सचमुच बैद्यकी के सिधिका पर कोई नवी कला फिरण मुदित हो, उदित हुई है ।







यह एक प्रातः बैला की बात है ।

बृत्ताकार बीसवीं हरीदिना धार्मिकपरिषद् पर्वतमाला की विस्तृत तोड़ में बड़ी एक बैलबधामिनी नगरी इस बैला से भी मूल हुई ही बीस रूही की धीर उसके पूरे घोर घोर पर समझान वा सा समझाटा व्याप्त था । पवन भी साँव-साँव कर उसके पूरे घाकार प्रकार को बँधता सा प्रतीत हुआ । किन्तु इसी नगरी की उच्च मट्टातिकार्यों से कुछ दूर पर्वत वृत्त के मध्य ही उन्हें एक शृङ्खलात घिन्नर पर एक व्यक्ति नामा ध्यानस्थ हुआ इस सार मस्त बातावरण को जैसे तटस्थता के घास्त मात्र से देख रहा था । उदयावस से ऊपर बेध धारिण्य भी नगरी के इन सुने बातावरण में झँक उठा किन्तु उसकी इस प्रवीण मुक्त धाया को भी मगध साम्राज्य का मध्य राजप्रासाद घोर उच्च मट्टातिकार्यों का समुचा विस्तार केवल उच्छक दृष्टि से देख सका ।

घटत शृङ्खलात घिन्नर पर बैठे व्यक्ति ने अपना ध्यान प्रव क्रिया घोर बहु वहीं विमान की गति से चारिका व्यस्त हो गया । उसने एक बार नीचे की धार भी झँक कर देखा किन्तु वह देख कि घात विद्यारण्य पर कोई भी व्यक्ति नहीं धाया है, तब अपनी दृष्टि को पुनः समुद्र में ही समेट ध्यानस्थ हुआ का चारिका व्यस्त हो गया । बैल धारिण्य की स्वर्णिम रश्मियों का स्वर्ण वा उसके मुख की प्रभा घोर प्रवीण हो उठी । समुद्रा घिन्नर के ही एक कोने में बैठा एक विद्याल पत्नी घोर से अपने पंखों की कड़कड़ा उठा । उसकी इन कड़कड़ाहट को सुन नीचे वाली कन्दरा में बँध एक व्यक्ति न केवल नवभीत हो उठा बल्कि उसमें से बाहर की घोर मान बढ़ा भी हुआ । साय ही उसका मस्त कच्छ स्वर सहायता की धी पुकार करता उच्च व्यक्ति में तबामत तबामत घोर फिर 'घास्ता-घास्ता' की रट लगा उठा ।

तबामत-घास्ता की इस सहायता पूर्व पुकार को सुन घिन्नर-सीरे पर चारिका व्यस्त व्यक्त हैं उठा । किन्तु उसकी यह हँसी उपहास की बड़ी धारधामन की धी प्रतीत हुई, तबके सुन नीचे मगध मुख के सामने लड़े कीबर चाठी व्यक्ति के मुख की कड़कड़ा पर मगध का सा मान फैल गया । इसी मध्य विद्यारणीय पर से नीचे की घोर झँकते हुए ऊपर वाला व्यक्ति अपने शोकपूर्ण कच्छ स्वर में पूछ उठा— क्यों धायुज्जान भोगसाधन क्या हुआ ?

एक पर भोगसाधन ने अपना मस्तक नत कर ऊपर वाला व्यक्ति को नयनकार किया फिर नत मस्तक रहे ही धारणा मान हाथ फँका उबार की घोर संकेत किया बिबर मुख बैठा था । उसके मुख पर परचाताप की दिग्गता फैल गई । नीचे से धारणा—'घास्ता ।

समाधि भंग हुई है। अतः अब शुद्धि के बोध से बीजा का अनुभव हुआ है।”

“क्या परमात्मा का भी प्राप्ति है। तबामत में अपने दुःख-गमभीर कष्ट स्वर में पूछा।

मोक्षसाधन में पूर्व से भी अधिक भीमे स्वर में कहा—“हाँ सास्ता वह भी हुआ है।”

तबामत में एक मीन रख फिर कहा—“यह तो विचार में से विकास उत्पन्न हुआ प्राप्ति है। विकास का कोई अर्थ नहीं केवल समाधि की तटस्थता ही निधि कार है।”

वह कह वह तनिक रुके। फिर पूछने लगे—“प्राप्ति में योगसाधन भंग अन्तर में है क्या बाहर ?”

“सास्ता अब केवल अन्तर में व्याप्त है।”

“धीरे ब्रह्माण्ड तथा ब्रह्माण्ड में बुद्धिपोषण होने बाधा कसका अर-अर माय रूप।”

“वह भी अन्तर में ही व्याप्त है अन्तर्मुख हो, मैं उची में ही तो जीन का, सास्ता।”

“तो क्या वह अब नहीं है प्राप्ति है।”

“सास्ता वह अब भी है किन्तु अन्तर के अन्त को देख वह अन्तर्गत हो गया है।”

इस पर, तबामत के अपने बाएँ हाथ को अपने ऊर्ध्व कर पूछा—“प्राप्ति, वह क्या है ?”

मोक्षसाधन में अपने बुद्धि ऊपर उठाए बिना ही कहा—“सास्ता। वह हाथ है धीरे उचकी अंगुलियाँ अन्त होने के कारण बिजली इन्द्रियों के समान।”

“धीरे अब क्या है ?”

“सास्ता अंगुलियों के परस्पर निकट आने पर इन्द्रियों ने भी अपने अन्त अन्त अन्त को समेट लिया है।”

“धीरे अब क्या है, प्राप्ति ?”

“मोक्षसाधन में तब अन्तक ही ही कहा—“सास्ता कनिष्ठिका समेत ही अंगुलियों ऊर्ध्व मुख ही प्राप्ति है। धीरे अन्त में अपने अन्तको अन्तको अन्तको अन्तको के साथ अन्त की है। अन्त से अन्त अन्त हुआ है धीरे अब अन्तक हुआ बाह्य है।”

“अन्त प्राप्ति ?”

“अन्तक अब अन्त अन्त का अन्तक बाह्य है।”

तबामत बोले—“तब प्राप्ति अन्तक का ही साम करो, अन्त के विकास से अन्तकी अन्त न होने दो। अन्तक अन्तक के सम्मुख तो बार के अन्तक का ही अन्तक हो रहने हैं। प्राप्ति मोक्षसाधन तबामत अब अन्तक से तब अन्तक अन्त की अन्तक अन्तक से ही अन्तक अन्तक है।”

वह अब मोक्षसाधन तबामत के अन्तक अन्तक अन्तक अन्तक अन्तक अन्तक

से प्रविष्ट हो रहा और तथागत भी पुनः विद्याम की पति से चारित्र्य व्यस्त हो बैदि  
अमल में लीन हो गए ।

किन्तु, साम्राज्य नगरी की उच्च अट्टालिकाएँ जबानित् अपने गर्व के कारण  
तथागत के इस बड़ा मर्म को समझने में असमर्थ रहीं । उनकी बृष्टि केवल अपने  
भौतिक स्वल्प पर ही स्थिर रही । यद्यपि उनके पुरे आकार प्रकार पर भी भय का  
विकार विद्यमान रहा ।

सूर्योदय की रश्मियाँ धन्य दिनों की भाँति घाब भी उच्च अट्टालिकाओं पर  
आकर स्थिर थीं परन्तु इनका उष्ण स्पर्श पाकर भी वे प्रफुल्ल नहीं हो सकी ।  
प्रभात के इस घटा पुरुष आलोक में भी जैसे उन्होंने अन्तर की निराशा बंध प्रभावस्था  
की महान-रतिपर मुक्त कालिमा छोड़ रखी थी । उनके नीरवधानी विद्याम स्वर्ग  
रजत कमलों पर विद्या की एक गहल देखा ही जिन्ही प्रतीत हुई ।

और दिनों इसी रात्र नगरी के जो विस्तृत राजपथ सूर्योदय पूर्व ही से धमि  
जात जनो के विद्याम बाहूनों की यज्ञगङ्गाहट अर्थों की पर चारों एव पैदल चलते  
प्रजाजनों की आहट से गुंजायमान हो उठने से अब इस समय केवल सुने बीज पड़े ।  
और दिनों प्रभात की इस नगोहारी बैना में जब कोई व्यक्ति इन राजपथों पर से  
होकर चलता था तो वह सामन्तों एवं श्रेष्ठियों की नीरवधानी अट्टालिकाओं के गवाल  
छिद्रों में से प्रस्फुटित होती मुगधूर बीजा की अंकारों मूर्धन पर पड़ती हुई तालपूरु  
बापों घबरा किसी कोकिल कण्ठी के मुख से नबोदित देव धारित्य के स्वामत स्वल्प  
निकले सरस संमस जान को मुन भाव विमोह ही उठना था । परन्तु घाब न इन  
अट्टालिकाओं घबरा प्रासादों के गवाल छिद्रों से यह संपीत लहरी ॥ प्रस्फुटित हो  
रही थी और न राजाज पर सुनने वाला कोई व्यक्ति ही था । हाँ परा क्या वे सुने  
राजपथ कतिपय अन्वारोहियों के घाँटी-घाँटी इनके बुके मुख से अकथ्य सघन्य हो  
उठते । परन्तु मुगधित अर्थों की परबापों से राजपथों के अन्तर में वे जो प्रति ध्वनि  
निकलती उससे जैसे ॥ स्वय ही घातकित ही उठती । गवालो के छिद्रों में से अंकारों  
मुकतियाँ कीमुहल के कारण इस वृक्ष को हैरे बिना भी नहीं रहनी और जब बैसती  
ती फिर भय से सिद्धर अपने विष्टर पर आ बैठती । कोई सामन्त अथवा श्रेष्ठी जब  
इस वृक्ष को देखता तो वह सद्यप से पर्यन्त समय तक सही और बैसता रह जाता  
और उसके अस्तित्क में एक धाय कई धनुषाओं का प्रवाह बतियमान हो उठना । अन्त  
में वह बुधिया के अन्तोलों से मुक्त आरोह-अवरोह में कुतुक की भाँति अस्थिर हो  
उठा । उठना जब के इस अर्थकर प्रवाह में किसी के प्रति भी अपना अमध्य प्रवट  
करना यह घाने लिए केवल किसी संकट को ही प्रीतिका समझता । उधर साम्राज्य  
प्रजाजन राज नगरी के किसी गतिर्ष न उठना जब को केवल उठत्य भाष से देह  
में ही नित्र का बरमाण समझ रहे थे ।

वास्तव में मजस्र सैनिकों के गतिशील एवं उग्र रूप के सम्मुख इस समय  
समूची राजनगरी विद्यता से भीन थी ।

इपर नगर के उत्तर और दक्षिण दोनों ही द्वारों के बाहर दूर-दूर तक अंति  
उपन आसन्नं तथा आचम सैनिकों से घिरे थे । दूर दिग्ग से घाए ताओं पर बुद्धपहा

बा तथा सभी शार्पबाहू विविध धनवा व्याकुल बीछ रहे थे। दिन भर की बिकट यात्रा से एक क्रिमान की इच्छा से जो यात्री नगर-उगांव के जिस किसी भी घास्या भागार में यह रात्रि ठहर सबा बा पसने प्रात होते ही अपने को बनी प्राय धनस्या में पाया। घास्याभागारों पर भी इस समय ससस्त्र सैनिकों का सुदृढ़ पहरा था। नु प्रपस में कोई भी बनी नहीं बा किन्तु फिर भी किसी को इस समय बाहर न निकसने की कठोर धात्रा थी। बास्तव में मध्य रात्रि को ही जब शार्पबाहू धनवा यात्री निद्रा धन के सभी उर्गें सावधान कर एक राजाया मुता की गई थी और यह राजाया की कि जब तक कोई धन्य सोपला हो तब तक कोई भी अपने स्वान से न हटे धन्यवा यह मृत्युर्दंड का भायी होमा। सभी वैदेशिक रात्रि के उध विधिर में इस धादेश को मुन धासंका से सिहर उठ और उनका धनस्वत प्रकम्भित हो षठ।

परन्तु इस धातकपूर्ण संधक एवं दुविधासत वातावरण में भी मुख्य राज प्रासाद की प्रमेस प्राचीर पर मयध साभ्राग्य की सिर्हाकित रक्षितम पशाका सैन्य की भाति धान भी सोस्वाह महरा जैसे इस बाठ का बोध करा रही थी कि कुछ भी ली नहीं हुपा। तथापि राजसादार का मुख्य धंत-पुर पर्याय समय तक धोका कम रह धर जैसे बक भीन हो चुका बा। धूं उरका धंतर धमी नी कमी-कमी धारधार कर षठगा। परन्तु उसकी ध्वनि केवल धात्रर व ही टकरा कर रह जाती, क्योंकि निरन्तर रोदन कथे-करते उरका कथ धन तक धुध हो चुका था और फिर इन समय बाहर सिहराध सैनिकों का भी दृढ़ पहरा था। बैठक-पुनी बेस्तना देवी बासनी महाराज बुद्धिवा जेमा पन्माधती तथा पट्ट महिषी कोसल बेची धूं मे सभी धीधारिरेक से बहाल थी परन्तु जो दया इन समय कीसलदेवी की थी उते देख कर लो कोई पापाण हृदय भी ध्यवित हुए बिना न रह पाठा। यह भावातिरेक में बिनाप करती हुई दोइठी-दोइठी मुख्य धार तक जाती परन्तु गिहराध सैनिक बलात् षठ रोक देते। तब धन्य रात्रियां उर्गें कुण समझने का प्रयास करती पर उनका यह प्रयास केवल बिकन हो रहता। जबर, देवी बासनी का धीरे धालगवाति है एक बार ली भूना ली फिर यह उर उठ गी नहीं सका। उरकी दया इस समय विभिन्ध प्राय भी धीर निरन्तर बिनाप से षठका कथ स्वर भी पूज्य धत बिलध हो चुका बा। धपना मुख नत क्रिय हुए ही यह धनर्गल रूप में कह रही थी—“कुमार कोणिक सुमे धाम देकर धे धात्र सधभुध किपनी लज्जित हूं। धरे देख ये सभी सुमे किस प्रकार धिनकार रही हूं।”

परन्तु धंत-पुर के धन्धर होठा हुपा यह रोदनपूज प्रयाप कंधक उसी की धार कीबाठी तक टकरा कर रह जाता। उनका एक भी धन्य बाहर नहीं था वा रहा था जैसे बाहर धाड़े सिहराध सैनिकों को कूर मुसाइति ली देख यह भी धार्जकित हो लोट रहता। धंत-पुर पर निमुन्य निकरात-मुख गिह-पाध सैनिकों को धनदे स्वामी वा दृढ़ धादेश था कि जब तक उर्गें धपला धाधेय प्राप्य हो दिनी को भी यहाँ तक कि पट्टमहिषी कोसलदेवी को भी मयध रात्रि बिम्बधार से न धिसने दिया जाए।

धीर मयध साभ्राग्य का यधस्वी संस्वानक धेलिय बिम्बधार इस समय राज

प्रासाद के किंसा सञ्चित प्रकोष्ठ धरवा कक्ष में नहीं बरन् मुख्य प्रान्तर है। कुछ दूर बासे एक तल कारागार की अवकारपूर्ण कोठरी में बन्द था। और इस कोठरी पर इस समय कपार कोणिक के विस्मस्ततम सशस्त्र सैनिकों का बृह पहरा था।

प्रातः सूर्योदय के साथ ही जब राजा विम्बसार की मूर्छा संब हुई तो उन्हें विविक्षित हुआ कि बह इस समय अपने बीमबसाली राज प्रासाद की विभास सामग्रियों मुक्त किसी कक्ष में नहीं बरन् तल कारागार की एक कक्ष कोठरी में है। परन्तु इस बन्धु-स्थिति को समझने के पश्चात् भी वह लेसमात्र को विचक्षित नहीं हुए। इस बन्धनस्था में भी उनके स्वस्व मुख पर घोषपूर्ण स्वर्णिम कांति व्याप्त थी नियति के इस कूर प्रभार के पश्चात् भी बसि बह धधुपरा ही बनी रही।

सूर्या भय होने के पश्चात् भी वह कुछ लणो तक कोठरी में पड़े एक सिमा खंड पर ही घाम्त थाव से बँडे रहे। फिर सहरा जैसे उन्हें कछ प्यान हो याया और वह सिमाखंड से उठ कोठरी के एक भाग बाठावन की धीर बड़ मिए। उनके विचिन्त पीरों में गति का संचार हो उठा। मुख पर मनस्तोष का भाव छा गया किन्तु नेव बसि कुछ देखने को सामायित हो उठे। बाठयन के निकट पहुँच वह अपने पंखों के बल सचक कर खड़े हो गए। फिर बाठावन में से भाँकते हुए, मस्तक नत कर कस-बड हो सोम्मास मनने ही थे कइ उठे— विम्बसार देखा तुने तथामत दृमकूट पर्वत पर थाव इस समय भी चारिका-व्यस्त है, वह इछसिए चारिका व्यस्त है कि उनका एक उपासक कहीं बसंतों से बचित न रह जाए। बाव है, महाभायो।

उनका कम्ठ पृ-वत् हो गया और धग प्रथम में धानरोच्छ्मास का भाव स्वरित हो उठा। उनके मुख पर भी प्रफुल्लता का प्रगाढ़ भाव फैल गया। कुछ लणों के पश्चात् वह उठी और दृष्टि केन्द्रित रख पुनः बोल उठ— 'मववान् विववास रखी में किचित भी विचक्षित नहीं हुआ है। केवम शारीरिक बल पर बर्ब करने वाले "

बन्दी सभ्राद् के मुख की कोई बात कोठरी के लुसते द्वार कपाटों की घासनाव पूर्व ध्वनि को सुन जैसे स्वतः बक गई। किन्तु सभ्राद् ने उठ धीर देवे बिना ही अनेक कक्षों के पश्चात् पुनः बहना प्रारम्भ किया— "मववान् तवावत ! किसी दिन मेने भी अपने इस शारीरिक बल पर प्रविमान किया था विवयोमसत बाहिनियों को देख बल पुन उठा था और साम्राज्य विस्तार की महत्वाकीया थे "

बन्दी सभ्राद् के मुख से निकलते धधधों की ध्वनि इस बार जैसे तीव्र पवापातों की कर्कासपूर्ण पववपाहट में विभीन हो रही। किन्तु इस पर वह किचित भी विचक्षित नहीं हुए पूर्ववत् ध्यानस्व रह मृमकूट पर्वत शिखर पर चारिका-व्यस्त तवावत की दिग्ग ईह को किहाराते रहे। मुख की प्रसरतर होती रक्षियों से जैसे प्रबली ईह का कूटन बर्ब धीर प्रवीप्त हो उठा। उनके मुख सीम्य को देख बन्दी सभ्राद् इन बार नद् पृ-वत् है कइ उठे— 'तथामत ! धायके बर्धन कर में सचसुच धग्य हो गया है। "

धान्गुरु मुखक जैसे इन बार सत्यग्न व्यपला के ताव अपने पीरों का पववपा उठा। उनने बूटनों तक ऊँचे पववपाण पहन रखे थे और बाव धीर एक लम्बा खड्ग लटक रहा था। उनके मुख पर व्यपला तो व्याप्त थी ही पर सच ही उनमें से प्रति घोष का भाव भी अपने उचतम रूप में प्रतिविम्बित हो उठनी सयस्त मल मला की

कठोर बनाये हुए था। उसके पीरों की बपबपाहट जब इस बार गी सम्राट का ध्यान धाकष्ट करने में असफल रही तो उसके कठोर मुख पर सहसा परामर्श की चिन्तना सी फैल गई। उसे याद जैसे अपने जीवन में प्रथम बार यह बोध हुआ कि एक विषय निश्चय बन्धी व्यक्ति भी यदि पाड़े तो अपने कुछ मिश्रण और उमेजा भाव से किसी समर्थ विद्यार्थी को परामर्श का अनुभव करा सकता है। उसे अपने में एक बुजबुजा का अनुभव हो उठे। परन्तु साथ ही अपने अंतर में बैठी किसी कृपात्मा की प्रेरणा से वह सुरक्षित सावधान भी हो रहा। फिर भी उसके कष्ट स्वर कुछ-कुछ बरसित-सा रहा। बोला—“महाराज क्यों क्या भाव मीन ही रहेंगे ?”

इस बार सम्राट विन्ध्यसार ने सिद्ध-दीर्घ सदृश सीखने वाली मुखाकृति की ललित कुमारा। फिर सर्वथा ध्विचलित भाव से माने वह धार्मिक के सम्मुख धाकट करके हो गए। धार्मिक उनकी इस ध्विचलित मुख धामा के सम्मुख अपनी दृष्टि ऊपर उठाने का जैसे साहस भी न कर सका। दृष्टि नत किए ही रुका रहा। उसके एक कुनोचित तेजस्वी स्वरूप पर विद्या की एक गहरी रेखा उभर आई और वह जैसे जैसे चिन्तने का निष्पन्न प्रयास करता रह गया। अंत में सम्राट ने अपना मीन भंग किया। बोले—“राजपुत्र दीर्घादि से इस महाराज सम्बोधन को सुनते-सुनते उसके प्रति प्रवृत्ति हो गई थी और अब उससे उठने-सा मया था। किन्तु देवयोग से आज एक ध्यात्म की कृपा से यह अवसर प्राप्त हो सका है कि कोई मुझे परे जो विन्ध्यसार तो कहें पुकार सके। फिर बरस ! किसी अपराधी को वह भी एक ऐसे बन्धन धारणी को जिसे तप्त कारागार की काल कोठी की यातना का बोधी बनना पड़ा हो, महाराज सदृश सुप्रतिष्ठापूर्ण धर्म से सम्बोधित करना उचित भी तो नहीं। यह धर्म तो अब किसी और को ही किसी और को क्यों कबल तुम्हें ही बोधा दे सकता है।”

यह कह सम्राट विन्ध्यसार विनाशक पर बैठ गए। बोले—“धमा करना बूढ़ है इसलिए आपके सम्मुख बैठने की यह धृष्टता कर मैं उठ हूँ।

धार्मिक इतना कुछ सुनकर भी मोन रुका रहा। उसे मीन देख सम्राट की दृष्टि उसके मुख पर किञ्चित्तु रही। जब धार्मिक मुख पर पर्याप्त समय तक भी कुछ न मीन सका तो सम्राट पुनः कुछ ध्यात्मियता के से कष्ट स्वर में बोले—“कुमार कोशिक कहाचित्तु तुम कुछ कह रहे थे यही तो पूछ रहे थे न कि मैं मीन क्यों हूँ। किन्तु मैं मीन तो नहीं। धरे ही मैं मूल मया, उस समय मैं अवश्य ही मीन था। परन्तु पुनः विरवाठ रको में किसी ध्यात्मज्ञानि अपना पश्चात्ताप धरवा शोक के कारण मीन नहीं था बल्कि अपने ध्यात्म्य देव तपायत भगवान को करबन्ध हो प्रणाम कर रहा था। प्रहा क्या ही मध्य मूर्ति है वह ! बल्कि यदि तुमने कभी मूले मटके की उध ध्यात्म्य के सौम्य स्वरूप का ध्यात्म्य प्राप्त कर लिया होता तो तुम्हारे सम्मुख धरवय ही एक महान् रहस्य का उद्घाटन हो जाता। कोशिक तुम अवश्य ही अनुभव करते कि जिस महत्त्वानिशा के बधीमूत हो आज तुम उसके पीछे-पीछे भाग रहे हो वह मान मूल-सूण्या है और रुक भी तो नहीं।”

सम्राट विन्ध्यसार के मुख से इन बार यह सुन धार्मिक का मोन भी मग गया। किन्तु कुछ नही उससे पूर्व ही उसके मुख पर आश्चर्य की सी लालिमा उभर

प्राई। भासा—“परन्तु महाराज सपागत का यह मार्ग किसी राजपुत्र के लिए तथा किस प्रकार योग्यकर हो सकता है ? यह तो बीबन से पसायन है कठम्व की ओर उपेक्षा है तथा समाज के प्रति बाधित्वहीनता का परिचायक है। महाराज तनिक यह भी तो सोचें कि यदि सभी युवराज धपते-धपते राज्य का त्याग कर उस धाकड़पुत्र के संघ में सम्मिलित हो जाएं तो याता बसुंधरा के इस प्रसाद—सासन मार—को कौन बहान करेगा ?”

कुमार कोणिक के इस प्रश्न को सुन सम्राट् तत्परता के साथ धिताबंध से उठ खड़े हुए। फिर कोठरी की सीमित परिधि में ही चारिका कपटे हुए वह बँसि धपते विचारों को मू बसा बह करने से व्यस्त हो गए।

इस मध्य उस कोठरी में मौन छाया रहा।

कुछ क्षण पश्चात् उस मौन को सहसा भंग कर सम्राट् एक दीर्घ श्वास बाहर छोड़ते हुए बोले—“कमार कोणिक यह प्रश्न सतना जटिल नहीं चितना तुम समझ बैठ हो। बीघानी यथा राज्य ही को क्या न जो वहाँ के सभी प्रधान समाज रूप से ही तो सासन का मार बहान करते हैं। उसकी व्यवस्था मन्थ से किसी भी प्रकार हीन नहीं बल्कि प्रबल सक्रियताशी ही है। यही क्या मन्थ बल राज्य की भी है। इन दोनों की जोड़ो स्वयं तत्प्राप्त के संघ को ही क्यों नहीं लेते वहाँ किसी का भी कोई सासन नहीं परन्तु सभी समुसासन बह है। क्यों क्या इस अभिनव प्रयोग को इन धपत निज के बीबन में भी नहीं उतार सकते ? फिर कोई एकाकी व्यक्ति सासन को क्या भी तो नहीं सकता। उसको सभी के सहयोग की आवश्यकता होती है। यहाँ तक कि उन प्रधानों के सहयोग की भी जो राज्य की शक्ति के सम्मुख निताम्न निरीह होते हैं। जो यह समझना है कि उस सारे सासन का भार मैं एकाकी बहान कर रहा हूँ उनका वह केवल भ्रम है और साथ ही बन्ध भी।”

कुमार कोणिक को सम्राट् का यह तर्क सर्वथा धर्मवत् प्रतीत हुआ। तब तत्परता से बोले सदा—“परन्तु महाराज यह अभिनव प्रयोग समय के प्रवाह के सर्वथा प्रति कूल होना। प्राय उठ देश को एक प्रसन्न एवं एकच्छन्न राज्य की आवश्यकता है और उसके लिए कोई बन्धवर्ती साम्राज्य चाहिए।”

सम्राट् विम्बसार भी तत्परता से बोले सडे—“और उसकी आवश्यकता पूर्ण भी हो गई क्यों कुमार कोणिक ? यही न ?” यह कह, वह एक ठहाका है हँस पड़े। फिर सहसा हँसी को रोक बन्धीर ही बोले—“परन्तु कुमार, यह तुम्हारी नहीं उस साहाय्य पुत्र बर्षकार की महत्त्वाकीया है या फिर उस अधिय पुत्र देववत की भी सपागत के संघ को नष्ट भ्रष्ट कर उसकी महँगाई से स्वप्न देय रहा है। परन्तु कुमार कोणिक, क्या तुमन कभी यह सोचा है कि इन सारे प्रपंच जाल में तुम्हारा निज का क्या परिवर्तन है ? क्या तुम उस साहाय्य पुत्र और इस अधिय कुमार के हाथों के बास नहीं ? वे तुम्हें एक कठपुतली की भाँति नियंत्रण वँसा चाहते हैं तथा देने ही और तुम भी सहय सहर्ष क्यों मर्ष के माथ माथ रहे हो। फिर उस पर तुम्हारा यह दम्ब है कि वँसे तुम्हें इन मारे प्रपंच में मर्ष अक्षिप्तमान हो। कितना बोधा दम्ब है !” यह कह सम्राट् विम्बसार पुनः एक ठहाका दे हँस पड़े। उनके ठहाक से

बंदी गृह का वह एकान्त-नश्व सूँठ उठा। कुमार कोणिक इस समय अपने जो कुछ धनमानित हुषा धनुमन्ध कर रहा था अथ उसके मुख पर उत्तेजना उमर आई। कबल यही नहीं सम्राट् विम्बसार के मुख से निकली एक-एक बात उसके धमस्तन को हुरी तरह कंबोड उठी। तो भी प्रकट में उसने सर्वथा नाठ रहने का प्रयास किया। वास्तव में यहाँ धान से पूर्व वह मावावेश में कई बार उष क्य बारण कर चुका था। यह देख मगध धमात्य बर्षकार ने उसे एक परामर्श दिया था, और वह परामर्श था कि तुम बंदी सम्रा के पासट अपना धमिधाय सिद्ध करने का रहे हो न कि धनकी हृत्पा के लिए। यह तुम्हें निश्चय ही उत्तचित करेगे परन्तु देवो किसी भी स्थिति में इस समय धनकी हृत्पा करना केवल संकट को धामरण देना है। अतएव उसने धमस्तन कपकार के परामर्श पर मन ही मन मनन कर, इस समय केवल अपना धमिधाय प्रगट करना ही उचित समझा। धमिकारोचित कण्ठ स्वर में उसने सम्राट् के सम्मुख अपना प्रस्ताव प्रस्तुत करते हुए कहा—“महाराज भवभराज का ज्येष्ठ पुत्र होने के नाते मैं बुभराज पर का धमिकारी हूँ। यदि धाप मगध सम्राज्य के सम्राट् पर पर मुख धातीन करना स्वीकार कर सें तो धापको इस बंदीगृह की धातनाओं से मुक्त कर मुझे धतिधाय प्रसन्नता होयी।”

“परन्तु मगध के राज सिंहासन पर किसे धातीन करना है यह निश्चय करना तो मेरा धमिकार नहीं कुमार।” सम्राट् ने तत्परता से उत्तर दे जैसे उसका कोई धन निवारण करने का प्रयत्न किया हो। इस पर कुमार कोणिक भी बंदी ही तत्परता से बोला—“यदि यह धमिकार महाराज का नहीं तो और फिर किसका है ?”

“कुमार, यह निश्चित ही तुम्हारा धन है। यह धमिकार महाराज का नहीं परन्तु उभासवों का है। मुझे उभासवों का उनके इस पुनीत धमिकार से धमिधत करने का कोई धमिकार नहीं और यदि मैं ऐसा कछा हूँ तो यह धपने गौरवधात्री पर का उभया बुधपयोग ही होया। यह मगध राज की केवल स्वेच्छाधारिता होनी।” यह कह सम्राट् विम्बसार तनिक इके और फिर एक बीच निश्वास छोड़ बोले—“और कुमार कोणिक धमिधाय उभासव कुमार विलस को इस पर धातीन करना चाहते हैं।”

सम्राट् के मुख से यह मुख कुमार कोणिक पुनः भारी धपमान का धनुमन्ध कर उठा। किन्तु धीम ही वह जैसे वर्ष का धनुमन्ध कर, बोला—“परन्तु कुमार विलस तो धन नहीं रहे महाराज।”

कुमार कोणिक के मुख से यह सम्राध धून महाराज धानों स्तम्भ रहे पड़े। उधापि प्रकट में प्रकृतिधय रहे उन्हींने सरोप दृढ़ कण्ठ से प्रश्न किया—“धर्यो, तो क्या यह भी तुम्हारे इन मूर हावों का धाकैट धन चुका है ?”

बुद्ध सम्राट् के मुख पर निराशा एवं उत्तेजना का भाव एक धाय फैल उठा। किन्तु कुमार कोणिक के मुख पर धावा हुषा धर्य का भाव और प्रगाढ़ हो उठा। मैवो में जैसे विजयोग्यार उभर धाया। धानों साधिनय नर मस्तक ही बोला—“धाकैट धन ही रहा था कि हमी मध्य धोणसाधन ने धाकर उधकी रजा कर ली, महाराज। और धोणसाधन के इन सन्धार स्वरुध यह सद्धम में धीधित श्री हो चुका है।”



यह सुन राजा बिम्बसार कुछ समय तक मौन ही बड़े रहे। कुमार कोशिक भी कुछ समय तक मौन रहने के बाद पुन बोला—“घोर महाराज कुमार हस्त विह्वल सेवनक तगराज को मे बघाली के लिए भाग बड़े हुए है। घोर कुमार नबितेन तो घापके सम्मुख पहले ही निर्णय घर्म के अनुयायी हो चुके थे। घोर रहा यह गणिका पुत्र धर्म्य भइ भी भागपाली समेत यिकु संघ को धारा हुमा देल पशिम पुत्र का अनुयायी हो गया है महाराज।”

कुमार कोशिक के मुख के धर्म्य के सम्मुख में गणिका पुत्र का सम्बोधन सुन क्रोध से सभ्राट् का रक्त खोल छटा तथा मुकुटी तन गई। उस मंसी कम में हाकर भी सनका मुख श्लेषातिरेक से तपसमा छटा। तत्पश्चात् यह बड़ कष्ट स्वर में बोले—  
“कुमार मे इतना जानता था कि तुम कूर हो डीठ हो यह भी मेने उस दिन समझ लिया था जिस दिन तुम मध्याह्न में विद्याप कक्ष में मेरी हुर्या करने के प्रयास से घाप थे। तो मेने तुम्हें अपनी उदारता बघ रात्रपूह को छोड़ समूचे राज्य का स्वामी बना दिया था। फिर भी तुम संतुष्ट नहीं हुए, घोर लिव्वा के पीछे-पीछे मायवे रहे। तुमने घाब उसके उपकार स्वल्प स्वयं मुझे ही इस कारागार में डाल दिया है। घोर घन मेरे ही सम्मुख तुम एक रात्रपुत्र की माता को बो तुम्हारे लिए भी माता तुम्य है, गणिका कह कर पुकार रहे हो। कुमार कोशिक तुम्हारे इस खील को विनशर है।

यह कहते हुए सभ्राट् के नेत्र धालीय हो उठे। घोर भोष्ठ फड़फड़ाते रह गए। परन्तु कुमार कोशिक ने इस विचकार पर न तो लज्जा का अनुभव किया घोर न ही यह उत्तेजित हुमा बल्कि एक जयहास की धमका दिखबोग्यार की हंसी हंन उठा जिससे एक बारभी यह सारी कोठरी प्रकम्पित हो उठी। यहवा हंसी को रोक यह साबेध बोला—“महाराज यहीं मे प्रताड़ना के लिए नहीं बल्कि राज्य विहासन के लिए धामा हूँ मुझे राज्य चाहिए।

राजा बिम्बसार उत्तर में न केवल मौन हो रहे बल्कि अपनी शीर्ष भी नत कर दिया। कुमार कोशिक भी बाहर जाने क लिए खल्ल हो उठ्य। परन्तु जाते-जाते वह धमक कर कि” बोल उठ्य—“महाराज धमी भी समय है। घाप धमना विचार बदल में। यह यह उठने नामावित दृष्टि से बनकी घोर देला। परन्तु महाराज शिवा बाह पर नत दृष्टि किए ही मौन हुए बड़े रहे। उनका इन प्रहार मौन रहे देन जसि कुमार कोशिक किसी भारी बुधिया में जगभ गया। शिवतु अपने मुख पर यह दुःखिप भाव धमिक समय तक न टिक सता। बास्तव में उसकी मृगादृति बढोरतम हो उठी।





इस समय तक कुछ भी नहीं तो पूर्वाह्न का कोई देह प्रहर बीत चुका होगा ।

परन्तु, राजगृह के उत्तर द्वार के बायें ओर बायें एक विस्तृत समतल प्रांगण में धनी श्री अनामिका की राशि का छा वहल तिमिर व्याप्त है । सर्वथा निर्जन प्रतीत होने इस प्रांगण में किसी एकाकी व्यक्ति का आना कोई कम साहस की बात नहीं थी । तो भी इस समय वहाँ विद्यालय बच्चों की घीट में वड़े एक जिमाखट पर कोई व्यक्ति विद्यमान है, और वह एकाकी व्यक्ति अत्यन्त व्यथ भाव से किसी की प्रतीक्षा करता प्रतीत हो रहा है । बयल की दृष्टि से उसकी प्रतीक्षा भी संभवतः असंभव है । परन्तु जैसे धानू की इस बीजबिधि ने उसकी सुनठि देह पर कठोर प्रहार करने के पश्चात् भी अपने विशेष चिह्न नहीं छोड़े । इसका विस्तृत मलाट समतल कुच के इन धानकार में भी देखीयमान है तथा उन्नत नासिका एवं ज्योतिरित नेत्रों मूलतः उसकी मुखाकृति पर जो आभा व्याप्त है, उसे देखकर सहज ही में अनुमान लगाया जा सकता है कि वह अथवा ही कोई राजकुमोत्पन्न है । परन्तु, उसने इस समय निम्न के हीयव बीबर आरख किष्ट हुए थे । उनके हाथ में एक भिजा पात्र भी था । परन्तु कुच पर वाचना का विषय अथवा कीमल पात्र नहीं बरन् प्रतीक्षा की व्यथता की धीर उठ कर गया था अन्तर में से उठा कोई कठोर भाव सहज ही में उठ कर छा उठता धीर उठी के साथ उनके नेत्रों में एक अहृत्वाकांक्षी के स्वप्न का छा स्वरूप भी प्रतिबिम्बित हो उठता । कुच भिजाकर उसके मन की गति इस समय प्रति अथवा थी, धीर मुच पर दुर्भाग स्पष्ट प्रकट रहा था ।

जब वह प्रतीक्षा करते-करते अत्यन्त अवीर हो उठा तो वह विसासबंद पर से उठ धनी के वाचनधर से आरिका में उलनीन ही गया । परन्तु उसकी दृष्टि धर भी कुच के मार्ग पर स्थिर थी और जैसे-जैसे समय बीतता जा रहा था जैसे-जैसे ही उसकी आरिका की गति भी उब जाती जा रही थी । मार्गों इस आरिका में बीतता प्रति अथवा उसे एक प्रहर के समान प्रतीत हो रहा था ।

समय की गति के इस माप-बंध के अनुसार जब पर्याप्त समय व्यतीत हो गया तो अन्त में उनके कानों में धनी और शीघ्रता पा रहे एक अथवा की पदचार की ध्वनि धा टकराई । स्पे गुन उनके मुख पर आया नैराशय भाव मूठ हो गया और सहसा अकु-स्मता से खिल पडा । परन्तु धर्म ही अथवा उनके नेत्रों में अन्तर का अन्तर्देह भाव अन्तः प्रामा तथा अज्ञी के साथ वह अन्तरता से निकट ही सड़े एक विनाशवान वृक्ष की आट में अया हो गया । फिर अत्यन्त आश्चर्य हुआ उठी धीर देखने गया ।

घरबारोही इस समय तक उसके धरमल समीप था चुका था। उसे देख उसके प्रतीक्षा व्यस्त मुख पर किंचित शोक का भाव उभर आया परन्तु शीघ्र ही वह स्वागत की मुस्कान में भी परिणत हो उठा।

प्रतीक्षापुर कीयत नीबर भारी व्यक्ति मिश्रु देवदत्त के घतिरिक्त कोई अन्य नहीं था तथा धार्मिक घरबारोही स्वयं कुमार कोणिक ही था। कुमार कोणिक की मुख मुद्रा इस समय धरमल व्यस्त प्रतीत हुई। उस पर कुछ-कुछ चिन्ता एवं दुःखिता का सा मिश्रित भाव भी प्रकट झलक रहा था। उसका यह मुख-भाव देवदत्त की मूढ़ दृष्टि से छिपा नहीं रह सका। यह देख वह घक्ति हो उठा और एक बारही धरमल में निपटारा भी छा गई। व्यस्त कण्ठस्वर में पूछने लगा—“क्यों कुमार, सब सक्रमल तो हैं? धारा कार्य धोरनाबद्ध तो चल रहा है न? कहीं कुछ ध्यानात तो नहीं? धरमल के बन्दी बना लिए जाने पर तो सब धपना मार्य प्रधस्त हुमा ही समझो। फिर मला मुर्ख पर यह चिन्ता क्यों?” यह यह सब कुछ एक साथ में ही कह गया। उसकी उचक दृष्टि कुमार कोणिक के मुख पर जा टिकी।

इस समय तक कुमार के मुख से चिन्ता का भाव लुप्त हो चुका था। परन्तु, साव ही मन की किसी भारी दुःखिता ने उसका स्वाग से लिया। देवदत्त की दृष्टि से यह भी छिपा नहीं रह सका। परन्तु वह मौन रह, केवल उत्तर की प्रतीक्षा करता था।

कुमार कोणिक उत्तर में कुछ कहने के लिए उद्यत हुआ परन्तु साव ही मार्गों किन्ती के कड़े धारण में उसे बलात् रोक दिया। धरमल प्रवाह की बरतते हुए उसने तत्पण स्वयं ही देवदत्त से कोई प्रकल करना उचित समझा। बोला—“धर्म संघ में देवी धारणासी पहले से ही उपस्थित थी। धीर सब उसका पुत्र कुमार धरमल मी नहीं पहुँच चुका है। धरमल यहि उस धोर से किसी भी धरम कोई संकट उपस्थित हो उठे तो धारण्य की बात नहीं होती।” यह कहते हुए उसने धपनी दृष्टि तनिक ऊपर उठाई। उसने देखा देवदत्त के मुख पर हल्की-सी मस्कान उभर आई है जिसमें कुटि मला का कर्कश भाव स्पष्ट शीघ्र रहा था। यह देख उसका हृदय ध्यत हुए बिना न रहा। मन ही मन बोला—“कोणिक जिस कार्य को वृत्ते धरमल धरल समझा था वह तो सक्रमल उगना ही अटिल निरमला। धीर उनी के साव धरमल मन में मगध टाग हाट कही कई बात प्रतिध्वनित हो उठी। उसे स्पष्ट धनुषध हुमा कि इस समय यह वास्तव में ही धमल्य बर्बरार एवं मिश्रु देवदत्त के हाथों की कठगुतली बना हुआ है। धरमल उहे धपने निर के प्रति धरम ध्यानि था सा धनुषध हुमा परन्तु साव ही उनने देखा कि यह इस समय ऐसी स्थिति में पहुँच चुका है जिससे पीठे हटना धीर भी संकटपूर्ण है। परन्तु धपकार के धारण्य इस समय उठे धर्म बड़ने से भी रोकें हुए हैं। करारिधु इसी कारण उसकी मन-स्थिति धधिशायिक दुःखिपूर्ण होती था उनी की। धरमल धरमल में प्रवाहित इन इन्धुपूर्ण विचारों के साथ उनके मुख की दुःखिता धीर प्रगाढ़ हो उठी। मिश्रु देवदत्त की मूढ़ दृष्टि कुमार कोणिक के मन में धरल-धरल के धरमल से उठते हुए धरमल भाव को धनी मूर्ति ताड़ रही थी। धपने मुख के कुटिल भाव की धरमल में धरमल—“धीर हो यह बोला—‘धामुध्यान् संघ की धोर से होने वाले किसी भी

आवाज के समुद्र उन्मूलन की धीर से तुम पुत्रों घाबरसत रहो । परन्तु वास्तविक बापों तो स्वयं मन की बुद्धिवा है अथवा सिद्धासन धारक होने की शिक्षा में जमा इसके ध्येय स्वर प्रवृत्त नार्थ तुम्हें धन धीरववा मिल सकेगा ? सिद्धासन के सभी सत्तारधिकारियों में से एक-एक को चुन तुम मार्ग से हटा चुके हो-धीर उभर मगब राज की भी ।" मिथु देवदत्त कुछ धामे कहा ही चाहता था कि इसी मध्य कुमार कोलिक ने मुझ पर संतुषी रख, ली ई करते हुए उसे रोक दिया धीर सर्वक दृष्टि से इतर-इतर देखते हुए कह बोला—“धर्म यह न भूमें कि ये तुल के पत्ते नहीं बल्कि धनुषों के काग हैं तथा उनके मध्य से बहता हुआ वायु का हुस्का-सा झोंका भी हमारे मुख से निकलता अनेक धम्य कही से कही पहुँचा सकता है ।” तनिक वह इस बार नठ मन्त्रक हो वह पुन बोला—“मन्ते ! यथात्य सर्वकार का कहना है कि सभी इस समाचार को सत्य धेदन तक सर्वथा बीजनीय ही रहना है ।

कुमार कोलिक का कथन सभी समाप्त भी नहीं हुआ था कि इसी मध्य वह समग्र कुंम एक निर्दम्य हँसी के ठहाके से धूँक उठा उसे मुन वृत्र पस्मक जैसे काँपते रह गए । यह ठहाका किसी धम्य का नहीं बल्कि स्वयं मिथु देवदत्त का ही था जिससे एक बार को बुर स्वधामी कुमार कोलिक का हृदय भी व्यर्थाहित हो बहम कर रहे गया । परन्तु धपनी इस दुर्बलता पर उसे स्वय सज्जा का अनुभव हुआ । ईससे समय मिथु देवदत्त की मुखाकृति पर वास्तव में कुछ ऐसी बीभत्सता था गई थी जिससे किसी का भी मयभीत हो उठना स्वाभाविक था । अहसा हँसी को रोक देवदत्त ने दृढ़ स्वर में कहा—“धामुष्मान्, तुम इस समय कुमार कोलिक नहीं बरन् नववपति हो । यह साठ राज्य तुम्हारा है । इस राज्य के सभी प्रजाजन तुम्हारे सेवक हैं धीर प्रमात्य बचकार भी तुम्हारा कर्मन एक बात है । क्षमिय पुत्र तुम्हें इसके धारेण पर नहीं बनवा बल्कि उसे तुम्हारे धामा का गानन करना है । किन्तु, उसके विपरीत में देख गया रहा है धामुष्मान् कि तुम इस निर्भेन धामुष्मान् के पस्मकों की भी धरिग दृष्टि से देख रहे हो । वहाँ कोई भी तो नुनने वाला नहीं किन्तु तुम फिर भी मयभीत हो धीर धपने मन की बुद्धिवा की भी ब्रकट करने में सर्वोत्त का अनुभव कर रहे हो । क्यों? क्योंकि मुझ पर विरवास की नहीं । क्या धामुष्मान्, मैंने ठीक कहा न ?” यह कह वह पुन एक उच्च ठहाका दे हँस उठा ।

देवदत्त ने कुछ भी धपराय नहीं कहा था, तो भी उनके मुख से यह नुन कुमार कोलिक मन ही मन ध्याकुल हो उठा । संतस्तन मय से सिहर गया । नठ मन्त्रक ही बोला—“धर्म विरवाज वरें ऐसी कोई बात नहीं है । परन्तु राजबूह की इस समय की स्थिति है उसमें यह सावधानी धनिकार्य ही है । राजबूह में धूँ इस समय सर्वथा बीन है धीर सर्वक धान्ति है परन्तु यह धान्ति किसी सर्वकर लूणन की भूमिका भी हो सकती है । उलने एक बार करवद बरली नहीं कि धर्म फिर निरुधय धानिये इस सर्वकर लूणन के चलने वाले प्रवत्त भेदों के धापने हम सभी का टिकना धसम्भव हो जाएगा । मन्ते एक-एक कर सभी राजकुमार धपराय धपे गए हैं परन्तु किसी को क्या विरित कि के सभी किसी धर्यन के धाने-धाने में ही धरसत हों । हृदन-विहृदन कर बैधानी की धीर वस्तुन धन-व ही विनी न किनी धपकर धरकट का क्य दृष्ट करेवा ।

मगधराज के बंदी बना लिए जाने का संकेत यहि हस्म-बिहस्म को मिल गया तो फिर यह समझे रहना कि बीधाली चुप बैठे रहेंगी मितागत मूर्खता होगी। मगध पर कुछ दृष्टि समाए यह प्रसन्न ही कहे इस व्यवहार को ह्राप से जाने देना धीर कोसल परेश भी भना कहे हाव पर हाव रहे बैठे रहेंगे। हमें व्यवहार ही सब धोर से सामधान रहना होना प्रम्यथा यह प्रमाह होना धीर अपने इस प्रमाह के बरते में हमें न जाने क्या मुख्य चुकाना पड़ जाए। धीर फिर भले बीधक कुमार भृत्य भी तो एक रात्र कुमार ही है। धार्य आप कथाचित इस तथ्य को मूल रहे है। केवल सभासदों में ही नहीं इतर जनों में भी यह कितना लोक प्रिय है यह तथ्य भी किसी से छिपा नहीं है। धार्य सभी राजा उसके चिकित्सा-नीरुध से उपह्वत है। केवल उसके हृदित नाम नर एक नहीं, धनेक बाहिनिया मगध पर धर्मियान कर हमारी इस सारी योजना को निष्फल कर सकती है धीर हमारे महाबलाभिहत सुनीधि का भी तो अभी कोई निरिधत मत प्रगट नहीं हो सका है। उसके सभी धास्वासन कौन जाने धन्त में केवल प्रपंचमान ही छिद हों जैसे यह वह किसी मगधर की बात में बैठे हों। कौन जाने वह भी इस समय बीधक कुमारभृत्य के धरन्त से मोटने की ही प्रतीया में ही।” कहते-कहते यह सहसा बहा धीर फिर अचेष्ट दृष्टि से उसने चारों धोर देखा। इसी मध्य मितु देवदत्त ने तनिक धादधर्ष का भाव प्रगट करते हुए कहा—“धामुध्यान् बीधक कुमार भृत्य भी एक राजपुत्र है, यह तथ्य तो सचमुच धात्र मेरे सम्मुख धरंवा नया ही है। परन्तु कैसे ?”

कुमार कोलिक ने उत्तर में बताया—“धार्य यह तथ्य मुझे भी सभी-सभी विरिध हुआ है। मगध राज के धतिरिक्त केवल वो ही ध्वन्त ऐसे है जिन्हें यह तथ्य विरिध है। उनमें से एक तो स्वयं मगधराज धरंकार है तथा दूसरे महाबलाभिहत सुनीधि। भले ! कड़े के दर पर धामुध्यानी के पुत्र धवध को भी एक दिन धामास ही एक मगधराज मितु मिला था वह राजनरंकी धानवतीका पुत्र था। तब अपने अपने कौमार्य को धामुध्या बोधित रखने के लिए ऐसा किया था परन्तु उसके पश्चात् जब उसके मन में भी धामुध्याकाता बलवती हुई तो उनमें यह तथ्य मगधराज के सम्मुख प्रकट कर दिया जो मगधराज को भी स्वीकार करना पड़ा। फिर बीधक कुमार भृत्य कुमार धमय के प्रति कितना इतर है यह तो धरं विरिध ही है। धतपत्र जब यह यह सुनेगा कि कुमार धमय कोलिक ने धय से धरं में प्रविष्ट हुआ है तो धाप धमय सकते है कि स्थिति कितनी मगधर बन सकती है। फिर उत्तर हस्म बिहस्म भी तो धमय का भाव देने के लिए तैयार थे। यह कहने हुए उठने समयधायों क धार से बहे दने धिधित निराध दृष्टि से मितु देवदत्त की धार देखा। मितु देवदत्त की मुधाहति इस समय धरन्त मन्धीर हो उठी तथा मेत्र दृष्टि जेगे समयधाय के समाधान के लिए दृग्ध में कळ टटोवती हुई ती उसी में बलचित हो रही। धन्तत एक धीर्य निरधाम के धाप उसके मुन से एक मन्धीर हुंकार कूट निकली। कळ लोचना हुआ-धा बाला—“धरं धामुध्यान्, धमराय धरंकार का धय यह धेद नहमे ही से विरिध था तो फिर उहोंने यह धेधन धात्र ही धरं प्रगट किया ?”

कुमार कोलिक उसके इस प्रश्न का उत्तर देने की जगह ही हुआ था कि धरं

मध्य भूज में कहीं निकट ही में हुई पत्तों की लकड़बाहट से दोनों चौक से उठे। सतर्क दृष्टि से उन्होंने उस घोर देखा तो दोनों ही के बिस्मय की सीमा न रही। स्वयं बर्ष कार अपने मुख पर कटिल हास्य लिए शबर धा रहा था। किसी प्रत्यक्ष मार्ग से उसे माया हुआ न देख उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे वह भूयम में से प्रवट हुआ हो। परन्तु भूयम मार्ग से धा वह बच से उनकी बातें सुन रहा है। इस धारणा से उनके मन प्रन्दर ही प्रन्दर प्रकम्पित हो उठे। अमात्य बर्षकार इस मध्य उनके अत्यन्त समीन धा लडा हुआ। उसके मुख का कटिल हास्य भी इस समय तक यौं प्रयाङ्क हो चुका था। उसने पहूने जैसे साक्षर दृष्टि से कुमार कोणिक की घोर देखा तथा फिर अपनी दृष्टि मिश्र देवदत्त पर केन्द्रित करते हुए कहा—“जगते ! राजनीति के दाह-येव इतने सहज नहीं कि उन्हें बच जाहो जिसके सम्मुख प्रगट कर दो। रहस्य का हूयम नाम ही राजनीति है एवं प्रतीक्षा उसका सबसे बडा धस्न है।” यह कहते हुए उसने अपनी दृष्टि फिर कुमार कोणिक की घोर लेरी तथा जनेक मीन के परचाए बोला—“कुमार कोणिक उन्हें अभी तत्काल बीघाली की घोर प्रस्थान करना हीया।”

अमात्य बर्षकार के मुख से सहसा यह निश्चय सुन कुमार कोणिक को तो धारबर्ष हुआ ही परन्तु मिश्र देवदत्त के मुख पर तो भाँटि निराशा ही धा गई। वास्तव में देवदत्त तो भयभीत हो उठा। उसे मया कि कुमार कोणिक की अनुपस्थिति में तो वह एकदम अचक्षुय हो जाएवा अथएव उसने अत्यन्त कफुस भाव से कुमार कोणिक की धार देखा। कुमार कोणिक भला क्या धास्वासन देता वह स्वयं इस समय बुविधा में पडा हुआ था। उसी बुविधा के निराकरण की धाधा ने उसने अमात्य की घोर देखा। फिर बोला—“क्या एसे ही एकाकी धार्य।”

अमात्य बर्षकार ने तनिक हँलठे हुए उत्तर दिया—“नहीं कुमार भला यह जैसे सम्भव है। मयध के भाबी सम्राट के धाय पूरी धार बाहिनियों का संन्य बन होगा।” यह कह वह तनिक रुका। फिर जैसे कळ लीज बोला—“तुम्हारे पिहू पाह संनिकों में से जिस किसी को जो भी कार्य सीया गया है वह निश्चिन जतला रहेगा। उस घोर से तुम सर्वथा धारबस्त रहो। हाँ तुम्हें बीघाली जाकर उस बणु प्रधान बैठक से केवल इतना कहना है कि वह सचेनक यत्रराज समेत धाए अपने दोहिधों—कुमार हस्न-बिहस्न को बापस लौटा दे अथवा फिर पुनः अनिधाय है।”

यह सुन ने दोनों ही धारक्षित से हा उठे। अमात्य बर्षकार ने जो कुछ कहा था उसमें उसका कुछ निश्चय बोल रहा था तथा कहीं भी लेख मात्र को निश्चिता नहीं थी। उसने एक साध धार-धार बाहिनियों को बीघाली की घोर धधियाल करने के लिए तथा अन्ततः उसे पुनः की चुनौती देने क लिए किस प्रकार तैयार कर लिया इस पर कुमार कोणिक का धारधय जवित हो उठना स्वभाषिक ही था। मन ही मन वह अमात्य से एक प्रश्न पुछने के लिए उद्यत हो उगा परन्तु उसके पूर्व ही अमात्य ने उसे कहा—“कबल ये धार ही नहीं बरन् धम्य कई बनापिहत भी पूर्णतः तुम्हारे साध है। यव हूँ मद्धारनापिहत के रुख की कोई बिगता नहीं रह गई, कुमार।”

यह सुन कुमार कोणिक का मुख भिन उठ्य। परन्तु मिश्र देवदत्त के मुख पर अभी भी निराशा ध्याल थी। कुमार कोणिक बीघाली की घोर प्रस्थान करे, उससे पूर

स्वयं ही ध्यात भी हो रहे। इस समय यशराज सेवक कुमारों के घन्टर में उठते भावों तथा विचारों के बीच से भी अधिक तीव्रगति के साथ बग्य प्रवेश के ऊपर खानक मार्ग पर बीड़ता बत्ता का रहा था और उसी के धागे पीछे राजकुमारों के पस्वास्व विस्वस्त अनुचर माने चले जा रहे थे। राजबूह से निकले इन सभी को धब तक हो प्रहर से भी अधिक समय भीत चुका होगा। इस सारी प्रकृति ही तो सेवक इसी गति के साथ भागता रहा था तो भी उसने धब तक सेसमात्र को भी क्लान्ति का भाव नहीं दिखाया था। उस्टे प्रात- के प्रकाश से मार्ग जब स्पष्ट बीचने तथा धीरे धमनेता धस्वों की बति तीव्र हो उठी तो वह भी उनके पीछे-पीछे धीरे अधिक पतिमान हो उठा। उसे इस प्रकार भागते देख हस्त को तथा सेवक को भी बबस्य ही हमारे पचापन का खस्य विधित हो गया है तभी तो वह धाब अपनी स्वाभाविक समस्त बाल को छात्र सारी सुन-बुन को हत पचस्त हुपा या बीड़ रहा है वह तो कुट ऐसे बीड़ रहा है जैसे हमने नहीं बरज स्वयं उसने पचापन किया हो। सेवक के विषय में यह सब कुछ सोचते-बचारते हस्त का मन कुछ भापि-ता हो उठा और उसी के साथ उस ध्यान हो धामा कि राजा ने जब एक दिन प्रवल्न हो पुरस्कार स्वस्व उसे यही गजराज दिया था तो तब कुमार कोणिक कितना बुध्य हो उठा था। उस समय उसके मन में पक बहुमुख्य मणि-मुक्ताहार को तो वह निरचय ही नातापित वृष्टि से देखता रहे गया था। मणि मुक्ताहार का ध्यान धाते ही वह कस हड़बड़ा सा गया और उसी हड़बड़ाहट में उसने पास के स्थान को कस टटोला-बा। मुक्ताहार को ध्यान ही पास सुरक्षित समझ उसने जारी संतोष की संस भी। तब, विह्वल इस सारी प्रकृति मीन वह घन्टर में उठते भावों के प्रवाह के साथ सोचता विचारता न जाने कहीं दूर विषय में पहुँच चुका था। परन्तु उसकी वृष्टि प्रकट में धाते-धाते क्षमीलों पर टिकी थी जो इन सभी की धीरे विस्मय की-बी वृष्टि से देख रहे थे मन ही मन संभवतः कुछ अनुमान भी लगा रहे थे।

जवा अनुमान लगा रहे होने विह्वल ने इस धीरे कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। वह तो केवल अपने से कोई अपनी ही बात कहता था रहा था। वह अपने से कह रहा था—विह्वल हम से तो ये क्षमीण ही नहीं बचते। कम से कम निर्दण्ड तो है। इतर हमें देखो कहने को राजकुमार है किन्तु ऐसे धयभीत हो भाग रहे हैं जैसे हमने कोई बचस्य धपराव किया हो। धीरे वह धपराव गया हो सकता है। सहसा उसके मस्तिष्क में यह ध्रन कठ खड़ा हुपा। धीरे फिर न जाने कितने समय तक उसका धारा ध्यान केवल हमी एक ध्रन पर केग्रीमूत हो रहा। दसपित हो वह उत्तर को सोचता रहा किन्तु तरकाव कोई भी निष्कर्ष निकालने में धसबर्ध रहा धीरे धब कोई बात धाई भी तो केवल यही कि 'हम राजबुन हैं। वह सोचने मवा—'इसके धतिरिक्त धीरे कोई भी तो धपराव हमने नहीं किया न हमने किया धीरे न ही अनुचर मन्दिनेन ने किया था धीरे अनुचर लिखने में ही जता ऐसा कीन सा धपराव किया था जो कुमार कोणिक को वह तधिक भी तो नहीं मुहा लका। परन्तु हम सब कस के पीछे गया कारण धबवा गहस्य था यह बात वह नहीं सोच सका। बास्त्रव में वह जैसे इसकी कोई धाबरावकता भी नहीं समझता था।

कारण यद्यपि वह हस्म से केवल एक प्रश्न ही छोटा वा परन्तु उसे अपने अपने हस्म से निरन्तर जो प्रगाढ़ स्नेह भिन्नता रहा वा उसने उसे उसके सम्मुख जैसे कई नय छोटा बना दिया वा । विह्वल के मन में हस्म के प्रति कोई धादर भी कम नहीं वा अतएव जब उसके अन्तर में यह भाव विशेष प्रोत् प्रोत् होता तो वह उसके सम्मुख सकोच का भी अनुभव किए बिना न रहता । यही कारण है कि पर्याप्त समय से अपने मस्तिष्क में उठी एक बात को वह हस्म के सम्मुख प्रकट नहीं कर सका । अंततः जैसे उसने अपना धारा बाकबल लगाया । बोला— 'क्यों बन्बुवर क्या राजपुत्र हीना सचमुच धमिषाय नहीं है ।'

वास्तव में वह जो बात कहने लगा वा वह इस बार भी रह गई । उसने नेत्रकोरों से अपने अक्षर की ओर देखा उसे लगा कि वह जैसे उसी की बात पर पूरे अनुरोध से विचार रहे हैं । फिर तो जैसे वह मन में ही एक ही बात भी कहने को प्रोत्साहित हो उठा । बोला— 'बन्बुवर, वास्तव में धमिषाय वाली बात तो मैं ही मुझ से निकल गई जो बात कहने लगा वा वह सकोचवश रह गई ।'

अपने अनुभव के मुख से सकोच की बात सुन हस्म के मुख पर स्नेह-सिक्त धारमीयता का भाव सहज रूप में खेल उठा और विचारों अथवा वाचिक भाव के कारण उसने मुख पर पहले जो एक आन्वीर्य विशेष छाया हुआ वा वह भी जैसे उसी में विनीत हो गया ।

विह्वल उसकी ओर नेत्रकोरों से देखते हुए धीरे बोला— 'बन्बुवर, मला वह नीतिकार कौन वा जिसने कभी कहा वा कि राजपुत्र हिंसक शैक्षि के समान होते हैं । क्यों बन्बुवर, क्या उसने उचित नहीं कहा वा ?'

अटनापुत्र प्रस्तुत प्रसंग में विह्वल के मुख से निकली उक्त बात को सुन हस्म पन ही मन उसे स्वीकार कर उठा । सो भी वह प्रकट में हँस पड़ा । बोला— 'आनुष्मान् वह नीतिकार अवश्य ही कोई आह्वानपुत्र रहा होगा । तभी तो उसने किसी अपवाद मान को ही अपना बुरा कारण बना उसे अंततः अपने सिद्धान्त के साथे में धाम दिया और फिर अत्यन्त धारमविश्वास से अर्बव उसकी ऐसी बड़ी पीठ दी कि जैसे उसने प्रकृति के किसी बड़े महत्वपूर्ण रहस्य को खोज निकाला हो । पर आनुष्मान् मुझे तो ऐसा लगता है कि उस आह्वानपुत्र ने अवश्य ही कुमार वाचिक को देखा होगा और उस उठी को देखाकर अपनी धारणा थक भी होगी । और जब तक उसकी विलक्षण बुरबुरी दृष्टि के सम्मुख बन्बुवर तिलक धार होंगे तो उस समय तक वह अपने किसी धाराध्य देव का ध्यान कर अवश्य ही समाधि लगा बैठे होगा ।

इस पर विह्वल उत्तरता से बोल उठा— 'अथास्तव जब राजपुत्र ही इतने महत्कारणी हो उठें तो फिर भला उसमें किसी आह्वानपुत्र का क्या योग है सचता है । उसने अवश्य ही कुछ ऐसा देखा होगा तभी तो उसने यह कह दिया । इतने बड़े अवसर तथ्य को किसी आह्वानपुत्र ने बिना किसी प्रमाण अथवा धारणा के कह दिया होगा ऐसा कम से मुझे संभव प्रतीत नहीं होता ।'

हस्म तर्किक विह्वल बोला— 'आनुष्मान्, तो फिर मैं नहीं वा कि उसी राजपुत्र



तुम्हारी माँति केवल घोसे होते हैं।”

तनिक एक हल्का कुछ सोचता हुआ फिर बोल पड़ा—‘मुझे भयता है मायु प्यागु, जैसे एक तप्य की धोर से तुम धमी तक संभकार में ही हो।

‘धीर तहू कीन-सा तप्य है बन्धुवर,’ बिहल्ल ने उत्सुकता से पूछा।

हल्का को अपने मक से निकली बात पर जैसे कुछ परभाव का सा अनुभव हुआ। मगध राज्य की स्वसंत राजनीति के जिस रहस्यपूर्ण विचार को वह पठ कई वर्षों से अपने इस विशेष धनुष से छिपाता था रहा था जैसे वह धान बसाए ही उसके मुँह से प्रकट होने को बघत हो पड़ा। परन्तु धन लक्ष्य धीरे धीरे छिपाना भी उठे उचित न लगा। वह सोचने लगा—‘मैंने उठे धन तक संभकार ही इन सभी बातों की धोर से संभकार में रखा। फिर भी वह धन ही मन ही मन एक निश्चय कर पड़ा धीरे पड़का वह निश्चय था—‘सम्राट के बन्धी बना लिए जाने की बात में उसके सम्मुख बिल्कुल ही तो प्रकट नहीं करवा उठका संकेत भी नहीं देना सम्भवा वह अत्यन्त सावधानीपूर्वक ही उठेवा था फिर कोबाबेख में राजगृह की धोर ही मीट लेका। मुझ पर बिस्वासपाठ का आरोप धन्य सपामेगा? यद्यपि पुनः प्रसंग के मुख्य प्रवाह की ही धोर तक वह बीना—‘मायुप्यागु वास्तव में मैं तो अपने ही राजशासन की इस अवल-वृत्त के सम्मुख म कुछ पूछ रहा था। कुछ रहा था कि क्या तुम्हारी दृष्टि में यह साध प्रपंच केवल कुमार कोणिक का ही है?

कुमार बिहल्ल के प्रश्न में बीठी दृढ़ धारणा जैसे स्वतः प्रकट हो उठी। वह उत्तरता से बोला—‘तो तो सर्वविधित है बन्धुवर! क्या धन हममें भी कोई बिचारने की बात होव रहा है?’

‘तो फिर मैं यह कहूँगा मायुप्यागु तुमने निश्चित ही अपने अन्दर एक बहुत बड़े भ्रम का पाल रखा है।’ यह कह हल्का एक हल्का सा ठहाका ब ईव पड़ा किन्तु फिर धीमे ही उसकी मुँह मुद्रा नर्भीर हो उठी। तब बोला—‘तो तुमो मायुप्यागु उत्तराधिकार की दृष्टि से मगध के राज सिंहासन पर बैठने का केवल कुमार कोणिक की ही संभकार है। परन्तु तुम क्या? सम्राट बन्धुवर निजम की मयम के राज सिंहासन पर धारण करने के पक्ष में है। कारण वह सभी की दृष्टि में कुमार कोणिक कर है। यद्यपि कुमार कोणिक ने धन सद्यः सफलतापूर्वक राज्य को परास्त कर अपने उत्तराधिकार की योग्यता का परिचय दे दिया था। किन्तु योग्यता धीरे धीरे स्वभाव दूसरी। धन विजय पर समासर्षों ने निश्चय ही धारण हर्ष प्रकट किया था धीरे कुमार कोणिक की मुन्य कष्ट से सहायता भी की थी किन्तु साध ही के मन ही मन एक धीरे धीरे को रेल भयभीत भी हो उठे। कदाचित् इनी भय के कारण समासर्षों ने सम्राट को एक परामर्श दिया धीरे यह परामर्श था कि कुमार कोणिक को धन का राज्यपाल बना दिया जाए। जानते हो समासर्षों के इस परामर्श में क्या रहस्य गहित था? वह रहस्य था कुमार कोणिक की राजगृह के राजनीतिक मंच से हटाना धीरे धीरे पर बन्धुवर निजम की जाना। कुमार कोणिक संभवतः प्रारम्भ में इन बातों को नहीं समझ सके सभी ही नहीं बहाने गये।’

बिहल्ल इन सभी बातों को बड़े ध्यान से सुन रहा था। धन्य को मुख्य प्रवाह

हे कुछ धन्य हूँ तो देस यह जैसे हस्तोजे कर उतसुकता के साथ पूछ उठा—“बन्धु  
वर कित्नु प्राप यह बताना तो भूम ही गए कि समासय राजगृह के रंयमय से कुमार  
कोणिक को नहीं हटाना चाहते वे धीर कुमार कोणिक का यह कौन-सा वृसय स्वल्प  
का जो उनकी घोस्यता के साथ-साथ प्रकट हो उठा।”

हस्त जैसे कुछ सोच बोला—“भायुष्मान् उस स्वल्प को जानने से पूछ एक  
प्राय वात का नाम मैना भी प्राबक्ष्यक है। वास्तव में साम्राज्य विस्तार के प्रति उत्साह  
प्रभा का नहीं होता बरन् यह स्वयं राजा की ही महत्वाकांक्षा होती है। और उसकी  
इस महत्वाकांक्षा के क्रियान्वय का सबसे अधिक भार जानते हों किसे पर पड़ता है ?

हस्त के इस प्रश्न के उत्तर में बिहूलन मौन रह केवल कौतूहल से उनकी ओर देखता  
रहा। हस्त ने अपने प्रश्न का प्राप ही उत्तर दे जने बताया—“भायुष्मान् साम्राज्य  
विस्तार का सबसे अधिक भार निरीह प्रभा पर पड़ता है और वह कर्तों के भापी बोझ  
के कटाह उठती है।

“क्यों बन्धुवर ?” बिहूलन के कुछ से प्रश्न निकल गया। हस्त भारतीयता की  
सी हँसी हँसते हुए बोला—“किसी राज्य का नीतना कोई मरस वात नहीं प्रायुष्मान्,  
उसके लिए आधिकारिक सभ्य में सैनिक रखने होते हैं उन्हें बैतन देना होता है और  
कम पूछो तो उन्हें कामावाओं की तरह कुनार कर पालना होता है। फिर सभ्यों पर  
होने वाला भारी व्यय। किसी भी राज्य को भारतरक्षा के लिए जितने सत्तों की प्राय  
सम्पदा होती है आक्रमण के लिए उनकी प्रायस्यकता कई कुनी बढ़ जाती है। फिर  
हाथों धन्य सभी कष्ट तो चाहिए। अत प्रभा स्वभावतः साम्राज्य विस्तार की विरोधी  
होती है और अपनी इसी विराय पुर्ण मानना के साथ जब यह देखती है कि मानवीय  
मान्यताओं का भी अधिकमण किया जा रहा है तो वह दुःख ही उठती है। कुमार  
कोणिक ने अत के राज प्रासाद में कुछ ऐसा ही किया था, धर्मराज विक्रमक की नृसंस  
हवा को को ह्ये गई की उनकी एकमात्र पुत्री के साथ भी।”

प्रसंगवय आई यह बात हस्त के कण्ठ तक ही घावर रुक गई। मुख से  
नहीं निकल सकी। बिहूलन को यह सब कुछ जानने की भी जिज्ञासा हुई परन्तु जैसे  
संकेत ही से वह सब कुछ ममम्भ गया। हस्त फिर बोल उठा—“तो भायुष्मान् कुमार  
कोणिक ने मयय की मयय इतनी सेवा की फिर भी वह समासयों को प्रभावित करने  
में असमर्थ रहा। वास्तव में समासय उसके प्रति संवेग हो उठे। उनकी भारतवा बर  
नई कि कुमार कोणिक विहातन आरुह्य होते ही स्वेच्छाचारी हो उठेगा। और  
स्वेच्छाचारी राजा क्या अपनी ही प्रभा पर धमाकर नहीं कर सकता। अत वे सभी  
कुमार शिखर को उनके स्थान पर बैठाना चाहते थे।”

यह कह हस्त जैसे पुनः कण्ठ छोड़ने में व्यस्त हो गया। बिहूलन की मना धयय  
ने प्रसंग को जैसे मंम्भार ही में छोड़ दिया है। उसके मुख पर उत्सुकता का भाव  
प्रवाद हो उठा। पुछने लगा—“धीर फिर क्या हुआ बन्धुवर ?”

हस्त ने सैनिक बिहूलन की ओर देस कहा—“भायुष्मान् फिर इस सब के  
मयय मयय के राजनीतिक मयय पर एक नए पात्र का प्रावमन हुआ। जानते ही बह कौन  
है ?” फिर स्वयं ही उनकी उत्तर देते हुए हस्त बोल उठा—“धीर भायुष्मान् यह प्राय

कोई धर्म नहीं बरगु स्वयं आचार्य बर्षकार ही है ।”

किन्तु वह तो राज्य की सेवा में न जाने कब से है बन्धुवर ।” विह्वल ने विज्ञासा का हाथ प्रकट करते हुए कहा ।

हस्त किञ्चित् मुस्कान के साथ बोला—‘आयुष्मान् मेरे ऐसा कहने का यह उत्तर नहीं है कि उसके पूर्व वह था ही नहीं। वह था परन्तु जिस प्रकार किसी नाटक के पात्रों का महत्त्व केवल तभी प्रकट होता है जब कि वे रंग पर आते हैं, उसी प्रकार इस प्रस्तुत घटना प्रवाह में उसका विद्यमान स्वरूप अभी सम्मुख था सफा है। वस्तुतः यदि इस सब का सूत्रधार उसे ही कहा जाए तो किञ्चित् भी अतिशयोक्ति न होगी। उसने सोचा कि यदि कुमार कोशिक को उत्तराधिकार से वंचित कर कुमार सिलभ की उसके स्थान पर बैठाया गया और वह भी समासर्षों के कहने से तो यह राजतन्त्र की सुस्माविष्ट परम्परा में सर्वथा एक नया मोड़ होगा। वह निश्चित ही बैशाखी के गणतन्त्र और राजतन्त्र के मध्य की ही कोई विद्या होगी। फिर उसे एक बुरा भय और भी तो था और उसका वह भय यह था कि सासन सत्ता का सारा मूढ पुरोहित कुम्भी के हाथ से छिन समासर्षों के हाथों में पहुँच जायगा और इस प्रकार पुरोहित कुम्भी प्रभाव हीन हो रहेंगे। अतः वह कुमार कोशिक को संवेष्ट कर उठा और सावधान कर उठा उसे पितृ वर की एक नई धारणा की ओर से। आयुष्मान् जानते ही पितृवर की यह नई धारणा क्या थी? यह धारणा थी बीड़-संघ की ओर पितृवर का प्राकृष्ट होना और फिर अपने राजतन्त्र की ओर से उदासीन हो गणतन्त्र की ओर अग्रसर होना। समासर्षों के परामर्श पर सिलभ को सिंहासन पर बैठाया निश्चित ही उसी विद्या में एक पय था। और फिर इसी मध्य इस घटना प्रवाह में एक धर्म व्यक्ति का उदय हुआ और वह है महारत्ना कृष्ण का एक प्रसक्त शिष्य—देववत्त।”

यह कह हस्त कुछ रुक-गया। विह्वल अकित्त हुआ था उसकी ओर देखता रहा और सोचता रहा कि आशिर इस घाटे ज्वलंत विचार में स्वयं बन्धुवर हस्त किसे वल विद्ये के प्रतिपादक है। किन्तु इस बार उसके मुख से देववत्त का नाम सुन उसका कीतूहल और प्रवाह हो उठा। पूछने लगा—“और फिर क्या हुआ बन्धुवर?”

इस पर हस्त बोला—“आयुष्मान् राजनीति में कभी भी स्पष्ट कुछ नहीं होता उसका तो अनुमानों के बल पर बस निरीक्षण किया जा सकता है। और इस समय में वही निरीक्षण कर रहा है। और मैं जो कुछ भी निरीक्षण कर सका है उसके आधार पर सहज ही मैं कहा जा सकता है कि बर्षकार और देववत्त इस घाटे प्रथम में एक दूसरे के पूरक बल छठ तथा उन दोनों के मध्य कुमार कोशिक विधित्त मात्र बल कर रहे गए हैं।”

“वह कैसे?” विह्वल कीतूहलवत्त उत्तरता से प्रश्न कर उठा। हस्त कहता था—“वह इस प्रकार आयुष्मान्, कि जिस कार्य को बर्षकार परिस्थितियों बल नहीं कर पा रहा था वह देववत्त ने था कुमार कोशिक से सहज ही मैं करा लिया। बर्षकार के लिए जब पितृवर सर्वथा असह्य थे तो भी वह उन्हें मान स हटाने का कोई उपाय नहीं सोच पा रहा था। उसके कुमार कोशिक की निस्संशयपूणतः अपने विश्वास में ले लिया था फिर भी एक पुत्र को जिता की हत्या के लिए प्रेरित करना कोई सहज

बात नहीं घटएव यह बात उसके मन में होने पर भी वह कह नहीं सका । फलस्वरूप उसके मोचना में प्रतिरोध का सा वातावरण बनता जमता और इसी प्रतिरोध को दूर किया देवदत्त ने धाकर । जबर, देवदत्त के साथ ही बर्षकार प्रकट में कुमार कोशिक से कुछ हट गया और महाराज की देवदत्त की सभी योजनाओं के विरुद्ध सावधान कर जनका विश्वास प्राप्त बना रहा । धायुष्यान् स्मरण है तुम्हें वह पटना जब एक दिन मध्याह्न में कुमार कोशिक को पितृवर की हत्या के प्रयास में पकड़ लिया गया था और फिर साम ही उन्हें मुक्त कर दिया गया था । यही नहीं बर्षकार ने महाराज को परा मर्द है राजपूह को छोड़ ही सभी राज्य कुमार कोशिक को भी बिसबा दिया था ।”

बिहूल को जैसे इन सभी बातों पर विश्वास नहीं हो पा रहा था । उसे वे केवल कीवृहन् पूर्ण ही प्रतीत हुई । परन्तु चूंकि वह सभी कुछ स्वयं अपने अपने और वह भी एक ऐसे धारक है जिसके प्रति उसके मन में प्रयास थास्वा मान वा सुन रहा था अतः विश्वास होता जमा । तो भी वह उत्सुकतावश पूछ ही उठा— ‘घोर यह भी कैसी अद्भुत बात है कि बर्षकार एक धार तो कुमार कोशिक को उफसा रहा है और दूसरी ओर जब वह महाराज की हत्या कर उसी के सख्य की सिद्धि का मार्ग प्रणस्त करने के लिए उद्यत हुआ तो उसने यह भेर महाराज पर ही प्रपट कर दिया ?’

हस्त ने इस पर तनिक ईश्वर हुआ कहा—“धायुष्यान् बस यही तो राजनीति है । वास्तव में अमात्य बर्षकार का सख्य राजसिंहासन पर कुमार कोशिक को प्रतिष्ठा पित कर एकच्छत्र राज्य की कल्पना को साकार करता है और उसके लिए यह भाव स्पष्ट है कि मगध का राज्य सभेवा अखण्ड बना रहे । पर तब तभी संभव है जबकि समासर्षों एवं प्रजाजनों की धार से प्रत्यक्ष में कोई विरोध न हो धायुष्या तनिक-सी मूल पर विद्रोह तक भी हो सकता है । उत सभी कुछ से बच निकलने के लिए बर्षकार का यह प्रयास है ।”

“परन्तु धर तो विद्रोह की स्थिति स्पष्ट ही सम्मुख है । बिहूल ने जैसे तर्क प्रस्तुत किया ।

हस्त ने कहा—“कैसी भी अर्धकर स्थिति क्यों न बने, बर्षकार पर प्रत्यक्ष में कोई शोष घाना असंभव है । वह छात्र शोष देवदत्त के ही तो चिर पर यह देना और वह अपने को ही नहीं बरन् अपने साथ ही कुमार कोशिक को भी मुदसित रूप में बचा ने जाएगा । यही कारण है कि बर्षकार देवदत्त का धोर विरोधी होते हुए भी उसके प्रति सहिष्णु है । क्यों ? क्योंकि उसकी दृष्टि में वह धनिवार्य है, और यह एक प्रकार से उसी की योजना को धारै बढ़ा रहा है ।”

इसी मध्य सहसा धार्य से धार एक नद ने सेवनक की वृत्ति को धरकट कर दिया । उपर बिहूल को कुछ लुभा पीड़ा भी अनुभव हुई । अतएव उसने हस्त से कहा—“बर्षकार, धर तो कुछ धाने को मिलना चाहिए सुधापीड़ा अधिकाधिक धरह नीय होती जा रही है ।” हस्त ने समस्या के समाधान स्वरूप धर-उपर देखा तथा तत्पश्चात् बिहूल को सारवाना देते हुए कहा—“धायुष्यान् अम तनिक धोर टहर पायो । इस नद को पार करने के पश्चात् कोई धार कोश पर एक धोर बन धायुष्या अममें प्रविष्ट हाते ही एक अस्वारोही को सिंहास अदिकों पर दृष्टि रखने के लिए

छोड़ हम कोई घाबैट कर लेंगे।”

शुभा पीड़ा से निहसल के मुख पर नैराश्य-सा छा गया था किन्तु हस्त के घासबासन से वह पुनः प्रवीण हो उठा। धीरे साव ही विद्युत् गति से उसके मस्तिष्क में एक प्रश्न घीर घाकर टकरा गया। परन्तु वह उत्सृण उसे पूछ नहीं सका।

सैबनक जब मध्य प्रवाह में पहुँच चुका था तो हस्त को जवाब नहीं बरा प्रतिक्रिया है। वह देख उसकी मुख मुद्रा बिना प्रस्त हो उठी। निहसल का मुख भी पुर्मत निस्तेज हो गया और साव से घाए घराघारोही भी निःसहाय से बीकने लगे। इसी मध्य उनके कानों से कितो की ध्वनि घा टकराई जिसे सुन सभी जैसे सचेष्ट हो उठे। किन्तु सैबनक केवल सचेष्ट होकर ही नहीं रह गया वह बस पर लँछा-सा दिखाई दिया। महाशय भी उत्तरता से घम्बारी पर घा राजकुमारो के ही साव बैठ गया। उबर उठ पर लँके घराघारोही उत्तरता से बस प्रवाह में कूब पड़े घीर फिर न जाने से सभी किस प्रकार उस प्रवाह में से निकल चुकरी घीर जा पहुँचे। वह ध्वनि घीर घमिकाधिक निकट घाठी प्रतीत हो रही थी किन्तु अब जैसे उनमें से कितो के लिए भी चिन्ता का कोई कारण घीर नहीं रह गया था। तो भी सैबनक अब सीबा मार्ग छोड़ शिभल पक्ष पर सरपट बीड़ शिबा।

निहसल के मस्तिष्क में वो प्रश्न उठा था उसे अब वह पूछने का घाहस नहीं कर सका। किन्तु हस्त के मागस पटन पर एक प्रश्न घनस्य उठ लड़ा हुआ। वस्तुतः उसके सम्मुख इस समय राजपूह के स्वान पर बीबानी की घास्तिक स्थिति घा उपस्थित हुई थी। उस स्थिति पर मनन कर, वह जैसे संदिग्ध हो उठा। उसे जवाब प्रविध्य निरवयव ही घदृष्ट है यदि हम वहाँ लकृघनल पहुँच भी गए तो उस समय तक स्वयं बीबानी न जाने क्या स्वरूप घहृण कर लै। उसका घितिक भी तो घाव गूह कुड के काने सेघों से घाघ्न है।

धीरे, कुमार कोणिक स्वयं घपनी बाहिनिघों को लै बीबानी की घीर प्रस्वान भी बर चुका है इस समय हस्त उसकी कल्पना तक भी न कर सका।





दुबरा, उस दिन बीवानी के कला प्रांगण में देवी शिष्या का मूल्य सचिदाराम मति से मध्यरात्रि के पक्काप भी पूरे एक प्रहर तक चमता रहा बा। ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी का अष्टमा घण्टा स्वामाबिक निर्मल सुहास्य छिटकाटा बिचछटा कर प्राची से पश्चिम विद्या में पहुँच गया बर्षक समुदाय को इसका भाग तक भी नहीं हुआ। रात्रि का यह समय बार्ह प्रहर मानों एक पल के समान उनके शीघ्र पर से उतर गया पर जैसे उसके पक्काप भी वे देवी शिष्या के मूल्य के प्रति आतापित ही बने रहे।

मध्य रात्रि तक तो सौम्य मुझी देवी शिष्या सबैसा सामान्य मति से मूल्य करती रही परन्तु उसके पक्काप जैसे किञ्चित् असाति का अनुभव होने लगा। घटएक बहू जब 'पुन-पुन' के धनुरोप पर इस बार छिद्र मंत्र पर वरुजनों के सम्मुख उपस्थित हुईं तो उसने मन ही मन यह धनुमान लगामा बा कि आज के आयोजन का सम्भवतः बड़ी अन्तिम मूल्य होगा परन्तु उसके समाप्त होते-होते पहले तो "बन्ध बन्ध" के उच्चारण से ताप प्रांगण भूँज उठा तथा तत्पश्चात् "पुन-पुन" का धनुरोप धाकर रूप में उसके सम्मुख था उपस्थित हुआ। धीरे बिनयातिरेक से गतमस्तक देवी शिष्या को दर्शकों का यह धनुरोप भी स्वीकार करना पड़ा।

धीरे बहू इस बार का मूल्य भी समाप्त हुआ तो बर्षकपण जैसे वही भूल गए कि उहाँने पहले भी कोई धनुरोप किया था। घटएक छिद्र बड़ी हुआ। धीरे पुनरावृत्ति का यह क्रम सहज ही में एक प्रहर का समय धीरे लीच ले गया।

मस्त में मशाम्परा के हुंगित पर देवी शिष्या के अधिभावरु धाचार्य शिष्य ने उतर के बिनाय भाव से गत मस्तक ही दर्शक बनों से धीरे धनुरोप न करने की माचना की। दर्शक बनों ने धाचार्य शिष्या का धनुरोप तो स्वीकार कर लिया परन्तु उनमें से अधिकांश ने जैसे ही निस्तंकोच भाव से प्रस्ताव किया—“धायें यदि धब यह धायोजन मिरप सख्या ही हुआ करे ता हम सभी निज का घहोमाम्य समझेंगे।” तत्पश्चात् प्रायः सभी ने भुक्तपृष्ठ से इसका समयन कर प्रस्ताव को जो बस प्रदान किया तो धाचार्य शिष्या ने समुत्कान मेनकोरों से देवी शिष्या की धीरे देख उसकी धनुमति चाही धीरे धनुमति स्वरुप देवी शिष्या के बर्तात प्रायः मुख पर भी एक मोन मुस्कान व्याप्त हो गयी।

परन्तु देवी शिष्या के मूल्य बीवानी के प्रति दर्शक जनों के इस उताह को देख मशाम्परा बंटक के हृदय में एक भिन्न भावना ही धाकर मिहूर गई धीरे बहू

बर्षक बानों के अधिकाधिक उत्साह को देख प्रगाढ़ होजी जाती । नूँ प्रगट में वे भी धर्म की गति देवी शिष्या के नृत्य को मात्र-मुग्ध हुए देखते रहे परन्तु उनके अंतर के किसी कोने में बैठा हुआ अन्धमनस्क भाव यथा-कथा अपना धीरे-धीरे उठा उठा विविध भासन की धोर देख बैठा जिस पर कि कभी देवी आत्मपामी के नृत्य समाज में यत्न सवाहक सामन्त संबदेव आकर बैठ कर लेते थे । उन्हें गणसंवाहक की अनुपस्थिति परमन्त बस रही थी जो कभी-कभी सहज हा में क्या में परिलख हो उठती ।

सुरक्षा प्रमाण आचार्य शिष्य तो आनन्दन की सफलता पर भारी वर्ष का ही अनुभव करता रहा । परन्तु इसी मध्य उसकी दृष्टि किसी प्रकार लपट एक दृश्य विषय पर जो पड़ी तो वह मन ही मन व्याकुल हुए बिना न रह सका । वहाँ वह बैठा था वहाँ से केवल कुछ अन्तर पर ही मानों सभी की दृष्टि तथा एकमुख बँठा था जिसे उसने मनी माँति पहचान लिया । उनमें से एक तो स्वयं कुमारी आरस्मिता ही थी जिसका मुख हीन उठे घब भी बरबस अपनी धोर खींच रहा था । परन्तु इसी के साथ जब उसने उसके साथ बैठे मुक्त को देखा तो उस पर जैसे एक विद्युत्पात होकर रह गया । और इस प्रकार माहृत हुआ उसका हृदय धारणा कर उठा । आस्तन में कुमारी आरस्मिता के साथ मनुसंवाहक सामन्त संबदेव का पुत्र मन्वदेव भावा था । इससे पूर्व प्रान्त में विचारणीय नृत्यों को देख उनका हृदय कितना प्रसन्न हुआ था इस मुदत विरूप को देख उसका हृदय सतना ही हाहाकार कर उठा । उसका मन हुआ कि वह किसी प्रकार अवसर मिलान उन सहज हुएवा कुमारी आरस्मिता को सावधान कर आए । परन्तु किस अधिकार से ? तत्काल उसके मस्तिष्क में वह प्रसन्न था टकराया । प्रसन्न के उत्तर में वह विचलतामय मीन हो बैठा रहा । परन्तु फिर भी क्या क्या अन्तर के किसी मुहामाँत से उठा एक धारका भाव स्पृम रूप पहल कर उसके समुद्र था उपस्थित होता । जिससे वह दूरी तरह सिहर उठता ।

नृत्य की परिश्रमाँति के पश्चात् जब संवरिका रवाकृत हो आचार्य शिष्य के साथ अपने प्रासाद की धोर प्रस्थित हुई तो उसके मुख पर एक क्षिप्त भाव था जिसे आचार्य शिष्य ने उत्तल उसका केवल निजालस्य समझ, उठ पर विषय ध्यान नहीं दिया । परन्तु वह जब तक उस धोर से अश्लील बना रहता । देवी शिष्या ॥ वहाँ से भाग मर्या में लीटते हुए धोर जनों की भीड़ में से इन समय उनका रूप होकर जा रहा था । भारी भीड़ थी अत्यन्त मार्ग में कम-पण पर प्रतिरोध था जिस कारण उनका बाह्य भी कवल संद गति से उड़-उड़ कर ही चल पा रहा था । परन्तु जमने बानों का इन समय जैसे इन प्रतिरोध की धोर तनिक भी ध्यान नहीं था और इध समय उस धोर उनका ध्यान धारणित करना भी व्यर्थ था । कारण देवी शिष्या के नृत्य का समाप्ताशन कर के जिन परिणाम में भाव-विभोर हो उठे थे जहाँ के प्रमाण में आकृत इध के मार्ग व्यस्त थे जिते आचार्य शिष्य अत्यन्त मनोयोग से सुन रहा था । एक एक कर कर चल रहा था अतएव वे भी कुछ भी अपना मंतव्य प्रगट कर रहे थे जहाँ वह स्पष्ट सुन पा रहा था । परन्तु बैद्यान्तिकों से इस समय पारस्परिक बाध विवाद की जो सीमा निर्धारण की हुई थी उस पर उठे मन ही मन धारण्य हुए न रहा । वे देवी शिष्या के केवल नृत्य बोधन की ही अपने बाद-विवाद का

विषय बनाए हुए थे। यदि कोई उसकी भाषा मंत्रिमात्रों पर अपना मत प्रकट करता तो दूसरा उसके धर्म-शासन की प्रति को अपने मतभ्य का मुख्य विषय बनाए हुए था। कोई-कोई उसकी मुगटिष्ठ स्मृति देह पर ही टीका टिप्पणी कर उठता और फिर उसकी देवी आभ्यासी की कमनीयता से तुलना करता कोई उसके धर्मयुक्त संकोच भाव का एक समझर नुटि बटाए बिना न रह पाता। परन्तु उन्नी के प्रत्युत्तर स्वयम् उसके साथ बसता हुआ कोई अन्य व्यक्ति सहसा प्रसन्न कर उठता— और उसके विनय भाव के सम्बन्ध में प्रता तुम्हारी क्या चारणा है, बन्धुवर ?” तब इसके उत्तर में जैसे पहले वाले व्यक्ति का विषय हो कहना पड़ता—“बन्धुवर निस्संदेह प्रशंसनीय है।” और फिर उसके मुन से यह उन प्रश्नकर्ता जैसे बिना न रहता। परिहास सिद्ध सीहार्द से वह कहता— घरे बन्धु, तुम फिर यह क्यों भूने जा रहे हो कि यदि संकोच न होता तो यह दिनक कहीं से घाता।” इस पर पहले वाला टिप्पणी करता जैसे पटास्त हो रहता।

भाचार्य सिष्य देवी सिष्या के नृत्य कौशल के प्रति अन-मानस की इस सज मता को देख मन ही मन प्रसन्न हो उठ। अपने से बीटा—“बैद्यनाथ समाज की कथा-वित्त यही वह धनीयता है जिसे देखने के लिए ही सम्यक्ता पूज्यपाद भाचार्य बहु सास्त्र मे मुझे दही भेजा हो।” सद्गता ध्यान भंग कर अपने मंत्रिकारों से मंत्रिका की घोर देखा। वह उसी पूर्ववत् छेपा भाव से मूर्च्छित हो मानीं रम में सिषी बनी जा रही थी। प्रबवा रात्रि के इस प्रहर में भी बनोरसाह से सह्राते उस चमपय पर वह रप स्वयं ही उसे धीमे ले जा रहा था। उसे इन जड़-रूप में देखा भाचार्य सिष्य मन्नीर हो उठा और अन्तर में एक साथ ही कई प्रश्न उठ उसके मानस से टकराने लगे। और उसका विवेक सजग हो धारमविश्लेषण से तर्नीन हो रहा परन्तु किसी निष्कप पर पहुँचने से पूर्व ही अन्तर के किसी शुद्ध प्राप्त से उठा एक प्रश्न साधार रूप में उसके मनो के सम्मुख आ उपस्थित हुआ। उसने देखा कि उसी के रूप के पीछे-पीछे एक ही बाह्य में बैठे अप्योपुत्र यणिय रत्न एवं उसके पुत्र बन्धु सेनापति सिंह तथा भाचार्य दुहिता देवी रोहिणी सभी तो बने जा रहे हैं। फिर भी किसी प्रकार साहस कर अपने मानों सभी की दृष्टि बचा कमाते मंत्रिका का हाथ अपने हाथ में ले लिया। किन्तु कुमारी मंत्रिका पूर्ववत् मीन रह, बाहर की घोर ही दृष्टि यड़ाएँ बीटी रहो। तो भी उसकी इस भाव मुद्रा से भाचार्य सिष्य विचिंत भो ह्योस्ताहित नहीं हुआ। वह भीरे-भीरे कुमारी मंत्रिका के हाथ को सहमाने में व्यस्त हो उठ। वास्तव में जो प्रश्न वह मंत्रिका से किया चाहता था वह मन ही मन उसकी भूमिका का प्रति पावन कर रहा था। परन्तु किसी भी स्थिति में उसकी विचार मूल्यता परिपक्व हो निस्संकोच प्रश्न का रूप ग्रहण नहीं कर सकी। अतएव विषयता से उसने प्रवाह को तनिक बदलते हुए भीमे स कहा—“सधे !”

वह वह उसने इन बार धर्मन्त ध्यान से मंत्रिका की घोर देखा।

परन्तु मंत्रिका उत्तर में पूर्ववत् मीन हो रही। अतएव भाचार्य सिष्य ने निष्पाव ध्यान मूल से उसकी घोर पुन देखा और फिर विगी अन्तःप्रवण से प्ररिठ हो मंत्रिका को सम्बोधित कर कहा—“सोम्ये !”



मंत्रिका इस बार भी मौन ही रही, परन्तु इस प्रकार गतिपथ की सीरिज ति उत्पन्न हुई देख उसे परामर्श का सा अनुभव हुआ जिससे मुझ पर क्षिणता का भाव प्रगल्भ हो उठा। परन्तु दूसरे ही क्षण अपने मुख पर सुहास्य का भाव सा, वह बोला— 'बुझे। लखपिसा में एक बार क्या हुआ कि मेरे एक सहपाठी ने, जो सीमाप्य है मेरा प्रियतम मित्र भी वा अत्यन्त मनोयोग से एक प्रस्तर मूर्ति बनाई। केवल कुछ दिन पूरा तक जिस पायालु शब्द की धोर किसी का ध्यान तक नहीं जाता था, धीरे धीरे जाता भी तो उससे बच निकलता था वहीं मेरे मित्र के हावों से कट-कट कर इतना संवर उठा कि बरबस सभी का ध्यान उस धोर ॥ मिला। केवल छान ॥ नहीं पूरा बन भी एकाग्र चित्त हो उसकी धोर देखते रह जाते धीरे सभी मुक्त कण्ठ से उनकी प्रार्था कर मेरे मित्र के कला कौशल को भी सपहते। मैं भी विस्मय से हाँथों तकें प्रह्वनी रहा उसकी धीरे निष्कलक हुआ देखता रहता। परन्तु एक दिन न जाने क्यों सभी की उपस्थिति में उस मूर्ति को देख मुझे हँसी-सी या गई।' यह कह भाचार्य शिष्य सहसा बड़ गया। परन्तु इसी मध्य विज्ञासा बस मंत्रिका के मध्य से मार्गो बलाठ प्रश्न निकल गया— 'हँसी क्यों या गई भाचार्य शिष्य?'

भाचार्य शिष्य ने इस पर किञ्चित् भी प्रयुक्तता धरबा किसी भाव विधेय को प्रकट न कर सर्वथा सहज ढंग से कहा— 'शेष्ठीपुत्री वास्तव में मुझे उठे हँसते देखकर हँसी या गई थी।'

इस पर मंत्रिका ने तनिक विस्मय का भाव दिखाते हुए कहा— 'भाचार्य शिष्य मजा यह कैसे सम्भव हो सकता है? कहीं प्रस्तर मूर्ति भी हँस सकती है?'

उत्तर में भाचार्य शिष्य तुरन्त बोल उठा— 'बयो इसमें विस्मय की क्या बात है। क्या प्रस्तर मूर्ति हँस नहीं सकती? मैंने उसे सज्जमुत्र ही हँसते हुए देखा था।' भाचार्य शिष्य के मुख पर जैसे प्रत्य-विश्वास की भी बृहता उभर धाई। परन्तु मंत्रिका को उस पर मेघमान भी विश्वास नहीं हुआ। वह प्रतिकार के भावनेप में बोल उठी— 'भाचार्य शिष्य या तो अत्यन्त बोल रहे हैं धरबा उगई तब भ्रम हुआ होगा।'

इस पर भाचार्य शिष्य ठहाका दे हँस उठा तथा फिर सहसा हँसी को रोकते हुए बोला— 'वास्तव में शेष्ठीपुत्री का कथन उचित ही है। मैं अत्यन्त भी बोल रहा हूँ धीरे भ्रम भी हुआ था।' यह कहते हुए उसने किञ्चित् भेदपूर्ण प्रकृतिस्य दृष्टि से उनकी धोर देखा। मंत्रिका के मुख से जो कुछ अनायास ही निकल गया था उसने धर तक एकरम उनके मुख भाव को ही बरत दिया था। वह जो कुछ कह गई थी उस पर उसे स्वयं धारण्य हो रहा था। परन्तु मन ही मन कुछ-कुछ परवाताप मिथित सज्जा का सा अनुभव कर रही था। परन्तु साव ही मौन भी न रह सकी। नेत्रकोपों से भाचार्य शिष्य की धोर देखती हुई बोली— 'भाचार्य शिष्य। पर यह वा स्पष्ट ही धरवर्ति हुई। मजा अमर्य के साथ भ्रम का धेन किस प्रकार सम्भव है?'

भाचार्य शिष्य प्रापुत्तर में उत्तरता से परन्तु सर्वथा सहज ढंग में बोल उठा— 'सम्भव है शेष्ठीपुत्री यह भी ठीक कहती हूँ परन्तु इस तथ्य को तो धरनीकार नहीं करेगी कि अमर्य के कारण भ्रम भी हो सकता है।'

यह कह भाचार्य शिष्य ने साव्य दृष्टि से मंत्रिका की धोर देखा। मंत्रिका

अभी भी उस धोर देख रही थी अतएव बुद्धि-संज्ञि ही रही । परन्तु पराक्रम के सहज संकोच भाव से मंत्ररिका को अपनी बुद्धि सीमा ही भींचे करती पड़ी । हूँ किसी अन्तर भाव विषये कि उसके अहंकार का स्वर्ण अक्षय्य हुआ वह प्रगाढ़ सामिमा से अलग हो उठा । आचार्य विषय में भी इन बार उसके हाथ को ठगिक बजाते हुए कहा—“तुम्हें मंत्ररिने हम इस संसार में इन लुभे लोगों से जो कुछ देखते हैं वह सब ही धरम ही यह धर्मियाय तो नहीं सत्य तो केवल प्रतीया है।” यह कहते हुए उसने मंत्ररिका के हाथ को पूर्ण से भी अजिक धारम-बदलाय के साथ बजा दिया और फिर सहसा उसे उन्मुक्त कर अपनी सारी बेह समेट उसके धीर निकट हो गया । मंत्ररिका के कपोलों की सामिमा और प्रगाढ़ हो उठी । रोम रोम में स्वर्ण का संसार हो उठा । परन्तु साथ ही वह संकोच भाव से दबी-दबी प्रतिक्षण अधिकाधिक स्वयं में विकृती का रही थी । उसके मन में आया वह आचार्य विषय से दामा मीन से परन्तु इसी मध्य रथ सहसा रुक गया । वह उन्मुख से जब प्रासाद के सिंह-द्वार में प्रविष्ट हुआ और फिर जब द्वार मध्य में था पहुँचा इसका उसे पता ही नहीं चला । परन्तु, आचार्य विषय इस धोर से सबका अवगत था अतएव वह मंत्ररिका की इस अवस्थाती पर एक मीठी चुटकी से हँसे से हँस पड़ा ।

मंत्ररिका रथ से उतर आचार्य विषय के हाथ का अवलम्ब न करने अन्तर में प्रसुतिवत् अस्वाह की उत्पत्ता से सोपान पर अभी केवल दो पग ही रथ पारि भी कि इसी मध्य इत वति से आता हुआ एक भय बाहन भी सहसा द्वार मध्य में आ बका । उसकी ध्वनि सुन दोनों ही हतप्रभ हो रहे । यहाँ तक कि उन्हें एक दूसरे की ओर देखने का भी अवसर नहीं मिला सका । मंत्ररिका ने उत्पत्ता से आचार्य विषय का हाथ छोड़ दिया और वह उससे ठगिक दूर हट करी हो गई । वह अब भी चिन्तित हो द्वार मध्य की ओर देख रही थी तथा आचार्य विषय को संकोचय धरने में विमत्ता ही का रहा था कि इसी मध्य रथ से उतर तीन भय बाहुतियाँ स्थित बदन उनकी ओर हो गीं । आचार्य विषय भी सोपान की धार से मुक्त कर उनकी ओर बढ़ गया तथा उनके समीप जा धर्मिबादन स्वल्प नमस्तक होता पड़ा हो गया ।

ये तीनों उन्मुख पर पीछे-पीछे आठे महावीर अणिय रत्न सेनापति सिंह तथा उनकी पत्नी देवी रोहिणी के अविरक्त धीर कोई नहीं थे । देवी रोहिणी के मुख पर अभी भी मुस्मान छेक रही थी तथा वह रथ का की अपेक्षा पर्याप्त अस्वाही प्रतीत हो रही थी । मंत्ररिका के धारण्य समीप जा उसने धारण्य धारणीयता के सौहार्द भाव से पूछा—“बनों कुपारि प्रसन्न हो हो ?” मंत्ररिका उसके प्रश्न का धारण्य नमस्तक धरने में धीर संश्रित हो रही तथा उसी संकोच भाव से उसके धारण्य ओर अश्रित मुस्मान से प्रसारित हो रहे । किसी प्रकार साहज कर उसने धारण्य बीम स्वर में जिसे कथा-विष् वह स्वयं भी न सुन सकी हो उत्तर दिया—“हाँ देवी की हुआ है।”

मंत्ररिका के इत उत्तर से देवी रोहिणी के मुख की हँसी मुस्मान भी कुछ प्रगाढ़ हो रही । फिर उसने आचार्य विषय की ओर मुक्त कर प्रत्यः उसी धारणीय भाव से पूछा—“बनों धारण्य, ब्रिटीशों में अब नम तो नम गया न ?”

आचार्य विषय प्रश्न के धारणीय भाव का स्वर्ण कर पुनक्ति हो उठा । नमस्तक

हो धाम-धार्म कष्ट से बोला—“देवी यहाँ सभी का जो सहज स्नेह प्राप्त हुआ है उसके समुच्च जो वैश्लोक की हृषा भी तुच्छ है।”

परन्तु इसी मध्य महापीर अखिररत्न ने परिवार के से डंप में कहा— बन्धु बर सिंह, बन्धु धरमबर तो अपने कार्य में इतने बरचित्त हुए सठे हैं कि बर्षग भी दुर्लभ हो गए हैं।”

भाचार्य पिण्य अपने स्वाभाविक संकोच धार में उत्तका उत्तर देने को उत्तव ही हुआ था कि इसी मध्य सेनापति सिंह ने धर से पीसा ऊपर सठा समुत्कान कहा— “परन्तु, बन्धुवर अखिर तुम यह क्यों भूल जाते हो कि यह भी तो भाचार्य बहुभासक का ही एक चिह्न है।”





सुरत हृदय गणगण्यस राजा चैटक बेबी चिप्या के मृत्यु कीसत एव उठके प्रति सारी जन उस्ताह को देख धरत्यधिक उत्सहित हो उठ । बेबी धामराती ने एक उपेक्षिता प्राय दासी कन्या को कक्षा में इस प्रकार हीलित कर, बैधाली समाज के परम्परा-कृत जीवन में जो यह अभिन्न प्रयोग किया था उसे इस परिमाण में फनीमूत होते देख मृत्यु की समूची धरति में बह मन ही मन उस बेबी स्वरुपा के प्रयान को सराहते रहे और साब ही सोचते रहे कि जेलित दासों के उत्थान के सम्बन्ध में प्रायुष्मान् सिंह बेबी रोहिणी एवं महापौर अणियरत्न प्रारम्भ ही से जो धपनी बाराणा भक्त करते आ रहे थे वह निस्संदेह असरम-साकार रूप में था प्रकट हुई है । धाम ही उन्हें इन सभी की यह व्यक्ति भी संभवा तक संगत ही प्रतीत हुई कि मन्त्र की बढती हुई साम्राज्य चिप्या को देखते हुए बज्रिबल की जन-वक्ति का नये सिरे से संघटन किया जाना न केवल बाँझीय बल् मत्पन्न धनिधर्म भी है । परन्तु यह सभी समझ है जबकि दास बम के रूप में मष्ट-विनष्ट होती हुई इस धपार जनरासि को सामान्य समाज में प्रविष्ट कर लिया जाए । संघाट के बर्बर नाबिक बैङ्के को मन्त्रोपवन प्रदान कर सेनापति सिंह ने एक दिन जब बज्रिबल के मत्पन्न कर्मचारों की धनीपचा रिक्त मन्त्रा के मन्त्र सहाय यह विचार प्रकट किया था तो उसे सुन सभी धराक रह गए थे । कुछ को तो जैसे धपने कानों पर ही बिबवास नहीं हुआ और कुछ ने जैसे हठमय हो सन्नेह की दृष्टि से सेनापति सिंह की धोर देखा । धम्य की बात छोड़ो सिंह सेनापति के विचारों का सदा ही स्वागत करने वाले स्वयं गणगण्यस को भी यह प्रस्ताव नहीं इना था और जेने सुन वह माटी बुविवा का धनुमन कर उठ थे । तो भी वह धपन उच्च पदोचित गम्भीर धास से उस समय केवल भौन ही बँडे रहे । धणसबाहक धामन्त्र मन्त्रेव की लगी हुई मूकटी की धोर देखने का भी जैसे उन्हें धाहस नहीं हो सदा । गोष्ठी बस में जनस्थित धम्य समन्तों एवं धप्टी जनो की भी धही दया हुई । जनकी मुक्त मुडा को देख तो तक कुछ ऐसा लया जैसे कोई उन्हें धनाधाम ही कर्षोट नया हो और उस पर के धत्यधिक उत्तेजित हो उडे हों । पर सिंह सेनापति धपने विचार विरोध को प्रकट कर धत्यस्त धीरे धास से मत्पन्न मत् कर ऐमे बँडे रहे जैसे उन्हें कुछ भी तो धप्रस्थापित नहीं कहा ।

मन्त्रा बाष्ठी के विधि-उत्थामन पर उस समय स्वयं गणगण्यस ही धासीन थे परन्तु सभी जनस्थित जनो के जय गम्भीर रूप को देख वह किन्ती से उस विचार-विरोध पर निज का मन्त्र्य प्रकट करने का धनुषेण न कर सके । धत्येव

हो प्रायः भ्रातृ कण्ठ से बोला—“देवी वहाँ सभी का जो सहज स्नेह प्राप्त हुआ है, बचक समुच्च तो देवलोक की कृपा भी सुख है।”

परन्तु इसी मध्य महापौर श्रेष्ठिभरत ने परिवार क से डंग में कहा— ‘बन्धु बर सिंह बन्धु भ्रमजबर तो अपने कार्य में इतने पतञ्जित हो पड़े हैं कि दर्शन भी कुर्लम हो गए हैं।”

भाचार्य विषय अपने स्वाभाविक संकोच भाव में पतञ्जित होने को सद्यत हो हुआ था कि इसी मध्य सेनापति सिंह ने वर्ष से प्रोवा डगर उठा समुस्कात कथा—  
“परन्तु बन्धुबर श्रेष्ठिय तुम यह क्यों मूल बाते हो कि वह भी तो भाचार्य बहुभास्क का ही एक विषय है।”





सुखान्त रूपमन्त्रात्मक राजा बैठक देवी शिष्या के मूल्य कीपल एवं उधके प्रति भाटी बन अस्ताइ को देख प्रत्यक्ष सम्मिलित हो उठे । देवी ब्राह्मरासी ने एक उपे शिवा-प्राय दासी मन्त्रा को कला में इस प्रकार शीघ्रित कर, बीसानी समाज के परम्परा कइ जीवन में जो बहु भूमिगत प्रदान किया जा उसे इस परिमाण में कपीकृत होते देख मूल्य को समुची धरति में कइ मन ही मन उस देवी स्वरुपा के प्रयास को सदाहते रहे धीर साध ही सोचते रहे कि ज्येष्ठित दासों के उत्थान के सम्बन्ध में प्राभुम्पत् सिंह देवी राहिली एवं महापीर श्लेखितरत्न प्रारम्भ ही से जो अपनी चारला मन्त्र कपटे धा रहे वे बहु निम्बित्क प्रारम्भ साकार रूप में धा प्रकट हुई है । साध ही, उन्हें इन सभी की मह बुक्ति भी समंसा तर्क संगत ही प्रतीत हुई कि मयध की बहती हुई सामान्य निम्बा को देखते हुए बन्धित्थ की अन-वक्ति का भी विरै से सवठन किया जाना न केवल बीसानी बरन् प्रत्यक्ष धर्मिधायं धी है । परन्तु यह सभी समझ है बबकि राम बर्न के रूप में बट्ट-विनष्ट होती हुई इस धारा अनराधि को सामान्य समाज में प्रविष्ट कर सिधा जाय । संघात के जर्वर नाविक बड़े की मवजीवन प्रदान कर सेनापति सिंह ने एक दिन जब बन्धित्थ के बलुमान्य कर्मचारों की धनीपचा-रिक्त मण्डा के मध्य बहता बहु विचार प्रवट किया जा तो उसे सुन सभी धराक रहे पए वे । कठ को तो जैसे अपने कर्नों पर ही निस्वाय नहीं हुया धीर कुञ्ज ने जैसे इतमत्र ही सन्देश की दृष्टि से सेनापति सिंह की धीर देखा । धन्य थी बात छोड़े, सिंह सेनापति के विचारों का सदा ही स्वागत करने वाले स्वय मण्डाभ्यक्त को भी यह प्रस्ताव नहीं देना वा धीर उसे सुन बहु भाटी बुकिता का अनुभव कर सठ वे । वा भी बहु धरने उच्च बसाधित मन्वीर भाव से उस समय केवल धीन ही बेंते रहे । बलुकाहक धामन्त बरबेर की तनी हुई मृकृटी की धीर देखने का भी जैसे उन्हें काह्य नहीं हो सबा । मोटी कथ में उपरिक्त धन्य तमन्तों एवं श्रेष्ठी कर्नों की भी यही यथा हुई । इनकी मुख बुझा को देख तो सब कछ देना जबा जैसे कोई जगूँ धनाबाग हो कर्बोट मया ही धीर उस बर वे धरत्यधिक उत्तेजित हो उठे हों । पर सिंह सेनापति अपने विचार-विषय को प्रकट कर प्रत्यक्ष धीय भाव से मस्तक नम कर देते बेंते रहे जैसे काहीने कुछ भी तो धरत्पासित नहीं कहा ।

संभला श्रेष्ठी के विधिष्ट उन्मत्तन पर उस समय स्वयं बलुकाहक ही धापीन वे परन्तु सभी उत्तेजित कर्नों के धन मन्वीर रूप को देख बहु किधी वे उक्त विचार-विषय पर विज का संतम्य प्रकट करने का धनुरीय न कर सक । धतएव

समासर्षों से मुक्त वह कक्ष पर्याप्त समय तक गीताङ्गन ही रहा। हाँ यथा-रुचा कोई सामान्य धमका भ्रष्टीजन पोषामिमूष मिश्रित तिरस्कार की दृष्टि से सेनापति सिंह की घोर दाबस्य देख बैठता।

अंत में एक बूढ़ परन्तु धोखपुर्ण कण्ठ स्वर ने कक्ष में जाए मौन को भंग किया। यह कण्ठ स्वर स्वर्ण गणसंवाहक का था। यह गणसंवाहक के समीप ही घाटीन के। उद्घुष्टा उनके कण्ठ स्वर को सुन सभी अपनी दृष्टि ऊपर उठा उत्सुकता से उनकी घोर देख छठे। अपने उच्छ्वसरोधित गम्भीर स्वर को संयत करने का सा प्रयास करते हुए वह बोले— धायुष्मान् सिंह, तुम्हारा यह प्रस्ताव तो सर्वथा वायित्व हीनता का परिचायक है। छोटे सुन झुंटे तो कुछ शैवा मय रहा है कि कहीं महायत्नाधिक्य उद्बुध पीरवशासी पर के लिए किसी अन्य योग्य व्यक्ति की ही खोज न करनी पड़े जाए।”

गणसंवाहक के मुँह से यह सुन स्वयं सिंह तो सर्वथा अचरितचित्त रहे, प्रकृतिस्व ही रहे परन्तु शेष सभी हतप्रभ हुए बिना न रह सके। उन्हें जया सिंह का प्रस्ताव तो अप्रत्याशित था ही किन्तु बलसंवाहक ने जो बैसे यह स्पष्ट चुनौती ही दे गयी। किसी घाबका से वे सिंहुर से उठ घोर चिंता से उनकी मुँह घाघा मलिन हो रही। कारण सिंह ने उल्लसिता विद्यापीठ से बापस या बन्धु बौधेयों का बिच हंग से संयतन किया था उसे सभी ने मुक्त कण्ठ से उतराहा था। घोर मयब साभ्राज्य लिप्ता को देखते हुए सब उस घोर से जो निरन्तर संकट बीक रहा था उस स्मिति विपीन में उनकी सेवा केवल धनिबार्थ बनकर रह गई थी। फिर वह एक निश्चित पर था। अतएव उससे निश्चित ही एक नया संकट उत्पन्न होने की घाबका बन उठी। इसके प्रतिरिक्त सिंह ने एक अन्य नया प्रयोग भी किया था। मयब के गठ धाकमण के समय बैशासी की महिलाएं भी घाहृत रोयियों की सेवा-सुधुपार्य परिचारिकाओं के रूप में कुछ पिबिरि में प्रविष्ट हो चुकी थी। बैशासी के जीवन में यह भी सर्वथा अनिभय ब्रवीव था बिच पर आरम्भ में सभी ने नाक-भी सिकोड़ी कुछ उत्तमिच भी हो उठे थे। परन्तु कुछ रत होने के कारण उस समय कोई कुछ नहीं बोल सका था। घोर मूढ समाधि के पदमात् सब सभी ने इन प्रयोग की उपरोधिता को देखा तो उसे केवल स्वीकार करते ही बना। घोर, बेबी रोहिछी के नेतृत्व में एक बैशासी संघुचक में एक परिचारिका विभाग की स्थापना हो चुकी थी बिचमें अधिकांश लिच्छवी महिलाएं उतेसाह योग्य प्रदान कर रही थीं। अतएव इन सभी निश्चित कारकों से बल घाघन में सिंह देना पठि का उल्लिखित रहना अनिवाय प्रतीत होने लगा।

सिंह का विचार सभी को अदृष्टिकर प्रतीत हुआ था घोर उस पर है उत्तमिच भी हो उठे थे। परन्तु किसी ने यह स्वप्न में भी अनुमान नहीं लगाया था कि गणसंवाहक उस पर अपना विराव भी प्रगट करते हुए इस सीमा तक भी पहुँच जाएँ। अतः के बुबिचा बस मौन ही रहे। परन्तु सेनापति सिंह मौन न रह सके। अत्यन्त विनय भाव से पूर्व से भी अधिक गत-नरतक हो वह बोले—“धार्थ अग्रम है। जितनी मेरी धावु है उतनी भी नहीं अधिक बर्षों तक उन्मुनि सदा संकट-वस्त इन गण-घासन का न केवल पीरवगुण मार्ग-वदान किया है बल्कि यद्योगिक से लहराती कीतिमान बचन-सिंह-पठाका भी उनके बूढ़ हारों में गुराधित रही है, अतएव उनके सम्मुख मैं विनय से केवल नग

मस्तक हो रहें मेरे लिए यही शोभास्पद है। उनके धारोष की धरणा कर भसा यह साहस मुझ किस प्रकार हो सकता है।' यह कहते हुए उन्होंने अपनी बृष्टि ठमिक ठगर उठा सामान्य भंजरेव की धोर देखा तथा उत्पपचात् पुनः मस्तक झुका मौन हो बैठ गए।

सिंह सेनापति के इस विनय भाव से सभी सम्राज्य अत्यन्त प्रभावित हुए और अनुभूता से सभी ने अपनी बृष्टि पुनः बयोबुद्ध सामान्य भंजरेव की धोर फेर ली। स्वयं सामान्य भंजरेव भी उनके इस विनय भाव से प्रभावित हुए बिना न रहे। परन्तु साथ ही सिंह सेनापति ने परोक्ष रूप में सहर्ष पर मुक्त होने का भी संकेत किया था उससे उनकी मुझ मुझ गम्भीर हो गई। कुछ समय तक तो वह ध्यानस्थ हुए स्थिति पर मनन करते रहे फिर पूर्ववत् धोक तथा कल-कुल रोप पूष कण्ड स्वर में जिसमें धनु यह का वा पुट भी बिसमान था बोधे—“परम्पराओं के हित में धायुष्मान् यदि अपना विचार बापस ले लें तो यह निश्चय ही श्रेयस्कर एवं स्वायत्त बोध होगा।

महाबलाधिकृत सिंह सामान्य भंजरेव के प्रस्ताव का उत्तर देने को उद्यत ही हुए थे कि इसी मध्य यणाम्यस के नाम और नामे धाठन पर धावीन एक देवी स्वरुपा का बन्ध-स्वर सभी का ध्यान अपनी धोर धाकृष्ट कर उठे। सर्वथा सहज रूप से वह बोली—“धार्मिक विचार कोई ऐसी वस्तु नहीं जिसे एक बार धर्मिण्यकत कर पुनः स्वेच्छा से मोटा लिया जाए। पुनश्च बैधवासी की एक पुनीत परम्परा है कि सभी धरणा मत व्यक्त करने के लिए स्वतन्त्र हैं और उसको स्वीकार करना धरणा न करना समाजों का निश्चय का अधिकार है सामान्य धर्मिकार नहीं बरन् धाधार मूल है। अतएव बन्धुवर सिंह ने सभी के सम्मुख जो विचार प्रस्तुत किया है उस केवल धार्मिक हीनता का परिचायक कह धरणा उपेला नहीं की जा सकती। उस पर धरणा ही विचार होना चाहिए और यदि हमने ऐसा नहीं किया तो यह गौरवधानी मखठन की सुस्वा पित स्वयं परम्परा के बिकल धाचरण होगा।

यह वह वह ठमिक बकी और फिर बसाध्यता की धोर बैसते हुए पूर्व से भी धर्मिक सहज ढंग में बोली—“बन्धीय धाय बैधवासी में धादेश का नहीं बरन् पारस्परिक परामर्श एवं विचार भंजन के अस्तस्वरुप निश्चय नभनीत सद्यः निष्कर्षों का धासन है।” और यह कहते हुए उसने धनुस्कान निश्चयों से साक्षात् भंजरेव की धोर देखा।

इस वर्य से भी धर्मिक पूर्व का यह गोष्ठी चिन्त यणाम्यस बैठक के नेत्रों के सम्मुख धा स्थिर हो रहा। परोक्ष रूप में सिंह सेनापति के विचार का अनुमोदन कर, तथा उदात्तान् देवी छिप्या के रूप में उसे साकार बना उसने जब बैधवासी समाज के सम्मुख अत्यन्त नाटकीय ढंग से जो स्थिति उलान्न कर ली थी उसके गत्याचरोपपूर्व स्वरुप की देष एक बार की वह रात्रि के एकधी बाठावरण में सिहर से मर। यह बाध नहीं कि वह इस सारी स्थिति से अनभिज्ञ रहे बहिक कासाधर में सिंह सेनापति द्वारा प्रस्तुत तर्कों को वह तथ्य रूप में स्वीकार कर उसे एक प्रकार से भाग्यता भी प्रदान कर चुके थे। उपर इम सम्भव में विचारों की वृष्टि से सिंह की बहनीर श्रेणिय रान तथा कई धय सामग्यों एवं श्रेणियनों का भी समर्पण प्राप्त हो चुका था। जो वे इस दिशा में यणाम्यस के अत्यायय पर समर्थ की रासरी का रहे थे। स



है वे किसी उचित व्यवहार की प्रतीक्षा में सते घीर भी टालते रहते परन्तु धर्ममय अनुप्राणित हो सहसा बीछ संभ में प्रविष्ट होकर देवी धामनामी में सते सर्वथा समिप कट हीं ना उपस्थित कर दिया । अब उसकी उपेक्षा भी असम्भव थी । तथापि नाम ही मन व्यर्थ भाव से किसी उचित युक्ति की खोज में व्यस्त हो उठे ;

मूल्य से झौटने पर रात्रि का अवधिष्ण रहा पूरा एक ग्रहर जगहाने अपने नयन पर केवल करवटें बरलते ही बिठाया । इस मध्य एक-एक कर अनेक विचार उतने अस्तित्क में घ्राए, टकराए घीर बने गए । घीर वह उन्हें एक उदस्त बरसक की भाँति बस देखते पर रहे । तत्काल कोई भी ऐसी बुद्धि नहीं बीछ पड़ी जो समस्या का समाधान कर सके । इस मध्य एक-एक कर कई सीमा मुष्ठी परिवारिकाएं बापी-बापी से अति धार्मिक भाव से अपने बयोबुद्ध स्वामी की कथन खेम पूछ गईं । परन्तु इनमें से किसी की भी उपस्थिति से वह न सो उतलना का अनुभव कर सके घोर न जगहो किसी बाधा का ही अनुभव किया । पर वे सभी उन्हें अपने पितामह तुल्य समझती थीं, अतः इनकी इस मनोदशा को देख उन सभी का चिठित हो उठना स्वाभाविक ही था ।

गणायम्यस अब अपने धनवरत विचारों के भार को सेटे-सेटे सहन नहीं कर सके सो वह पर्यक से उठ उठ कक्ष की सीमित परिधि में ही चारिका व्यस्त हो रहे । परन्तु फिर भी विचारों का प्रवाह सघन होता जाता । अन्त में विचर हो वह अपने बुर्ग की बाटिका के लुन वाठाबरत में घा पहुँचे । वहाँ इस समय एक अस्मागत प्रत्युप देना के स्वागत में बूझों पर मञ्जी-कमरव प्रारम्भ हो चुका था । उसे मुन वह बँधि सनेष्ट हो उठे । समय का अनुमान कर उन्होंने सेबक उपक को पुकारा । छंरक ती मारों छाया की भाँति ही न जाने कब से इनके साथ गया हुआ था । वह तत्काल ही उनके सम्मुख घा उपस्थित हुआ घीर स्वामी के आदेश को धिरोबाव करने की इच्छा से तद-अस्तक हो निरचल भाव से लड़ा हो गया । परन्तु पलायम्य आदेश से पूर्व अपने किसी निरचल पर पुनर्विचार करने में तर्जनी हो गए । अन्ततः उन्होंने आदेश किया—“छंरक बाहन प्रस्तुत करो ।”

छंरक को स्वामी ने आदेश पर कुछ आश्चर्य हुआ पर वह कइ भी नवा सकता था । जब वह जाता गया तो पलायम्य जैसे एक बार घीर अपने निरचल के प्रीधित्य पर मारों दुःखता से विचार करने लगे । अन्त में वह अपने की ही मुनाते हुए बोले—“शेटक अब इनके अतिरिक्त कोई घीर छाया भी हीं नहीं । गणायम्य अब यह पर विचारा पीरवपूर्ण है उसका निर्वाह सचमुच अतना ही कठिन है ।

पलुसंबाहक सामन्त भंडारेव इन प्रातः देना में भी अपने विद्वान प्रकोष्ठ में अम्य कई सामन्तों एवं श्रेष्ठ्य जनों से घिरे मंत्रणा व्यस्त थे । देवी सिप्पा ने सब प्रति रिण ही अग्न्या समाज के आयोजन का निरचल किया है, जब से उन्हें यह संवाद मिला है तभी से मन में उठा एक उग्र भाव उन्हें अन्दर ही अन्दर कचोटे या रहा है । अतएव वह तभी से बिरोधी पक्ष के सारे प्रयत्नों को निषेध करने में लिए जैसे इस संकल्प हो उठ । इन समय भी वह महाश्रेष्ठी मणिरल तथा अम्य सामन्त व अष्टीजनों से घिरे कदाचिन् इनी अग्न्य में विचार विनिमय व्यस्त थे कि मंडेसबाहक कपित ने प्राक

सूचना दी—“धर्म यथाप्यस्य राजा नेटक प्रासाद में पधारै है।”

सभी को यह संवाद अप्रत्याशित जैसा लगा और वे हूठघन हो उठे। यही मनो-  
दशा स्वयं यथासंभव की भी हुई। वास्तव में कई उपस्थित जन तो संरक्षणार्थक की  
इस सूचना पर विस्वास ही नहीं कर पा रहे थे। सामन्त बीरभद्र ने अविरास का सा-  
माज प्रकट कर कहा—“धर्म मुझे तो इसमें कुछ सम्यह प्रतीत होता है। सम्भव है,  
यथाप्यस्य के रूप में कोई उद्भवनेवाली ही जन्म पाया हो। अतएव धर्म उनका स्वागत करने  
एकको न चार्हे।” सामन्त कारिकेय ने सामन्त बीरभद्र के संदेह का समर्थन कर, कहा  
—“धर्मवर, विरोधी पक्ष अपनी सफलताओं पर अवश्य ही धर्म का अनुभव कर उठा  
है। किन्तु धर्म श्रेष्ठियरत्न अपनी इस समूह सफलता पर धारणिक भारत विस्वास का  
अनुभव कर निश्चित ही दम्भी हो बने है, अतः यदि वे कोई ऐसा पक्ष उठा भी लें तो  
कोई धर्मधर्म नहीं।”

परन्तु यथासंभवक सामन्त भववेव ने उन सभी संघर्षों का निराकरण करते हुए  
दम्भीर स्तर में कहा—“नहीं प्रायुष्मानो ऐसा कदापि नहीं हो सकता। मत्ता सामन्त  
धर्मधर्म के यहाँ इस प्रकार कोई उद्भवनेवाली भी धाने का दुस्ताह्व कर सकता है।”

यह वह उन्हीं जैसे धर्म अपने धर्मों को अन्त उठाया। फिर बोले—  
“प्रायुष्मानो, एक बार मेने कहा था न कि यथाप्यस्य को एक दिन अवश्य ही अपनी  
इस धर्मधर्म रूप पर पुनर्विचार करना होगा और वह कदाचित् इसी उद्देश्य से आज  
यथासंभवक के प्रसाद में उपस्थित हुए हैं।”

धीरे वह कह उनके मुख पर जैसे किसी अनूत विषय का रूप भाव उनीन हो  
सक।

यथासंभवक के इस मन्तव्य को सुन सभी क्षण पर जैसे दम्भीरता से मनन करने  
बने। किन्तु श्रेष्ठियरत्न तत्परता से कह उठे—“धर्म का वह अनुमान ठीक ही  
प्रतीत होता है। नर मेरा एक मन्त्र निवेदन है कि यथाप्यस्य के सम्मुख हम सभी का  
यहाँ इस प्रकार उपस्थित रहना उचित नहीं। सम्भव है हम सभी को देना वह संकोच  
रूप अपना धर्मधर्म प्रकट ही न कर सकें।” यह कह, उन्हीं साधन सभी की धीरे  
देखा। परन्तु मन्त्र सभी श्रेष्ठियरत्न के इस प्रस्ताव का वास्तविक धारण समझ, ठाढ़ाके से  
हैंत पड़े। श्रेष्ठियरत्न जैसे अपने अन्तर की ही किसी दुनिया से कुछ व्यग्र हो  
रहे।

यथाप्यस्य की श्रेष्ठियरत्न तो इस साठी धारणि यौन ही रहे।

यथाप्यस्य को सामन्त भववेव के प्रस्ताव में प्रविष्ट हुए सभी कुछ पक्ष ही बीड़े  
होने कि इसी मध्य उनके धारणन का समाचार विद्युत बलि से सर्वत्र फैल गया। इस  
मात्र देना में जब कठिनव्यवस्थितियों में उनके अन्त बाह्य की स्थापित बलि से राजनय पर  
बाँटे हुए देखा तो वे विस्मय से उसकी धीरे देखते रह गए। परन्तु रात्रि का पहरा बँकर  
शिरसे हुए यथा-पुस्तों ने जब यथाप्यस्य का रूप इस प्रकार धर्मधर्मकों के बिना ही बाँटे  
का ही के अपने शक्तिरत्न भारत की धीरे से उन्नीन न रहे सके। उनमें से कुछ तो  
राजा के उच्चर ही की विद्या में हीक लिए तथा धीरे अपने प्रमाण को इस स्थिति विषय  
बनेट करने के लिए महाधीरे श्रेष्ठियरत्न के प्रस्ताव की धीरे प्रत्यान कर उठ।

सत्या प्रधान धार्मिक सिध्य भी अपनी अपनी पर्येक त्याग प्राप्ताधिकार के एक निमात्र पर धा कर बैठा था। उसके निहा-बलास नेनों को देख सहज ही में यह अनुमान सयाया जा सकता था कि उसने भी रात्रि का अचक्षिप्त प्रहर बिना सोए ही बिताया है। मजबूत से बिना से जब वह अपने कक्ष की धोर गया था तो वह अभी उसके अन्दर में व्याप्त किसी भाव बिशेष को साङ्ग गई थी घरा वह कई बार अपने पर्येक से उठ, नमनस्यस से प्रस्फुटित होती अस्मित व्योसना की दृष्टि बचा धार्मिक सिध्य के निकट था उनकी मुसल धम पूछने गई, परन्तु धार्मिक सिध्य ने प्रत्येक बार ही इससे कहा— 'बेबी धारबस्त रहें मेरा मन सर्वथा स्वस्थ है।' धीरे इस उत्तर को सुन जब मंत्रिका सीटती तो उसका मन हर बार ही अचान्तोप एवं नीराहम से बोझिल हो उठता। उसे यह बड़ निश्वास हो गया कि धार्मिक सिध्य इस समय अचक्ष्य ही किसी मन्नीर समत्या में प्रस्त है परन्तु साब ही वह उसे प्रकट भी नहीं किया चाहते। वह इस समय भी धार्मिक सिध्य के निकट लड़ी थी। यूँ प्रसट में उसकी दृष्टि एक पुष्य एवं उस पर मंडराते भ्रमों पर कैशित थी परन्तु वास्तव में वह नैककोरों से धार्मिक सिध्य के मुख पर निरन्तर समरते एवं विभील होते भावों को देख रही थी। उसकी इस समय की मुख मुद्रा को देख वह कोई प्रसन्न करने का भी साहस नहीं कर सकी।

अंत में धार्मिक सिध्य ने मीन संय कर मंत्रिका की धोर दृष्टि करते हुए कहा—'मुझे यहि बता सको तो एक बात पूछूं ?'

सहसा यह प्रसन्न मुक्त मंत्रिका का मन न जाने क्यों धार्मिकप्रस्त हो उठ। परन्तु, दूसरे ही क्षण वह प्रसन्न का स्वक्ष्य जानने की उतावली न रह उठी—'यदि बताने की क्षमता हुई तो अक्षय बतानेगी धार्मिक सिध्य।'

'परन्तु यह 'यदि' क्यों मुझे ? तुम्हें बताना ही होया।'

धार्मिक सिध्य ने यह किञ्चित् मुस्कराते हुए कहा था। मंत्रिका भी उसी प्रकार समुद्रकान बोल उठी—'इतनिए धार्मिक सिध्य कि धार ने स्वय 'यदि' कह मेरी क्षमता में अविश्वास को प्रसट किया है।'

धार्मिक सिध्य मंत्रिका का यह उत्तर सुन हँसि बिना न रह सका। धार्मिक सिध्य की इस सरल उन्मुख हँसी को देख मंत्रिका भी हँसि बिना न रही। इस हँसी के मध्य बोनी ही ने एक-दूसरे की धोर देना। अंत में मंत्रिका ने अपनी परामृष्ट दृष्टि मत कर ली। इस पर धार्मिक सिध्य ने अपनी दोनों बाहुओं को पकड़ तनिक बिनोर के से भाव में कहा—'मैं यह जानता हूँ कि अष्टी-मुनी अत्यन्त सावधान है परन्तु यह अपनी सावधान है यह तो मुझे साब ही विचित हो सका है।'

मंत्रिका ने अपनी इस प्रवृत्ति के उत्तर में मीन यह धार्मिक सिध्य की जैसे अचष्ट कर, कहा—'धार्मिक सिध्य क्याचिन् कुछ पूछ रहे है ?'

इस पर धार्मिक सिध्य की मुख-मुद्रा पुन लीनर ही उठी। बोना—'मुझे मैं कुछ पूछ नहीं रहा था परन्तु यह कह रहा था कि नस्यना करी तुम एक बाटिका में ही धीरे तुम्हें उनके एक मता मण्डप से हुनरे कुञ्ज की धार जाता है धोर जाता भी अनिर्धार्य है परन्तु मार्ग में एक बाया या कारिणत हुई है।'

सावधान सिध्य की इन बात को सुन मंत्रिका को हँसी धाया चाहती थी।

बतकी बम्बीर मुस मुद्रा को देख बहू हूँने का साहस न कर सकी। उन्हे उल्टे नेत्रों में कृप कौतूहल का सा भाव उभर आया। इसी मध्य धाचार्य सिध्द ने पुनः धामे कहना प्रारम्भ किया—“धीर बहू बाधा यह है बेबी कि उन दोनों के मध्य जो सदा द्वार है उस पर मनु-मन्त्रियों का छत्ता है। अब बताओ तुम क्या करोगी ?

धाचार्य सिध्द का प्रश्न समाप्त होते ही मंत्रिका जैसे सोस्वाहू बोल उठी—  
“धाचार्य सिध्द जता बहू भी कोई समस्या हुई, यह ता बड़ी सरल-नी बात है कि मनु पत्नी के उस छत्ता को हटा दिया जायगा।

“धीर उस छत्ता के हटाने से जालती हो क्या होगा धुमे ?”

‘जालती हूँ, धाचार्य सिध्द, बहू भी जालती हूँ यही न कि मनु पत्नी प्रहार कर डलेंगी।’

‘बेबी यह तुमने अचित ही कहा। पर धुमे उससे पहले की एक बात तो तुम सुनी ही ना रही हो।’

‘कह क्या धाचार्य सिध्द?’ मंत्रिका ने अनुकृता से पूछा। उनकी दृष्टि-रेखा धाचार्य सिध्द के मुख पर टिक गई। धाचार्य सिध्द ने अपने पलक ऊपर उठाते हुए कहा—“अणु-अणु मनु मन्त्रियों का विच्छेद जो हो जाएगा हमें उस मोर भी तो कुछ ज्ञान देना होगा।”

धाचार्य सिध्द के मुख से यह सुन मंत्रिका स्तम्भ रह गई परन्तु धाम ही ऐसे बिना भी न रह सकी। तन्त्र कण्ठ स्वर से बोली—“धोहू, तो धाचार्य सिध्द अब सुरता प्रधान से कवि बन रहे हैं धन्य है धन्य है।” यह कहते हुए मंत्रिका का समूचा धनुरास कुतूहल उठा। अच-अचियां झूठ सी गई मोर समूचा पाठ पढ़-ना गया।

परन्तु धाचार्य सिध्द इस समय इस सब कुछ ही की केवल उपेक्षा कर रह गया। अपनी मुस मुद्रा बम्बीर हो उठी। तत्पश्चात् अत्यन्त व्यग्र भाव से बोला—“धुमे यदि कोई हो तो उससे बाह्य प्रस्तुत करने को कहो मुझ परी सुरत बन्धुवर सिंह के यहाँ जाना होगा।”

मंत्रिका यह सुन धक्का रह गई।

इसी मध्य जो अत्यन्त मनु-मनुप सैनिक मन्त्रिवाहन कर सुरता प्रधान के सम्मुख आ गई हुए। उनके मुख पर अज्ञान का भाव देख सुरता प्रधान ने अनुकृता से पूछा—“तुमों धामुमान क्या हुआ ?”

इस पर जनमें से एक सैनिक के उठे छापी बात बहू सुनाई। धाचार्य सिध्द उठे सुन जैसे धीर अचिक बुधिया में पड़ गया। वास्तव में वह निश्चय नहीं कर पा रहा था कि पहले अणु-अणु के प्रभाव की धार जाया जाए अथवा बन्धुवर सिंह के यहाँ। परन्तु जब मंत्रिका ने धाकर कहा—“धाचार्य सिध्द अब प्रस्तुत हैं।” तो फिर, जैसे तत्पश्चात् से एक निश्चय करना ही पड़ा। तत्पश्चात् ही अन्त में से एक सैनिक को निकट धामे का संकेत किया। धीर उठे धावेग किया—“तब द्वार पर जो भी इन समय नियुक्त हो उनमें कहीं, सुरता प्रधान का धादेय है कि बचाव तुम्हें कर-िए जाएँ मोर मुने, अब तक जैसे कोई दूगरी धामा भिने सब तक बहू जाँहें बन्धु ही रहे।” सैनिक यह सुन तत्पश्चात् से अत्यन्त ही जपर की धीर बीड़ने को अग्रत ही हुआ था

कि धार्याय सिध्द उसे टोक पुन कह उठा—“घोर देखो तब तक तुम्हें भी बा  
रूपा होमा । जो भी तुम्हारे साथ हैं सभी वहीं के लिए तत्काल प्रस्वान करें घोर  
देखो कोई कछ भी क्यों न बहू नगर द्वार किसी के लिए भी न जुमे यहाँ तक  
स्वयं गलाभ्यस के लिए भी नहीं ।”

मंत्रिका यह सुन धक्का-सी गई परन्तु सैनिक यह सब कुछ सुन बैठे पत्यवि  
सबष्ट ही उठा घोर का प्रत्यय कर्तव्य के निष्ठा पार से दृढ़ हो रहे । किन्तु ध  
भूषण सैनिक धार्याय सिध्द के संकेत पर वहीं पड़ा था । उसे सम्भाषित कर धार्याय सि  
ने कहा—“घोर तुम तत्काल बखुसबाहुक के प्रासाद की ओर प्रस्वान कर, सभी सैनिक  
से सजय रहने को कहो ।”

मंत्रिका इन धारेशी को सुन स्तब्ध हो उठी घोर तत्काल कछ भी समझ  
में धसमर्ध रही । हाँ इतना धक्का समझ गई कि कदाचित नगर की स्थिति धप्रत्य  
धित रूप में धति मन्वीर हो उठी है धगयना नगर द्वार को इस प्रकार बन्द करने न  
धारेश कदापि न धिसा जाता धीर न ही पखुसबाहुक के प्रासाद की ओर इस धस  
कोई सैनिक धेजा बाठा । गलाभ्यस भी वहीं गए हुए हैं यह बात सुनने ध यह धंवि  
रह गई थी । घोर धार्याय सिध्द के बाहन ने अब धापेय बाहर की ओर प्रस्वान कि  
तो तब धासका से एक भारगी धापार धीर्य प्रकल्पित ही उठी । उस इस समय केव  
एक बल ही सून्धी । वह सोची ही बापूवर धण्डपरल के बल की ओर धीढ़ सी ।





गुलाबमल राजा के एक का भद्र बाह्य जब सामन्त मन्त्रों के प्राणों से बाहर निकला तो पर्याप्त दिन बड़े बुका था। परन्तु इतनी देर तक हुई कार्तिका मन्त्रों का प्रकृत निष्कर्ष क्या निकला? इसका गुलाबमल के मुख से जैसे स्पष्ट घोषित मिला रहा था। वह कुछ कुछ क्या वास्तव में घटपट उम्मान प्रतीत हुए।

दू मलसंवाहक स्वयं ही उनके स्वागत को घोषानामार में दौड़े आए थे। उन्होंने उनके सामान पर भारी हर्ष भी प्रकट किया था। धीरे धीरे प्रति उत्साह से वह उन्हें अपने मित्रों के बीच में भी लाया ले गए थे। धीरे धीरे जब गुलाबमल चलते लगे तो सामन्त मन्त्रों के उनके साथ न केवल द्वार मन्त्रों तक आए, बल्कि उनके रथ जब तक दृष्टि से प्रोक्षण न हुआ वह वहीं रुके रहे उनकी धीरे देखते रहे। किन्तु, राजपथ पर घाते ही गुलाबमल रथ के सहारे अपनी पीठ टेक पीछे की ओर जैसे मुड़के से गए। उसी प्रकार सेठे रहे न जाने क्या कुछ सोचते रहे। प्रकृत उनके मुख से निकला भारी निस्वार्थ रथ के प्रकृत भाग में फँस रहा। साथ ही उनकी विचार शक्ति मंद हो उठी। मेरा उठा बाहर की ओर साँका तो दृष्टि जैसे सचेष्ट हो रही। अस्तित्व में ही कोई विचार कीय सा-मया। उद्भिन्न हुए से कण्ठ स्वर में बोले—“उत्तरक रथ महाबलाभि हत के प्राणों की ओर से चलो।”

स्वामी के मुख से घोष निहू सेनापति के लिए ‘महाबलाभिकुत्र’ शब्द को सुन उम्मेद को कुछ पारधय हुआ। कारण वह उन्हें उठा ही थायुष्मात् सिंह कह, सम्बोधित किया करते थे। प्रकृत, वह सोचने लगा—‘श्रीगामी के बटना प्रवाह ने प्रकृत ही कोई पक्षीर मोड़ से लिया है उभी तो।’

रथ कड़ी का उनके दुर्ग बाले मार्ग की पीछे छोड़ बुका था। प्रकृत उत्तरक ने सतरवा से प्रकृत की कस्या नीच उसे पीछे की ओर मोड़ लिया। गुलाबमल फिर रथ का सहाय ले पीछे की ओर गेट से रहे। धीरे इती के साथ उनके विचारों ने भी जैसे एक निश्चित प्रवाह का रूप ग्रहण कर किसी विधेय निष्पत्त पर पहुँचने का प्रथम प्रयास किया।

प्राचार्य सिध्द ध्वजधर ने स्पष्ट हृदय एवं विवेकपूर्ण हृदय से प्रकृत धीरे बाह्य दोनों प्रकार की स्थिति का विवेकपूर्ण रूप, जब सिंह सेनापति की ओर दृष्टि उठाई तो उसे लगा जैसे उसके मन का कोई भार स्वयं हल्का हो गया है। सम्बोध की धार ने वह कुछ दायों तक सिंह की ओर ही देखता रहा। उसे कुछ ऐसा प्रामाण्य हुआ कि उसके प्रथम प्रकृत के मुख पर धर्य का सा मान उभर आया है। वह देख

घोर भी अधिक लम्बीव का अनुभव हुआ। मिह सेनापति कुछ समय तक तो सबका मोह रह मुक्त मत दिए ही व्यवहार द्वारा प्रस्तुत समस्या एवं उसके विश्लेषण पर गम्भीरता से मानन करते रहे। तत्पश्चात् उन्होंने सहासा अपनी दृष्टि उठा व्यवहार के मुक्त पर केन्द्रित कर दी। व्यवहार की दृष्टि मत हो रही। पर, साम ही वह अपने प्रवृत्त गुणधर्म का महत्त्व भुक्तने के लिए अत्युक्त ही मठा। मिह सेनापति कुछ क्षणों तक तो अपने अनुभव प्रवृत्तियों के विस्तृत माया उन्मत्त तादिका विवेकानोक्ति मुक्तकालिण तथा उसमें से प्रसक्तों उसके साम्य-रूप को देखते रहे। तत्पश्चात् सहासा घीन संघ कर वह स्नेह प्रकृत कष्ट स्वर में बोले—“आधुनिक व्यव ! आधुनिकी मंत्रिका का महत्त्व केवल विचारणीय ही नहीं है वरन् उसका पालन भी होना चाहिए।” तनिक वह वह फिर बोले—“आधुनिकी राजतुह की इन मन्त्रियों की घोर से भया इन प्रसक्तपत्न रह की किते कहते हैं ?

इसके पश्चात् वह कुछ मोचते हुए से घीन हो रहे। व्यवहार भी कसन बोला। परन्तु वह मन ही मन मंत्रिका की दूषण एवं व्यावहारिक दृष्टि का प्रवरण सहासा रहा। इसी समय किसी की पय साहस दोनों ही का आगम प्रकृतित कर उठी। व्यवहार बड़े सचेष्ट हुए। सविनय उत्तरता के साथ विभाजन से उठ खड़ा हुआ। किन्तु मिह सेनापति को बड़े घमायास ही कोई बात स्वरण हो गई। देवी रोहिणी को घोर दृष्टि कर वह मुक्त बने—“क्यों घमायास दुहितृता क्या तुम्हें कुछ स्मरण है। जब तुम सहासा से बीबानी गई ही तो जना उन समय मंत्रिका की क्या धाम रही होगी ?”

मिह सेनापति के मुख से वह प्रसन्न मुन प्रचार्य विषय लोचन का अनुभव कर ब्रह्म। पर रोहिणी के मुख पर क्लिप्त हर्ष का भाव छा गया कुछ अनुभव का सामी। बोली—“क्यों घमायास क्या मैं कभी आधुनिकी मंत्रिका को भी मृत करती हूँ ?” तनिक वह वह फिर कहने लगी—“जब से सहासा से गई तो वही बीबानी में घाटी घाटा ही तो भी नहीं। पर, देवी स्वकथा माता अनुभवा ने बड़े एक दिन को भी तो मुझे जना घमाया नहीं कटकने दिया। उन मंत्रिका केवल बार वर्ष की ही तो भी घोर उसकी उस समय की से सभी बात अनुभव कीड़ा मुझे देने पार है, बड़े बर मन ही की बात हो।”

वह कह देवी रोहिणी ने बड़े साधन दृष्टि से उन दोनों की घोर देखा। व्यवहार भी मत-मस्तक हुआ पड़ा वा। बोली के समय मंत्रिका के सम्बन्ध में सिद्धे इस प्रसंग विषय को मुक्त वह इन समय घोर भी अधिक संशय का अनुभव कर ब्रह्म। यह इस प्रकार लोचन से द्विपटले मन निद्र सेनापति ने बड़े सहासा प्रसन्न की ब्रह्म, कहा—“देवी रोहिणी, घमाय एक बात को मुक्त न जाने क्यों मुझे घमायास नहीं का अनुभव हो रहा है।”

वह कहते हुए उन्होंने तनिक नाही दृष्टि से देवी रोहिणी की घोर देखा। फिर बड़े विधी विचार में घी से गए।

देवी रोहिणी ने साधका स्थायी निरवय ही सहासा की बात के प्रसन्न में मुक्त कटा चाहने है। आसन्न में वह उन पर घी तक घीन ही से पठ। वह इस सम्बन्ध में महत्त्व-विशेषकर व्यवहार की ही उत्तरिधति में जानने को प्रस्तुत हो ब्रह्म।

सोलाह यह पूछने लगी—“यह क्या बात है स्वामी ?”

सिंह सेनापति की दृष्टि उधर ध्वजधर के मुख पर केन्द्रित हो गई । उसी की धीरे सेकते हुए वह बोले—“देवी ! धायुष्मान् ध्वजधर ने इस अस्पृहास में ही जित कर्तव्य परायणता का परिचय दिया है उससे उन्हें सचमुच ही प्राण-अपनीय धार्मिक पात्र बहुलास्य का नाम सार्थक कर दिया है । तुम तो यह जानती ही हो देवी कि बैद्यनाथी में सुपुत्रा प्रदान सदुक्त कटिल पद के शायित्य धार का निर्वाह कर से जाना किटना दसम्भ-प्राय कार्य है, परन्तु धायुष्मान् ने ध्वजधर की कल्प में नगर की केवल सुपुत्रा अथवा को ही सुपुत्र नहीं किया है बल्कि यवक की अस्ति-राजनीति का बैद्यनाथी पर क्या दुःप्रभाव पड़ सकता है, उसका भी उन्हें पूरा बोध है । धायुष्मान् ने न केवल इस बात का ध्यान रखा है कि उस दिन चिन्तन के अन्वेषण में अत्युत्साहक सामन्त बन्देब के यहाँ को अस्थित धारा या वह कीज या बरन् वह यह भी नहीं भविष्य जानते हैं कि सामन्त पुन अत्यन्त देव की धर्मो हान की राजकु-बाधा का क्या परिणाम था । केवल बैद्यनाथी के ही नहीं बल्कि राजकु-में इन दिनों मृत पति से बल रहे घटनाबल पर भी उसकी दृष्टि है धीरे धार जित रूप में अन्वेषण सापी स्थिति का विवेकपूर्ण कर देते सम्मुख को चिन्तन अस्थित किया है उसे धुन में तो केवल धार्मिक चर्चित यह पत्रा है । धीरे उससे भी अधिक धार्मिक की बात तो यह है देवी, कि अपने इस कार्य कीफल एवं अन्वेषण पदना से अन्वेषण अपने अन्वेषण मय पुत्रों तथा सामान्य नागरिकों, लोगों ही बनों का अभाव रूप से विरहास प्राप्त कर लिया है । यह सचमुच ही उनकी अन्वेषण सफलता है ।”

यह कह कर सिंह सेनापति ने अर्ध-देवी रोहिणी की धीरे देखा । अपने पिता धार्मिक बहुलास्य के एक शिष्य की इस प्रकार प्रशंसा होते हुए देवी रोहिणी भी गर्व का अनुभव कर ली । ध्वजधर ने भी गर्व का अनुभव किया परन्तु उससे भी अधिक उसे अन्वेषण का धीरे अन्वेषण से भी अधिक अस्ति-राजनीति का अनुभव हुआ । अन्वेषण दृष्टि अन्वेषण रोहिणी की धीरे देकते हुए वह बोले—“देवी धार्मिक-पात्र का शिष्य होना एक मौर्य की बात है । यदि वह अन्वेषण अपने अन्वेषण देकर भी उनके अन्वेषण नाम को बोझ या भी साधक कर सका तो मैं उसे निश्चय ही अपना हीनाम्न अन्वेषण । धीरे देवी उनसे बरन् इस में तो मेरा यह अन्वेषण किया है कि ।”

यह करते हुए धार्मिक शिष्य मान-विज्ञान हो अन्वेषण धीरे अन्वेषण से निकलती धार्मिक की कोई बात केवल कथक धार्मिक रक्त गई । अन्वेषण में अन्वेषण हो अन्वेषण । परन्तु फिर भी अन्वेषण यह धार्मिक अपने मन की कोई अन्वेषण करने को धायुष्मान् हो अन्वेषण । अन्वेषण कथ-अन्वेषण में बोला—“धीरे देवी इस अन्वेषण को ही देवों को अन्वेषण है अन्वेषण अन्वेषण भी नहीं अन्वेषण ।”

यह कह कर अन्वेषण अन्वेषण रहे गण धीरे धीरे से अन्वेषण अनुभव कर निकली । अन्वेषण यह अन्वेषण देक सिंह सेनापति जैसे कथ धार्मिक हो अन्वेषण । अन्वेषण देवी रोहिणी ने अन्वेषण अन्वेषण धीरे धीरे अपने धार्मिक-पात्र में अन्वेषण लिया । यह अन्वेषण अन्वेषण दिया अन्वेषण भी परन्तु इस अन्वेषण में भी अन्वेषण अन्वेषण अन्वेषण । इस धार्मिक अन्वेषण को देव सिंह सेनापति धार्मिक अन्वेषण हो अन्वेषण, अन्वेषण में अन्वेषण



संयत कण्ठ स्वर में बोले—“आचार्य बुद्धिवा न जाने कितने दिनों से मेरे मस्तिष्क में एक प्रश्न घूम रहा है। कई बार मन में आया भी कि तुमसे अब सम्बन्ध में कुछ पूर्ण पर वह प्रश्न बूझि एक नहीं हो परिवारों से सम्बन्धित है, इसलिए कुछ उमंग-सा रहा।”

देवी रोहिणी उत्सुकता से अपने स्वामी की ओर देख उठी। आचार्य विष्य बंदि धमी भी अपनी भाव विह्वलता से पूणत मुक्त नहीं हो सका था। अतः वह अपने प्रश्न कुवन्तु का बात पर विशेष ध्यान न दे सका। सिंह सेनापति नेत्रकोरों से सती की ओर देखते हुए आने बोले—“देवी रोहिणी यह बात वास्तव में हमारे घोर बन्धुवर योगियरत्न के परिवारों के मध्य की है।”

इतना वह सिंह सेनापति फिर रुक गए। वह क्या कुछ कहना चाहते थे देवी रोहिणी बंदि उसका आभास पा चुकी थी। परन्तु वह केवल आधी बात ही क्यों कह पाए इसलिए उसे कुछ बुझि-सी हो गई। केवल बुझि-सी नहीं बरन् कुछ-कुछ टंक भी हुई। अतः वह इन बार अपने को न रोक सकी। धीरे हो पूछ उठी—“देवी वह क्या बात है धर्मपुत्र?”

देवी रोहिणी को इस बुझि को देख सिंह सेनापति के नेत्र मुस्करा उठे। उसकी ओर देखते हुए वह बोले—“देवी आरंभ की ऐसी कोई बात नहीं। क्यों क्या कम एक धामुष्मती मंत्रिका को धामुष्मान के साथ देख तुम स्वयं प्रसन्न नहीं हुई थी?”

स्वामी के मुख से अपनी ही किसी धाकाका के अनुक्य यह बात सुन देवी रोहिणी का मुख तिल उठा। अपनेसे कण्ठ स्वर में वह कहने लगी—“धर्मपुत्र ऐसी बात छोड़ी है तो न जाने क्या से से बड़ी सोच रही थी, पर आप अब तक क्यों मौन रहे?”

इसी मध्य ध्वजवर कुछ व्यसता के साथ पूछ उठा—“धर्म अब प्रार मुझे मन्द द्वार के सम्बन्ध में कोई आदेश करें। उसे मन्द रखना कुछ अनुचित तो न होगा?”

यह वह अपने वृष्टि उठा खवेक सेनापति सिंह की ओर देखा। सिंह सेनापति कुछ कहने को अद्यत ही हुए कि कि इसी मध्य आचार्य विष्य से पुनः अपना धीरे कुका सविनय कहा—“धर्म, यदि आप अब सम्बन्ध में भी कुछ स्पष्ट आदेश दे दें तो बेक-स्कर रहेगा।

देवी रोहिणी ध्वजवर के इन दोनों ही प्रश्नों की तुल्य हतप्रभ हो उठी। वह इन दोनों की ओर देखती-सी रह गई। सिंह सेनापति की मुक्त मुद्रा भी जैसे अचरमात बंदिष्ट हो बन्धीर ही उठी। धीरे वृष्टि? वह किसी समस्या में अतन्त्र, निर्भय का स्पष्ट करती प्रतीत हुई। उत्तर में वह कुछ कहने को अद्यत ही हुए कि इसी मध्य गणाध्यक्ष का रथ सीपति से आराध-परिधि में प्रविष्ट हो गया। उन्हें इन प्रकार प्र प्रयासित रूप में आया देख सती बंदि विस्मित हो उठे। किन्तु साथ ही वे उनका धनि बादन करते उनके धीरे बड़ निम्न। आचार्य विष्य तो धीरे भी अधिक तल्पता दिया उनके रथ की ओर जैसे बीड़-सा सिया। गणाध्यक्ष भी अतन्त्र बन्धे का सहारा ले समुद्रते हुए से रथ से भीषे उतरने लगे। भूमि पर वीर रखने ही गणाध्यक्ष का हाथ आचार्य विष्य के बन्धे की बंदि बुद्धता से पकड़ने को अद्यत को उठा। बाधे वर हाथ रखते हुए वह बोले—“धामुष्मान् सिंह, बैठाती ने धामुष्मान् ध्वजवर को सुरदा

प्रधान के पद पर नियुक्त कर डीक ही किया। धात्र उसकी सभ्यता को देख में तो सचमुच रस रह गया है।”

वह कहते हुए कुछ गलाभ्यस के व्यस्तता-भक्ति तेषों में कुछ-कुछ रस का सा भाव समर थाया। धीरे सिंह सेनापति गलाभ्यस के मुख से यह सुन सतोप का अनुभव लिए बिना न रहे। तब तस्वक हो, सविनय बोले—“धार्म यह सब धापका ही बाधीर्भाव है।”

इसी मध्य देवी रोहिणी कुछ व्यग्र कण्ठ स्वर में कह उठी— धार्म धात्र को धाप धत्पदिक बके हुए प्रतीत हो रहे हैं अतः धाप सीधे विधाय कल की ही धीरे बने।”

गलाभ्यस देवी रोहिणी के मुख पर छाए उस बिता भाव को देख धात्रीयता का सा अनुभव कर उठे। पर, धात्र ही उनके मुख पर एक क्षिप्त मुस्मान भी फल गई। तब में न जाने कब से बनी स्वास बाहर छोड़ते हुए वह बकित कण्ठ स्वर में बोले—“दीनाभ्यवती तुम डीक ही कहती हो। नि स्वर्ग धात्र यह कुछ बहुत बका हुआ है परन्तु वह विधाय भी तो नहीं कर सकता। पुत्री जानती हो—” यह कहते हुए बंसे कलका कण्ठ किसी भावी रोप से कण्ठ का गया। फिर सप्रयास बोले—“पुत्री रोहिणी इस समय तो मुझे भी उस धिताकण्ठ की ही धीरे बनने दो।”

धिताकण्ठ की ही दिशा में बढ़ते हुए वह पुन बोले उठे—‘धायुष्मान् सिंह बनते हो धात्र प्रातः क्या हुआ ? धात्र प्रातः में एककी ही बन्धुवर संभदेव के प्राचा की धीरे बना क्या इस धाचा से कि—’

गलाभ्यस के मुख से निकलती कोई बात पुन नब्र ही में बरक गई। फिर बंसे उहसा उन्हें कुछ स्मरण हो थाया। लघेष्ट होत हुए से बोले—‘हां तो धायुष्मान्, धात्रा में क्या कह रहा था ?’

सिंह सेनापति को जना धार्म धात्र किसी बात पर निरिचत ही मत्पदिक उग्रिम है। उनकी यह मनोरथा देख वह भी कुञ्चित हो उठे। परन्तु प्रकट में सर्वथा संपत रह बोले—“धार्म, धाप कह रहे के कि धात्र धाप एककी ही धाय संभदेव के प्राचा की धीरे बने धत।”

धीरे गलाभ्यस सिंह सेनापति के मुख से यह सुन कुछ ऐसे प्रसन्न हो उठे बंसे कोई कोई गृहका मिल गई ही। धीरे, कहीं वह फिर न जो बाए, इस धात्र से उत्तरता के साथ शील उठ—“धमा धायुष्मान् बड़ी मुख ऐसा क्या संकट था तो भी इसी मध्य धायुष्मान् धात्रवर ने धित मजगता धर्ष धामिल-परमपुता का परिचय दिया वह केवल प्रसंगीय ही है।”

सिंह सेनापति सविनय बोल उठे—“धार्म धायुष्मान् धात्र बंसातिकों को बोहित कर सका इस पर मुझे धत्पदिक रूप है धमा इससे बढ़कर मुझे धीरे क्या संतोप हुआ।” फिर ठनिक हर्ष का साथ प्रकट कर वह धाये बोले—‘धादेवर, डीक ऐसी ही एक बात में भी धात्री-धात्री देवी रोहिणी से कह रहा था मैं कह रहा था कि—’

गलाभ्यस इसी मध्य उत्तरता से बोल उठ—‘यही कह रहे थे न धायुष्मान्

कि जब तो धामुष्मान ध्वजधर घासन काम में पूरे बस हो चुके हैं। अतः उनके विवाह की भी कुछ चिंता करनी चाहिए।" यह कह, उन्होंने अपनी दृष्टि उठा सिंह सेनापति की ओर करी रोहिणी की ओर देया। शिलाशय्य पर बैठते हुए वह बोले—“धामुष्मान शैलियरत्न ने भी तो कल कला प्रायण में मुझ से यही पूछा था। और धामुष्मान, भला मेरे लिए इससे अधिक प्रसन्नता की बात और क्या होगी ?”

महाशय्य नेटक यह सब कुछ एक साथ में ही कह गए। उनके मुख से यह सुन देवी रोहिणी की ओर सेनापति सिंह तो प्रसन्न हो उठे परन्तु स्वयं ध्वजधर को जैसे भापी विस्मय हुआ। किन्तु जब वह बीछामी को उसमें विस्मय का पुट नहीं था और न ही संकोच का भाव था। वरन् आपत्ति और स्पष्टोक्ति का एक ध्वस्तु मिश्रण था। धार्ड कण्ठ स्वर में वह बोला—“परन्तु धार्जवर, यह कैसे संभव है। नुमाही मंत्रिका एक कुलीन एवं श्रेष्ठी कन्या है।। बीछामी के ही नहीं वरन् समूचे ब्रजवर्ष के अधिजात वर्ग में इस श्रेष्ठीकन्या का विधिष्ठ स्थान है। अतः भला उसकी तुलना में मेरा क्या अस्तित्व है मैं एक अज्ञातकन्ये की ही तो हूँ। इसके अतिरिक्त—।”

धामुष्मान के मुख से निकलती बात मध्य ही में रुक गई। फिर भी उसे क्या, जैसे वह धामुष्मान की बात के किसी भापी बोध से सुस्त हो उठा है। फिर भी जैसे उसका हृदय विद्रोह करता रह गया।

तीनों से ध्वजधर का यह भेद छिपा नहीं था। तीनों भी देवी रोहिणी की ओर सेनापति सिंह का स्वयं उसी के मुख से यह सुन व्यथित हो उठे। किन्तु महाशय्य उत्कान्त एक ओर का टूटका दे हीस पड़े। हीस के बरते ही उनकी मुख मुद्रा गर्भीर हो उठी जिसे देख ध्वजधर एक बार को आपाव पीर सिहर-सा गया। देवी रोहिणी एवं सिंह प्रकृतित्व हुए महाशय्य के मुख की ओर ठाकते रहे। पंथ में स्वयं गला ध्वज ने इन अतिशय को भंग किया। अपने स्वाभाविक आनन्द कण्ठ स्वर में वह कहने लगे—“शौच्य धामुष्मानो और देवी-स्वकन्या धामुष्मणी रोहिणी बाबु बैग के साथ शूराही ब्रजवर्ष की धवस कीति पताका पर पर्याप्त समय से एक काला मन्वा पड़ा हुआ था और और से सर्वैर ऊर्ध्व मुख रहे एतदति-स्वर्णिम गण मुकुट पर एक कर्मक या स्मर हुआ था। और, धामुष्मान ने दोनों ही धामुष्मान सिंह श्रेष्ठीपुत्र शैलियरत्न एवं स्वयं धामुष्मान ध्वजधर के प्रवास से भिद्यते हुए जान पड़ रहे हैं तो फिर अज्ञात कन्ये एवं कन्ये का यह भेद भला किस प्रकार प्रोभास्वर होना ? धामुष्मान ध्वजधर, इस पृथ्वी पर जो भी एक बार अवतरित हो गया वह धवस ही प्रसव पीडा से भरपूर कीटी माता की पीठ से अलग हुआ होना फिर बाहे वह मात हो अथवा अज्ञात वह माता ही किन्तु अश्लील ही है। और फिर यह प्रसव पीडा राजशासक ने निर्धन की श्रेष्ठी तरुण लाल ही तो है। फिर उस पीडा अनित संज्ञान-संतान के मध्य भेद क्यों हो ?” यह कहते हुए उन्होंने दृष्टि उठा ध्वजधर तथा फिर धामुष्मान सेनापति सिंह की ओर देवी रोहिणी की ओर देया। और फिर कहना नच स्मरण कर बाध—“धामुष्मान् मंत्रिका के साथ विवाह की बात सुन तुम्हें इन समय कदाचित् एक किन्तु हो रही है। वह किन्तु नया है उसे मैं अभी यदि समझता हूँ और मेरी दृष्टि में वह कुछ स्वाभाविक भी है। परन्तु बीछामी में

## बैशाखी की वस्तु पुत्री

दो सम्पत्ति का प्रभाव नहीं आयुष्मान्, केवल पुत्रों का प्रभाव है। मेरे पास कुछ देवताओं की कृपा से धनमय प्राप्त है परन्तु देखी कोई पुत्र नहीं। अच्छा यदि मैं तुम्हें ही धार्मिक रूप में स्वीकार कर लूँ तो क्या तुम्हें उसमें कोई प्राप्ति होगी ?” यह वह गणाय्यस्य जैसे उत्तर की प्रतीक्षा में चिन्ताखण्ड से उठ खड़े हुए।

उनके मुख से प्रकटित यह प्रस्ताव सुन देखी रोहिणी घोर सेनापति सिंह धनमय हो उठे, किन्तु ध्वजधर क्लिष्टव्यभिक्त हो उठा। संतप्त मीन मंत्र कर यह बोला—“परन्तु अज्ञेय कुमार हस्त धीर बिहस्त ने जिन परिस्थितियों में राजपुत्र का त्याग कर बैशाखी की घोर प्रत्याग किया है तथा जब जब उनके प्राप्यमान की वैसा अनिष्ट हो रोहित होने के नाते क्या यह अधिकार केवल तुम्हीं का नहीं है ?”

देवी रोहिणी घोर सेनापति सिंह ध्वजधर क इस उत्तर को सुन चकित हो उठे। घोर इसी मनःस्थिति में इस उत्प्रेक्षा से कि देखो गणाय्यस्य जब क्या उत्तर देते हैं उनकी घोर देखने लगे। गणाय्यस्य आचार्य छिप्य क उत्तर पर कुछ गर्व का हा प्रकट करते हुए बोले—“पुत्रधर, यह अधिकार का प्रयत्न नहीं मानना वा विषय है। फिर दूरदर्शिता के भी तो धनमें कुछ धनमान है। आयुष्मान्, हरिजसंत के इस वृद्ध सेवक का मस्तक यह पूरे बीच बपों से देवीव्यमान परल-मुकुट के भार से नव रहा है यद्यपि उसकी रक्त कमियों में यह परम्पराओं के प्रति निष्ठाभाव का प्रवाहित हो जाना स्वाभाविक है और यदि राजपुत्रों के प्रति किञ्चित् अधिकार का भाव या भाव तो इसमें निश्चय ही आश्चर्य नहीं। कौन जाने क्या उनकी महत्ताकांक्षा बतवती है उठे और वे इस पुनीत गण की जागरूकमान परलपदों को दण्ड की भावति को अंत कर अपनी निष्ठा का साधन बना उसकी बल कीर्ति पर कर्तव्य तथा हैं। अतएव उनके बचना ही अयोग्य है।”

गणाय्यस्य की रक्त कमियों में प्रवाहित इस गणनिष्ठ को देख तीनों ही उनके सम्मुख अज्ञातिरेक से नव मस्तक हो उठे। घोर देवी रोहिणी तथा सिंह धनमय पूर्ववत् मीन काय से जब ध्वजधर की घोर देख उत्तरकी प्रतीक्षा करने लगे। ध्वजधर बोला—“परन्तु आर्ष कुमार हस्त बिहस्त के सम्बन्ध में मुझे दुष्टवर्तों से जो कुछ भी विधि हुआ है उसके धनुषार के तो सधनुष साधुमाना ही है। इनका केवल इतना ही तो शेष है कि वे राजकुल में उत्पन्न हुए हैं, अतएव उन्हें उनके इस उत्तर विचार से बंधित करना क्या उनके साथ धर्म्याम नहीं होगा ?”

गणाय्यस्य दृष्टा से बोल उठे—“नहीं नहीं आयुष्मान्, मेरी सम्पत्ति पर केवल मेरा अधिकार है या फिर वसुधातन का। घोर, यदि उन दोनों के मध्य कोई हो उठता है तो यह केवल यह व्यक्ति है जिसमें मैं पैदा चाहूँ। घोर यह जब केवल तुम्हारे परिचित धर्म को नहीं हो उठता। यह मेरा निश्चय है पुत्रधर।” यहते हुए वह पुनः चिन्ताखण्ड पर बैठ गए। फिर सेनापति सिंह घोर देवी रोहिणी की घोर देखने हुए बोले—“आयुष्मान् यह मेरा वृद्ध निश्चय ही नहीं अतः प्ररक्षा मा है और वह मान्य धर्मी-धर्मी सहता उदित हो मेरे सारे धर्म में ब्राह्मण हा उठी है। मैंने आयुष्मान् में निश्चय ही जैसे अपनी किसी निजी दुविधा का समाधान पा लिया है।”

यह कह वह फिर धिमाकाण्ड से घठ काटने हुए। ध्वजधर के कानों पर धपता हाथ रस घंटर में व्याप्त निश्चय की वृद्धता से उठे बवाते हुए बोले—“धामुष्मान्, मुझे इस समय गणाय्यल न समझ यदि केवल एक बूढ़ पिता ही समझो तो मेरे लिए यह फितीनी मुझ परमुक्ति होनी संभवतः तुम उसकी कल्पना न कर सको।” वह कहते हुए वह टण्डित बने। ध्वजधर उत्तर में केवल मौन ही रहा। मसाम्भयन फिर धनुनय के से कण्ठ स्वर में बोले उठे—“धुजधर, एक याचना कर रहा हूँ स्वीकार करोगे ?”

ध्वजधर गणाय्यल के कण्ठ भाव से प्रभावित हुए बिना न रहा। उसका धन प्रत्याग रोमांचित हो उठा परन्तु उत्तर में क्या बोले उसे कुछ नहीं सूझ। उसे लगा यदि वह धनायास ही हैव संयोग से किसी मुझद बचन में बंवा जा रहा है। उसका बिरोही हृदय इस बचन का प्रतिरोध किया चाहता था किन्तु प्रकट में वह धयोवृद्ध के इस याचना सुकट कण्ठ भाव के प्रयुक्त स्वरुप न केवल मत्त मस्तक हो रहा बल्कि बिनयातिरेक से इतना झुका इतना झुका कि अंततः उसका धीर्य बरहा ध्वज के पैरों पर जा टिका। गणाय्यल उसके धीर्य का स्पर्श या पुनश्चित हो उठे। उसे तालपटा से ऊपर उठा कहने लगे—“धुजधर, पुम्हें या मैं बन्ध हो उठा हूँ। मुझे विवाह या कि तुम मेरा धनुरीय धनस्व स्वीकार करोगे।” धीर फिर सहसा विह्वल्यति की ओर देख अभिभूत कण्ठ स्वर में बोले—“क्यों धामुष्मान् सिह् यदि धाज ही यह संभव धायोजन हो तो कैना रहेगा ?”

देवी रोहिणी धीर सिह् ने इस पर भारी हृयं प्रवट करते हुए धाना एक स्वर में कहा—“मार्यं भना इससे धेयस्कर संवाध धीर क्या हो सकता है ? पर यह सब कुछ धुन ध्वजधर के मुक पर कोई दुबिधा उभर धाई। कुछ धाधधर्न प्रकट करता हुआ सा कह बोला—“मार्यं भना यह कैसे संभव है ? कुण्ठधरों की सूचना है कि दोनों कुमारों का पीछा करती हुई कुमार कीणिक की बाहिनियां इस समय बीधारी की ओर प्रस्थित हैं।”

मसाम्भयनी उत्तर में तालपटा से बोले उठे—“तो सबसे क्या हुआ कुमार। क्या मुझ का प्रयास गीत धीर निबाहोस्वध का संभव गान दोनों एक साथ ही नहीं गाने जा सकते ? वे धबरद ही एक साथ गाने जा सकते हैं धामुष्मान् ! एक हाथ में भनन धायोजन के पीडक तथा दुसरे हाथ में धधय ऊपर यदि मूकटि उनी हुई तो नीचे घोड़ों पर धुमधुर मुस्नाज इधर मंरुप में यदि कीकिस कच्छियों के मुख से निकलता सोरनाह मास्वधुर्न धाव तो उधर रख प्राणग से धंधीर धधनि करता तुमनाध, धीर फिर सद्गुणों क साथ परस्पर मुख किमकाटी मार एक दुसरे पर धाधमल, तथा फिर भीपण प्रहार से धाहत हो निबना धधोव धानन का धधहाय धीरधर धीर फिर उत पर हा जाने धानी निजध की धुस्नाज। धामुष्मान्, यही सब कुछ तो धीनन है। विवाह यदि प्रलय की पराकाष्ठा है तो मुख संघर्ष की। धीनन का प्रलय भी बाहिए धीर संघर्ष भी धधयना यह धधरोव से धधधर हो धधने में ही धधनन धाए। धीर फिर धामुष्मान् बीधारी के धीर धीर पुत्रों ने तो सदा ही इन दोनों का एक साथ हँसते-भाँटे धानिपन किया है। नन के मुख से धूर्न यदि धाज ही समय

एते कोई मंगल पीठ वा लिया जाए तो मला सबसे श्रेयस्कर और क्या होगा ?  
 वन के रस प्रीपरा की भीमस्तथा मैं कौन जाने क्या चीज केवल महीप बन रहा थाप  
 और फिर मेरा तो यह बुद्ध शरीर ठहरा ।" यह कहते हुए वह पून शिलासम्प पर बैठ  
 गए । उनका कण्ठ स्वर जैसे कुछ पिपिलि हो उठा परन्तु मेरा निरासा का सा स्पर्श  
 करके श्री शीघ्र हो उठे, मुख-रेखाओं पर जसाह सहर उठा और दुर्लभ स्थिति पर  
 न जाने क्या कुछ देख स्वनिज ही हो रही । किन्तु शीघ्र सभी उनके मुख पर मनसोप  
 का भाव देखकर श्री व्यथित हो उठे । और बेबी रोहिणी के तो मेरा भी सख्त ही  
 बने । बेबी—"आप ऐसा न कहें, सभी तो बैशाखी की रक्षा के लिए उसके लक्षण  
 पर्याप्त समझें हैं ।"

"हैं पुत्री प्रकथ है, परन्तु क्या उनके अनिवाचक वन पर होते प्रहारों को  
 देख केवल मेरा मुख ही सँके रहेंगे ।"

अबपर गलाभ्यस की बातों पर पहले तो कुछ सल्लो तक निव्वमक हुआ  
 मूल में देखता रहा और फिर उसने अद्यत पुस्तकें और आशा बुद्धि की ओर देखा ।  
 इस बार दोनों ही एक साथ बोल उठे—"आपुष्मान्, इस समय हमें तुम्हारे हीमाप्य  
 पर पापी ईर्ष्या हो रही है । आर्य के आदेश का पालन करना ही अब तुम्हारा पुनीत  
 कर्तव्य है ।"

परन्तु अबपर इसके उत्तर में श्री मीन ही रहा । माप्य के इस प्रकृतात  
 आरोह पर बिचारता सा वह बोला—"परन्तु विवृवर, एक निवेदन है ।"

अबपर के मुख से प्रथम बार विवृवर का सम्बोधन मूल न केवल गलाभ्यस  
 बल्कि सिंह सम्पत्ति का संतस्तल भी पुनःकामयान हो गया । परन्तु गलाभ्यस ने सीधे  
 ही अपने आप को संबोध कर कहा—"अबपर निवेदन करो पुत्र । मैं तुम्हारे मुख से  
 निस्तम्बोच भाव से निवेदन सुनूँ मला इसके अमककर भी कोई सण मेरे बीजन में  
 पद आएगा ? क्यों आपुष्मान् सिंह मैंने ठीक कहा न ?"

विह्वलनापति कुछ उत्तर में सबसे पूर्व ही अबपर माता अपनी किसी पुत्र  
 को नग ही यत् संबोधित कर बोल उठा—"विवृवर, एक वही हो निवेदन करने का  
 लोच हो गया है ।"

गलाभ्यस भाव-विभोर ही बोले—"पुत्रवर, तुम्हारा वही लोच तो मेरी  
 निजि है । उसे अवश्य प्रकट करी आपुष्मान् ।"

"आप की सम्पत्ति को प्राप्त करने के पश्चात् उस वर मेरा सम्पूर्ण अधिकार  
 होगा ।" अबपर ने तनिक संकोच पूर्व बिनमपूर्वक कहा ।

आपुष्तर स्वरुप गलाभ्यस के मुख से निकल गया—"पुत्रवर, तुम्हारा संतोष ही  
 मेरा हृदय है । अतएव मुझे स्वीकार है ।"

अबपर आये बोला—"विवृवर हम प्रथम निवेदन के ही अन्तर्गत में सम्बन्ध  
 की दृष्टि से बेबी वेस्मना वा आठा हुआ जाड़े अनुभव ही नहीं, तो श्री दोनों कुमारों  
 का पासन तो हुआ ही, अतएव अद्यत भी । बिन परिस्थितियों में मेरे मदनी-पुत्र यहाँ  
 था रहे हैं वनका मुखे अपने मन जाड़े रंग से स्वाप्यत करने का अधिकार मिलना चाहिए ।  
 उद्यमें कोई बाधा तो नहीं होगी ?"

पर ध्यान करने की आवश्यकता तो नहीं स्वामी ।”

“नयो देवी ? सिंह सेनापति के मुख से जैसे यह प्रश्न धनायास ही निकल गया । रोहिणी उत्तर में बोस उठी—“इसलिए स्वामी कि विनाश ही तो निर्मास की आधार बिना है ।”

“किन्तु देवी यह वह विनाश तो नहीं बरन् धारणपाठ है ।”

‘धारणपाठ ? देवी रोहिणी ने जैसे सावधान्य पुछा । फिर बोली—‘धारण पाठ नहीं स्वामी विचार का अर्थ है धीरे धारण की परीक्षा कीन किन्तु अंतस्कर है उसका निर्बंध धीरे धारण कर्तव्य के प्रति आह्वान । उसकी धीरे से विमुक्त होना धारण पाठ है एक दम ही तो धारणपाठ है स्वामी ।

सिंह सेनापति को लगा जैसे वह एक निरर्थक विरलेपण है कर्तव्य के प्रति आह्वान तो बिलकुल ही नहीं । सोचने लगे—“सिंह यह ही निरर्थक ही बैद्यनाथ की एक पुनीत परम्परा का हनन हुआ । एक धारणपाठ जब उन पर प्रहायेयत हो तब बैद्यनाथिक धारण ही में लड़ पड़े भला यह धारणपाठ नहीं तो धीरे क्या हुआ ?”

बस इसी विचार में धागे बड़ कुछ धीरे सोचा बाहते कि इसी मध्य देवी रोहिणी बोस उठी—‘स्वामी जब दो-दो कर्तव्य एक साथ आह्वान कर उठें तो फिर इनमें से एक का निरर्थक करना अनिर्धार्य हो जाता है जानते हो वह क्या है ?”

सिंह सेनापति उत्तर में मौन रहे । देवी रोहिणी फिर अपनी ही बात को धारण बढ़ाती हुई बोस उठी—“स्वामी धीरे वह निरर्थक यह करना होता है कि दोनों कर्तव्यों में से कौन-सा प्रमुख है । धारण इस समय केवल बैद्यनाथ की एक सामान्य नागरिक नहीं बरन् समूचे अखिलभारत के महाधनाधिष्ठित हैं, समूचे अखिलभारत की रक्षा का भार धारण के कर्तव्य पर है केवल धारण ही के कर्तव्य पर । सामान्य वा ताप इस समय अंधकारता हुआ जो इस धीरे बड़ा जला धा रहा है कहीं वह गंगा की पारण धारण को पार कर अखिलभारत पर न धा पहुँचे इस अर्थ केवल बड़ी देखना धारण प्रमुख कर्तव्य है धीरे धारण कर्तव्य है स्वयं बैद्यनाथिकों का ।”

“किन्तु देवी बैद्यनाथिकों तो इस समय ”

“स्वामी यह धारणकी मूल है । वास्तव में धारणके अन्तर बैद्यनाथिक वा ही धारणा मात्र अन्तर्गत है अथवा धारणके बैद्यनाथिकों पर कभी भी इन प्रकार अन्तर्गत न किया होता ।”

सिंह सेनापति यह सुन जैसे भारी धारणका का अनुभव कर उठे । धीरे वह इस समय न केवल लीन कर रह गए, बरन् धारणके अन्तर्गत अन्तर्गत धारण में धारणका करते हुए कह उठे—‘देवी रोहिणी !

किन्तु देवी रोहिणी धारणके स्वामी के इस धारणसे अधिक भी विचलित नहीं हुई । सर्वथा अंतर्गत यह वह बोली—‘धारणका जो कुछ भी मैंने कहा है वह धारणका अर्थ है यदि धारण निष्पन्न बैद्यनाथिक है तो धारणका जो भी बड़ी समझना होगा केवल धारण ही को बैद्यनाथिकों तो स्वयं निष्पन्न का धारण हुआ निष्पन्न तो एक ज्योति के धारण है जो परीक्षा के समय स्वयं हीन हो उठती है । फिर स्वामी, एक बात धीरे भी तो है बैद्यनाथिकों ने अन्तर्गत के समय ही के लिए तो धारणका महाधनाधिष्ठित धारण

है। संकट के समय धाय बगिचसंध की बाहुर से रखा कर सभे यही बाधिरव सो उन्हीने धायको प्रदान किया है। यत धाय अब बंघाली विचार इन्द्र में ब्यास्त ॥ धायका प्रमुख कर्तव्य है कि धाय उसकी सीमान्त की रखा करे।”

सिंह सेनापति इत बार बैसे सहुन नाम में बोले—“देवी मुझे बह कर्तव्य बताने की धारव्यकता नहीं पर एक कुशल महारवसाधित भी बन सहुपोष के धमाक में निस्वहान हो जाता ॥ इस अवसंत लम्ब की तुम क्यों मुझे बा रही हो ? फिर बह साधारण बनोस्वाह ही सो नहीं बरन् घीबेबों का रलकीसल भी है।”

‘तो फिर स्वामी धाय अपने कर्तव्य को देखें हीय बंधालिक अपने कर्तव्य को देखते रहेंगे।’ रोहिणी ने मानी बूझा से कहा।

“भीर यहाँ को रिपु पक्ष के पंचमांगी हैं उनको.....? सिंह सेनापति ने बैसे एक बूझी समस्या प्रस्तुत की।

देवी रोहिणी के पास बैसे उसका उत्तर भी था। बह उत्तरता से बोल उठी—  
“बह का धामुष्मान् ब्यबहार का कर्तव्य है धाय उसके कर्तव्य में बला क्यों हस्तघेप करे ?”

भीर सुरक्षा प्रभाव आचार्य धिप्य अब सहुता वचन के एक प्रबल कीर्ति के समान सामन्त पुन बख्शदेव के सामने आकर खड़ा हुया ता बह केवल लम्ब रह बना। बद्यपि आचार्य धिप्य उस समय निश्चय ही कर्तव्य प्रेरित था, फिर उसके मुख पर सैलमान भी कोई झठोर नाम नहीं था बरन् बैसे उस पर एक सहुन मुस्कान दिखर रही थी। उसे इस प्रकार निश्चय देख बख्शदेव को धारव्य हुया। वास्तव में उसके इस साहस को देख बह उसे सपाई विना नहीं रहा। किन्तु उसके साथ इस समय को अन्य सघन सामन्त पुन मंत्रणा-स्वरत के के आचार्य धिप्य के इस धक स्मात धामन पर उल्लेखित हो उठे। एक धामेस कह उठा—“जानते नहीं बह एक सामन्त का निजी धावाच है, उसमें इस प्रकार प्रविष्ट होने का भला धायको क्या अधिकार था ?”

आचार्य धिप्य ने बैसे उसकी इस बात की मुना ही नहीं। केवल बख्शदेव पर दृष्टि केन्द्रित कर बह समुत्काम कह उठा—“अराधित इन बख्शदेव ने मुझे सुरक्षा प्रदान समझने की भूल की है। पर इस समय में बह नहीं हूँ यदि इनका प्रमाण चाहिए, तो जा मेरी इस अनुति की धीर देखो मैं उनसे बल-वातन की मुडा भी प्रचार आया हूँ।” बह कह बह कुछ थक रहा। सभी अवस्थित सामन्त पुन उसकी धीर बक्षित हुए से देख उठे। परन्तु उनमें से एक के मुख पर स्वर करमें सदेह का नाम उभर आया। बोला—“आचार्य धिप्य हम मूर्ख नहीं। क्या हम इतना भी नहीं जानते कि तुम नहीं निश्चय धाय हो धीर आवाच के बाहुर तुम्हारे सघन गण बुध्य धड़े है।”

आचार्य धिप्य ने उस मुत्क की धीर न देख बख्शदेव पर ही धरनी दृष्टि केन्द्रित कर मुत्क कन्ठ स्वर में कहा—“गिबवर, यह भी एक व्यर्थ का सदेह है।

किन्तु हमके पदचात् भी बैसे उनमें से कोई धारवस्त न हो सदा। धारवस्त ने भी धरिवरत की ही दृष्टि से आचार्य धिप्य की धीर देखा, दुः स्वर में बूझने बना—“तो फिर धाय नहीं क्यों आए है ?”



सभी सामन्त पुन उत्तर की प्रतीक्षा में उत्सुकता से धाचार्ध दिग्ग की घोर देख बैठे। उन्होंने समझ इस बार यह अवसर ही विचलित हो रहेगा। धाचार्ध दिग्ग के मुक्त से भी कुछ लोगों पूर्व की मुस्थान छहटा किसीन हो गई थीर अतका स्थान गंभीर में वे लिया।

महदा नगर द्वार पर होते सुभुन निगाह से नयन प्रकमिगत हो उठ। उसे मुन अदस्ता-म्यस्त गण पुस्य सावधान हो गए तथा नापरिशी के मन का उम्देह धाच घोर प्रगाढ़ हो उठा। किन्तु धाय ही मुख्य राक्षस्य का रूप धीर धधिक प्रस्थाह से संवरता जाता। उस पर धोड़े-धोड़े अन्तर पर बने तोरणों एवं बंदनवारों को देख कर तो कोई किन्नर नहीं अनुमान मया पाया कि यद्य महानगरी में जैसे किसी धिर धाकासित नरक समारोह का धायोजन किया है। धर्न-धर्न धरजपकों पर धोरबनोंकी सीध धधन होठी धनी यह धीर धधन होठी धा रहीं थी कि इसी मध्य मुख्य राक्षस्य के एक स्वान पर धकस्नाठ एक रस धा बडा समुच्च धड़ी धारी धीर को बेला रबाकू ध्यक्ति उठने बैठ-बैठ ही उच्च कण्ट स्वर से पुकार उठा—“सुनो ये बैधानी के नरनतो लनी कान धीनकर सुन लो।”

सभी धरभित्त नागरिक उठकी घोर उत्सुक दृष्टि से देख उठे। रपाकू ध्यक्ति धनिक स्वर के धरचाध पुन पूर्व से धी धधिक कण्ट स्वर में कह उठा—“धरे धो बैधानी के नरनतो मया तुमने कुछ नहीं सुना।”

नागरिकों को धनप्रम हुआ हैन यह एक उच्च ठहाका से हैन पडा। हैवी को रोक इस बार कण्ट धंठ स्वर में यह बोला—“धीम्य धनी धनी यह भी धकण ही हुआ कि तुमने कण्ट नहीं सुना।”

धीर उत्तरधाधु धर्न एक बार धीर हैवी का ठहाका बूध उठा। धरनी इन हैवी को रोक धंमठ यह धनी कुछ धीर भी कहता कि इसी कण्ट तारवी में धपने स्वामी की धकस्नाठ यह धरिर्कठित बनोचया देख धसके धारेण की प्रतीक्षा धिर गिना ही रस धाने बडा दिया। यह धसंभव धर्न ही धा धध धपने को नमूान न तथा धीर धीर की घोर मुद्रक रथा। धनका धाधा धधेर रस में ही धिका रथा तथा धधर्नधम धधोमुख हो नदर पडा। एक नागरिक ने धध धाधन धीर उसे ध्यधधित करने का धवाध किया तो रस उठके धीर को ही धीरता धागे निधन मया। इस पर धर्न धर्न धीर धनधधुधाय उतभित्त हुआ जैसे एक स्वर में ही धिक्षा कण्ट—“धरे धी धाधन देखता नहीं यह क्या हो गया।”

धरनु धारधी ने जैसे यह सब कण्ट नहीं सुना धम धधने धधनों को धीधने में ही ध्यस्त रथा।

धेटी धिधधिरक के धिधिय हो जाने का यह-धधधधर धारी बैधानी में धधनों धिधधन मति से धीन पया। उी मुन सभी कण्ट हो उठ, धरनु धामध धधधधध धे धध यह सुना तो यह हैन पडे। उध्नी के धाम धम धमय धामध धीरधध धी धधे धे यह भी हैन धिन नहीं रहे। धिधध धिर उठ उठ में ही धधनों धधधीर हो उठ। धीर धधध धुध ध एक धुधने की घोर धेधने रह गए। धीनों ही के धुध पर धम धमय धधन एक ही धाध ध्याध धा धर जैसे उध धीनों ही में से धिधी को धी उध धध

विशेष की धार अधिक ध्यान देने का जैसा धारणाएँ नहीं वा । वे किसी मूढ़ संभ्रम में व्यस्त थे, धीरे धीरे उसी में व्यस्त हो गए ।

धीरे गुरुसंवाहक के प्रसाध में जब यह समाचार पहुँचा तो सन्देशवाहक कपिल ने कुछ रहस्यपूर्ण दृष्टि से दासी-कन्या लाया की ओर देखा । यह ध्यान प्राप्त से धार तक एक नहीं अनेक संवाहक गुरुसंवाहक तक पहुँचा चुका था अतः धार उसके निकट बँधे संवाहकों में कोई नवीनता नहीं रूढ़ गई थी धीरे यदि कोई भी थी तो केवल एक संवाहक विशेष में । लाया के चिबुक को ऊपर उठा उसके नेत्रों में झँकता हुआ वह बोला—  
“देखी, धार तो हमारे प्रसन्न होने का विमल है धीरे तुम उपास बीच रही हो ।”

धीरे दिनों जब कपिल उसके चिबुक को इसी प्रकार उठा उसके नेत्रों में झँकता था तो उसके कपोल एक कन्या का स्पर्श वा भाविमा से बहक उठते थे । पर धार तब इस तक कुछ कपिलात् भी केवल झिन्नी ही बनी रही । उसके नेत्र सहमे से प्रतीत हुए । न जाने क्यों कपिल के बार-बार के आवागमनों के पश्चात् भी उसके अन्दर में वीर्य कोई धार निकल नहीं पा रहा था । अन्ततः वह स्वयं भी जैसा नम्र हो गया । उसके हाथ को अपने हाथों में ले फिर बधा धरित, उससे भी अधिक धरित के हाथ पूर्व प्राप्तीयता से बजाते हुए बोला—  
“प्रिये विश्वास रखो धार संख्या देखा मैं जब मूर्ख अस्तित्व की ओर चलेगा तो सबका रंग कुछ धीरे ही होगा धीरे कम धीरे की कृष्णी किरण में से भी कोई नया ही प्रकाश प्रस्तुतित होगा ।”

किन्तु उसके पश्चात् भी लाया के मुख पर लाया नैरास्य बँधे धरित ही तो बढ़ा रहा । अन्ततः कपिल अपने को निष्प्राय अनुभव कर गया । संभवतः वह धमी कुछ धीरे कहा चाहता था कि इसी समय एक मुलक से आस्वात्मापर में प्रवेश किया । इसने दिनों पश्चात् अपने स्वामी-पुत्र अक्षयदेव को अपने ही आवागमन में धारा देल कपिल को निरुत्थ ही हविष हो उठना चाहिए था । पर इस लक्षण हविष नहीं हो सका, उसे देख वह केवल विस्मित हो गया । धीरे उसके इस मुख भाव को देख अक्षयदेव एक क्षण ठहरा वे हँस पड़ा । फिर नम्र हो बोला—  
“धर्मो अक्षयदेव कपिल क्या बचपन था ?”

कपिल निरुत्थ ही धरित गया था । लाया तो सहमी-सी खड़ी ही थी । यहाँ तक कि वह एक बार भी अपनी दृष्टि उठा अपने स्वामीपुत्र की ओर न देख सकी । उसको इस प्रकार सहमे देख, अक्षयदेव फिर हँस गया । हँसते हुए ही पूछने लगा—  
“धर्मो लाया क्या मुझे पहचाना भी नहीं ?”

धार को समझी यह हँसी धारमन्त्र भवामह भगी । वह अन्ततः में मुँह खर्र करी ।

धीरे अन्ततः, नगर-नगर के विरासत कपाट धमी भी बधावत धरित थे । जैसा के धार सुनें ही नहीं धीरे यदि कुले नी तो फिर जैसा कोई धरितर विस्फोट हो रहेगा । क्या विस्फोट हो रहेगा ? यद्यपि यह धमी केवल धरित के गर्भ में ही था परन्तु धमी नागरिकों के निकट जब वह किसी प्रकार रहस्य भी नहीं रह गया था । धीरे जब रहस्य पुन ही गया तो फिर कोई बँधे हाथ पर हाथ रखे बैठ रहा । अनुधा नगर ही तो अन्ततः ही गया । परन्तु किसका अर्थ कि धरित धरित प्रहार करेना धमी से वह नहना

अनिश्चित था। समझ है धीरों को यह बुझिबा रही हो पर आचार्य शिष्य जैसे निश्चित था। यह अपना व्यव्य देवी शिष्या की ओर बढ़ा बोला—“देवी शिष्या तो यह खडक धाम अपने हाथ में ही सो। जब तक मैं हूँ तब तक तो आपर तुम्हें उसे बताने की आवश्यकता न पड़े परन्तु उसके परचात्—।”

यह कहते हुए सहसा उसका कण्ठ कूक भर सा गया। किन्तु फिर भी जैसे वह प्रयास करता रहा। व बे कण्ठ स्वर से बोला—“देवी शिष्या से मृत्यु कहीं योग्य स्वर है परन्तु देवी आत्मचात नहीं वह तो बचप्य अपराध है।”

आचार्य शिष्य के सुन्न से यह सुन देवी शिष्या अचक्षुष्य ही व्याकुल हो उठी। परन्तु प्रकट में उसका तटस्थ भाव क्रिचित भी निश्चित नहीं हुआ। उसके घोम्फोर सहज मुस्मान से फँस उठे। बोली कुछ नहीं। हाँ निभ पत्रक उठा आचार्य शिष्य की ओर अचक्षुष्य देखा उसकी दृष्टि में आत्म-विश्वास फलक रहा था।

आचार्य शिष्य परामृत हो उसकी ओर देखता रह गया।

सहसा तगर द्वार से पुनः सूर्य भाव हो कठ। उसे सुन आचार्य शिष्य तुल्य प्रस्तावक हो उबर ही की ओर बीक शिष्या। बसते-बसते संदुक से बोला—“निभ संदुक, मद्दालिका की चिन्ता न करना सब तो सब केवल एक ही चिन्ता करनी है धीर यह तुम्हें बताने की आवश्यकता नहीं।”

संदुक अपना अक्षय ऊपर आकाश की ओर फेंकते हुए, फिर साव ही उत्तरता से उसे सम्हालते हुए बोला—“स्वामी देखा इस अक्षय को कितनी भी दूर फेंकूँ बारस लीट कर आएगा मेरे हाथ में ही।”

आचार्य शिष्य उसकी इस बात को सुन हँस उठ। बोला—“तो तो ठीक है संदुक परन्तु अब ऊपर आकाश में नहीं आये-पीछे है। देवी शिष्या के साथ धाम निकलना कोई सरल कार्य नहीं।”

संदुक तट मस्तक हो कह खठ—“भार्य, उस ओर से आप पूर्व धारवस्त रहें।”





श्रेष्ठी मिलविरक अपने मध्य प्रासाद के सभी बन्दनों को लोड़ बाहर की घोर भाव  
 लिया। वह भावता का रहा या घोर साध ही अनर्गल रूप में कुछ कहा भी जा  
 रहा था। मण-महानदरी की क्या कुछ परम्परएँ हैं वे तो दूर की बात रही उठे  
 सब अपने प्रासाद के ही किसी छिप्टाघार का ध्यान नहीं था। उसको हठ मनोदसा  
 में देख राजपथ पर घाटे-जाठे बालक घोर नारियाँ कुछ मयभीत-सी हो उठीं, परन्तु  
 प्रीति प्रमदा कुछ नागरिक सहानुभूति से उसकी घोर देखते रह गए। मुस्क हँव पड़े।  
 सामन्त कातिकेय सामन्त भीरमत्र से बोधे—“बन्धुवर इस पूर्व ने तो हमारा  
 जैसे साध ही रहस्य खोल कर रख दिया।”

सामन्त भीरमत्र बोले—“तो फिर क्या बात है, बन्धुवर ? जो हथ करना चाहते  
 हैं, वह किसी से छिपा भी क्यों रहे ? हथ कोई उपराध तो कर नहीं रहे जो  
 कुछ कर रहे हैं वह बैसाली ही की तो एक पुनीत बरम्परा की रसा है घोर वह हमें  
 करनी ही होनी।”

घोर फिर सम्मुख लड़े एक मुस्क की घोर देखते हुए वह बोले—“क्यों  
 धामुष्मान, तुम सब कुछ समझ गए न न समझे हो तो एक बार घोर समझ भो बार  
 करानि वाली न जाए धम्परा यह सब कुछ रसा रह जाएगा।”

धामुष्मान मुस्क ने नठ मस्तक ही कहा—“धार्य मता कभी यह भी सम्भव  
 है, बैसालिक का प्रहार घोर वह वाली रह जाए।”

सामन्त कातिकेय उसकी कम्मर बगपपाते हुए बोले—“धामुष्मान तुमन्त  
 तुम्हारा यह साहस धात्यविरवास घोर कुछ निश्चय निश्चिद तुम्हारे कुतोचित ही  
 है।”

वे सब बातें मणसंवाहक के ही धावात में एक नीचे के बल में ही रही थीं  
 घोर स्वयं मणसंवाहक हथ समय ऊपर अपने विषाम कल में थे। वह वहाँ धपी-धपी  
 पड़े थे घोर मवाता छिद्रों में से शक नगर द्वार एवं उसकी घोर जाठे मुक्य राजपथ  
 के बरनों को देख मन ही मन कल सोच रहे थे।

सहसा कल में उदेषवाहक-कनिम ने प्रवेष्ट कर कहा—“धार्य श्रेष्ठी मिलविरक  
 बिलिख्त हो गए हैं।”

मणसंवाहक ने जैसे यह सुना ही नहीं। हाँ-हैं कुछ भी तो नहीं लिया। दृष्टि  
 भी पुनीत मवाता छिद्रों में से बाहर नगर द्वार की घोर शकनी रही। द्वार-रूपाट  
 सभी भी बन्द ने घोर वहाँ नगर की एक नहीं धनैक मूल बन्धुओं, कुषारी कम्पारों

वया प्रीतिमार्गों से उसका समुचा निकट लीन जैसे सहलहा रहा था। उधर, मुख पर चमक नर जन-समुह जैसे उमड़ा पड़ रहा था। उसे देख करवाचित यह अपने से कुछ पूछ ही रहे थे कि इसी मध्य संविधानाहक कपिल पुत्र कह उठा—“धर्म, आस्थागतार में अनुभव प्रकल्पदेव पचारे हैं।”

समुहवाहक के लिए जैसे इस समय इस क्या किसी भी संवाद में कोई नवीनता थी नहीं रह गई थी। फिर भी जैसे मुन उनके मुख पर हृदय धीरे धीरे का साथ ही आश्चर्य का भाव छा रहा। किन्तु प्रकट में न तो वह जैसे कुछ में सिखा माने की बात कह सके धीरे न ही यह कह सके कि वह बापस भीट जाए। केवल पूर्ववत् दृष्टि किए बाहर की धीरे ही देखते रहे। परन्तु संविधानाहक बाब इस समय एक नहीं कई संवाद एक साथ जाया था। गणसंवाहक की विचार वह बाड़ा या पीठ की फिर भी वह इस बार अपना प्रकल्प प्रवृत्त नर कर, इतना नर कि उसने अपने जीवन में इससे पूर्व कदाचित्त ही किया होगा विनयातिरेक के स्वर में बोला—“धर्म मुझे प्राण प्राण तक का प्रकल्प देते की क्या करें मुझे एक महत्त्वपूर्ण कार्य है।”

बीघाजी की वर्तमान स्थिति में अपने संविधानाहक के मुख से महत्त्वपूर्ण कार्य एवं उसके लिए प्रकल्प की बात मुन प्रकल्पवाहक जैसे कुछ विस्मित हो उठ। बाहर की धीरे से दृष्टि हटा, वह उसकी धीरे मुख कर बोले—“आध्यात्म कपिल प्राण बीघाजी में मुझे कोई महत्त्वपूर्ण कार्य है। क्या यह क्या कार्य है?”

अपने बूढ़ स्वामी के मुख से यह सुन वह संविधानाहक की धीरे धीरे मुखा। हाँ कुछ संकोच का छा अनुभव प्रवृत्त कर उठा। तो भी उसे उत्तर देना था। अपनी दृष्टि ऊपर उठाए बिना ही बोला—“धर्मवर, मुझे प्राणप्राण है।”

गणसंवाहक ने आश्चर्य पूछा—“तो किस बात के लिए आध्यात्म?”

संविधानाहक कपिल सर्वथा धीरे धीरे रह उत्तर में बोला—“धर्मवर, प्राण प्राण देना में प्राण प्रकल्प के प्राणव में एक आध्यात्मिक विधाहोत्सव है धीरे उसमें मुझे भी सम्मिलित होना है।

“मुझे भी सम्मिलित होना है? किसके प्राण?” गणसंवाहक के मुख पर एक छाव ही आश्चर्य धीरे आश्चर्य का भाव छा उठा। संविधानाहक कपिल ने इस बार जैसे साहस कर अपनी दृष्टि ठगिक ऊपर उठाई। फिर नर प्रकल्प ही बोला—“धर्म वर देवी प्राण के प्राण धीरे धर्म अनुभव प्रकल्पदेव भी तो।”

कपिल के उवाच का एक-एक शब्द जैसे गणसंवाहक पर बर प्रहार कर उठा। प्राण उत्तेजना से उनका मुख समतला गया। नर प्राणव ही उठे। आश्चर्य से कण-स्वर पड़ ही उठा। जोश से कणकणते हुए बोले—“धर्म धीरे धर्मव पुत्र क्या मुझे भी यही करना था?”

परन्तु संविधानाहक यह समझने में प्रकल्प रहा कि गणसंवाहक ने यह बात स्वयं उसके लिए प्रकल्प अपने हा पुत्र प्रकल्पदेव के लिए कही है। यत-वह उत्तर में, मौन रहा। मौन रहे रहे ही अध्यात्मिक गणसंवाहक के मुख से निकलती प्रकल्पमार्गों की मुनता हुआ यह क्या से बाहर हो गया। गणसंवाहक कहते रहे पड़े—“धर्म पुत्र सामन्त प्रकल्पदेव का पुत्र—प्रकल्पदेव—एक ऐसे विधाह मण्डन में यही एक प्रकल्प

कल मुक का पाणिग्रहण होना अपना भी पाणिग्रहण कराया । एकदम प्रसन्न । एक सामन्त बुन घोर बड़ एक धजात कुल मुक के साथ बैठिया वहाँ—जहाँ एक बाघी कम्पा भी बैठेगी । फिर, वह जैसे इसी की रट लगाते रह गए ।

उत्तर, पमटार के पास न जाने कब से लड़ी मंत्रिका प्रंतत सुन्न ही उठी । धर्म्य सामयियों से सम्बन्ध रखत-धामार धर्म-ऊर्ध्व ह्राव पर टिकाए एक वही वहाँ नहीं लड़ी थी, बरक सामन्त-पुनी बाबस्मिता, महाभय्यी प्रपीपी रत्न कमल घोर न जाने कितनी मन्थ येष्टी एवं सामन्त-पुमिनी इत समय वहाँ उपस्थित थीं । देवी रोहिणी जी अब तक वहाँ या पहुँची थी । अत मंत्रिका सुन्न होकर भी प्रकट में कुछ न कह सकी । अत नम-ही-नम कह कर रह गई । अतका अत भी सामा-जिक मति से मान्य धनेक कष्टों से प्रसूटित होते संभव यान में सहयोग देता रहा । ददा-करा उनके इस संयम यान को प्रकल्पित करता पूछ भाव में लहराते अन-समुदाय के मन्थ हैं । उन्नसित उन्न कष्ट-स्वर में अवबोध भी पूर निकलता । उसे सुन मुख्य राजपथ के तीरण-वन्दनवारों का अत घोर प्रसर हो उठता । सहना राजपथों के दोनों घोर अड़े वृष्टों की विज्ञान धामा प्रयाजाओं पर निमित्त मथानों से बाबक-मन्थमियों का सुमपूर स्वर लहराता पूर निरुमा घोर उसके कनस्वरूप जैसे समुची महानमरी में ही अस्ताह का संभार हो उठा ।

परन्तु नगर द्वार की दुसरी घोर, बाहर, इस समय एक दूतरा ही दरय उपस्थित था । गजराज सचनक धारक मयब-कुमारी की देह न केवल धाराद दीवं धूमि दुसरित थी बल्कि प्रभाव मति से बीड़ते माने के कारण उनके घटीर के स्वेद-जल भी प्रवाहित था जिससे उनके कन धंय-असंय से बुरी तरह विपट उठे थे । मुक पर याना-नम की स्वाग्नि स्यात्त भी तथा कष्ट बुरी तरह सुन्न ही उठा था । राजपूह से पतामन के समय मयपि उम्होंने बैरानी को ही नकन बनाया था । पर इन समय उन्हें देह कष्ट ऐसा लय रहा था जैसे लठक पर पहुँचने के परचा भी उन्हें कोई विदेव प्रवन्ता नहीं हुई । वे अभी भी स्पष्टतः, उदात्त-मन तथा उचाट-चित्त बीध रहे थे तथा तापण उन्हें देख केवल यही प्रतीत हो रहा था कि पराशय की निम्नता जैसे साकार रूप में वहाँ था उपस्थित हुई ही । द्वार के उत घोर नगर के पन्धर में उनाह का जो संभार था उतकी घोर से वे केवल जरासीन ही प्रतीत हुए घोर सम्पन्न इसी जरासीनता के कारण दोनों धरकधार बरस्वर निकट बैठे रहने के परचा भी केवल भीन हुए बैठे रहे ।

अत में यह भीक संय किया विह्वलन ने । वह विन्न हुआ था बीना—  
“बभुवर !”

अने धनुज के इत सम्बोधन पर हम्म ने उत्तर में ही-हूँ कुछ भी न कहा । अत मोन माथ से उमकी घोर देह कर रह गया । विह्वलन इन क्षण हम्म के मुख की धारी उराही को देख विह्वल-सा उठा । परन्तु धामने क्षण ही धने को संयत कर अपने जो कष्ट पहना जाहा था, उसे ही बहने के धमिजाय से बीना—“यों बभुवर, बैरानी धारक इयने क्या मून नहीं थी ? जिस संयने को पीठ जिसाकर हय राजपूह से भाव उठे थे, क्या धब वह ही वहाँ भी प्रस्न न होगा ? अगर द्वार के उत घोर से

हमारे स्वागत निमित्त आता यह सुमधुर कण्ठ स्वर न जाने कब रणभेरी में परिवर्तित हो जाने पर हमारे यहाँ आने से यह किसी प्रकार भी तो असम्भव नहीं रह गया। कमर कोणिक बीधारी पर अवश्य ही घाकमण करके रहेगा और बीधारी भी उसका सामना किए बिना न रहेंगे। और उसका परिणाम ? बंधुवर यह तो मुझ समुच्च है।”

विह्वल क्या कहने वाला था हृत्स उसे वास्तव में पहले ही जान गया था। तो भी वह उसका उत्तर देने में जैसे समय रहा। वह समझा भला क्या उत्तर दे यह सोचत-सोचते उसकी उदास मुखमुद्रा गभीर हो उठी।

वह मन ही मन सोचता रहा— विपत्ति का आना अपने आप में एक दुर्भाग्य है, परन्तु यदि इस विपत्ति में कोई अनुमति भी समझानी बन जाए तो वह निश्चय ही और भी बड़ा दुर्भाग्य है। परन्तु अपने अन्तर के इस भाव को प्रकट किए बिना ही वह सद्ब्रह्म संन में बोला—“धाम्प्यान् किर इसके अतिरिक्त और कोई विकल्प भी तो नहीं था।”

राजा की बग़ी बना लिए जाने की बात वह उसे सब भी बताने का साहस न कर सका।

‘क्यों नहीं था बंधुवर ?’ विह्वल उत्तरता से बोला— ‘क्या हम उदात्त के संघ में प्रवेश नहीं जा सकते थे ? आखिर मनुष्य के लिए बही तो आज एक ऐसा निवेश है जहाँ सभी विकार अपना अन्तिम आश्रय पाते हैं।’

हृत्स मनुष्य की इस बात को सुन हल्का-ना एक ठूँका दे हँस पड़ा। बोला— ‘धाम्प्यान्, वैचार संघ तो स्वयं ही हम समय संवहरत है। महत्वाकांक्षी वेदवत् हिना का मार्ग ग्रहण कर बलात् मुडल प्राप्त करने के लिए उठाऊ है। देखो तो वह भी कौसी विद्वन्मना है ? अर्म का उल्कासन भी भला कहीं बलात् प्राप्त किया था उच्छता है ? फिर परम और राजनीति में अन्तर ही क्या रह गया ?’

धीरे यह कहते हुए उसका मुख में मालों किसी भारी परबल पर चिम्पना का अनुभव कर करवत एक लीन बाहुर निकल गई और फिर जब उसके अन्तररूप मन का मार कुछ हल्का हो गया तो वह बोला— ‘धाम्प्यान्, यह तो सर्वत्र व्यवहार ही संभव है और यदि इस संभवार पर विश्रय या उसे धामोचित करना है तो उसके लिए संशय अनिवार्य है। यह एक चिरंतन सत्य है। इस सत्यका अतितामं रूप ही तो उपरमा है और उसे विमुक्त होना पलायन है।’

विह्वल ने उत्तरता से परन्तु सद्ब्रह्म रूप में प्रथम किया— ‘तो फिर बंधुवर हमने राजमुद्र में ही रह मह नश्य क्यों नहीं किया ?’

हृत्स ने भी उभी उत्तरता से उत्तर देने हुए कहा— ‘धाम्प्यान् हम कर उद्यत से प्रवश्य कर नवन के परन्तु हमसे आम-भूम कर ऐसा नहीं किया। क्यों ? क्योंकि यह एक विद्वान्पूर्व मित्राल है कि मानवीय विचारों का उनके बहुत्र उद्यत में कर्तार न, किन्तु जाए, प्रग्यवा के धीरे अधिक उद्य हो उठते हैं।’

‘धीरे फिर जाड़े के अपने बहस ही उद्यत में सब कुछ मर विनष्ट क्यों न करे ?’ विह्वल ने उसे तर्क प्रस्तुत किया।

हस्त ने कहा—“परन्तु धामुष्यान्, तनिक यह भी तो कल्पना करो कि यदि अतिरिक्त होता तो फिर क्या होता ? राजपूह में जो कुछ धन हुआ है उससे कई गुना अधिक रक्तपात हुआ होता और इन रक्तपात में सर्वाधिक लति गिरीह प्रजा की होती उक्त प्रजा की बिलकै कस्याण के लिए ही वह राज्य की व्यवस्था है । उसी प्रजा के श्रम पर तो हमार यह राज प्राप्त हो रहा है और उसी के बलिदानों पर हमारे संभव का यह धामाभ्य टिका है । फिर भी यदि हम उनके प्रति निष्ठावान न रहें उन्हें तो दुम्हीं कछायी फिर प्रता इयते धनिक विनीना और नीत हो सकता है ?

विहस्त को अपने धारण की यह बात सर्वथा निरर्थक प्रतीत हुई । उसे स्पष्ट ही आभास हुआ कि इन सभी बातों के पीछे निश्चय ही कोई बंजीर रहस्य छिपा है, जिस सबसे सब एक छिपाया जा रहा है । तनिक सोच वह फिर कहने लगा—“परन्तु बानुबर, जिस रक्तपात को टपाने के धमिश्राय से हम यहाँ आए हैं क्या उसकी मुक्त वृत्ति सब यहाँ नहीं होती ? कुमार कासिक अपनी बाहुनियों को ले बरि इस समय इधर ही की घोर सज्जर हो तो हममें क्या आश्चर्य है ।”

विहस्त की यह बात सुन हस्त को लगा जैसे उसके मुख से प्रतापत ही कोई स्वर्णत तप्य निकल गया है । वह कुछ सहज-सा गया । तो भी प्रकट में सर्वथा संवत रह, बोला—“धामुष्यान् राजनीति के गतिमान रूप में सब कुछ ही सकता है । वह तो श्राव निश्चित है कि रक्तपात होना पर तब तक राजपूह वाले रक्तपात से कुछ भिन्न होना । कुछ भी ही, कुछ कृते प्रायत में ही लीजा देता है ।”

वह वह हस्त तनिक एक जैसे कुछ सोचता-सा रहा । फिर बोला—“धामुष्यान्, फिर लति की लति ही से तो टकर होती ।”

“और संभवतः इस टकर में एक स्वतन्त्र राज्य केपन बात बन कर रह जाए । फिर क्या वह प्रभवदाता राज्य के प्रति विरहाभवात नहीं हुआ ?” वह कहने हुए विहस्त ने अपनी दृष्टि उक्त हस्त की घोर देखा । विहस्त के इन लकें के हस्त को जैसे दुर्बिधा में डाल दिया । वह उसका निपकरण करने के प्रयास स्वकन बोला—“धामुष्यान्, विरहात रकी यह तो राजनीति के सुस्थापित होय है जिन्हें परम्पराओं की संज्ञा से सहज रूप में स्वीकार कर लिया गया है अथवा लकें का कहीं भी प्रकट न होता और किया सुवरात से बंभित रह जाती । अतएव परम्परा को ही तप्य रूप में स्वीकार कर संतोष को लीक लेना अवसर है । और वह परम्परा यही है जिसे हमने इस समय अपनाया है ।”

हस्त के अन्तिय भावर में विरहाभ की बुझा प्रतीत हुई । अतः विहस्त इस बार कुछ मोन रह गया परन्तु वह अभी विमकुन निरलर नहीं हुआ था यह उनके मुक्त-भाव से स्पष्ट हीक रहा था । जैसे कोई धन्य लकें प्रस्तुत करने, जो वह जाना बन्धु-भार लाव विचारों की शक्तों में बँबने का प्रयास ही कर रहा था कि एनी मध्य प्रकटी दृष्टि लहना पीछे छूटे लकें की घोर घृण परई । उसने देखा कुछ भवन लीक गति से शीघ्र हुए इधर ही की घोर घा रहे हैं । उन्हें देन वह लीक उठा । उनके मुख की लकी-कहो धामा भी पूषत निस्सिह हा उठी । वह निश्चय ही पशरा उठा था । अतएव प्रकट स्वर में बोला—“तो बानुबर, जिस लकें की धारणा थी सब वह अन्धुध



ही प्रस्तुत है।" धीरे धीरे तैयारी से घसने हल्क का ध्यान उस धीरे ब्राह्मण करने का प्रयास किया। हल्क ने भी जैसे ध्यानभंग हो, जबर की धीरे देखा। कुर्सी के मुँह मुँह में से कई धक्के अनुक्रम से बाहर निकल तीव्र गति से जबर की धीरे बढ़ते जैसे धा रहे थे। परन्तु वे धीरे पर्याप्त हुए थे।

द्वार-धीरे पर जाड़े सुरमा-प्रमाण धाधार्य विषय की सर्वक बुद्धि भी इस समय तक उस धीरे धूम धुकी की धीरे इन घसनों को भाते देख रखान-प्राचीर पर सड़े धमक सैनिक भी पहले से धार्मिक ध्यानभंग हो उठे थे। उन्होंने अपने घसनों को सम्मान लिया।

इसी समय द्वार के इस धीरे जबरनाथ में मुख्य राजपथ पर एक भद्र बाहन हुँद गति से बढ़ता जाता दिखाई दिया धीरे वह धन-समूह के निरुद्ध पहुँच जाड़ा हो गया। उसके पीछे भावते धा रहे धमक बाहन भी सड़ता जाड़ा के उड़ा जाड़े हो गए। धमकता बाहन पर इस समय एक ध्वेत पठाका उड़ा रही थी धत उठे देख किसी को भी यह समझने में क्लिप्त न गया कि उसमें कौन धारा था। बाहन के स्वर ही उसमें से सर्वथा साधारण परन्तु लालित्यपूर्ण परिचाल में देवी विष्णु नीचे उतर सी। देवी विष्णु को सम्मुख देख जन समूह में जैसे भारी हृद्यमान-सी मध गई। उस्ताह के माथे में सभी उठी धीरे भाग लिए। देवी विष्णु का मार्ग धक्कड़ हो उठा।

देवी विष्णु को इस प्रकार भारी शीत से बिना देख धाधार्य विषय कछ भ्रमना-सा गया पर मन ही मन उसे एक सुख धनुनृति भी हो रही। तो भी वह इस समय सर्व पल-मुहुरी को ध्यवस्था के लिए ललकार उठा। उधर, द्वार के समीप जाड़े कल कम्पाएँ तथा नवबहुरी भी जैसे देवी विष्णु को देखने को धातुर हो उठी। प्रतीक्षा में सभी की बुद्धि उस धीरे केन्द्रित हो गई। यदि नहीं हुई तो केवल एक की धीरे वह स्वयं कुमाठी मंत्रिका थी। उसके धीरे पर इस समय एक स्वयं कथण रखा था। उस धीरे सर्वथा उपेक्षा का ज्ञान बिना वह ध्यानस्थ हुई केवल उस धीरे ही देखती रही बिना इस समय धाधार्य विषय कछा था धीरे इस धारे वृत्त को देख भारी बर्ष का धनुप्रथ कर रहा था। धमक उसके इस धर्ष का मंत्रिका की धुम्क बुद्धि से सासा लकार हो रहा। वह कुछ विचित्र-सा गया। परन्तु धमके अन्त ही धाधार्य विषय ने धधमी बुद्धि उठा उधर की धीरे देखा बिना ध कि धमक प्रायः पूर्ववत् गति के धाक साधे बढ़ते जैसे धा रहे थे। उन्हें इन प्रकार धाते देख वह बुभिसा-धस्त हो उठा।

धीरे धीरे उसके नेत्रों के सम्मुख महानमयी की धाटी धमक स्थिति लकार क्य बहलु कर धा उपस्थित हुई। परन्तु उसे लगा वह जिस समयसा विदीप पर कितना धार्मिक लीचना धा रहा है वह भी उनी परिचाल में ललकती जमी धा रही है। बैशाखी का धाम्तरिक कसह धीरे विदीपकर गणसंवाहक का विदीप कब गया ल्य बहलु कर, धमक विद्वट परिस्थिति उतामन कर वे यह विन्ता उमे हम समय धमक ही धमक लागे धा रही थी। वह धमी भांति धालता था कि देवी विष्णु को मान्य कुमाठी के स्वामत निमित्त धाम्तरिक कर उमने स्वयं ही स्थिति की धीरे भी धार्मिक विषय बना लिया है, परन्तु इस उध कुण का पूर्वाभास होते हुए भी वह न जाने क्यों लोन धंवरण नहीं कर सभा। क्यों? उसका धमक ही उसे हम प्रश्न का उत्तर दे उठा। परन्तु

हम उत्तर के साथ ही उनके धरम में एक अन्य प्रश्न उठ खड़ा हुआ प्रत्यक्ष में मंत्र रिक्त धीरे धरम में देवी शिष्या क्या यह दोनों ही के प्रति विश्वासपात्र नहीं हुआ ? अपने से बोला—“धरम, यह तो सचमुच निम्नतम खेती का विश्वासपात्र हुआ । यह सोचते हुए अपना हृषम बेसि भारी धारण्यमि का-सा धनुष्य कर उठा । परन्तु, इसी तरह जैसे कोई धरम में उसे सावधान कर कह उठा—“धरम, यह समय बिय शिक बतों पर सोचने का नहीं । देवता नहीं बीसामी पर इस समय विपत्ति के कामे मेव छाए हुए है ।” जैसे ऊपर सचमुच मेव छाए हुए हों उन्हें देखने के लिए उसकी वृत्ति बगल धारण ही धीरे उठ गई । उसे लगा कि सुख की प्रचंड राव रविमर्मा मानों प्रसन्न शिष्याओं में परिणत हो चटकारे बैठी हुई राव रपि है, जैसे ही बिना प्रकार प्रहारोद्यन रण-विनायु बद्ग कमचपाने हैं । युद्ध-विभीषका की धारणा धारण कर धरम कर उसके नेत्रों के सम्मुख भा उरालित हुई जैसे देख वह एक बारपी धापाव धीरे सिद्ध रण । किन्तु धुकरे ही धरम शिवेक का उद्घाटन से धरम को संयत करने का प्रयास करते हुए उसने दोनों धीरे के धरमों पर निर्हंगम वृत्ति डाती । धरम इस समय तक धुरधुत को धरम मुक्त मार्यवर धा धुके थे । धरम गण पुत्रवों के प्रयास स्वरुप नाबार्क बल देवी शिष्या का धरम्य धरम प्रयत्न कर पीछे हट पीसिबद्ध धके ही धुके थे ।

किर भी धारामे शिष्य बनता को सावधान कर उठा । बीसामिर्मा को धार धान करता हुआ यह कह उठा—“धरमों बीसामी के लिए इस समय एक-एक धरम धरम्यवान है ।” धीरे, उसका यह धारण्य पर्याप्त समय तक प्रतिध्वनित होता नाभरिर्को के धरमों में धरमता रण ।

देवी शिष्या इस समय धरमी धारक मण्डनी से धरिगे सद्ग संकीच भाव से धारों की धीरे धरमर थी । किन्तु उसके धरमों की धरि धीनी थी । उसे इस प्रकार धरम धरि से धरमों देव धारामे शिष्य धरम धीध-ना धरम धरिमे साथ ही धरमिर्मा वृत्ति से धरम की धीरे देवता भी रण । यह देव मंत्ररिष्ठा के धरम में धरम—“धरमों के इस धरम को धरमी धरमों न मे धरमों की धीरे धरम र्ण ।” परन्तु धरम तक देवी शिष्या धरमों धरम्य निम्न धा धरुषी थी । देवी शिष्या स्वभाव से धरमी धीरे की धरम धरमिर्मा र्ण । तो भी इस धरमर पर धो धरमका धरमिर्मा धा धरिमे यह धरम नहीं धुपी । मंत्ररिष्ठा के धरम्य धरमी धरुष धरमों धरमका धरम्य धरम तथा धरुष स्व र्ण कह—“देवी मंत्ररिष्ठा धरुषे धरमई है ।”

यह यह, जैसे धरमिर्मा धरम्यता से धरमका धरुष धीरे ही रण । मंत्ररिष्ठा के धरमकी धीरे से यह धरमकी धरमों नहीं की थी । धरम यह धरमिर्मा-री में धरुष गई । धरमिर्मा र्ण कि देवी शिष्या ने क्या धरमय धरम प्रधरित धरम है धरमका धरम पर धरमका धरम प्रधरित हुआ है । धरम यह धरमय यह धरमिर्मा न कर मकी कि धरमका धरम धरम है । परन्तु धरमी धरम पर धरुषने के धरुष ही धरमि उसका धरुष धरमिर्मा धरि धरि में धरम धरम—“देवी शिष्या धरुषे धरमी धरमिर्मा धरम पर धरमई है ।”

देवी शिष्या ने धरमिर्मा के धरमकी धीरे देवता धरमके धरमीर्मा को यह धरम्य धरुषी थी तो भी धरम्य धरम धरम धरम्य धरम धरिष्ठा कर रण गई । धरम्य धरम धरुष



घोर, यह कह यह उच्च ठहाका दे हीस उठा। उसकी हीसी में निरवय ही एक रहस्यपूर्ण, धार्तकित करती-सी यन्त्रीरता थी जो सहज ही में सर्वत्र छा गई। उसका कण्ठ स्वर कण्ठ स्वर में ही बदलित शब्द घोर फिर उसकी हीसी का यह ठहाका नागरिकों के कार्यों में बृहता यह घोर यह न जाने कब तक नृजता रहता कि सत्सा नगर के मध्य मन्त्राल में कही किसी काँच बहिष्वास पर धर्मार्थ प्रहार हो उठे। उसे सुन घेटी मिलानिबक फिर एक उच्च ठहाका दे हीस उठा।

समूचे मातारण में यन्मीर घनाटा-सा छा गया।

घेटी मिलानिबक के बिलिप्य प्राय कण्ठ स्वर घोर काँच बहिष्वास के पीपण दिनाद की सुन सभी नागरिक धार्तकित हो उठे। सब ही की लो मुक्त भावा निस्तेज ही गई। धार्तका मरी सहमी दृष्टि से वे द्वार-सीर्ष पर कई धाधार्य धिप्य की घोर देख उठे। यह इस समय नगर द्वार की घोर कट्टे या रहे धरनों को देख रहा था। सहसा उबर की घोर से दृष्टि घेर उसने अपने निकट कई घरनपायी मण्डुवनों को कुछ संकित दिया। घोर उसके उस संकेत पर, एक-एक कर कई मण्डुवय देखते-देसते ही उन्मत्ता से रज्जुधों के सहारे धाधीर से बाहर की घोर कूब गई। नगर द्वार तो धमी भी बन्द था ही। उमर बहिष्वास पर प्रहारो का क्रम भी यथापत् परिमाण था। रज्जुधों के सहारे धिनीकों की बाहट, नीचे की घोर कुवाने के परथात् धाधार्य धिप्य जैसे ठरकाव धारो कुछ भी सोचने में प्रथमर्षे रहा। बस असहाय दृष्टि से यह द्वार के समीप लगी एक नहीं घनेक कग्याधों की घोर देख सका। उसने देखा वे सभी इस समय वस्तु हर्तण्यों की भाँति एक दूसरे की घोर देख-देख भयभीत हुई जा रही थीं। फिर उसकी दृष्टि अकरमात कमच मंत्रिका घोर देखी धिप्या पर जा टिकी। मंत्रिका के मुख पर जैसे भारी निपय का भाव ध्याप्त था, घोर देखी धिप्या की दृष्टि उसी की घोर ऊपर, नगर-द्वार के सीर्ष पर केन्द्रित थी। किन्तु उसके मुख पर इस समय भी उन्मत्त भाव ध्याप्त था। यह देख धाधार्य धिप्य जैसे खीक उठा। सोचने लगा कि यह कोई कौन मानी है यथावा यथापत् भूति ? परन्तु दूसरे ही क्षण जैसे देखकर जानों उनके धमर की व्यपटा मन्त्रित हो रही। यह मन-ही-मन 'बन्ध-बन्ध' कहा उठा घोर साच ही उसके हृदय में उल्काह का संघार हो उठा। घोर फिर मिळट में हो कई मनिबक की यह कोई धारोय है भोपाल पर से साधेन उन्मत्ता धमने धमर की घोर बढ़ मिया।

राज्य बहिष्वास की प्रविगाव टंकारों पर धाधार्य धिप्य के मुटीम धरक की पर जाने मुख उठी।

उन्ही मुक्त धराम नागरिकों के मुख पर फिर उल्काह का भाव खरित हो उठा। पर धेटी मिलानिबक की यह बिलिप्य हीसी उठ तक जैसे लकेट ही बुटी तरह महय, उसी के बस से धिप्य उठी।

मणसबाहक शाबन्ध मंत्रिकेव का रीश का इस समय जैंगे धपमी यन्त्राटः पर पहुँच चुका था। दार्ण हान ने धपमी पुगी धरिन के माय बहिष्वास पर धनगिनन प्रहार करती रहने के कारण उधक नम धिरर उठे थे तथा धम ने धमन देव-मिक्ता हो गए। यह काँच बहिष्वास पर प्रहार करते जा रहे थे तथा सभी के माय-बाब उच्च धनधम यन्मीर, परन्तु बिलिप्य प्राय कण्ठ स्वर में कहते जा रहे थे—“वे बलबंवारक हैं,

बैसामी की सर्वोच्च नियामक संस्था गणसंवागार का मैं पूर्णधिकार सम्पन्न अधिपति हूँ। मैं किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं बरन् स्वयं राजा बेटक मेरे प्रति उत्तरदायी हूँ। मेरे मेरे प्रति न छोड़ी संवागार के प्रति तो ही है। फिर भी मेरी यह जेजा क्यों ?”

यह कह, उसका बम्भीर स्वर जैसे विभाम की दृष्टि से कुछ हल्का हुआ। परन्तु दूसरे ही क्षण मन्तर में फिर सावेन उठी किसी घण्टा हिसोर के साथ वह पुनः दृढ़ हो उठी। वह उच्च स्वर में कहने लगे—“गणसंवागार के अधिकारों की रखा करना मेरा कर्तव्य है केवल मेरा। राजा बेटक यदि चाहे तो भी यह कबालि अधिनायक नहीं बन सकता। गणसंवागार उसे स्वेच्छावाची बनने का अधिकार कभी नहीं दे सकता। सम्मथा या तो वह स्वयं नहीं खेला या फिर मैं नहीं खूँगा संवागार नहीं खेला और जब गणसंवागार ही नहीं खेला तो फिर यह सासन भी नहीं खेला किसी की कोई भी सत्ता नहीं रहेगी यहाँ तक कि वह बैसामी भी नहीं खेलेगी। जब उसका गणसंवागार ही नहीं खेला तो फिर भला वह ही कैसे खेलेगी और जब वह नहीं खेलेगी तो कुछ भी नहीं खेला सब कुछ मिट जाएगा मैं मिट जाऊँगा बेटक मिट जाएगा मेरे दो सुनो, परन्तु बैसामी की पुत्री परम्परारूप नहीं मिट सकती सामन्त भ्रष्टरेव उन्हें कदापि न मिटने देना नहीं मिटने देना बिलकुल ही तो नहीं मिटने देना और यदि मैं मिटी भी तो उनसे पहले स्वयं भ्रष्टरेव मिट खेला और वह स्वयं मिटने से पहले सब को उन सभी को जिन्होंने गणसंवागार के अधिकार को चुनीली की है मिटाकर छोड़ेगा।”

सहसा उनका कण्ठ स्वर जैसे बरकर धक्का हो उठा। वह विभाम की एक सीट लिया चाहते थे पर सीट तनिक सा सहाय पाते ही बुरी तरह फूल उठा। फूलती सीट और उस से भी अधिक कूटते बख के साथ उन्होंने अपने पैरों पर बिरे उत्तरीय को माथेय कंध पर पटका मस्तक पर बहती स्त्रेव बन धार को सावेन तर्जनी प्रमुनी से पोंछ नीचे की और मूटका और फिर विधिपूर्वक प्रायः दृष्टि से प्रांचल में लड़े बन समुदाय की ओर देखा। किन्तु उनकी दृष्टि जैसे अपना उबर से अचट सम्मुत ही लड़े एक अवक पर सा टिकी। जैसे देन पहले तो वह जैसे स्तम्भ हो गए, परन्तु दूसरे ही क्षण बोबावेय के कारण उनके नेत्र धाम्येय हो उठे मुख तप समा उठा। मेघ-मर्जन उदुध कड़कते कण्ठ स्वर में बोले लड़े—“मेरे दो प्रसन्न तू यहाँ ? मेरे भाव तू यहाँ गणसंवाहक के प्राचार में ? मैं पूछता हूँ किसने कहा है तुझे यहाँ जाने को ? जा—अब तेरा बहूँ कुछ नहीं जो वा यह कभी का मिट चुका है।” यह वह उनके कण्ठ स्वर में सुना बिलोभ का सा भाव उभर था। तनिक दक वह फिर सावेन बोले—“असन्न मैं कहता हूँ तू हूट जा मेरे मेरा क नामने से, सभी—तुरन्त प्रस्यथा—यह समुची बैसामी यहाँ लड़ी भाव कोई और ही रूप देखेगी।”

परन्तु कुछ निगा की वह प्रताड़ना जैसे विच्छन्न रही। अस्त्रदेव वना स्थान ही निरचन धर्मिण राड़ा रहा। उनके हस्त दुस्साहन को बेव गणसंवाहक जैसे और भी धर्मिक भोषाभिभूत हो गए। पुनः कटवर्त स्वर में बोले—“असन्न तुना नहीं क्या तुने ? मैं न कहा हूँ वा मेरे पैरों के नामने से नहीं तो सभी कुछ अधिष्ट हा रहेगा। मेरे, मेरे तो न जाने वह से यही समझ लिया है मेरे कोई पुत्र ही नहीं या और यदि या भी तो वह कभी वा अर चुका है।”

गणसंवाहक के बत्तजित मुक्त पर, जैसे सहसा पीडा का-सा भाव उभर आया जो उनके एक भाव पुत्र को मारती हिमा-सा गया। इस बार जैसे साहस कर उमने अपने नेत्र-पलक ऊपर उठाए, पर वे धमिक बर तक टिक ग रह सके। दृष्टि गत होत ही उसका धीरे भी जैसे धबगत हो रहा। गत मस्तक किए हुए ही वह अत्यन्त दिनभ्र स्वर में बोला—“युग्मपाव। ये इस समय गण सेवा में हैं धीर सुरक्षा प्रभान आचार्य सिष्य ने गणसंवाहक की रक्षार्थ मुझे इसी प्रासाद पर नियुक्त किया है।”

प्रकण्ड देव के मुख से यह सुन गणसंवाहक का बोधावेद्य एवं बिभोम जैसे स्वयं ही सहसा आश्चर्य में परिणत हो उठा। उनके नेत्र बिस्फुरित हो रहे तथा स्वतः मन्त्र हुए कण्ठ स्वर में पूछने लगे—“प्रकण्डदेव तुम्हारे मुक्त से यह जो कुछ मैं सुन रहा हूँ क्या वह सत्य है घबका यह भी तुम्हारा कोई प्रबंध है?”

“अज्ञास्यद विनीत सेनक ने जो कुछ कहा है वह अक्षरशः सत्य ही है। यह भी सत्य है कि मेरी महत्त्वाकांक्षा पूर्णतः है परन्तु आचार्य सिष्य ने अपने अकण्ठ्य तकों से उसक स्वर का अवश्य बदल दिया है।” यह कहते हुए उसने अपनी दृष्टि उठ बुद्ध पिता की ओर देखा। उनका फुलता हवात इस समय तक जैसे सामान्य अवस्था में था चुड़ा था। तनिक जिज्ञासा का सा भाव प्रकट करते हुए वह बोले—“तो जैसे प्राप्ता मातृ?”

इस बार पिता के मुक्त से प्रापुष्पान का सम्बोधन पुन प्रकण्ड का हृदय आत्मीयता का स्पर्श कर पुनक्तित हुए बिना न रहा। अज्ञापाव से अपना मस्तक पुर्ब से भी धमिक गत कर वह अति विनम्र स्वर में कुछ बहने को उचल ही हुमा था कि इसी मध्य आचार्य सिष्य का अवग हुन पति से बीरता हुमा वहाँ था पहुँचा। धीर आचार्य सिष्य उसकी पीठ से हृत् साधेग गणसंवाहक की ही ओर बढ़ गया। निकट था उसने बवोदुष्ट सामन्त वा धमिवावन भी किया। फिर प्रकण्डदेव की ओर तनिक देव गत मस्तक ही लड़ा ही गया। गणसंवाहक ने प्रांगण में खड़े अग्नि वामान्त बनों की ओर जैसे सारधर्य देखा धीर फिर उगड़ने अपनी दृष्टि आचार्य सिष्य के मुक्त पर केन्द्रित कर दी। जैसे देव उनका मुख भाव जैसे एक संस्य में ही परिवर्तित हो उठा। प्रांगण में खड़े जन-समुदाय की ओर देखते रह वह न जाने क्या सोच साधेग आचार्य सिष्य की ओर बढ़ गए। उनके सम्मुख था बुद्ध कण्ठ स्वर में बोले—“जानते हो प्रापुष्पान तुम इस समय कहीं प्राय अवस्था में हो?”

गणसंवाहक के मुख से यह सुन प्रांगण में खड़े सभी सामन्त एवं अग्नी एक स्वर में तो उनका अवगकार कर उठे। किन्तु निकट में खड़े सभी भूतपुत्रन धार्तकित हुए सहम उठे। आचार्य सिष्य भी जैसे धन-ही-मन सोचने लगा—“प्रकण्डदेव ने यह कहीं बिस्वासपाव तो नहीं किया? धीर फिर उसने अतिथि दृष्टि से उसकी ओर देखा फिर सामन्त मंत्रदेव की ओर। बीता कुछ नहीं। गणसंवाहक पुन जैसे बोधावेद्य के से बुद्ध स्वर में पूछ उठे—“अरे धो अवीन बाभरु, नीन क्यों है तू उत्तर क्यों नहीं देता?”

आचार्य सिष्य को इस बार निश्चय ही जैसे सारधर्य पाटी खिरेह हो उठा। फिर भी प्रकट में उनसे अरने को प्रयास कर, सर्वथा धमिकनित रखा। पराधित

बैद्यनाथ की सर्वोच्च नियामक संस्था गणसंवागार का ये पूर्णाधिकार सम्पन्न प्रतिपत्ति हैं। मैं किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं बरन् स्वयं राजा बेटक मेरे प्रति उत्तरदायी है। धरे मेरे प्रति न सही संवागार के प्रति तो है ही। फिर भी मेरी प्रश्न उपेक्षा क्यों ?”

यह कह उलका यन्मीर स्वर जैसे विभाम की दृष्टि से कुछ हल्का हुआ। परन्तु दूसरे ही क्षण अन्तर में फिर साव्य उठी किसी धन्य हिनोर के साथ वह पुनः बुढ़ हो उठा। वह उच्च स्वर में कहने लगे—“गणसंवागार के अधिकारों की रक्षा करना मेरा कर्तव्य है केवल मेरा। राजा बेटक यदि चाहे तो भी वह क्वापि धमिनामक नहीं बन सकता। गणसंवागार उसे स्वेच्छाचारी बनने का अधिकार कभी नहीं दे सकता। धन्यबा या ठां वह स्वयं नहीं रहेगा या फिर मैं नहीं रहूँगा संवागार नहीं रहेगा और जब गणसंवागार ही नहीं रहेगा तो फिर वह धासन भी नहीं रहेगा किसी की कोई भी सत्ता नहीं रहेगी यहाँ तक कि यह बैद्यनाथ भी नहीं रहेगी। जब जबका गणसंवागार ही नहीं रहेगा तो फिर मत्ता वह ही कैसे रहेगी और जब वह नहीं रहेगी तो कुछ भी नहीं रहेगा सब कुछ मिट जाएगा मैं मिट जाऊँगा बेटक मिट जाएगा धरे धो सुनो, परन्तु बैद्यनाथ की पुत्री परम्पराएँ नहीं मिट सकतीं सामन्त भन्नेन उन्हें कडापि न मिटने देना नहीं मिटने देना निश्चय ही तो नहीं मिटने देना और यदि वे मिटी भी तो उनके पहले स्वयं भन्नेन मिट रहेगा और वह स्वयं मिटने से पहले सब को उन सभी को बिगड़ने गणसंवागार के अधिकार को चुनौती भी है मिटाकर छोड़ेगा।

सहसा उलका कण्ठ स्वर जैसे बरकर धक्का हो उठा। वह विभाम की एक साँस लिया चाहते थे पर साँस तनिक सा सहाय पाने ही बुढ़ी तरह फूल उठा। फूलती साँस और उल से भी धनिक फूलते बस के साथ उगहने अपने पैरों पर बिरे उत्तरीय को सामेन कंध पर पटका मस्तक पर बहती स्नेह बन धार को सामेन तर्जनी धनुषी से पीछ नीचे की ओर झटका और फिर निमित्त प्राय दृष्टि से प्रांगण में लड़े बन समुदाय की ओर देखा। किन्तु उनकी दृष्टि जैसे बनलु उपर से उचट समुदाय ही लड़े एक मुकक पर आ टिकी। उसे देख पहले तो वह जैसे स्तम्भ हो गए, परन्तु दूसरे ही क्षण क्रोधावेश के कारण उनके मेन धामेय हो उठे मुकक उन समा उठा। मेन-नर्जन समुदाय कड़कते कण्ठ स्वर में बोले—“धरे धो धासन तु यहाँ ? धरे धासन तु यहाँ गणसंवागार के प्रासाद में ? मैं पृच्छता हूँ कितने कहा है तुम्हें यहाँ धाने को ? ना—जब ठेरा यहाँ कछ नहीं जो वा वह कभी का मिट चुका है”। यह कह उनके कण्ठ स्वर में सहसा विभाम का सा भाव उभर आया। तनिक एक वह फिर सामेन बोले—“धन्यबा मैं कहता हूँ तु हट जा मेरे मेनों के सामने से, धामी—धुरन्ध्र धन्यबा—यह समुदाय बैद्यनाथ यहाँ कभी धाने कोई और ही रूप हैवेरी।”

परन्तु बुढ़ पिता की वह प्रताड़ना जैसे निपटन रही। धासनदेव यथा स्वाम ही निरबग धनिक राहा रहा। उनके इस बुस्ताहम को देख गणसंवागार जैसे धीर भी धनिक क्रोधाभिभूत हो उठे। पुनः कण्ठ स्वर में बोले—“धन्यबा मुना नहीं क्या तुने ? मेन कहा, हट जा मेरे मेनों के सामने से, नहीं तो धामी कछ धनिष्ट हा रहेगा। धरे, धन तो न जाने जब से यही सभ्यतिया है मेरे कोई पुत्र ही नहीं या और यदि वा भी तो वह कभी का नर चुका है।”

नलसंवाहक के उत्तेजित मुख पर, जैसे सह्या पीड़ा का सा भाव उभर आया जो उनके एक मान पुत्र की मातीं हिला-सा गया। इस बार जैसे साहस कर उसने अपने नेत्र-मलक ऊपर उठाए, पर वे अधिक डेर तक टिके न रह सके। दृष्टि गल होते ही उसका शीर्ष भी जैसे झनक हो रहा। मल मस्तक किए हुए ही वह अत्यन्त विनम्र स्वर में बोला—“पूज्यपाद। मैं इस समय नए सेवा में हूँ और सुरदा प्रबाल आचार्य सिष्य ने नलसंवाहक की रक्षा के मुझे इसी प्राण पर नियुक्त किया है।”

अज्ञेय देव के मुख से यह सुन नलसंवाहक का कीबाध एवं विषोम जैसे स्वर्ण ही सहसा आश्चर्य में परिवर्तित हो उठा। उनके नेत्र विस्फारित हो रहे तथा स्वतन्त्र रूप कण्ठ स्वर में पूछने लगे—“अज्ञेयदेव तुम्हारे मुख से यह जो कुछ मैं सुन रहा हूँ क्या वह सत्य है अथवा यह भी तुम्हारा कोई प्रपञ्च है?”

“अज्ञेय विनीत सेवक ने जो कुछ कहा है वह असत्य सत्य ही है। यह भी सत्य है कि मेरी महत्त्वाकांक्षा पूर्णवत् है परन्तु आचार्य सिष्य ने अपने अकाद्य तक से उसके स्वर्ण को अस्वयं बदल दिया है।” यह कहते हुए उसने अपनी दृष्टि उठाने की ओर देखा। उनका कृतता तथा इस समय तक जैसे सामान्य व्यवस्था में था चुका था। तनिक विज्ञासा का सा भाव प्रकट करते हुए वह बोले—“तो जैसे प्रायु मान?”

इस बार पिता के मुख से आमुष्मान का सम्बोधन सुन अज्ञेय का हृदय धारणी यथा का स्पर्श कर पुनर्कित हुए बिना न रहा। अज्ञेय से अपना मस्तक पूर्व से भी अधिक गल कर वह अति विनम्र स्वर में कुछ कहने को उद्यत ही हुआ था कि इसी अर्थ आचार्य सिष्य का अर्थ हीन मति से दीक्षता हुआ नहीं था पहुँचा। और आचार्य सिष्य उसकी पीठ से कूना साधेन नलसंवाहक की ही ओर बढ़ गया। निकट जा उसने बसोदय सामन्त का अधिवादन भी किया। फिर अज्ञेयदेव की ओर तनिक देव गल मस्तक ही बढ़ा हा गया। नलसंवाहक ने प्राण से एक अम्प्री व सामन्त बनने की ओर जैसे आश्चर्य देखा और फिर अज्ञेय ने अपनी दृष्टि आचार्य सिष्य के मुख पर केन्द्रित कर ली। उसे देख उसका मुख भाव जैसे एक क्षण में ही परिवर्तित हो उठा। प्राण से बढ़ बन-समुदाय की ओर देखते रहे वह न जाने क्या सोच साधेन आचार्य सिष्य की ओर बढ़ गए। उसके सम्मुख था वह कण्ठ स्वर में बोले—“जानते हो आमुष्मान तुम इस समय जैसी प्राण व्यवस्था में हो?”

नलसंवाहक के मुख से यह सुन प्राण में जैसे सभी सामन्त एवं सेन्टी एक स्वर में तो उनका अस्वयंकार कर उठे। किन्तु निकट में बढ़ सभी भूयजन आश्चर्यित हुए सहम पठ। आचार्य सिष्य भी जैसे मन-ही-मन सोचने लगा—“अज्ञेयदेव ने यह कहीं विस्वासात् तो नहीं किया? और फिर अपने अतिविष्य दृष्टि से उसकी ओर देखा फिर सामन्त अज्ञेय की ओर। बीना कुछ नहीं। नलसंवाहक पुनः जैसे बोधाध के से दृढ़ स्वर में पूछ उठे—“मेरी जो प्रयोग वाक्क मीन क्यों है, तु अत्यन्त क्यों नहीं होता?”

आचार्य सिष्य को इस बार निश्चय ही जैसे आश्चर्य आठि छिह हो उठा। फिर भी अत्यन्त में अपने अपने को प्रयास कर सर्वथा अधिबलित रखा। अन्तिम



बैद्यकी की सर्वोच्च नियामक संस्था मण्डलवापार का मैं पूर्णधिकार सम्पन्न अभिपति हूँ। मैं किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं बनूँ स्वयं राजा बेटक मेरे प्रति उत्तरदायी है। धरे मेरे प्रति न सही संवापार के प्रति तो है ही। फिर भी मेरी यह उमेजा क्यों ?”

यह कह उतका मन्वीर स्वर जैसे विषम की हृच्छा से कुछ हलका हुआ। परन्तु दूसरे ही क्षण धस्तर में फिर सावेग खड़ी किसी धम्य हिमोर के धाव यह पुनः बुझ ही गठा। यह धम्य स्वर में कहने लगे—“मण्डलवापार के अधिकारों की रक्षा करना मेरा कर्तव्य है केवल मेरा। राजा बेटक यदि चाहे तो भी यह कदापि अधिनायक नहीं बन सकता। मण्डलवापार जैसे स्वेच्छावाची बनने का अधिकार कभी नहीं दे सकता। सम्भवता या तो यह स्वयं नहीं खेला या फिर मैं नहीं खेला संवापार नहीं खेला और जब मण्डलवापार ही नहीं खेला तो फिर यह साधन भी नहीं खेला किसी की कोई भी सत्ता नहीं रहेगी यहाँ तक कि यह बैद्यकी भी नहीं खेलेगी। अब उतका मण्डलवापार ही नहीं खेला तो फिर मत्ता यह ही कैसे खेलेगी और जब यह नहीं खेलेगी तो कुछ भी नहीं खेला सब कुछ मिट जाएगा मैं मिट जाऊँगा बेटक मिट जाएगा धरे धरे मुनो, परन्तु बैद्यकी की पुनीत परम्पराएँ नहीं मिट सकती सामन्त मंत्रदेव उन्हें कदापि न मिटने देगा नहीं मिटने देगा बिलकुल ही तो नहीं मिटने देगा और यदि वे मिटी भी तो उनसे पहले स्वयं मंत्रदेव मिट खेला और यह स्वयं मिटने से पहले सब को उन सभी की जिम्होंने मण्डलवापार के अधिकार को पुनीती ही है मिटाकर छोड़ना।”

सहसा उतका कण्ठ स्वर जैसे बनकर धमकड़ हो उठा। यह विषम की एक साँस लिया चाहते थे पर साँस तनिक सा सहारा पाते ही भूटी तरह फूल उठा। फुमटी साँस और उठ से भी अधिक फूटते वर के साव उठने अपने वीरों पर निरे उत्तरीय को धावेध कंध पर पटक मस्तक पर बहरी स्वेध जब बार को सावेग उर्वनी धंहुली से पौध नीचे की धोर झटका और फिर विक्षिप्त प्राय दृष्टि से प्रांगण में खड़े बन समुदाय की धोर देखा। किन्तु उनकी दृष्टि जैसे बनाएँ उबर से खचट सम्मुख ही बड़े एक मुक्क पर धा टिकी। उसे देख पहले तो यह जैसे स्तम्भ ही गए, परन्तु दूसरे ही क्षण शोभावेध के कारण उनके नेत्र धाम्नेय हो उठे मुच उन लमा उठा। मेघ-नर्जन सवृष कड़कते कण्ठ स्वर में बोले उठे—“धरे धो धमकड़ तु यहाँ ? धरे धाम तु यहाँ मण्डलवाहक के प्रावार में ? मैं पूछता हूँ किसने कहा है तुम्हें यहाँ जाने को ? ना—भव वेरा यहाँ कुछ नहीं जो ना यह कभी का मिट चुका है। यह कह उनके कण्ठ स्वर में सहसा विक्षोभ का सा धाम उभर धावा। उनिक एक यह फिर सावेध बोले—“धमकड़ मैं कहता हूँ, तु हट ना मेरे नेत्रों के सामने से, धमी—तन्त्र धम्यवा—यह सन्तुषी बैद्यकी यहाँ खड़ी धाम कीई और ही पुरव देवेकी।”

परन्तु बुझ पिता की यह प्रताड़ना जैसे निष्कण रही। धमकड़वेध मया स्वान ही निरवम धमिन लड़ा रहा। उनके इन दुस्ताहित को देख मण्डलवाहक जैसे धोर भी धमिक कोभाभिभूत ही बठ। पुनः कड़कते स्वर में बोले—“धमकड़ तुना नहीं क्या तुने ? मैं कहा हट जा मेरे नेत्रों के सामने से नहीं तो धमी कण्ठ धमिपट हा रहेगा। धरे धरे तो न जाने जब से यही समझ लिया है मेरे कोई पुन ही नहीं या और यदि धा भी तो यह कभी ना धर तुना है।”

कीकठे हुए बोले—“भी बेटक के दसक पुत्र, तुने मेरे ऊपर जो जगकार किया है उसे तो मैं माफ़रल नहीं भूल सकूँगा।” धीर बह कहते हुए उन्हें अस्त्रदेव की ओर देखा। अस्त्रदेव का हृदय भी भाव विभोर हो उठा। नभ सजल हो गए। तथापि वह मन-ही-मन सज्जा का-सा अनुभव करता हुआ मत मस्तक हो गया, तथा उत्पश्चात् बरल स्वर्गोच्च हो परचाताप के से बोझिल कण्ठ स्वर में बोला—“पितृव्य में अपने बन्धु प्रपराय के लिए समा बाहूँ हूँ।”

मल्लसंवाहक के नेत्रों से स्नेह की जलधारा फूट निकली धीर कण्ठ स्वर बिखर सा गया। उसे किसी प्रकार संयत करने का प्रयास करते हुए बोले—“आमुष्यान् अस्त्रदेव तुमने अस्तव बैधाती के स्वर्गिण इतिहास को कर्मक से बचा ही लिया। मैं इसके लिए हृदय से धन्यारी हूँ। परन्तु यह समय धन इस तरह बिताने का नहीं। हमें धीम ही अपने कर्त्तव्य का निर्धारण करना होगा। तुम यहीं रहकर आचार्य सिष्य की सहायता करने और युद्ध सुलभ ही आयुष्मान सिंह की सहायता के संवाहक की ओर प्रस्थान करना होगा।”

युद्ध संवाहक के इस अस्ताव पर आचार्य सिष्य तथा अस्त्रदेव दोनों ही कुछ कहने को संयत हुए। परन्तु उन्हीं की मन की बात को सर्व प्रथम संदेह बाहक कथित कहने में सक्षम रहा। बोला—“अज्ञास्य, आपने तो वाचकजीवन ही बन्धितव्य बीमाप की रक्षा की है अतः अब आपको विधाम की आवश्यकता है। क्या आपको इन व्यक्तियों पर विश्वास नहीं?”

‘विश्वास नहीं? यह किसने कहा कि विश्वास नहीं। विश्वास क्यों नहीं आमुष्यान् परन्तु यही तो तुम्हारे पैलने जाने के दिन हैं। आक संख्या ही तो तुम्हारा दासी को ही समा करना आयुष्मती आया के विवाह है। आबते हो, इस नाते तुम मेरे क्या हुए? जसा क्या कोई विवेकशील पुरुष अपने लय आभाता की बुद्ध की विधी पिडा

यस संवाहक का वाली प्रवाह सैनिक उदिकाओं के मूल से लहवा, उन्धारित अय-अयकार के मध्य विनीत हो गया। धीर अस्त्रदेव-बाहक कथित तो हर्षातिरेक में युव युव को, पुनार उठा—“महाराज।”

बह, अत आने कुछ नहीं कह सका।

परन्तुमल्लसंवाहक का कण्ठ स्वर पुनः संयत हो रहा। वह बोले—“मेरे लय दिन के प्रपराय को यदि आयुष्मती आया धीर तुम दोनों ही केवल दोनों ही नहीं बरन् दास बर्ष नभैत साथ बैधाती समाज बना कर लके ता मे लयभूषा युद्ध मल्ल-देवा का दधीवित पुरस्कार मिल गया है।” धीर फिर लहवा अपनी दृष्टि आचार्य सिष्य की ओर मुना तथा उसके परमन्त निकट जा बोले—“आमुष्यान् तुम केवल बरन् मुष्टुट राजा बेटक के ही नहीं बरन् सारे बैधाती समाज के दसक पुत्र हो।” वह कह बह लहवा अरे धीर फिर कुछ लोचते हुए से बोले—“फिर बेबी आभाराती की सिष्या मे ही समा क्या होय किया है? आयुष्मानो क्या वह बैधाती की दसक पुत्री बनने के योग नहीं? योग ही नहीं बरिक्त धनिफारिली भी है।”

मल्लसंवाहक का कण्ठ अर आया धीर नभ सजल हो उठे।

संभर एव समस्त स्वर में यह बोला—“भार्ये यदि मैं आपके इस प्रश्न का उत्तर देता तो उसका स्पष्ट ही यह अर्थ होता कि आपको मुझे बंदी बनाने का अधिकार प्राप्त है। किन्तु बैद्यनाथी ने इस समय यह अधिकार केवल एक का ही है, और जिसे वह अधिकार प्राप्त है वह स्वयं मैं हूँ।”

आचार्य शिष्य के इस उत्तर से यह बातावरण सार्वभौमिक हो उठा। मलयुत में मण्डलवाहक ने किञ्चित् व्यंग्य के से कर्कश स्वर में कहा—“धीर तु फिर भी अपने अधिकार का उपयोग नहीं कर रहा।”

यह सुन आचार्य शिष्य के मुख पर स्पष्ट ही क्रोध का भाव झर आया। दृष्टि दृढ़ कर यह बोला—“यह बताना भार्ये का कार्य नहीं। यह तो मेरा दायित्व है और इस सम्बन्ध में कोई भी निर्णय करना केवल मेरा एकाधिकार है। यहाँ तक कि स्वयं गणायक भी उसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकते।

शैली एवं सामान्य जनों ने यह आचार्य शिष्य की केवल उद्दृष्टता समझी। अतः वे सभी उत्तर्जित हो उठे। आचार्य शिष्य की ओर तीव्री दृष्टि ॥ देखते हुए उन सभी ने तो अपने ऊपर उतर उठ लिए। अन्तिम पंक्ति में बड़े महाशेखरी मणिरत्न बोले—“मुखं बालक राजा शेटक चले ही हस्तक्षेप न कर सकें, परन्तु महास्वर सामान्य संवेदक तो कर ही सकते हैं। जागता नहीं वह मण्डलवाहक है—सर्व की सर्वोच्च नियामक संस्था मण्डलवाहक के अधिपत्यात्।”

महाशेखरी कीबाबत में धारो सभी कुछ धीरे कहा चाहते थे कि इती मध्य मण्डलवाहक ने इतित से उन्हें रोक दिया। उत्तरवात् मण्डलवाहक कुछ कहने को उद्यत ही हुए थे कि आचार्य शिष्य प्रत्युत्तर में बोले उठा—“महाशेखरी, वह अधिपत्यात् पर अर्थ नहीं है।”

‘तो कैसे?’ मण्डलवाहक ने तनिक धारण का सा भाव प्रकट करते हुए पूछा।

आचार्य शिष्य उत्तरना ॥ बोला—“भार्येवर, बैद्यनाथी में इन समय बाह्य भाग्य-मल के संकट को देखते हुए आपात स्थिति घोषित है और उसकी शोचला घासना-ध्वंस के नाते स्वयं राजा शेटक ने की है। प्रवेष्टी पुस्तक ने जनको यह अधिकार प्रदान किया है। और, मण्डलवाहक के नाते भार्ये का भी यह प्रमुख कर्तव्य है कि वह निष्ठापूर्वक आपात नियमों का पालन करें।’

‘धीर यदि न कहें तो?’ मण्डलवाहक ने आचार्य शिष्य की ओर तीव्री दृष्टि करते हुए धारो जलजता से पूछा। आचार्य शिष्य ने मत्त मस्तक हो विनीत स्वर में कहा—“भार्ये नियामक संस्था के प्रमुख होने के नाते धार ऐसा भी करेंगे इनमें मुझे संदेह है।”

आचार्य शिष्य के मुख से यह सुन मण्डलवाहक के मुख पर जैसे हर्ष का सा भाव झरत आया तथा मत्त शैली ॥ उठा। सोम्मान हाथ बढ़ा उन्होंने आचार्य शिष्य की नीठ बगवतते हुए कहा—“आचार्य शिष्य तुम्हारा यह संदेह उचित ही है।”

आचार्य शिष्य भी मन्मथ हो उठा। अन्तिमिक से वह नीचे झुक गया। मण्डलवाहक भी मन्मथ हो उठा। वह आचार्य शिष्य को अपने बल की ओर

बोचते हुए बोले—“श्री बेटक के दशाक पुत्र तुने मेरे ऊपर भी उनकार किया है उसे तो मैं धामरण नहीं भूल सकूँगा।” और यह कहते हुए उन्होंने ब्रह्मण्डदेव की ओर देखा। ब्रह्मण्डदेव का हृदय भी मान विभोर हो उठा। तैज सम्भ्रम हो गए। तथापि वह मन-ही-मन लज्जा का-सा अनुभव करता हुआ गत मस्तक हो गया तथा तत्परचाय परण्य स्वर्णोद्यत हो परचायाय के से बोधिल कण्ठ स्वर में बोला—“पितृव्य मे अपने अपत्य अपराध के लिए लमा बाहूँ हैं।”

गणसंबाहक के मेरों से स्नेह की बसबारा फूट निकली और कण्ठ स्वर बिन्दर सा गया। उसे किसी प्रकार संयत करने का प्रयास करते हुए बोले—“धामुष्मान ब्रह्मण्ड देव तुमने अन्ततः बंदासी के स्वर्णिम इतिहास को कर्मक से बचा ही लिया। मैं इसके लिए हृदय से आभारी हूँ। परन्तु यह समय अब इस तरह बिताने का नहीं। हमें धीमे ही अपने कर्तव्य का निर्धारण करना होगा। तुम यहीं खड़े रह जाओ सिध्द की सहायता करोगे और मुझे सुरक्षित ही धामुष्मान सिंह की सहायता के बंधन में प्रस्थान करना होगा।”

बृह गणसंबाहक के इस प्रस्ताव पर धामार्थ सिध्द तथा ब्रह्मण्डदेव दोनों ही कुछ कहने को उद्यत हुए। परन्तु उन्होंने ही मन की बात को सर्व प्रथम धरिय बाहक कवित्त कहने में सफल रहा। बोला—“ब्रह्मण्डदेव, आपने तो वाक्यबीजन ही बरिजसंभ सीमाय की रमा की है। यत अब आपको विधाय की आवश्यकता है। क्या आपको हम उरुओं पर विरवास नहीं?”

‘विरवास नहीं? यह किसने कहा कि विरवास नहीं। विरवास क्यों नहीं धामुष्मान परन्तु अभी तो तुम्हारे अंतने जाने के दिन हैं। अब घोष्या ही तो तुम्हारा बासी प्री ही समा करना धामुष्मती छाया से विवाह है। जानते हो इस माते तुम मेरे क्या हुए? मना गया कोई विनैकसीत पुरुष अपने सद्य बाभाता को बृह की वि भी पिका

गणसंबाहक का बासी प्रवाह सेवक सेविकाओं के मुख से सहासा ब्रह्मण्डदेव बय-बयभार के मध्य विमीन हो गया। और अन्वेष-बाहक कवित्त तो हर्षविरिक में कुछ रूप भी पुकार उठा—“महाराज।”

यह बस धामे कुछ नहीं कह सका।

परन्तु गणसंबाहक का कण्ठ स्वर पुनः संयत हो रहा। यह बोले—“मेरे उस दिन के अपराध को यदि धामुष्मती छाया और तुम दोनों ही केवल दोनों ही नहीं, बल्कि रात के लमेत साय बंदासी समाज समा कर सके तो मैं नमस्कार मुझे गण-सेवा का स्वोचित पुरस्कार मिल गया है। और फिर सहासा अपनी वृष्टि धामार्थ सिध्द की ओर घुमा तथा उसके धरयन्त निकट जा बोले—“धामुष्मान तुम केवल मण्य मुकुट राजा बेटक के ही नहीं बल्कि सारे बंदासी समाज के दशाक पुत्र ही।” यह कह बह सहासा स्वे और फिर कुछ सोचते हुए से बोले—“फिर देवी धामुष्मती की सिध्दिया मे ही मना क्या बाय किया है? धामुष्मानो क्या यह बंदासी की दशाक पुत्री बनने के योग्य नहीं? योग्य ही नहीं बरिज सिध्दियारणी भी है।”

गणसंबाहक का कण्ठ भर धामा और तैज सम्भ्रम हो उठे।

वह धाई कष्ट स्वर में पुनः बोले— 'धाम्प्यान मेरे लिए अब यह सम्भव नहीं कि मैं उसके पास जाऊँ, समय जो नहीं रह गया। पर उससे क्या? पुनःब तुम उससे इतना तो कह ही सकते हो जहाँ इतना तो कह ही बोले कि सामन्त भ्रमदेव नहीं-नहीं विद्विप्त भ्रमदेव नहीं धार्धार्य दिव्य सामन्त भ्रमदेव को ही उस सामन्त को, जिसे अपना लोया पूरा मान बनायास बापस मिल गया है लगा कर लेना। उससे कहना पुत्री धाम्प्यती बैद्यमी मैं बात बर्ब की मुक्ति की तुम गौरवपदी प्रतीक ही। क्या बात धीर क्या स्वामी भागव-मानव के बीच मैं यह एक धर्म ही की तो बीवार है धीर वह बीवार भला क्या किसी बणराज्य में उस बण राज्य में वही सभी समान हों क्या किसी प्रकार लोभा दे सकती है।"

अपने कर्षधार नलसंवाहक के मुख से यह सुन सभी सामन्त एवं यष्टी जन धीरके से उनकी धीर देखते रह गए। सोचते रहे कि वह धाम्प्यती ही विद्विप्त हो चले हैं परन्तु जैसे सभी जनमें प्रतीक्षा का रीय लेप था।

किन्तु, इसी समय नलसंवाहक ने सहसा अपना हाथ बढ़ा धार्धार्य दिव्य के हाथ में मटकता सङ्ग छीन लिया। धार्धार्य दिव्य केवल देखता रह गया। उठे लगा, जैसे उसके पद नीचे की भूमि छिद्यक गई हो। यष्टी एवं सामन्त जनों के मुखों पर हर्ष का प्रयाद भाव छा उठने के उत्सवित कष्ट स्वर में उनकी बर बरकार कर उठे धीर नल संवाहक एक ओर का ठहाका है जिस पड़े इससे रहे इससे हूँ ही उनकी हाथ भी उठ रहा जाने भी बढ़ लिया। उनकी उस समय की मुखाकृति को देख सभी मृत्यु जन भयभीत हो उठे। परन्तु अपने अणु ही के उत्सवित हुए से इत संकल्प हो उठे। कविज सादेस चिस्ता छठा— "वह विरवासवात है।"

अब सामन्त कार्तिकेय कहते हुए जैसे आह्वान कर उठे— "अरे, देखते क्या हूँ पहले इसी मातंग पुत्र को पकड़ लो।"

नलसंवाहक धीर भी ओर का ठहाका है जिस पड़े। किन्तु अपने हाथ ही उनकी मुख मुहा पतीर पत्नीर हो उठी। अपना सङ्ग सामन्त कार्तिकेय की ओर करी हुए वह बोले— 'धाम्प्यान तुम मूल कर रहे हो।'

धीर यह कह वह समुच्च सङ्गे अरव की ओर सादेस दीड़ मारों अपने की उठा लते हुए अपनी पीठ पर जा बैठे। फिर सभी की ओर दृष्टि कर वह बोले— 'धाम्प्यानो, केवल तुम ही नहीं तुम्हारे साथ मैं भी मूल कर रहा था। अरे धो मुखों एकठा तो बैद्यमी का मुहात है नलसंवाहक अपने का सङ्ग प्रासाद है, एक पैदा प्रासाद कि जिसमें कोई राजा नहीं धीर सभी राजा है स्वामी धीर मृत्यु के धीर को वह करवापि सङ्ग नहीं कर सकता।' धीर फिर, सङ्गोमि अरव को एक मया ही। अरव इतिन पाठे ही दीड़ उठा। उनके अरव की उन प्रकार सादेस दीड़ने देन सभी एक स्वर में उरव स्वर में जितने भी ओर से वे कह सकते थे पुकार उठे— "सिद्धि धर्म?"

किन्तु बयोवृद्ध नलसंवाहक ने पीछे मुड़ कर भी नहीं देखा। नगरद्वार इस समय तक लुप्त ही पुरा था उसे फीट उनका अरव पूर्व से भी धार्धार्य हीय मति से संवा-  
—  
तट की ओर जाने सभी मार्ग पर मुड़ लिया। वहाँ अब कोई नहीं था, यहाँ तक कि  
—  
र भी नहीं। हूँ उनके मुख पर एक भाव अरवय था धीर उस भाव के

साथ धरम्य उत्साह थी ।

गणसंवाहक के प्रासाद से निकल आयाय शिष्य जब सामन्तपुत्र धरम्यदेव तथा सन्देशवाहक कपिल के साथ मुख्य राजमार्ग पर आया तो मगर द्वार की ओर से हुल मल्लि ने बौद्धों का रहे हो धरम्यारोही सहसा उसके पास पहुँच ठहर गए । उनके मुख के भाव को देख कुछ ऐसा प्रतीत हुआ जैसे वे कोई मन्देस लेकर आए हैं तथा उनके निवेदन के लिए धरम्यधिका धामुर हैं । धार्याय शिष्य उनकी इन भाव-मुद्रा को देख कुछ विस्मित हो उठा परन्तु दूसरे ही क्षण संवाद विदीप की मुन उतका मल्ल प्रज्ञा से क्रमन की भाँति खिल गया । सारथ्य बोला—“मया कहा वेरिपु धरम नहीं देष्ठीपुत्र कपिल के सार्य के चरपंठा धरम है ।”

धार्याय शिष्य हृषातिरेक में खोर से पुकार उठा—“देवी शिष्या ओ कल्याण मयी देवी शिष्या सुम्हारी उपासना सकन हो गई ।

सदरवात् धार्याय शिष्य ने अपने धरम की बरुपा डीली कर उसे पूरे वेग से छोड़ दिया । धरम ने भी जैसे देवी शिष्या के पास हो जाकर लीम लिया । परन्तु न जाने क्यों देवी शिष्या को देख धार्याय शिष्य के सम्मुख सहसा पूर्व का कोई भी तो एक चित्र बनर माना । उसकी मुख मुद्रा सिम्न हो उठी धीर हृष्य जैसे घातनाह कर उठा । कर्ण बाहु ही उठने सहायता के लिए माचना के से ईश्वर में कहा—“महाप्रभो धार्याय मेरी रखा करो ।” उठना कष्ट पुष्क हो गया धीर मुख पर भारी पराजय का सा भाव छा उठा ।

सभी लोग विस्मित हुए से उसकी ओर देखते रहे गए ।

परन्तु देवी शिष्या धरिषमित ही रही । उठने नेत्र पलक उठा तनिक कर देखा । उसकी बुद्धि धार्याय शिष्य के मुख पर स्थिर हो गई । धार्याय शिष्य के घोड़ों पर फँसी घुफ्फटा को देख उठका हृष्य जैसे धरम ही उठा तथा मस्तक पर्व से उन्नत हो रहा कपोल रक्षित हो गए तथा फिर लज्जा से नेत्र पलक स्वतः नीचे गिर गए ।

धार्याय शिष्य हाँह देख कुछ जो-न्य गया । अपने को धार्यस्त हुआ अनुभव कर वह लक्ष्मी की छाँस से उठा धीर फिर मुद्रुन कष्ट स्वर में बोला—“देवी शिष्या धारकी उपासना सकन हुई । उसके लिए बघाई है ।”

देवी शिष्या ने उत्तर में अपने नेत्र तनिक ऊपर उठा कहा—“परन्तु धार्य धारके प्रोलाहक के धरम में तो वह उपासना धरुर्ष ही रहती । अविष्य में भी मैं धारका सहारा मेनी रहूँ, केवल यही एक कामना है ।”

धरिषिया सिम्न मन से यह सब कुछ देख रही थी । जो कुछ वह देख रही थी उससे जैसे वह सब कुछ देखा नहीं जा रहा था परन्तु विषयता से वह धरनी श्रुति भी नहीं हटा पा रही थी । धार्याय शिष्य को उसकी यह सिम्न धरस्था जैसे धरहा हा उठी । धरिष्य अपने धाम ही उसके धम में ही आया—“मुयारी धरिषिया मे लमा ही योग मूँ कष्ट धारधामन भी है वृँ बचनबड भी हो रहूँ । परन्तु वह जो कुछ मोच रहा था धर पर संधम भी नहीं हो पा रहा था । भाषाधरम में बोला—“देवी धरिषिया ।”

धरिष्य धरिषिया मोन ही बनी रही । ही ऊपर उठे नेत्र-धमक धरोच मुँह धरम्य कर उठे । धार्याय शिष्य ने इन धार मुद्रुन कष्ट स्वर में कहा—

मंत्रिके ।”

पर, मंत्रिका इस बार भी सोच ही रही थी मैंने प्रबन्ध रचाने ही उठे ।

प्राचार्य सिध्द बसकी धीर देखता रह गया । अन्त में जैसे संशय ही उसकी बाहुओं को पकड़ बीमे से बोला—“देवी मंत्रिका देवी सिध्दा मेरी प्राणाय देवी है उसकी कृपा और के बिना मेरा जीवन सुना है । क्यों मिये क्या तुम अपने प्राणाय की प्राणाय की ममकार नहीं कर सकतीं ?”

मंत्रिका के मन में हुआ कह दे—“नहीं—प्राचार्य सिध्द नहीं—ममा यह कैसे सम्भव है ? वह तो मेरे अधिकार का हस्तन है ।”

फिर, जब यही बात वह प्रकट में कहने का उद्यत हुई तो उसके घोष्ठ की ओर फँस रहे । तैनों ने निष्पत्तक हो प्राचार्य सिध्द की धीर देखा भी धीर फिर, उसका मस्तक बसात देवी सिध्दा के सम्मुख बत हो रहा ।

सहसा देवी सिध्दा का उठा हाथ मंत्रिका के सिर पर था टिका । उसके घोष्ठ भी सडफड़ा नष्ट । एक स्वाँस बाहर सोड वह जैसे उडस्य माव से संपत कण्ड स्वर में बोली—“देवी तुम्हारा अधिकार सुरक्षित रहे साम्प्रत्य जीवन सुखी रहे ऐसी मंगल कामना मैं करती रहे मसा इससे बडकर मेरा धीर क्या सीमाय होगा ?”

धीर इसी मध्य छाया मगन अनुक्रम से घनेक लयचोपों से पूँज उड । इन लय चोपों के मध्य सचनक धाकड हस्त-विह्वलन भायी जन समूह के साव मुखय राजपव पर धाने बडे जा रहे थे । वे बडे धावय जा रहे थे परन्तु उनका मन उन्हें जैसे पीछे की ओर खींच रहा था । अन्ततः विह्वलन बीमे से बोला—“बन्धुवर, महारत्ना बुड न इस नवरी का बहून कुछ उडार किया है ताँ फिर क्या उनके संभ में हमारा भी उडार नहीं हो सकता ?”

वास्तव में विह्वलन ने लयचोपों की इन तुमुल ध्वनि के मध्य भी फिनी के धाव कण्ड स्वर को सुन लिया था । थोड़ी भित्तविकर इन समय नगर की धीर लीटती सचन भीड़ के मध्य सर्वथा साम्य गति से नगर द्वार की धीर बाता हुआ धाने धाव कण्ड स्वर में ‘बुड धारण गच्छामि बर्ग धारण गच्छामि संभ धारण गच्छामि’ का उच्चारण करता हुआ धाये बड रहा था ।

उत्साहोच्छ्वास के इन निरापव वातावरण को देख उसके बी में एक बारीकी धाया भी था कि वह पुनः अपने मध्य प्रासाव की धीर लीट के परन्तु फिर वह सावने लमा—“जिसके बन्धनो से मुक्त हो मैं एक बार निकल ही लुका तो फिर सब भना जनमें बापव नया भीटता ।

इसी मध्य साम्प्रत कारिकेय धारण धीर धीरमड के धारण भी अनुक्रम से उन भीड़ की फडेते नगर द्वार को पार कर उठी पव पर सावय बीड़ लिए, जिकर केवल कुछ समय पूव ही बपोबुड मल्लसंवाहक साम्प्रत मंत्रिकेय का धारण बीड़ता हुआ गया था ।

तन्वेदा बाहक कथित इन समय उत्पत्तित था धीर उनसे भी अधिक उत्समित उसकी छाया थी । परन्तु न आन नया ध्यान में धाने ही छाया के मुख पर सहना भायी धीरारव छा गया धीर वह हर्षाती हो गई । उनका अपने मन पर भी नियन्त्रण नहीं रह सका । उसके घोष्ठ फडफड़ा उठे । कनिन के बस पर धारणा सिर टिका वह

रो उठी। अन्त में किसी प्रकार अपने को सम्हाल वह सप्रयास बोली— 'मेरे माताम्य क्या स्वामी सम्भूत गए ?'

छाया के मन की इस दुविधा को देख निकट ही में लडा सज्जनदेव उत्तरता से बोस उठा— 'बहिष्प छाया, स्वामी नहीं पितृवर कहो हीं यह गए।'

छाया कुछ और कहा चाहती थी कि इसी मध्य कथित उस अपने बस से और संदेहता उसकी पीठ पर हाथ फेर बोस उठा— 'देवी निराश न हो याया ही जीवम है और निराशा मृत्यु हम सभी जी सके हसीनिए तो पितृवर मंगलदट की मोर गए हैं। और देखो, जब वह वहाँ से लौटेंगे तो सत्कारभेल से हम सभी के लिए दुवासपूर्व करती फल भी लाएँगे।







और इन सभी बातों को धर्म-धर्म कई बच बीत गए ।

बल-महालयरी का साथ कार्य-व्यापार सर्वथा अबाध गति से प्रवाहित होता हुआ जैसे अरमोत्कर्ष की विद्या में अक्षरर वा । और अरानीरा के साथ प्रवाह की धर-धर कम-कम पूर्ण ध्वनि को सुनती हुई यूं इस समय भी उसके ठट से सटी एक बस्ती लगी थी । किन्तु अब उसका स्वरूप सर्वथा भिन्न था । वहाँ कभी धीरे-धीरे धोंपड़ों में निरीह बास रहा करते थे । परन्तु अब ? अब वहाँ धोंपड़ों के स्थान पर भव्य घट्टानिकार्ण बीस रही थीं जो उदात्त भाव से अरानीरा के अस्त प्रवाह को निहारती-सी प्रतीत होतीं । यूं दास वहाँ अब भी विद्यमान थे परन्तु उनका स्वरूप भी स्पष्ट हों ब्रह्म चुका था । भाव तो अरानीरा के स्वच्छन्द प्रवाह पर उनका स्वयं आभ्यन्तर वैधानिकों के समान ही अतिकार था और उसके प्रवाह पर विभिन्न पथ्य पदार्थों से सदी जनकी विद्याल नौकार्ण उसी प्रकार धाठी-धाठी दिखाई देतीं जैसे कभी मङ्गासेष्ठी मणिरत्न दासवा सेष्ठी निरतिबिहक की व्यापार-व्यस्त नौकार्ण बीसा करती थी । सेष्ठीपुत्र कल्पिन के साथों की भाँति अब उनके मार्ग भी विभिन्न दिशाओं में अविद्याल अस्त रहते । वे सभी व्यापार में सब नए थे जो ऐसी बात नहीं । कुछ ने यदि ध्वनि को अपने अक्षय के रूप में अपनाया था तो कुछ ने अन्य व्यवसायों को । इस प्रकार इस बस्ती का अब जो स्वरूप बन गया था वह मुख्य वैधानिकी की बाह्यतम् प्राचीर से पर्याप्त दूर हो कर भी अक्षय न केवल अविद्याल भाग अरन् औरक इन मुसरित हो उठा था । उसके अन्तर में और बाहर—वहाँ धोर—उत्साह का संचार एवं सचय बतिविधियों का बीना बीना संवीत मुभायमान था ।

और एक दिन इसी बस्ती से कुछ दूर एक आभर्कूज में से शिथिल पर फूटती और की प्रथम किरण के साथ सह्या किरी कोटिलकष्ठी का अरय स्वर भूँक उठा । धाँ-धाँते नागरिकों में अब जैसे गुना ठी वे भाव विभीर हो उठे । कीनूहल से उन सभी के पद जैसे स्वतः उस दिशा में लहू लिए । उन्हींने बेला एक साक्षी अपने अन्तर के भावों में आकृष्ट हुईं । तन-भन की सब मुब-मुब औए कोई भी ता भक्ति नीत था रही है । एकत्र जन धानवीष्वात की सग्यता से जैसे गुनने में अस्त हो उठे ।

धर्म-धर्म आपतुकों की भीड़ भी तयन होती जली ।

अंततः उन कीकिण कष्ठी का गीत समाप्त हुआ । किन्तु समाप्ति के अरबात् भी वह पर्याप्त समय तक उदात्त के साथ आतावरण में भावों भूँकता-सा रहा । उन स्थित जन सर्वथा मोन रह धानिभूत बुद्धि से जनकी धोर बैलने रहे और प्रतीता करते रहे कि वह संभवन अब कोई अतरा गीत था । परन्तु उनके उत्साह कोई अन्य नीत

नहीं छेड़ा और न ही भोतायाण उससे कोई धमुरोध कर सके। मता किसी सारी साम्नी बैसाय-यन मामिनी से ऐसा धमुरोध किमा भी कैसे जाता ?

घान्त में जब वैसी साम्नी के घाह्णाव मुविण गेन खुने तो उसने उबटती दृष्टि से अपने चारों ओर लड़े बन समुदाय की ओर देखा। और फिर अपनी मुट्टी को कान हकैसी पर रखी किसी बस्तु विधेय की ओर निहारा। उसे निहार उसकी मुँह घामा पूर्व से भी धमिक दीप्त हो उठी।

और इस सारी धमिक सभी एकज-बन विमुग्ध भाव से उसकी ओर एकटक देखते रहे जैसे वे उसे पहचानने का प्रयास कर रहे थे।

सहसा उस साम्नी का सरस कण्ठ स्वर फिर उपाठ के उस घान्त बाठावरण में पूँज उठा।

उपर मगर द्वार को धमुरोध से खाँद घमी-घमी कविपय बनुचौटी घनबायोही बातर प्राए थे। महावन की ओर हुन बलि से बीड़ते जा रहे इन घाठेटको ने कानों में जब यह ध्वनि सुनी तो उनके हावों की डीली बस्याएँ जैसे बमाएँ पीछे की ओर लिख गयीं। उनके घदन भी वहाँ के तहाँ बड़ हो गये। घायेही घायेटक मंत्रमुग्ध हुए से उस सरस मीठ को सुनने में व्यस्त हो उठे। कुछ सखों तक तो वे विमुग्ध दृष्टि से एक दूसरे की ओर ही देखते रहे। तपहवाएँ उस्ताहावेम में एक के मुँह से मानों हठाएँ निकल गया—“बगुबर धमक यह तो निरधम ही वैसी घाम्नापानी का कण्ठ-स्वर प्रतीत होगा है।”

जैसा कि बहुधा देखने में आया है अपने ही मन की कोई बात किसी अन्य के मुख से कही सुन कोई बूझा धायधिक उत्सहित हो उठता पड़ता है वैसी ही घपा घम्य घनबायोहियों को इस समय भी। मंत्रिका जस्ताह के धावेम में बोल उठी—“बगुबर घघाएँ और बस यही बात मैं भी कहने वाली थी।” साथ ही चारस्मिता भी सोस्वास कह उठी—“विश्वास नहीं करोगे सामन्त पुन और यही बात—न जाने कैसे—यै कहने से शुरू गई।”

उत्तरवाएँ उन सभी के घदन लवेम उसी ओर बीड़ लिए। समूचा घान्तर घरनों की पद चारों से पूँज उठा। किन्तु उठते साम्नी की तम्ययता से जैसे कोई ध्यब जान चरस्मित नहीं हुआ। वैसी घाम्नापानी के मीठ का क्या धायम वा घाम्नाह्वन में शक्ति होते ही उन सभी को जैसे यह स्पष्ट हो गया। जब वे घरनों की लूँज के निरे पर ही छ ड पँदल उन ओर बसे तो मीठ का धायम और भी धमिक स्पष्ट होना गया। वैसी घाम्नापानी भाव रत में धाकण्ड बुनी कण्ड मापुई से कह रही थी—“वभावत यही तो वा बहु स्थान ? यहीं तो कभी तुम्हारे विधय कन के दर्शन कर मैं बैसाय की धार धनिमुघ हर्द की ओर पाया वा बीबन का घमुर प्रकाध। धास्ता, मभी बहता है कि पद तुम इन लोक में नहीं रहे और महा निरपिण को प्राप्त हुए हो। वा घाम्नाह्वनमे क्या ? तुम्हारी धमि तो मेरे अमनों में अभी भी बची हुई है। तुम मगर हो तुम घनर हो पण।” यह कहते हुए वैसी घाम्नापानी का बायाँ हाथ सहसा ऊपर उठ गया। उसमें एक छोटी सी बुकाम थी। फिर घाने बाएँ हाथ की मुट्टी को घोर उनम रगे त्रिधी चराय विधेय को वैसा बहु पुनरुद्वि कण्ड स्वर में पूँज बोल उठी—“महामनु

तुम्हारा ॥ धरणीय मेरी नहीं धरिणु समुची बैद्यनाथ की केवल बैद्यनाथ की ही नहीं धरणीय, भरतू वह तो सारे विश्व की पुनीत धरणीय है। पर धास्ता जन साधारण की स्मृति धरि धर्म-नातिक है वे कहीं तुम्हें मूल न जाएं इसी से वे उसे यहीं प्रति-ष्ठापित कर अपने स्वप्नों का एक भव्य स्तूप बना देंगी।

उपस्थित जन-समुदाय देवी धामपानी के इस निवचन को सुन हर्षित हो उठ।

धामातिरेक में उनके कण्ठों से निकला लघावत् का धीर छिर देवी धामपानी का कमजोरकार सारे प्रान्तर में गूँब गया। धीर इसी बीच देवी धामपानी के हाथ की कुवाल ने एक स्नान पर धावात किया। मिट्टी के कणु भागों विहृतते से इधर-उधर घुर तक छिटक गये। तब देवी धामपानी को गया जैसे स्वर्ग धास्ता की दिव्य देह धमनिनत धालोक छिरणो के साथ माता बसुवरा के बस से उधर नहीं प्रतेष्यवित होने को धा प्रकट हुई है। हाथ की कुवाल छोड़ वह कुछ लखों तक तो ध्वानस्व हुई मैनों के सम्मुख प्रस्तुत धाँकी को देखती रही। तत्पश्चात् कर-बद्ध हो नत मस्तक से उपरिष्ठा नमस्कार क्यी हुई बोली—“महाप्रभु !”

छिर वह धामे कुछ न बोल सकी। धामातिरेक से लड़का कण्ठ भर गया। मैनों से धामातिरेक की कमजोर पूँ निकली। धीर छिर मिट्टी के छिटके कणुओं को इस प्रकार धमेटने लगी जैसे कोई धपनी टूटी वाला के मुक्ताधों को तत्परता से बीनने लगती है।

बैद्यनाथों ने न जाने कितने दिनों दिनों क्या क्यों धार देवी धामपानी को देखा था। वह धमी भी जैसे उनके मानस पटल पर धिरावभाग की धीर हृदय में धास्पीयता का सहस्र भाव धधारित था। उसे इस भाव धिमोर रसा में देख के जी धाय जैसे हो रहे।

धंतत, देवी धामपानी ने अपने कण्ठ की धंघत कर कहा—“धीम्य धामरिको धीर धीम्याधो यह मेरे हाथ में दुर्लभ धर्षन लघावत् के धरणीय रूप में धनका एक धाँत है। मैरी धरिनाया है कि उस महाभाय के इस धरणीय की एक स्वर्ण मंजूया में रख यहीं इसी स्नान पर प्रतिष्ठापित कर एक भव्य स्तूप का निर्माण कराया जाय। धीर, इस स्तूप का निर्माण केवल उन्हीं के हाथों हो जो धास्ता के धिदामर्षी में यद्धा रखते हों। वे स्वयं ही धामे वह इस महान् धधुष्ठाण में धोग धान करे। इससे बैद्यनाथो का धाम ही होया धानि नहीं।”

वह सुन धमी नागरिक उल्लसित हो एक स्वर में कह उठे—“धेमी यह तो लघमुच ॥ धमी बैद्यनाथों का धीमाय है।”

इसी समय सुरला प्रधान धाधामे धिष्य उरसाह ॥ धधिम में धीरु को धार कर उनके लम्बुत था पहुँका। नत मस्तक हो बोला—“देवी धाय स्वर्ण मंजूया के लिए धामा करे। उसका धामन कर मैं धपने धारको धाहण हुवा धधुमन कर ना।”

इतने धर्ष धीन जाने के धरचात् भी देवी धामपानी ने जैसे धिना कृपी कठि नाई के लसे पदुधान लिया। बोली—“धायुष्ठाण बैद्यनाथों में सब कोई धरुधत तो है न ?”

धामाधर्म धिष्य ने पुनः धपना बस्यक नत कर लधिमय रहा—“हाँ देवी कमा-

बीठिका की धर्मशास्त्री देवी विद्या समेत सभी सम्पत्त है। देवी राजा घटक तो सब नहीं रहे। और सब स्थानापन्न गणराज्यस्य सम्पत्ति देवी के शासन में भी सभी नागरिक पूर्ववत् सुख शान्ति का अनुभव कर रहे हैं। फिर विनिश्चय अमृत्यु का प्रयत्न करके देवी का शासन का क्या कहना ? सर्वत्र उनकी श्लाघा-श्रवणों की केवल प्रशंसा ही प्रशंसा है।”

देवी धर्मशास्त्री धर्मिय नाम को सुनते सहम-सी गई। तथापि प्रकट में उनकी कोई चर्चा न कर पूछने लगी—“और क्यों धर्मशास्त्री धर्म प्रशंसा तो स्वस्थ है न ?”

धर्मिय ने इस प्रश्न के उत्तर में कुछ देर तक तो मौन रखा फिर कुछ स्पष्ट बोलते बोली—“देवी उन्हें तो और पति को प्राप्त हुए सब कई मय भीत चुके। कपार कोलिक की बाहिनियों का सामना करते हुए देवी उन्होंने अपने जीवन का उत्कर्ष कर दिया। देवी वह धर्म ही मय है।”

तब देवी धर्मशास्त्री बोली—“बैद्यनाथी तु सबकुछ धर्म है।”

और फिर सब धर्मशास्त्री की सभ्यता में कुछ समय तक बैठे विद्या की पावन स्मृति स्वरूप मौन छाया रहा।

अन्ततः जब मौन को प्रण किया देवी धर्मशास्त्री ने वह कहने लगी—“सौम्य बनो यही तो इन जगत का व्यापार है, कोई धाता है, कोई बाता है। वह मरकर देह बलि बगैरी है तो उसकी मृत्यु भी अवश्य होती। केवल धर्मात्मा नहीं मरता वह धर्म है।” और फिर अपने हाथ में कुशल न वह उसी स्थान को धारण में व्यस्त हो गई। वह इस समय तक बड़ा ही चुकी थी। तथापि उनका मुँह निश्चय नहीं हुआ था। उसके मन में धर्म के धर्मोक्त से प्रेरित थे। कुशल बनाने-बनाते अपने सभी उपस्थित बनो पर एक बार को उचलती ही वृष्टि जाती। उनकी इन वृष्टि को देख सभी को कुछ ऐसा लगा जैसे उनमें कोई प्रश्न स्थिर हो गया हो। धर्मशास्त्री विद्या तो जैसे स्पष्ट ही देवी के मन में उड़ी विज्ञानों की समझ गया। वह स्पष्ट ही वह समझ गया कि विनिश्चय अमृत्यु का प्रयत्न करके देवी सम्पत्ति से देवी सम्पत्ति नहीं है। परन्तु धर्म ही वह उद्बर्णकरण रत होने के कारण धर्मशास्त्री मंत्रमय प्रकट करने में अनमर्यता का भी अनुभव कर रही है।

वह कुछ क्षणों तक ध्यानस्थ हुआ था कहा वह देवी धर्मशास्त्री की और देखता रहा। फिर बोली—“जिसे देवी की धारणा हो तो स्वयं मंत्रुषा की लक्षण कुंज अरवणों की भाँव। और देवी धर्मशास्त्री की धारणा है कि धर्म का विनाश्याय समारोह ही।”

किन्तु देवी धर्मशास्त्री के तटस्थ मन पर संभवतः धर्म भी अन्ततः अपनी बात टिपी हुई जो धर्म सबकुछ धर्मिय था। धर्मशास्त्री धर्मों की गति कुछ विविध हो गई। फिर तबना उनका हाथ की अपनी कटान भी बंद रही। धर्म को मन रमे ही वह बोली—“धर्मशास्त्री तत्प्राप्त की वृष्टि में धर्मशास्त्री का धर्म एवमा में था। वह धर्म ही धर्मशास्त्री धर्म है न ?”

धर्मशास्त्री विद्या ने तब अन्ततः ही धर्मशास्त्री कहा—“ही देवी धर्मशास्त्री की धर्म

से वह मुरझित ही समझे ।”

देवी भ्राजपानी ने फिर अपनी बोझिल दृष्टि आचार्य सिष्य के मुख पर केन्द्रित कर कहा—“धामुष्मान इस आत्म-विश्वास को क्या तुम क्या कहोगे ?”

आचार्य सिष्य कुछ धोचता हुआ सा बोला—‘देवी सम्भवतः वह प्रमाद ही था एक पुनर्जन्तता ही हुई । तथापि अभी इसे चिन्ता का विषय नहीं कहा जा सकता ।’

महं सुनकर भी देवी भ्राजपानी जैसे आश्चर्य मग्नी हो सकी । परन्तु प्रकट में वह बोली—“धामुष्मान् स्तूप का चिन्तान्यास आज ही धीरे धीरे होना है । उसका निर्माण कार्य मैं अपने देवी से देखा चाहती हूँ । यद्यपि वह साहसिक भी बने तो कोई चिन्ता नहीं सबसे मुझे धृति प्रसन्नता ही होगी ।”

आचार्य सिष्य ने उत्तर में कहा—“देवी वह ही जाएँगा । आप इस धीरे से पूर्णतः आश्रय रहें । देवी जब तो आप स्वर्ण मंजूपा के लिए कोई धारण करें तो उसकी व्यवस्था की जाए ।”

देवी भ्राजपानी ने एक सोच कहा—‘यह विषय तो धामुष्मान में तुम ही पर छोड़ देती हूँ । जो भी तुम्हारे निकटतम हो वेच तात्पर्य है धामुष्मान कि जो तुम्हारे निकट सर्वाधिक प्रिय हो मुझे उसी की मंजूपा चाहिए ।’

महं सुन आचार्य सिष्य मागों किसी बुद्धिवा में पड़ गया । उसे समा जैसे देवी भ्राजपानी ने यह स्वर्ण मंजूपा नहीं मानी बल्कि उसकी कोई कठिन परीक्षा लेनी चाहिए है । सभी की दृष्टि इस समय आचार्य सिष्य के मुख पर केन्द्रित हो रही । मंत्रिका चाक-स्मिता तथा कामल धरणी देव सभी जलमुक्ता से उसकी धीरे देखते रहे कि देखो वह कौन सीमायवाली है । कुछ सोच आचार्य सिष्य बोला—‘पुरजा प्रधान के नाते देवी देवी दृष्टि में सभी समान रूप से प्रिय है । धीरे पत्नी रूप में देवी मंत्रिका को पाकर मैं अपने को भय्य हुआ समझता हूँ । धीरे, देवी रोहिणी पर क्या कौन गर्व नहीं करेगा ? तथापि देवी बैजानी में देवी सिष्या का स्थान विशिष्ट है । देवी कथा-व्यवहारों रूप में उन्हें सभी का तो स्नेह धीरे सम्मान समान रूप से प्राप्त है ।”

यह सुन सभी हर्षित हो उठे । यहाँ तक कि मंत्रिका भी । पता नहीं वह आज इस क्षण क्यों अपने स्वाभाविक विरोध का अनुमन न कर सकी । देवी भ्राजपानी ने भी मौन रह अनुमोदन में केवल हृदय भाव प्रकट कर दिया ।

आचार्य सिष्य अब बड़ी जड़ नहीं रहे सका । उगाह जावन में सभी को सम्बोधित कर वह बोला—‘सीमायवनी में देवी सिष्या से स्वर्ण मंजूपा लेकर अभी उन स्थित होता हूँ, तब तक ध्यान धारण व्यवस्था करें ।’

धीरे धीरे वह उत्तरदाता से प्रकट की ओर जैसे झोंक-सा गया । उसका आसक्त होते ही प्रकट भी कामु वैश्व न नगर की ओर झोंक उठा । किन्तु मुख द्वार पर अनुस्थित एक दृश्य विरोध को वैश्व उनके हाव की बन्ना जैसे बमान् पीछे की ओर ।

उपर, इन समय नगर के मुख्य द्वार पर नागरिकों की विधान २ ।  
 धमाय्य बर्षवार को जैसे परे लगी थी । वे सभी वहीं क्यों लगे थे  
 -दूर में कुछ भी समझने न प्रथमयं रहा । पर फिर भी न जाने क्यों  
 । भ्राजपानी का वह शरीर प्रसरण लगीव हो उठा जो केवल

बसने दिया था। वह अपने से कुछ उठा—'नया यह हैवी धातुपात्री का संकल्प कोई स्पष्ट संकेत था? वह, जैसे मैं ही सोचने लगा—'तो क्या राजपूत में प्रजासत्तापन का प्रथम बयोद्ध महामाल्य बर्णकार पर भरो राखना में प्रहार करना केवल किसी प्रश्न की मूर्च्छा मात्र थी? और उस समा में धार्मिक बर्णकार द्वारा बैसासिको का पल लिया जाता क्या संभव कोई नीति की बात था? यह सब कुछ वास्तव में क्या था क्या न था सोचते-सोचते उसका धरम भीड़ के सर्वथा घमिष्ठ पक्ष तक गया। धार्मिक विषय के नहीं था पक्षधर पर धर्मोपस्थित नागरिकों ने कुछ ऐसा भाव दिखाया जैसे वे उस समय सही की प्रतीक्षा में पड़ थे। और, धार्मिक बर्णकार ने भी जैसे देखा जैसे संतोष की साँस ली। कुछ समय पूर्व उनके मुख पर जो चिंता का सा भाव छाया हुआ था वह सहासा मुप्त हो गया। हाँ यहाँ में जैसे सामने एक प्रश्न था धरम उभर आया।

सहसा धार्मिक विषय की दृष्टि भीड़ के मध्य पड़ी चार घण्टियों पर जा पड़ी। उनमें से प्रत्येक घण्टा पर एक-एक मुक्क का रक्त रमित छत्र पड़ा था। यह धरमोपस्थित दृश्य देखा धार्मिक विषय चौंक उठा। उसकी मुल धामा भी सहासा मलिन हो गई।

नगर में सखि सुरक्षा प्रदान का पद धरम यह सहासा पक्ष पर वह विनिरचय धरमालय के ही प्रतीक था। सत धार्मिक विषय ने सत मस्तक हो उनका धरमिवादन किया। फिर यहाँ की धीर तनिक दृष्टि का मध्य कण्ठ स्वर में कुछ उठा—“धार्मिक यह क्या हुआ?”

सुरक्षा प्रदान का यह प्रश्न जैसे विनिरचय धरमालय को सहासा प्रतीक हुआ। यह स्पष्ट ही अभिहित हो उठा। उचोचना से उनकी भू-नेत्रियाँ तन गईं। धरमिकार के दृढ़ स्वर में यह सावध बोले—“यह प्रश्न सुरक्षा प्रदान के मुल से तो सोना नहीं देता। स्वयं सिद्ध धरमालय भी विनिरचय धरमालय से यह प्रश्न नहीं कर सकते। विनिरचय धरमालय के नाते में स्वयं तुमसे यह पूछना चाहता हूँ कि सुरक्षा प्रदान की क्या मही मगर धरमालय है? एक पक्ष में चार चार मुक्कों की हत्या हो जाए और सुरक्षा प्रदान को हटाने किन बड़े तक भी यह विहित न ही यदि यह धरमालय का प्रदान नहीं तो मसा और क्या है?”

स्वयं मरणाभ्यस रासा चेतक के दस्तक पुन एवं सुप्रतिष्ठित सुरक्षा प्रदान को इन प्रकार सामैरिक कप से प्रताड़ित करणा कोई कम साहस की बात नहीं थी। सभी उपस्थित धरम जानते थे कि इन हत्याओं में धार्मिक विषय का कोई प्रत्यक्ष बोध नहीं और यदि है तो केवल इतना ही कि उनके कर्म बाल में यह सब कुछ हुआ है। परन्तु उनकी इस प्रकार प्रताड़ित किया जाता किसी की भी जैसे दहिकर नहीं लवा। पर धार्मिक विषय ने जैसे यह सब कुछ मुला ही नहीं। उनमें मेम मात्र जो भी तो धरमने की धरमालय हुआ धरमालय नहीं किया। हाँ एक बार दृष्टि करर उठा विनिरचय धरमालय की धीर धरमालय होगा। उनकी दृष्टि में इस समय धरमालय विनिरचय धरमालय रहा था धरमालय विनिरचय के साथ थोड़ा-थोड़ा धरमालय का धरम भी। यह विहित धरम के परवाह धरमने सामैरिक सभे कण्ठ स्वर में बोला—“धार्मिक धरमालय रहें हत्या करने वालों की धरमालय हो छोड़ कर सो बाएंगी।”

“परन्तु कब तक ? विनिरुचय समालय ने अपने पूर्ववत् हृष्ट स्वर में प्रश्न किया। आचार्य विषय ने इस बार भी सर्वथा अविचलित रह कर कहा—“अपराधियों की बीछ करना मेरी विशेष चिन्ता है आर्य परन्तु उससे भी अधिक चिन्ता मुझे उस प्रयोजन का पता लगाने की है जो इस योजनाके काण्ड में स्पष्ट प्रतीत हो रहा है।”

विनिरुचय समालय ने पढ़ते तो आश्चर्य सुरक्षा प्रबन्ध की ओर देखा फिर पूछने लगे—“सुरक्षा प्रबन्ध क्या यह समने कैसे जाना कि यह योजनाके काण्ड है।”

“बहु इस प्रकार भाव कि वे चारों सब केवल एक छात्र ही नहीं पढ़े हैं बरन् इसकी एक ही समय में हत्या भी की गई प्रतीत होती है। और, सभी पर एक ही जैसा प्रहार किया गया है। नदी के किनारे एक ही भाग पर हुए इस प्रहार से तो मेरा यह मत और भी अधिक दृष्ट प्रतीत होता है।

विनिरुचय समालय बर्षकार के इस बार पूर्व से भी अधिक आश्चय का भाव दिखा पाया—“और आश्चर्यपूर्ण तुमने यह कैसे जाना कि सभी की एक ही समय में हत्या हुई है ?”

आचार्य विषय बोला—“समय जाने पर आर्य की सेवा में सभी कुछ निवेदन कर दिया जाएगा परन्तु मैं इन सबके नगर का सामान्य जीवन चाहता हूँ। और मैं उसकी उचित व्यवस्था भी करूँगा।”

“परन्तु यह कैसे सम्भव है ? क्या सुरक्षा प्रबन्ध यह नहीं समझते कि नगर में जब इतनी सराजकता हो कि एक रात में चार चार सुरकों की हत्या हो जाए, तो फिर क्या नापट्टिक जला विचलित भी न होंगे ? यह तो सर्वथा असम्भव है।”

इस पर आचार्य विषय नत मस्तक हो परन्तु धारमविरता की दृष्टता के साथ बोला—“असम्भव इस में कुछ भी नहीं आर्य फिर ये मुक्त वैधानिक भी तो नहीं।”

आचार्य विषय ने जैसे यह कोई महत्वपूर्ण रहस्योद्घाटन किया। विनिरुचय समालय उसे सुन खिन्न रह गए और अवहिनित मन विस्फारित दृष्टि से आचार्य विषय की ओर देख उठे। विनिरुचय समालय ने उनकी ओर देखते हुए प्रश्न किया—“सुरक्षा प्रबन्ध क्या तुम यह विश्वास के साथ कह सकते हो कि ये मुक्त मुक्त वैधानिक अपना बर्जित नहीं है ?”

“हाँ आर्य यह मैं वृत्त विश्वास के साथ कह सकता हूँ। ये वैधानिक प्रबन्ध बर्जित नहीं है इसीलिए यह काण्ड और भी रहस्यपूर्ण बन गया है। धनएव महा सुरक्षा की दृष्टि से इस काण्ड में निहित प्रयोजन का पता लगाना और भी महत्वपूर्ण हो गया है।

बादशाह में वहाँ अस्विकृत जन-अनुयाय में से किसी का भी ध्यान उन ओर नहीं गया था। धनएव सभी सुरक्षा प्रबन्ध व इन बुद्धि कौशल की मन-ही-मन सराहना कर उठे।

आचार्य बर्षकार भी सुरक्षा प्रबन्ध के इन बुद्धि कौशल की मन-ही-मन प्रशंसा कर उठे। परन्तु वह शांतिव में इन समय हृष्टप्रभ अधिक हुए। धरने ही से बोले—“बर्षकार यह सुरक्षा प्रबन्ध प्रबन्ध ही कोई आश्चर्य-मुक्त है। यदि यह वैधानिक में न हो मगर साम्राज्य की सेवा में होगा तो उनकी यह प्रतिज्ञा और भी अधिक विश्वसनीय







**आ**चार्य बर्यकार को तावप ही कभी यह कल्पना हुई होगी कि साम्राज्यी किसी दिन फिर भी, बैधानी में लीन सकती है। अतः जब उन्होंने उसके पुनरायमन का समाचार सुना तो वह सर्वथा स्वच्छ रह गए। पर उन्होंने पूरे बानीत व्योँ तक मनप की राजनीति में सक्रिय भाग लिया था। साम्राज्य के लिटिज पर वह इस सारी प्रवधि ही मुक्त तारे की भाँति देखीप्यमान रहे थे। और इस मध्य न जाने कितने प्यार था वे जिनके सम्मुख वह एक मुक्त अटल की भाँति धरिय पड़े रहे थे। अतः किसी विपत्ति के सामने अपने अन्तर का दुर्बल भाग दिखाना उनका बहुत स्वभाव नहीं रह गया था। अन्तर के भावों को अन्तर तक ही सीमित रखना उनके संभव स्वभाव का स्थायी धर्म बन चुका था। फिर भी वह जब उस समाचार को सुन अपने प्रासाद में लौटे तो कुछ ऐसे विचारमग्न हो रहे जैसे किसी समस्या ने उन्हें अपना समाधान खोज निकालने के लिए बाध्य कर दिया हो। उन्हें अपना जैसे बैधानी में यह देवी साम्राज्यी का नहीं बरन् साकार रूप में किसी बैधी-विपत्ति का धायमन हुआ है। वह देख एक बारकीली उनका अन्तःस्थल प्रकल्पित तक हो गया। परन्तु उन्होंने अपने अन्तर का यह दुर्बल भाग क्या की भित्तियों के सम्मुख तक भी प्रकट नहीं होने दिया। तो भी जैसे उनके मुख से बलात् एक निश्वास निकल गया और उसी के साथ उनका अन्तः भाव प्रकल्पित हो कह गया— 'बर्यकार दीवता है जब तेरा बैधानी में रहना परमभव है।'

और फिर उनके मुख पर बुधिया का-सा भाव उभर धारा।

तत्पश्चात् उनका विचार-व्यस्त मस्तिष्क कुछ रिक्तता का-सा अनुभव कर उठा दृष्टि क्षुण्ण में उलभ्य गई और मुख पर नीरारक छा गया। अन्ततः ऊँच, पीठिका से उठ वह चारिका व्यस्त हो गए। किन्तु उन्हीं के साथ विचारों ने भी जैसे एक नया मोड़ ले लिया। अपने ही को मुनाते हुए बोले— देवी साम्राज्यी के धायमन पर मारा ही नपर अस्तित्व है तो फिर बर्यकार, कोई कारण नहीं कि तू भी सभी बैधानिकों के इस उन्मास में उनके साथ सम्प्लित हो उतथा स्वागत न करे।

उन्होंने जैसे यह एक निश्चय किया जिसकी बुझा उनके मुख पर स्पष्ट हो उठी। फिर निश्चय की बुझा पर कोई दुर्दमभाव छा रहा और दृष्टि खूबसूरत हो उठी। किन्तु वह सीध ही एक मुस्कान में परिणत हो गई। ऐसा लगा जैसे उन्हें पनामान ही कोई मुक्त हाथ बन गया हो। वह अब स्पष्ट ही प्रसन्न बिल थे। परन्तु किन कारणों ने वह इस मन को नहीं छोड़ नस से बाहर निकल और तत्पश्चात् यहाँ मध्य में

घा रपाकड़ हो गए ।

छारपी ने भी अपने स्वामी के आदेश पर रख की देवी घाअरामी के घाअ-  
रून की धोर बड़ा दिया । धीर धरब जब आसार की परिधि को मात्र राजपथ पर  
घाए तो ने भी छरपट शौड़ सिए ।

घाचार्य बर्षकार के मुख पर असाधारण उन्मात्त छा उठा । जैसे घाअ उनका  
किसी जरीयमान विचार से अनायास ही समझौता हो गया हो धीर उनके अन्तर  
ने अपने सभी कुराणों को स्वामि किसी नयी घास्था को अन्व दिया हो । मार्ग में अब  
एक नागरिक ने उनका अधिवादन किया तो प्रत्युत्तर में उनके मुख का हृष भाव  
द्विगुणित हो उठा । वह सोत्साह उच्च कण्ठ स्वर में कह उठे—“सौम्यजन बैरामी का  
यह धर्मान्तरण स्वभाव तो सबमुख अन्व है । धरे, घाअ तो मैंने भी उनके धर्म को  
समझ लिया है ।”

फिर एक दूसरे नागरिक द्वारा प्रस्तुत अधिवादन के उत्तर में वह बोले—  
“सौम्यजन देवी घाअरामी ने निस्संदेह बैरामियों को एक पुनीत कार्य के लिए आह्वान  
दिया है ।”

धीर छिद्र, तीसरे से उन्होंने आश्चर्य कहा—“सौम्यजन देवी घाअरामी ने  
तो वह जैसे मरे ही किसी दिना स्वप्न का आकार रूप देने का अनुष्ठान किया है ।  
अन्यान्य समागत की पावन स्मृति में यदि बैरामी में भी स्तूप न बना ला फिर मला  
धीर कहाँ बनेगा ?”

बयोक्छ घाचार्य को इन प्रकार आश्चर्य बहोर हुआ देख सभी ठो उनको इस  
छरसता पर गहगह हो उठे ।

फिर तो अन्व बरामियों की अति वह भी प्रति दिन देवी घाअरामी के दर्शन  
के लिए जाने लगे । किन्तु वह जैसे जाते जैसे हो सीधे भी जाते । देवी घाअरामी के साथ  
एक भी अन्व का आशन प्रदान न हो पाया । देवी घाअरामी का यह दुगायह अथवा  
अपेया भाव देख उनके अन्तर की बुद्धि धीर प्रबल हो उठी ।

कोई एक पल पश्चात्, एक दिन घाअरामी की धोर जाते हुए वह मुरझा  
प्रधान घाचार्य अन्व को उठाना मार्ग ही में टोक पूछ उठे—“क्यों आह्वान बना उन  
अपराधियों का कुछ पता जमा ?”

घाचार्य बर्षकार का यह निस्संदेह आश्चर्य प्रश्न था फिर भी उन्होंने उन्ने इस  
समय अथवा अहंन अंग में पूछा था । एक रात में बार बार पुश्कियों की धोर वह भी  
बैरामियों की हत्या का हो जाना किसी प्रकार भी एक सामान्य घटना नहीं थी । मुरझा  
प्रधान घाचार्य अन्व ने भी जैसे कोई आश्चर्य बटना समझ जसदी अपेया नहीं थी  
थी । वह इस साथी अथवा ही अपराधियों की अंत में अन्व रहा था एक प्रकार से  
अपना आचर्यात्त अभी धोर कैमिन्न कर रखा था । इन समय भी उसके मुख पर बिठा  
का प्रगाड़ भाव छाया हुआ था । पर, न जाने क्यों विचित्र अथवा अन्व के इन प्रश्न को  
सुन वह इस समय अपने अन्तर में कुछ उत्तरित हो उठा । साथ ही उसने जैसे किसी  
दुराहृष की कदुता का भी अनुभव किया । तो भी अन्व में अथवा संवत् यह उसने पहन  
की अन्व उठा घाचार्य बर्षकार की धोर देखा धीर छिद्र पल अन्व ही बोला—

“धर्मबद, पता धरवय जला है परन्तु धमी तक बिठना कुछ विधित हो सका है वह धर्मबद ही है धीर उसके धारार पर केवल इतना ही कहा जा सकता है कि वह मूढ गम मग सका है।”

धाचार्य सिष्य के मुख से मूढ के ह्राप करने की बात सुन बिनिश्चय धर्मात्य की जैसे कुछ धारचर्य हुआ सम्भवतः धारचर्य ही थी धधिक बुधिया हुई परन्तु बुधिया ने जैसे धन्तः सप्रमास बिश्वास का सहारा ले लिया। मानो उनके धन्तर में कुछ भी नहीं हुआ धतः प्रकट में उस्तुकता बिधा त्तरता से पूछने मगे—“धीर धामुष्मान भला वह मूढ क्या है ?”

धाचार्य सिष्य ने इस प्रश्न पर धपनी बुध्ति तनिक ऊपर उठा कहा—“धर्मबद, मुरखा के हित में धमी धनका बताना किसी प्रकार भी उचित नहीं।”

वह सुन धाचार्य बपकार को इस धार धारचर्य का धनुष्य नहीं हुआ धरन् जैसे उनके किसी बुद्ध धारम बिश्वास का पल सहसा धिधिस हो गया। उनके धन्तर का कोई बुधिया भाव व्यङ्गता में धरिउलत ही धठा। परन्तु प्रकट में उनके मुख से कुछ ऐसा धामास हुआ जैसे उन्होंने धाचार्य सिष्य के इस उतर से धपने की धत्यन्त धप मानित हुआ धमका हो। वह साधेश बोले—“परन्तु मुरखा प्रधान बिनिश्चय धर्मात्य के नाते वह सब कुछ जानना मेरा धिधित धधिकार है।

इस धर धाचा/ सिष्य ने धर्षबा धधिमनित रह, साध ही नठ मस्तक हो धधिमय कहा— धधरय हो सकता है धर्मबद, परन्तु मैं वह धधरय ही धिधेधन करूँ वह मेरा कर्तव्य क्यापि नहीं। धर्म मुरखा प्रधान को धमी प्रमाण की धधरयकता है, धीर वह इन धमय धसी की धोध में है।

धाचार्य धर्षकार के धन्तर में बीछ कोई ध्यनिन यह सुन जैसे एक उध्व ठाका रे हीन पड़ा। किन्तु बाह्य में धनका धधेश धीर उध हो उठा। उधेधना के से स्वर में बोले—“धीर बिध सुम उधे धोधने में धधमर्ष रहे तो ?”

बिनिश्चय धर्मात्य की धूरैकाधं धन मई। किन्तु, उनके मुख से यह प्रत्यक्ष प्रश्न सुन धर भी धाचार्य सिष्य हुनोत्साहित नहीं हुआ। बास्तव में उधने धममें कुछ धुनीठी का सा धामास पाया था। उधकी बुध्ति धाचार्य धधकार के मुख धर धेधित हो रही। सहज इध में धीना—“धर्मबद का मेरा कर्तव्य है उधे में धधरय करूँ वा।”

बिनिश्चय धर्मात्य की मुरखा प्रधान का यह उतर धधर्य प्रतीत हुआ। बास्तव में यह प्रत्यक्ष में बिठना सरल प्रतीत हुआ धाचार्य धधकार के निकट यह उठना ही उधस्यनुर्ष बन धर रह गया। परन्तु इन धमय उधके बिधेषध का धमय नहीं था। धतः यह धुन साधेश ही त्तरता से पूछ उठे—“तो फिर क्या धधिधित धमय तक ही धधियोग का प्रस्तुन धिया जाना भी ध्यनिन रहेगा ?”

मुरखा प्रधान धन-ही-मन भ्रम्ना उठा। धरल प्रकट में धर्षबा धधध रह धीना—“धधिधित धमय तक तो नहीं धर्मबद, धरन्तु हाँ धमी कुछ धीर धधध धधरय लयेगा। फिर धर्मबद धटना भी तो कोई साधारण नहीं।”

यह वह धाचार्य सिष्य ने धुन धपनी बुध्ति उठा धाचार्य धर्षकार के मुख की धीर धेगा। जैसे धमने उधकी मुख रेताधो में कुछ पढ़ने का प्रधान धिया। धाचार्य

बर्षकार ने उसकी इस ध्वजधर-व्यस्त दृष्टि को तनिक देखा किन्तु पीछे ही अपने को संयत कर, दृष्टि के प्रति उपेक्षा का सा भाव दिखा वह बोले— 'मह मे मी जानता हूँ आयुष्मान कि बटना सामान्य नहीं है पर साथ ही हम उसे प्रसामान्य कह स्याय की मी तो उपेक्षा नहीं कर सकते ।'

प्राचार्य शिष्य ने भी अपना मस्तिष्क गत कर, सचिन्त कहा— 'भार्यवर, परन्तु यह स्याय के प्रति उपेक्षा तो कदापि नहीं घोर न ही ॥ गण पुरुषों का प्रभाव हुमा । सभी तो वास्तविकता की खोज के लिए प्रयत्नशील है । क्या स्याय का वास्तव तथ्य का पता लगाना नहीं है ?'

'है, प्रकरण है आयुष्मान किन्तु स्याय को विमिश्रित करना उसकी प्रवृत्तता के समान ही है इस तथ्य को ही तुम क्यों भूले जा रहे हो ?'

सुरसा प्रधान के पास जैसे इसका भी उत्तर था तो भी वह इस बार कुछ बोला नहीं । वास्तव में वह यदि धाब जाहता तो विनिश्चय धर्मालय के मूल प्रश्न का निश्चय ही प्रत्यक्ष उत्तर भी दे सकता था पर फिर भी वह उसे टाल गया । जैसे ही नहीं बरत जानबूझ कर उसने ऐसा किया था घोर उसके पीछे इस समय उसका कोई वृद्ध निश्चय था घोर उसके इस वृद्ध निश्चय की व्यापार शिक्षा में कोई भारी दुविधा थी । कदाचित्त यह वही दुविधा थी जिसमें वह गत कई दिनों से प्रसन्न था । अतः, जब वह विनिश्चय धर्मालय के पास से बिदा हुमा तो उसे कुछ क्षणों के लिए मनस्तोप का सा अनुभव हुमा परन्तु जैसे-जैसे उसका धर्म धामे बढ़ा उसके अन्तर का कोई दुःखप्रह भाव भी अधिकाधिक परिमाण में उन्नत होता चला । वह इस समय देवी प्राज्ञवासी के स्तूप निर्माण स्वप्न से लीट देवी शिष्या को अट्टासिका की घोर जा रहा था । परन्तु जब वह अनायास ही सिद्ध सेनापति के दुर्ग की घोर चल पड़ा ।

घोर जब प्राचार्य बर्षकार सुरसा प्रधान से प्रलग हुए तो जैसे उन्होंने भी मन स्तोप की छाँस थी । वास्तव में प्राचार्य शिष्य को टोक उससे उन्होंने जो प्रश्न किया था उसका एक विषय प्रयोजन था । प्राचार्य शिष्य धनराजियों की खोज की शिक्षा में किस प्रकार प्रयत्नशील है उनसे यह रहस्य छिपा नहीं जा घोर न ही उनसे यह छिपा हुमा था कि धर तक के उत्तम प्रयत्नों के फलस्वरूप वह किस निष्कर्ष पर पहुँचा है । तो भी वह उसकी दृष्टि कर लेना चाहते थे घोर वह केवल इसी के लिए धर कई दिनों से धरनग की खोज में थे । अतः धाब उनका रथ प्राचार्य शिष्य के धरन के सम्मुख जैसे ही नहीं जा गया था बरन् जैसे जान-बूझ कर जाया गया था ।





**प्रा**चार्य विषय में उस समय अथर्व मनस्तोत्र की छाँट भी परन्तु उसके पश्चात् ? उसे क्या उसके मेरों के सम्मुख कोई बटना-कम गतिमान हो उठा है और उसे वह जैसे निष्क्रिय हुआ सा देख रहा है। वैद्यानी में ऐसी धामप्रानी द्वारा स्तूप के निर्माण को उसने केवल एक संयोग ही समझा। परन्तु एक रात्रि में बार-बार मागधों की हुरमा को वह मात्र संयोग समझ कर कहे रहा था ? प्रत्यक्ष में इन दोनों ही बटनाधों के मध्य कम से कम वर्तमान में परस्पर कोई तारतम्य नहीं था परन्तु भविष्य के सम्बन्ध में कौन क्या कह सकता है ? कोई कुछ भी तो नहीं कह सकता ठीक है। कोई कुछ कह भी कहे सकता है ? वह सोचने लगा—‘परन्तु, उबर राजपूह में सभ्राद् अजातशत्रु पर्वत मूकला से बाहर उम्स जल बाराधों के पास मानवा ग्राम मार्ग पर जो एक नया मगर बनवा रहा है वह किस बात का चोतक है ? फिर जैसे वह अपनी इसी विज्ञाता के उत्तर में ध्याने सोचने लगा—‘वह इसी बात का तो चोतक है कि जब उसे पर्वत मूकला की घोट में बिरा खने की कोई आवश्यकता नहीं रह गई, और यदि वह बाहर आकर भी रहे तो सर्वथा सुगमिष्ठ ही है। किन्तु उनका प्रयास अमरत्व योगान ही इसके भी कुछ ध्याने कह रहा है। वह सभ्राद् द्वारा राजपूह के पास ही इस नए नगर के निर्माण से अस्वभाव को भी तो संतुष्ट नहीं वह उसे अपने सभ्राद् का एक स्वर्ण का प्रयास समझ रहा है। क्यों ? क्योंकि उसका अनुमान है कि मगध की राजधानी शीघ्र ही पाटलिपुत्र में स्थानान्तरित करनी होगी। उसकी दृष्टि में पाटलिपुत्र एक ऐसे स्थान पर अवस्थित है जहाँ से बढ़ते हुए सभ्राज्य का आसन कस्य अतिक्रमण तथा एवं सुभाह डंग से बनाया जा सकता है। फिर, पाटलिपुत्र के उदयन अद्विष्य के सम्बन्ध में स्वयं तत्काल में भी तो एक बार भविष्यवाणी की थी। तथा पत की इसी भविष्यवाणी का ध्यान करते ही उसे एक अन्य बात भी स्मरण हो आई। वह उसे स्मरण कर सोचने लगा—‘जब जगूँनि यह बात कही थी तो मही बर्षकार, जो धात्र मही वैद्यानी में है, वहाँ एक नया दुर्ग बनवा रहा था और फिर मही बर्षकार एक दिन तपागत के बान भी गया था वह गया था भगवान से यह पूछने कि राजा अजातशत्रु अत्रि संघ पर आक्रमण कर, उसे अपने राज्य में मिलाता चाहता है मगध, इसमें कुछ समुचित तो न होगा ?

प्राचार्य विषय का बर्षकार के इन बृष्टतापूर्व प्रश्न पर मन-ही मन हँसी धा गई। वह अपने से बोला—‘मला नहीं यह प्रश्न भी तत्काल से पूछने का था ?’

तब भगवान् राजपूह में ही सुदृष्ट पर्वत पर खड़े थे और त्रिभुवन

बर्षकार ने उनसे यह प्रश्न किया था प्रमुख विषय धानम्ब भी अपने छास्ता के निकट जाया उन पर क्या न्यून रहा था। तबालत बर्षकार के इस प्रश्न के उत्तर में मौन नहीं रहे क्योंकि उनके मौन रहने का अर्थव्य ही यह धम बताया जाता कि उन्होंने भ्रम तबालु को धाकपण की अनुमात से ही है। किन्तु उन्होंने बर्षकार से सीधे कुछ भी न कह बर्षकार ही प्रमुख विषय से पूछा—“क्यों धानम्ब क्या तुमने सुना है कि बग्गीमण बार बार बग्गा करते हैं और एकत्र होते हैं?”

धानम्ब ने उत्तर में तबालत से कहा—“जी हाँ मन्थ मैंने सुना है कि बग्गी बार-बार बग्गा करते हैं और एकत्र भी होते हैं।”

तबालत—“क्या बग्गी समग्र एकत्र होते हैं समग्र उठते हैं और समग्र रूप ही से अपने कार्य करते हैं?”

इस पर धानम्ब ने नत मस्तक हो कहा—“जी हाँ मैंने ऐसा ही सुना है।”

फिर तबालत ने धावे पूछा—“क्यों धानुष्मान के हुनरों के नियम को तो अपना नियम नहीं कहते—अर्थात् स्वनिर्मित विधान का ही तो पालन करते हैं न जैसे छोड़ते तो नहीं?”

धानम्ब ने बताया—“जी हाँ मन्थ मैंने सुना है कि बग्गी अपने बनाये विधान के अनुसार ही चलते हैं।”

तबालत ने फिर प्रश्न किया—“क्यों धानम्ब बग्गी अपने बूढ़ टाबनीठियों का मान तो करते हैं न? और जो परामर्श दे देते हैं उसे वे स्वीकार करते हैं न?”

धानम्ब ने नत मस्तक रहे ही कहा—“जी हाँ मन्थ बग्गी अपने बूढ़ टाब नीठियों का मान रखते हैं और उनके परामर्श को भी स्वीकार करते हैं।”

“और धानुष्मान के अपने राज्य की विवाहित धमना अधिवाहित क्रियों पर धराराबार तो नहीं करते?”

“मन्थ मैंने सुना है कि बग्गियों के राज्य में क्रियों का धाहर ही धाहर होता है।”

“और वे अपने नगर के तथा नगर के बाहर के देव-स्थानों का उचित संरक्षण तो करते हैं न?”

“जी हाँ मन्थ मैंने सुना है कि वे अपने सभी देव-स्थानों का उचित ध्यान रखते हैं।”

और फिर सबसे धम में तबालत ने पूछा—“क्यों धानुष्मान धानम्ब के अपने राज्य में धाए धर्हियों को उनके योग्य ऐसी समुचित व्यवस्था तो रखते हैं न कि उन्हें कोई कष्ट न हो तथा साथ ही धम धर्हियों को बग्गी धाने के लिए प्रोत्साहन दिने यह सब सावधानी तो बग्गी रखते हैं न?”

और इसके उत्तर में भी धानम्ब ने पूर्व की मति ही कहा—“हाँ मन्थ बग्गियों के देव में किसी भी धर्ह्य को कोई कष्ट न हो, वे हम बात का पूरा-पूरा ध्यान रखते हैं।”

तब तबालत ने अन्तर्गत बर्षकार से कहा—“हे ब्राह्मण एक बार बंगाली में अपने समय में परराज्य के धमुरय के इन बात नियमों का बग्गियों को उपदेख

दिया था और जब तक बज्जी इन नियमों के अनुसार आचरण रखेंगे तब तक उनकी उन्नति ही होगी अथवा नही।”

इस पर बर्षकार ने गत मस्तक हो कहा था—“हे गौतम यदि बज्जी इनमें से किसी एक नियम का भी अनुसरण करते रहे तो उनकी उन्नति ही होगी अथवा नही।”

राजा अजातशत्रु की नजदी में रहते समय तथागत ने ब्रह्मिणों के सम्बन्ध में जब यह बात कही थी तो आचार्य सिष्य उस समय यहीं बैद्यनाथ में इसी सुरक्षा प्रदान पर पर था और उसने भी अन्य बैद्यनाथियों की प्रति पर्व का अनुभव किया था। परन्तु आज उसे लगा कि वह किञ्चित भी तो पर्व की बात नहीं थी वह तो तथागत ने एक प्रकार से हम सभी को जैसे साबधान किया था।

उसका धरम इस समय ब्रह्म नति ॥ ब्रह्माप्यस्य के दुर्ब की धोर चीड़ रखा था। यह बात ध्यान में आत ही वह उसकी पीठ पर धीर सम्भल कर बैठ गया और बस्त्रा को धीर डीनों छोड़ धाये की बात सोचने लगा। वह सोचने लगा कि यदि तथागत ने हमें साबधान किया था तो क्या उन्होंने साथ ही बर्षकार को असावधानीबद्ध कुछ उक्ति भी नहीं दे दिया था। धीर, वह संकेत क्या था ? वह धरम की बस्त्रा को तनिक नीच सोचने लगा— धीर आज नहीं बर्षकार बैद्यनाथी में है। बैद्यनाथी में जाने से पूर्व एक पटना धीर भी हुई थी और वह पटना भी राजहूह ॥ साम्राज्य के सभी धामिकों की समा धीर इसी समा में बर्षकार ने बैद्यनाथियों का पक्ष लिया था। धीर उसने अजातशत्रु के सम्मुख बैद्यनाथियों का कोई पक्ष क्यों लिया ? यह प्रश्न सदा उनके मस्तिष्क में बिसत बेव से नीच-सा बना।

आचार्य सिष्य को लगा जैसे इसी प्रश्न के उत्तर में तो कहीं कोई सूत्र घटका हुआ है। परन्तु उसका इस इत्याकाश से सम्बन्ध ? उसे कुछ भी स्पष्ट समझ में नहीं आया। हाँ उसके अन्तर में बड़ी कोई धारणा अवश्य धीर दृढ़ हो रही सन्देह भी। परन्तु धरम सन्देह से तो काम नहीं बनता उसके लिए प्रमाण चाहिए, धीर इसी प्रमाण को वह पूरे एक पक्ष से खोज रहा है खोजते-खोजते हुआस भी ही पछ है। धीर यदि वह प्रमाण न मिला तो क्या वह सन्देह अबका धर्यहीन ही रहेगा चाहे फिर धीर फिर वह धागे कुछ नहीं सोच सगा। अब उनके मुक्त का मीरधय भाव प्रगाढ़ हो उठा। अब तरु दुन का द्वार था खुला था। उसे देख वह फिर सोचने लगा— अब प्रमाण ही पास नहीं तो फिर बगबुर सिह न क्या कहना हीप रह गया ? धीर क्या पला प्रमाण के धभाव में वह मेरी बाग पर एक टहका दे हूँ ही पर्व धीर कह उन्हें धारुध्यान् यह तो मुन्हास आचार्य बर्षकार के प्रति कोई दुराग्रह भाव हुआ म्बाव धरवस्त्रा में दुराग्रह क लिए काई स्थान नहीं फिर यह एका को धन करने का भी प्रयास हुआ सभी एका को जो ब्रह्मिणों की धीर उनके इन आत्मकवमान मगुराम्य को धाधार नूय धकिन है धीर जिन धकिन की एक दिन केवल एक दिन हो नहीं बल्कि धनेरु बार स्वयं तथागत ने प्रयास की थी।

आचार्य सिष्य ने जैसे धरणी ही निगी बात पर पुनर्बिचार करने क लिए द्वार

१ — न धरम को तनिक रोक दिया। धरम को रोक उसे बापस मोड़ने को उद्यत भी

हो उठा परन्तु फिर बूढ़ा से उठकी जगहा को पकड़ वह सोचने लगा—“सुरक्षा प्रदान का वास्तव है कि मुझे कोई निश्चित निर्णय करना ही होगा चाहे फिर उत निर्णय के परिणाम कुछ भी क्यों न हों या फिर. १”

या फिर वे धाये भी उसने कुछ सोचा, धीरे वह सोचते ही जैसे उसे कोई बड़ा अवलम्ब मिल गया। धाव फिर इत बलि से हुई के धरत की धीरे धीरे मिया। इत धरत में धाव की छोड़ सोचान पर उसने पैर रखा ही ना कि पीछे वाटिका की धीरे से कोई बड़े पुकार उठा। उसने मुड़कर उधर की धीरे देखा वो वह जैसे बौद्ध कर रह गया। मन-ही-मन बोला—“वह तो प्रवाद है धरे धरत, सभी ने सोच लिया है, जैसे इत बलराज्य की सुरक्षा का वास्तव केवल तेरे ही कर्षों पर है, धीरे धेप सभी ने इत मुझे यह कार्य सोप मानो प्रवकाश के लिया है।

सम्पुल वाटिका में इत समय केवल विहृदम्पति ही नहीं बरन् महावीर अण्डिय एल भी अपनी पत्नी देवी एल कमल के साथ बर्ही उपस्थित थे धीरे उनका एक बार बर्षीय धामक रोहितारव शिथलियों को पकड़ने के उद्देश्य से सारी सुभ-सुभ को उनके पीछे-पीछे भाग रहा था। परन्तु उनके अन्तिकट पहुँच कर भी वह उन्हें पकड़ नहीं पा रहा था। धीरे उसके इस दुःख को देख देवी एलकमल तथा देवी रोहिणी दोनों ही उहज निमोद भाव से हँस रही थीं। किन्तु, धावाय शिष्य को धावा देव सब सभी का ध्यान उत धीरे बाधक हो रहा।

विहृद उभापति तो धरत की धावा देव इत समय जैसे धरतन प्रसन्न हो उठे। अस्मदित कण्ठ स्वर में बोले—“धावो धायुध्याम धावो। इत तो सधनुष धनी तुम्हारा ही स्वरुण कर रहे थे।” यह कहते हुए वह तनिक रुके फिर बोले—“धावु ध्यानु धाव देवी धाप्रधानी के स्तुप को देख मैं तो बकिर रह गया। एक पक्ष की प्रकधि मना होती ही क्या है, परन्तु इत धन कात मैं भी उसके निर्वाण कार्य में जो प्रगति की है वह निःसम्भेह प्रशंसनीय है।”

धावार्थ शिष्य जैसे कहने के लिए कह उठा—“धनुषर वह सब वैदालिकों का उस्ताह ही तो है।”

“धीरे, देवी धाप्रधानी की सकन भी तो देखो।” महावीर अण्डियएल भी धपना मंतव्य इकट कर उठे।

धावार्थ शिष्य महावीर की ही वाग को धाने बनाते हुए कुछ कहा चाहना था कि इती जग्य विहृद उभापति फिर बोले उठे—“परन्तु मुझे एत सबने धर्मिक धारधर्मे तो देवी धाप्रधानी की इत बात पर है कि बिना उतका कभी क्षुप पर प्रधिकार हुआ करता था उतना ही बैराग्य पर भी हुआ, धीरे फिर धन इत स्तुप निर्माण में तो इन्होंने स्यातय कमा के विराट मान वा भी परिधय के लिया है।”

धन तक देवी रोहिणी धीरे देवी एल कमल भी बर्ही पट्टेच चुरी थीं। दोनों ही धरपबिक प्रसन्न थीं। देवी रोहिणी ने धरनी धुस्करानी दुर्ल धावार्थ शिष्य की धार केर वरिवाह के से कण्ठ स्वर में कहा—“वह तो जो कुछ है तो है ही वर धनुषर वह भी बढाओ कि धाव एत कहाँ वा भटके ? क्यों धरत धरत कहीं मार्ग तो नहीं बन गए ?”



धामी बैथी रोहिणी धपनी बाठ पुरी भी नहीं कर पायी थी कि बैथी रत्न कमल भी उतावली में समगती हुईं ही कह उठी—“बैथी यह स्वयं तो हमें भूल गए ही तो तो इतने धारण्य की बाठ नहीं परन्तु बैथी मंत्रिका को भी तो देखो न वह तो हम सभी को कुछ ऐसी भूल गई, जैसे उनका हम से कभी कोई सम्बन्ध ही नहीं रहा।”

धपने धपत्र पुस्तकम्बु की उपस्थिति में दोनों के मुख से यह घातीयतापूर्ण उद्गार सुन आचार्य सिष्य भारी संकोच का अनुभव कर उठा वह उत्तर में कुछ भी न कह सका। हाँ संकोच को फेद दृष्टि से एक कारणी उपने उनही ओर देखने का प्रयत्न प्रयास किया पर उसकी मुझ मुझ फिर ध्वस्त हो उठी। वास्तव में वह मण्ड्याभ्यक्ष के रुप में बन्धुवर सिंह से भाव बैथानी की किसी अनंत समस्या पर बहुत कुछ कहने प्रयास था। पर उसने जब यहाँ सबका दुसरा ही बाठावरण देखा तो उसके घस्तर का सारा उत्साह जैसे फ्रीका पड़ गया। उनका संकोच भाव धीरे भी अधिक प्रगाढ़ हो उठा। परन्तु मण्ड्याभ्यक्ष सिंह ने जब तक उनके मुख पर छाई चिन्ता की आई को स्पष्ट रूप में देख लिया था। उन्होंने देखा कि वह इस समय कैवल चिन्ता घस्त ही नहीं बल्कि कुछ उत्तमिष भी है। धत सिंह सेनापति ने कुछ चिन्ताविषित उत्सुकता से पूछा—“क्यों धातुष्मान भाव तुम इतने उदास क्यों हो रहे हो?”

यह प्रश्न सुन आचार्य सिष्य की चिन्ता जैसे कोई सहाय या बिबर-सी गई। धप्रयास मुस्कान के साथ बोला—“नहीं बन्धुवर, उदास तो नहीं परन्तु हाँ चिन्तित प्रवत्स हूँ।”

वह कह वह धपोक बका। फिर जैसे धपने घस्तर की सारी धक्ति तथा वह सिंह की ओर मार्गो धसहाय दृष्टि से बैलते हुए कह उठा—“पुत्रपार में सुरदा प्रधान के पद से मुक्त हुआ चाहता हूँ।”

उसके मुख से धकस्मात् यह सुन न केवल सिंह सेनापति बरन सभी तो स्तम्भ रह गए। सभी के मुख निस्तम्भ हो उठे।

बैथी रोहिणी धपने पितृ-धप्य की इस प्रकार भावावेश में देख पहले तो कुछ चिन्तित हुईं परन्तु धपन दाल ही वह उसके इस भावावेश पर इति चिन्ता भी न रही। किन्तु सिंह सेनापति ने तभी उठे वैत्र इमिष से सावधान कर रोक दिया। फिर धपत्र बर की ओर दृष्टि केन्द्रित कर धातीयता के से कन्ठ स्वर में पूछा—“क्यों धातुष्मान ऐसा सहता क्या हो गया जो इतने उत्तमिष हो उठे?”

धपत्र का मुख इस समय भावावेश से रक्षित हो उठा था। मन की कोई बाठ धसावधानीवध मुख से बाहर निकल न जाए, धत एक धारी सैन धपत्र बरा में धमंठते हुए वह बोधिन कन्ठ से बोला—“बन्धुवर, कारण तो कोई स्पष्ट नहीं बर धप मन ऊब गया है।”

धोर फिर यह कहते हुए वह सावध ही धरव की धोर बड़ लिया फिर तल रता से उम पर धाकड़ हो उम धपने प्रसाद की धोर बोड़ा दिया। सभी हनत्रन हुए से समरी धोर धेगत्र रह गए। उन्हें तथा जैसे आचार्य सिष्य नहीं बल्कि वे स्वय ही बिथी भारी दुविधा में फंसे गए हैं।

आचार्य सिष्य का धरव धपने ही प्रसाद की धोर प्रक्षिप्त हुआ था। किन्तु

अप्य माय में वह अपने स्वामी का बरगा-संकेत या देवी छिप्या की प्रदुर्गति का की ओर बढ़ गया । इतपति से चौकता हुआ वह देखते-देखते ही उसके सम्मुख या पहुँचा किन्तु वहाँ केवल एक बक फिर उठी बत से बापस भी लौट गया । शत्रु ने इन बुद्ध को देखा तो वह चौंक्का-सा रह गया ।

प्रायः छिप्य के घर को यह धमी कुछ छाछ ही पीते होने कि प्रायः उनी मर्यादा से चौकता हुआ एक अल्प घर बहाँ या पहुँचा । देवी रोहिणी ने घरकीठ पर बैठे हुए ही पूछा—“क्यों शत्रु बन्धुवर बंधन बना हजर गए थे ?”

शत्रु धमी उनका उत्तर दे ही रहा था कि देवी रोहिणी अत्यन्त प्रेम कर बैठी । बुझने लगी—“क्यों देवी छिप्या तो यहीं है न ?”

शत्रु अत्यन्त में पड़ गया । वह सोचने लगा पहले कीम से प्रेम का उत्तर हूँ । अन्तः वह नर अन्तः हो बोला—“हाँ देवी ! वह यहीं है ।

इस पर देवी रोहिणी ने तनिक मुस्कराते हुए पूछा—“क्या शत्रु क्या मे अन्तर का सन्तो है ?”

शत्रु को लगा जैसे देवी रोहिणी ने यह प्रश्न कर अत्यन्त में उस पर बटास किया है । परन्तु साथ ही उसने यह भी अनुभव किया कि उसमें विस्तार नहीं तो कोई बात नहीं थी बरन सख्त बंध में पूछा था । वह मस्करात नर कर बोला—“देवी अपने इस लुब्ध सेवक के अला यह भी कोई पूछने की बात है ? देवी छिप्या आपके दर्शन कर क्या कम प्रसन्न होंगी और देवी फिर स्वामिनी के लिए इससे बढ़कर मना और क्या सीमाय होका ?”

इसी अर्थ देवी रोहिणी लगे धरने घर से नीचे कूद चुकी थी । अन्तः शत्रु को ओर बटाती हुई बोली—“शत्रु, एक अत्यन्त प्राणपयक कार्य निकल आया था इसी से अभी आया ।”

और फिर वह अन्तर को ओर अँद्रे हो-ली ली ।

प्रायः छिप्य ने सिद्ध सेनापति के सम्मुख परत्वान की इच्छा प्रकट कर घोषा था—“क्यों, एक भारी बुद्धिवा से अनायास ही अन्कारा मिल गया । परन्तु वह ऐसा केवल एक बार ही सोच सका क्योंकि पहले अण ही वह भारी अत्यन्तानि का अनुभव कर उठा । वह अपने ही पर अँग कर बहु उठा—“अन्तर बन्धुवर ने और फिर इन बैंगली में जो ठेके ऊपर उतरकर किए थे उन सभी का तू मात्र उन्हें अन्तः पुरस्कार के साथ ।”

अब वह प्रामाद में सीटा तो अन्तरिका अपनी मनोरथा की देव अन्तः-नी हो उठी साथ ही विस्तित भी हो रही । उसके अन्तः अन्तः हा उठे । बाहर प्राय स्वर में बुझ लगी—“क्यों स्वामी शत्रु क्या हो गया ?”

किन्तु प्रायः छिप्य ने जैसे यह सब कुछ सुना ही नहीं अब यौन रहे ही वह अपने बत का ओर बट्टा रहा । अन्तरिका भी पीछे-पीछे अपनी रही । उसे कुछ भी बुझने का आस नहीं हो या रहा था फिर भी जैसे अन्तः उभरा अन्तः अन्तः अन्तः अन्तः पूछ उठा—“क्यों स्वामी क्या मात्र किसी से कोई अन्तः-नी विचार ही क्या है ?”

भाचार्य विषय के मन में धाया कि वह हूँ किसी से क्या अव्यक्त संवाद होता यहाँ बैशासी में मेरा अव्यक्त संवाद तुमने जाना ऐसा बड़ा ही कौन है ? वास्तव में मुझे तो अपने ही से अव्यक्त हो गयी है । परन्तु उसे क्या जैसे उसकी जिज्ञास बस बढ़ होकर रह गयी है और अन्त-अन्त विनिश्चय हो उठे है । परन्तु धाम ही मस्तिष्क इतने सब कुछ के परचाए भी जैसे विभ्रम नहीं लिया जाहता उसे उसकी सक्रियता और सकल हो उठी है । वह ध्याना पर सेट मंत्रिका से बोला— 'देवी मुझे इस समय एकाग्र चाहिए ।'

किन्तु यह उसने कहा था । पर मंत्रिका ने जो कुछ देखा था उसे देख उसके लिए नहीं से जाना जैसे अव्यक्त हो गया ।

स्वामी के मस्तक पर हमारे नीचे स्वेद कणों को देल वह बबरा-सी लठी । उन्हें अपने उत्तरीय के धाँचन से पोछते हुए बोली— 'स्वामी देख रही हूँ कि तुम कितने ही दिनों से कुछ सोए-बोए से रहते हो । धाँचर वह दुविधा में भी तो जानूँ या फिर मैं इसकी हतभाग हूँ कि मुझे वह जानने का भी अधिकार नहीं रह गया है ।

भाचार्य विषय धामी भी दुविधा में प्रसन्न था । जगनता से बोला— 'देवी जना अव्यक्त नहीं । परन्तु सभी बातें बताने योग्य हों, तो भी तो सम्भव नहीं ।'

यह कह भाचार्य विषय ने दूसरी ओर करवट बरस की । धाम ही उनका मुक्त कण्ड फिर अनुभव के स्वर में कह उठा— 'देवी जना करो मुझे इस समय सब एकाग्र में रहने दो ।'

किन्तु मंत्रिका पुनः वह सुनकर भी वहीं बैठी रही । केवल बैठी ही नहीं रही बल्कि उसके मस्तक पर अपना करतल रख धाम ही कह भी उठी— 'स्वामी दुविधा को प्रकट कर देने से मन का बहुत कुछ भार हल्का हो उठा है । फिर बैशासी में तो सभी प्रकार की समस्याओं में परामर्श की परम्परा है । या फिर मैं कह दो मैं उसके योग्य नहीं ।'

भाचार्य विषय को यह मंत्रिका का अव्यक्त हस्तक्षेप मया । प्रसन्न वह कुछ जसना उठा । लठे-लठे ही पीरों को धीरे लम्बे कौना करवट को गहुरी कर बोला— 'शेष्ठी पुत्री हर समय तुम्हें तो सब एक ही काय रह गया है और वह है अपने धाँच कारों की दुर्गति देना ।'

मंत्रिका ने यह सुन अपने को कुछ अपमानित हुआ अनुभव किया । किन्तु स्वामी को इस समय किसी सम्झीर समस्या में उत्तम हुआ सम्भव वह चुन कर गई । और फिर जैसे मन-ही-मन अनुमानों या सहारा से कारणों पर विचार करने लगी । अत्यन्त ही इत्यादि भी एक कारण का 'परन्तु, वह सोचने लगी— वह उन दिन के विभ्रम व्यस्त रह के व्यक्त नहीं हुए थे तो फिर इन व्यक्त का कारण ? सहजा उस स्वरण हो धाया— 'शेष्ठीपुत्र कपिन परिष्करीतर देर्षी में व्यापार कर सभी बैशासी लीला है । किन्तु धाम ही वह फिर धामे लीला लगी— 'तो तो कोई भी जना नहीं वह लवा हूँ इन प्रकार जाना है और नीरता भी है और भाचार्य विषय को सबको सक्रिय लीला देल अव्यक्त भी हुए है । पता इस बार हूँ ऐसी कौनसी बात हो गई ? हूँ हुई है, अव्यक्त हुई है ।' जैसे मंत्रिका को सहजा कोई शुच हृदय मन मया हो

बहु प्रसन्न हो उठी।" केवल तब संघ्या ही तो धन्वीपुत्र कणिय ने संघ्या समाज में बैसी सिध्या को एक बहुमुख्य मुक्ताहार चेंट किया था वह मन-ही-मन बोनी—  
"धन्य ही स्वामी को यह प्रसन्न हो उठा है।"

धीरे धीरे उसके पश्चात् वह पर्याप्त समय तक उसी प्रकार संघ्या पर बैठी रही।  
शाचार्य सिध्व भी यथापूर्व करवट लिए पड़ा रहा। घण्ट में मंत्रिका करने ही से कहने लगी—'वहि यही कारण है तो भी मुझे वह समझ बनना चाहिए, और स्वामी को भी उसे बताने में कोई निम्न नहीं होनी चाहिए। शाचार्य सिध्व को मिथोड़ते हुए वह पूछ उठी— स्वामी कैसा भी कारण क्यों न हो वह आपकी बहाना ही होगा। और यदि मैं धारकी इस मनोव्यथा तक को भी नहीं जान सकती तो फिर मुझे और मेरे इस जीवन को विचार है।" यह वह बहु जैसे भावोद्देग से फटक उठी नेत्रों से प्रसू कण निकल कपोलों पर झुकक गए। शाचार्य सिध्व को यह सब कुछ अत्यन्त अस्विकार प्रतीत हुआ और वह पूर्व से भी अधिक जन्मा उठा। धारण में बहुत कुछ कहने को भी उद्यत हो गया परन्तु साय ही मंत्रिका के लिए वह सब कुछ स्वाभाविक समझ, मौन ही रह गया। कावच में उसके सम्मुख इस समय को कुछ भी समझा उपस्थित भी उसने जैसे उसके धारे ही विवेक को बन्द रखा था। उसका सारा ध्यान समझ वेतना केवल उसी समस्या का समाधान करने में जुटी हुई थी किन्तु अपनी सारी शक्ति भयाकर की जहाँ किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पा रहा था। साय ही वह अन्तुष विह्वल सम्मुख पर-मुक्त होने का भी प्रस्ताव कर बैठा था उसकी धारणात्मनि पुनः से उसे सता रही थी। सोचने लगा— धारण ता मैं यह जीवन की कदाचित्त सबसे बयकर जून, केवल जून ही नहीं करना इतन्मतापुत्र काय कर बैठा और बा कुछ कहने गया था वह सब कुछ रला ही रह गया। अन्तुष यह सुरदा प्रचार का वाचित्व भार है उसका निर्वाह कोई बाल-श्रीका तो नहीं।" किन्तु इसी बात पर उसे भाटी मनस्तोय भी हो रहा अपने से कहने लगा—'धन्य यह भी प्रकटा ही हुआ। क्या पता मेरी ही किसी बात को लेकर धारक बर्ष को एकता में पूर का सुवपाठ हो रहा, और फिर उसका सारा कर्तव्य मेरे माथे पर लगता।

बाहर निकलते एक निश्वास के साथ उसने करवट बदलने का-ना प्रयास किया। किन्तु इस समय भी उसका अस्तिष्क विचारों से चकड़ा रहा। वह अपने से फिर कह उठा— और वहि न कहूँ तो उनमें भी तो बैधानी का अहित है क्या पता उसका कि 'ना बैधानी के विनाश की बात अस्तिष्क में घाने भाग से शाचार्य सिध्व की-बा उठ। वह अपने में और उद्विग्न हो रहा। मंत्रिका ने उसके कर्णों का स्वर्ण किया तो उल्लास करतल उत्प्रेरता से उबट माथे पर बा पहुँचा। उसे लगा जैसे स्वामी को धार हो गया हो। मंत्रिका चमरा उठी। बोनी—'स्वामी, वह ता तुम्हें।"

परन्तु इसी समय शाचार्य सिध्व धारणात्मन के ही मह्य कण स्व में बाण पठा—  
'नहीं धन्वी पुत्री कुछ नहीं तुम्हें तो ध्यर्ष का भ्रम हो गया है। मैं तो पूर्वत स्वस्थ हूँ।"

मंत्रिका ने इन बार बलात् शाचार्य सिध्व के मुख को अपनी धीरे धीरे सिखा। उसे देख वह भयभीत हो उठी। उसे लगा जैसे शाचार्य सिध्व का धार मुख सन्न हो

उठा है। मंत्रिका को भी जैसे इस बार कुछ सखीय धारण या गया बोली—  
“स्वामी भाव मुझ में निरवय ही कुछ छिया रहे हैं, जो किसी प्रकार भी दोभासक नहीं। आपके लिए नहीं स्वामी मेरे लिए।”

शाचार्य विष्य ने वामांत प्राम कण्ठ स्वर में कहा—“यह देवी का भ्रम है और यदि कुछ छिया ही रहा है तो वह मेरे बाधित का धर्म है।”

मंत्रिका उत्पन्ना से बोल उठी—“धीरे धीरे प्रति अनिश्वास। सब बताओ शाचार्य विष्य यदि देवी विष्या ने हतका असाध भी अनुरोध किया होता तो क्या धार इसी बात को सबसे इस प्रकार गोपनीय रखते?”

मंत्रिका जैसे यह धारण बस कह उठी। उत्पन्नात् वह ध्या पर बैठी न रह सकी और वही से उठ निकट ही में खड़ी हो गई।

शाचार्य विष्य की दृष्टि भी इस बार ऊपर उठे बिना न रही। अन्तर में उसने कुछ भी अनुभव किया हो पर प्रकट में वह केवल विह्वलते नेत्रों ने मंत्रिका की ओर देख सका। वे कुछ क्षणों तक मंत्रिका की ओर इस प्रकार देखते रहे जैसे उनसे कोई महत्वपूर्ण प्रश्न पूछ रहे हों। किन्तु मंत्रिका ने जो कुछ कहा या उस पर उसने इस समय न ही परवाचाय का धीरे न ही धातमधानि का धीरे न ही लज्जा का अनुभव किया बरन् उसे हुआ जैसे धात उसने यह सब कुछ कह अपने मन के भार को उतार दिया है। शाचार्य विष्य अभी भी ध्या पर सेटा था। उसने मुस्कराते नेत्रों से मंत्रिका की ओर देखा फिर उसे अपने निश्चय धारण का अवैत भी किया। परन्तु मंत्रिका पचा स्मान ही खड़ी रही जैसे उसने अपने स्वामी के इस सुनिश्चित ईदित को समझ ही नहीं। अन्त में शाचार्य विष्य मार्गों पराजय की विवसता से उठ खड़ा हुआ। किन्तु उसके मुख पर इस समय भी मुस्करान धारण रही थी। मंत्रिका की भुजाओं को हाथ से बकड़ उर्वना सहज ह्रम में बोला—“देवी! इस जीवन में मैं तुम्हें पाकर उचमुच धर्म हो गया है।”

शाचार्य विष्य कदाचित् अभी धार्ये धीरे कुछ कहा चाहता था कि इसी समय मंत्रिका साकेय बोल उठी—“शाचार्य विष्य धारण मुझ पर यह निरवय ही धर्म किया है।”

यह वह मंत्रिका के कपोल बहने में भी अधिक रक्तिम हो उठे। उसे इन क्षणों में देव शाचार्य विष्य को नना बसे उठके सम्मुख इस क्षण को प्रीति महिषा नहीं बरत् एक ऐसी अशोक बाला लगी है जिसका हृदय महना विज्ञा कर उठा है। यह देव शाचार्य विष्य का मन भी व्यथित हो उठा था ही विष्य भी परन्तु इन क्षणों के समय नहीं अलगा अस्वाभाविक गंभीर भी अटक रहा। धीरे इस क्षणों के समय के मुग पर धारणीयता पुर्ण मुद्रान लक्ष्मी रही। किन्तु जब वह बोला या उनका कण्ठ स्वर कुछ कुछ मारी प्रज्ञात हुआ। वहने मया—“तो देवी ने हमें व्यंग समझा है?”

मंत्रिका दुःखा से बह उठी—“हाँ शाचार्य विष्य, मैंने उने व्यंग ही समझा है और जो लक्ष्मी है वह अनुचित भी नहीं।”

शाचार्य विष्य मंत्रिका के इन धारण धीरे उचरी इन दुःखा को देख वहने

तो हंस पका परन्तु दूसरे ही क्षण उसकी मुख मुद्रा सहसा घम्भीर हो उठी । पुछने लगा—“तो क्या घ्ठीपुत्री यह भी समझती है कि मैंने जो कुछ कहा है उसमें मैंने अपने को भी जोखा दिया है ?”

मंत्रिका अपने स्वामी के इस प्रश्न से तनिक भी विचलित नहीं हुई । पूर्ववत् धारण और धाम ही धाल विचारात् की वृत्ता के माथ बोली—“हाँ धाचार्य धिष्य मैं ऐसा ही समझती हूँ और मेरा बैसा समझता सर्वथा स्वानाधिक भी है ।

भाचार्य धिष्य उसकी युवायी को छोड़ गवाज की धोर बड़ लिया । गवाज धिष्यो में से धाममनस्क वृष्टि से बाहर भी धोर देखता हुपा-सा बोला—“घ्ठीपुत्री, सम्भव है तुम्हीं ठीक कहती हो धोर तुम्हारे कहे धनुसार मैंने अपने को ही जोखा दिया हो । किन्तु इसका कारण ? सम्भव की वृष्टि से तुम मेरी धालीया हो पत्नी रूप में तुम्हारा समर्पण पाकर मेरा सर्वस्व गर्ब का धनुभव कर तुम्हारे सम्मुख गठ मस्तक हुपा है । मेरे मन में कदाचित् कभी धनवाने में भी ऐसी धाकाका नहीं की होगी कि जीवन में तुम्हारे धाठिरिकत कोई धम्य ” यह कह नह धालिक्त रका, फिर बोला—“मुझे इस जीवन में जो कुछ मिटना या बस तुम्हीं में मिल गया है । फिर भी मैं एक बात धवरय है बेबी बेबी धिष्या के धमाध की मैं एक क्षण को भी कल्पना नहीं कर सकता । मानो यह मेरा दूसरा लीभाव्य है । यह मैंने तुमसे न पहले ही कभी धिगाया था, धोर न ही धव धिपाने का कोई प्रयास कर रहा है । वास्तव में यह धव कोई रक्ष्य भी नहीं रक्ष गया तो भी यह जैसे एक बड़ा रक्ष्य हो जिसे जितना स्पष्ट रूप में कहो वह उतने ही धाधिक धरिमात्र में रक्ष्य पुने होता बनता है ।

मंत्रिका बोली—“तो फिर क्या यह सब कुछ मेरे एक पत्नी के धाचार्यत धाधिकार पर कठाधमात् नहीं हुपा ?”

धाचार्य धिष्य तत्परता से बोल उठा—“नहीं कदापि नहीं बेबी यदि मैंने एक क्षण को भी ऐसा धनुभव किया होता तो निश्चय मानो बेबी धिष्या कभी भी मेरे मन से निकल पई होती । धुने विस्वास करो बेबी धिष्या मैं ह्यारे मध्य कदाचित् ही कभी ऐसा ध्यवधान धनस्थित किया होया करन् धाधिकारिक उसाह ही प्रधात किया है ।”

मंत्रिका बोली—“व्यवधान प्रस्तुत न किया हो ऐसा धाप धनुभव कर सकते है परन्तु मैं तो उरका स्पष्ट प्रधाव देख रही हूँ ।”

“तो कैसे ?” धाचार्य धिष्य ने उत्सुकता से पुछा ।

मंत्रिका इसका उत्तर देने को उत्तल हुई ही थी कि इसी मध्य सर्वेधवाहक ने धाकर धैरे धोस्त्राल बलाया—“धाय धाम ता प्रधात में ककालमयी बेबी धिष्या पमारी है ।”

यह सुन बोलो हो विस्मय हो गठ । हतप्रम हो उम्होने एक-दूसरे की धोर देखा । किन्तु धामने धण ही मंत्रिका के मुख पर ध्यय की मुस्कान लेस गई । तो भी धाचार्य धिष्य ने सर्वेधवाहक की धोर देखते हुए सर्वथा प्रहृष्टित्य कण्ठ स्वर में कहा—“पाहु धम्य उम्हें पही लिका लामो ।”

सर्वेधवाहक के बले जाने के पश्चात् मंत्रिका के मुख पर एक धपस मुस्कान

सठा है। मंत्रिका को भी जैसे इस बार कुछ शशोम धारण या क्या बोली—  
“स्वामी धाय मुझ से निश्चय ही कुछ छिपा रहे हैं, जो किसी प्रकार भी सोमाजनक नहीं। धायके लिए नहीं स्वामी मेरे लिए।”

धाचार्य सिध्द ने क्लान्त प्रायः कण्ठ स्वर में कहा—“यह देवी का भ्रम है और यदि कुछ छिपा ही रहा है तो वह मेरे वारित्य का धंय है।”

मंत्रिका तल्पता से बोम उठी—“धीरे धैरे प्रति धरिबवास। धय बरामो धाचार्य सिध्द यदि देवी सिध्दा ने इसका शरंश भी धनुरीच किया होता तो क्या धाय इसी बात को उधसे इस प्रकार धोपनीय रखते ?”

मंत्रिका जैसे यह धारण बस कह उठी। तल्पवपात् वह धय्या पर बैठी न रह सकी और वहाँ से उठ निकट ही में खड़ी हो गई।

धाचार्य सिध्द की दृष्टि भी इस धार ऊपर उठे बिना न रही। धम्टर में उधने कुछ भी धनुमन किया हो पर प्रकट में वह केवल विह्वलते नेत्रों ने मंत्रिका की धोर देख सका। वे कुछ शरणों तक मंत्रिका की धोर इस प्रकार देखते रहे जैसे उधसे कोई महत्वपूर्ण धन पूछ रहे हों। किन्तु मंत्रिका ने जो कुछ कहा वा उध पर उधने इस समय न तो परधाताय का धीर न ही धारमध्यानि का धीर न ही लज्जा का धनुमन किया बरन् उधे हुआ जैसे धाज उधने यह सब कुछ कह धपने मन के धार को उधार फेंका है। धाचार्य सिध्द धमी भी धय्या पर लेटा वा। उधने मुस्कराते नेत्रों से मंत्रिका की धोर देखा फिर उधे धपने निवट धाने का धवेच भी किया। परन्तु मंत्रिका क्या स्वाग ही खड़ी रही जैसे उधने धपने स्वामी के इस धुपरिधित इधित को समझ ही नहीं। धम्ट में धाचार्य सिध्द धार्णों परधय की विधयता से उठ खड़ा हुआ। किन्तु उधके मुख पर इस समय भी मुस्कान केम रही थी। मंत्रिका की धुधामो को हाथ में बकड़ धर्वना सहज धन में धोला—“देवी ! इस धीवन में मैं तुम्हें धातर धयमुच बन्ध हो गया हूँ।”

धाचार्य सिध्द बधाधित धमी धाने धीर कुछ कहा वाहवा वा कि रती मध्य मंत्रिका धारण बोम उठी—“धाचार्य सिध्द धापने मुझ परे यह निश्चय ही ध्यंन किया है।”

यह वह मंत्रिका के कपोल धहने से भी धधिक रधितम हो उठे। उधे इस दया में देस धाचार्य सिध्द को लया जैसे उधके सन्मुख इस धण कोई प्रौढ़ महिवा नहीं बरत् एक ऐसी धधोय बासा लगी है जिधका हृदय सहवा विडोह कर पठा है। यह देस धाचार्य सिध्द वा मन भी ध्यधित हो उध धाय हो सिध्द भी परन्तु इन धोर्णों के मध्य कहीं उधका स्वाधार्थिक धधीर्य भी धटक रहा। धीर इस लारी धनधि धनके मुख पर धाधीयता धुन मुस्कान सेमती रही। किन्तु धय वह बोला ता धनका कण्ठ स्वर कुछ कुछ धारी धरीत हुआ। वहुने मना—“तो देवी ने इने ध्यंन समझ है ?”

मंत्रिका दृढ़ता से यह उठी—“हां धाचार्य सिध्द, धीने उधे ध्यंन ही समझ है और जो समझ है वह धनुधित भी नहीं।”

धाचार्य सिध्द मंत्रिका के इस धारण धीर धनकी इस दृढ़ता को देस वहुने





खेल खड़ी। वह आचार्य शिष्य की ओर देखती हुई बोली—“बगैरे आचार्य शिष्य और यदि मैं संदेष्टाबद्ध से कहूँ बैबी कि आपसे बैबी शिष्या से लौट जाने की वह हो तो भसा तब क्या होता ?”

यह सुन आचार्य शिष्य के मुख पर भी एक अपस मुस्कान खेल खड़ी। बीबा—“इतना सोचकर भी अन्ततः तुम क्या कहतीं, वह तुम मुझे बताओ इसकी आवश्यकता नहीं।”

इस पर मंत्रिका ने तनिक हँसते हुए कहा—“आप कितने संतर्पामी हैं। सो तो मैं भी मनी प्रति जानती हूँ। पर इतना तो सोचा होता कि बैबी शिष्या आज प्रथम बार ही हमारे आवास पर पधारी हैं तो फिर क्या यह किसी प्रकार उचित है कि संदेष्टाबद्ध को ही उन्हें यहाँ निवास माने का आदेश कर हम यहीं बड़े रहे उनकी प्रतीक्षा करें ?”

आचार्य शिष्य मंत्रिका की ओर देखते हुए बोली—“हाँ उचित तो नहीं बैबी पर मम भी समता था।

“तो किससे आचार्य शिष्य ?” मंत्रिका ने तत्परता से पूछा।

आचार्य शिष्य उत्तर में मंत्रिका को धीरे से कह के बोल गईं। मंत्रिका भी उसकी ओर देखते हुए, कल स बाहर निकल गईं और फिर जैसे उस्ताह के आदेश में आस्वाभाव की धार बौझ-सी ली।

इस मध्य बैबी शिष्या संदेष्टाबद्ध के साथ कल की ओर चल पड़ी ली। मंत्रिका ने जैसे देख पहिले तो मठ मस्तक हो उठका अभिवादन किया और फिर सोस्ताह उठकी ओर बढ़ बोली—“बैबी आज यह हमारा सचमुच परम सौभाग्य है।”

इस पर बैबी शिष्या का मुझ-सीम्ब अन्तर के विनीत भाव से और मुसर हो उठ। सकोच से कपाला की स्थिर लालिमा पर विह्वल बौझ गई और कान उल्लास की उल्लास से अकलित ही उठे। घोष कुछ घुने तो धुंध बंठ-बंस्ति समस्तक बमक खड़ी। सविनय, सीम्बभाव से बोली—“बैबी यह आपकी सहायता है अम्बवा मैं भी किन योग्य हूँ।”

मंत्रिका उत्तरित हो उठी। अपने उत्तरीय के दोनों कानों बैबी शिष्या के सम्मुख लीना फिर जैसे बार्न को बुहारती हुई ली वह सोलाह मुद्रण बण्ड स्वर से बोली—“बैबी धारकी कला प्रतिभा के सम्मुख जसा कीन नव मस्तक नहीं है। लमी को तो उस पर गर्व है। धारका स्वागत कर मैं तो आज सचमुच बस्य हो गई हूँ। धीरे यह प्रामाण्य ? बैबी यह ली धार आपकी बरण्य प्रति से सचमुच मुनरित हो उठा है।

बैबी शिष्या इस पर पूर्व से भी अधिक संतोष का अनुभव कर उठी। बहने लगी—“धच्छीनुकी धारकी इस आतिथ्य भावना के सम्मुख मैं नव मस्तक हूँ।” यह वह वह तनिक खड़ी। उसके मुख पर नहसा बिता का सा जोर उभर धारा। स्पष्ट हूँ ली पूछने लगी—“बगैरे बैबी आचार्य शिष्य इतरक ली हूँ न ?”

मंत्रिका ने नव मस्तक हो कहा—“ली लो लो सब नवर बैर्यों की हता है।”

आचार्य शिष्य ने अभी यह कथना भी नहीं की थी कि बैबी शिष्या किसी दिव

सिधे आवास पर भी आ सकती है। घण्टा बसका हृदय हृदयतिरेक से घोटप्रोठ हो उठ। परन्तु साय ही यह भी आसता रहा कि बसका इस समय यह धागमन हुआ तो कैसे हुआ ? किन्तु निरन्तर सोचते रहने के पश्चात् भी वह यह समझने में सर्वथा असमर्थ रहा। हाँ उसके मन को यह धारणा अनुभव हुआ कि कुछ समय पूर्व ही उसके घन्टर के विकास का जो सावर उमड़ता पड़ रहा था वह सहसा घात हो गया है।

घोर अमेरिका के साथ जब सभी शिष्या ने कथ में प्रवेश किया तो संकोचबध उसके तैय्य परक ऊपर हो न उठ सके। उसे हुआ जैसे उसकी बायीं पंख हो गई है। डेवी देवी शिष्या के सम्मुख बस हो गई है। जिसकी प्रतिच्छवि को अपने नेत्रों के सम्मुख संकोच अपने एकान्त में न जाने क्या क्या कहा है। घोर उससे न जाने क्या कुछ माँगा है। उसके सबोध कथ के सम्मुख ही जना उसने कब धरने मृत भाव को छिपाया था। उसके आनमन पर वह इस समय सर्गर्ष गद्गद था तो जो प्रकट में वह संकोच का अनुभव कर सका जैसे किसी विरपरिचित से घनावास ही, संयोगबध विर-आकांक्षित माता लकार हो गया था। देवी शिष्या यूँ उसके नेत्रों के सम्मुख ही डेवी थी परन्तु उसकी दृष्टि उसके घन्टर पर विराजमान उसी की प्रतिच्छवि को निहार रही थी। वह मन-ही-मन कहने लगा—'जना में भी किना मुझ हूँ। जिसके सम्मुख घटा ही मैं बोलता रहा है। भाव उसी को बसकर मैं मीन हा उठा हूँ।' सहसा उसके मुख से ध्वनित हो उठ—'देखो तो यह भी कौन सी विचित्र पहेली है।'

यह सुन सभी शिष्या घोर अमेरिका दोनों ही कुछ चौंक-सी गईं। दोनों ही के मुख से एक वाक निकल ही तो गया—'तो कौन थी पहेली आचार्य शिष्य ?'

आचार्य शिष्य की जैसे तंका दूरी, वह सचपका-सा गया। मार्गो संवेष्ट होता हुआ वा बोला—'कच नहीं कुछ नहीं देखियो ! घोर फिर जैसे अपनी ही किसी दुर्बलता पर वह लज्जित हो रहा। उन दोनों की दृष्टि-धरया में बैठना उसे असम्भव सा प्रतीत होने लगा। मन को हुआ कहीं भाव बने किसी ऐसे स्थान को भाग बने वहाँ वैदानी के प्रति मोह की बूझती शीघ्र ऐसा एक भी न हो घोर न ही हो दावित्य का लक्ष्य कुछ धार।

अमेरिका पुनः अपने स्वामी की यह मन-स्थिति देख बिलग मन से दृष्टि नष्ट किम्पु डेवी रही। मन-ही-मन सोचती रही—'वाक स्वामी के सम्मुख निरवय ही कोई बलित बनस्या है। तमी तो देवी शिष्या की सम्मुख बैसकर भी वह स्वस्थ न हो सके। देवी शिष्या भी मीन ही रह तैय्य कोरों ने उसके मुख पर छाई संज्ञा-दुविधा की भ्रंई का धारणाकन करती रही। आचार्य शिष्य का दुविधा भाव इस समय तक घोर जी धार्मिक प्रमाद हो उठा था। उसे हुआ जैसे उसकी साधु बैठना ही तो विक्षिप्त हो गई है। भाव ही विचारों के धारण में वह एक बारतो धारण शीघ्र मिहूर-सा गया घोर उसका मन मार्गो विरपता से घातनाय कर उठा। उसका मन भी जैसे किमी धन-धरना का लक्ष्य कर गये। वह बोझिल कथ स्वर में बोला—'जमी मना कमी धारणे जगहता को धनिधान बनते देखा है। तून देया हो तो धर डेवानी में देन लो।'

घोर फिर, उनके दुविधा-घात मुख पर स्फुरित पति से कथ-विश्राम एवं मृणा का सा भाव उभर आया। अमेरिका घोर देवी शिष्या दोनों को यह सब कुछ

पर्यन्त रहस्यपूर्ण बना। किन्तु, साथ ही दोनों को हुषा जैसे एक कोई रहस्य उनके सम्मुख उद्घाटित होने को है। घट के कुछ सम्भ्रम कर बैठ गईं और उत्सुक दृष्टि से घाघार्य दिव्य की घोर देखने लगीं। घाघार्य दिव्य के मुख पर जब तुम बिना की बाड़ी रेखाओं ने स्थान से लिया था। उन्हें देख देवी दिव्या को लगा जैसे धात्र जबका मन अपने सारे संयम को तोड़ घाघार्य दिव्य के निष्कट छटक कर बैठ जाने की उद्यत हो उठा है। मागों वह पुछने को उद्यत हो उठा है— क्यों घाघार्य दिव्य भना ऐसी वह कौन ही समस्या है जिसके समाधान के प्रयास ने तुम्हें इस परिवार में अज्ञेयित किया है।”

उसके अन्तर में न जाने कब से अनुपम भारतीयता का भाव मागों स्पष्ट कर में बाप उठा और जैसे वह संकोच के विवर्त विग्रह कर उठा हो ऐसा विग्रह कि जिसका अन्तरे जब तक कभी भी अनुभव नहीं किया था और यदि किया भी था तो उस भविष्य की सुखद क्षणता के सहारे भुला दिया था। उसे लगा जैसे आज उसे अमेरिका की उपस्थिति देख रही हो। परन्तु, साथ ही उसका मन परचात्तर का था अनुभव कर बुरी तरह से प्रकणित भी हो उठा। उसे लगा जैसे कोई उसकी सुप्रसिद्ध घाघारा घात्र भनायास ही सन्निहित होने को मचल उठी हो।

अमेरिका को भी हुषा जैसे वह वहाँ इस समय केवल भाषा का में उन्निहित है। उसे यह अपनी धनविचार धेपटा प्रतीत हुई। अपने ही से बोली—“पर इस समय कब भी गया ? किन्तु उसका मन फिर भी जैसे उसे स्वामी के कन्वाले के लिए, वहाँ से जाने को कहता ही रहा। विवद हो एक बारपी वह उठ ही भी थी पर जब साप न ले सका संकोच बड़ी की बँधी ही रह गई अपने को प्रकणित करती हुई थी।

इसी मध्य सहसा घाघार्य दिव्य बोल उठा—“देवियो निष्कर्ष उन्मुप है परन्तु प्रमाण उपलब्ध नहीं। तो फिर क्या प्रमाण के अभाव में अनुसूति के आधार पर प्राप्त निष्कर्ष का अपना कोई अस्तित्व नहीं ?”

अमेरिका को हुषा जैसे स्वामी ने वह तो बुना फिर कर अभी के किसी प्रश्न का उत्तर देने का प्रयास किया है। और जो कुछ वह कहना चाहते हैं स्वयं मुझ ही से कहलबना चाहते हैं। घट सावधानीवश मौन ही रही।

किन्तु देवी दिव्या बोल उठी—“घाघार्य दिव्य ! मागान्यसः मन्मथ उसका कोई अस्तित्व नहीं। पर साथ ही वह उपेक्षा का भी विषय नहीं। उनका निर का भी महत्व है। घटएव विवेकशील सदा ही उसे पुष्ट भूमि में रग मन्त्र दृष्टि में सर्वथ भविष्य में आश्चर्यक प्रमाण की रोज करते हैं।

मह मुन घाघार्य दिव्य को हुषा जैसे वह जिन मयादान की रोज में था उसे यह निर मया है। उसके नेत्र ज्योतिष हो उठ। उत्पन्नित कन् स्वर में बोला—  
‘देवा दिव्या घाघ निरमहिह ठीक नहीं है। तथापि एक बात है ।

मह वह घाघार्य दिव्य मध्य ही में रुक रहा।

दूसरी दिव्या ने महत्त्व भाव में पूछा—‘तो कौन ही घाघार्य दिव्य ?’

घाघार्य दिव्य अपने अस्तित्व में उठ प्रश्न पर विचारना-सा जैसे उसे हन्

दार्श्यों में बचिने का प्रयास करने लगा। किन्तु पर्याप्त विचारने के परभाव भी जब उसे उपयुक्त भाषा न मिल सकी तो बोला—“निष्कप भ्रम भी तो हो सकता है देवी शिष्या? फिर यह भ्रम विमेष का कारण बन सकता है और विमेष अंततः विनाश का?”

देवी शिष्या बोली—“आचार्य दिव्य भाष ठीक ही कह रहे हैं। किन्तु जहाँ विनाश में भ्रम की बुद्धिवा हो जहाँ आचार्य शिष्य मिथ्या का अन्वयन से किसी भारतीय के सम्मुख उसे प्रकट कर सहज ही में परामर्श का रूप दिया जा सकता है। बैधानी में तो भारतीय जनों का अभाव नहीं कम से कम आपके लिए तो बिलकुल भी नहीं।”

आचार्य शिष्य को जया जैसे वह जहाँ से जना था, फिर वहीं जा पहुँचा है। किन्तु साब ही उसे यह भी प्रतीत हुआ, जैसे दुल्ही सुलझनी जा रही हो और यदि न भी सुलझ रही हो तो उसने भ्रम निवारण की दिशा में अवश्य ही कोई महत्वपूर्ण नक़्शे दिया है। केवल संकेत ही नहीं वह तो स्पष्ट ही आशंका है। वह उत्साहित हो उठा। पर हीन हो उसे जैसे फिर निराशा में धा बेरा। बोला—“परन्तु देवी शिष्या परामर्श भी तो नहीं सम्भव है जहाँ भारतीयता हो और जब भारतीयता ही अस्तित्व हो उठे तब?”

देवी शिष्या सहज रूप में मुस्करा उठी उसी प्रकार विश्रान्ति कि वह खेटी पुत्र कल्पित से मुक्ताहार प्रकृत कष्टों हुए मुस्करा उठी थी। आचार्य शिष्य मन-ही मन कह उठा—“अन्वयन यह मुस्कान प्रसंग है और भारतीयता भ्रम है तब जीवन तो सचमुच निस्तार है। और देवी शिष्या उसी प्रकार मुस्कराती रह, जोन उठी—आचार्य शिष्य अविह अकारण भी हो सकता है अथ उसे मन से निकाल फेंकना ही अस्पर्श है। क्यों? क्योंकि जहाँ वह अपने ही प्रति अभिस्वास का भाव से बुद्धिवा को अग्र्य देता है जहाँ दुनरी और अविरोध का भी प्रमुख कारण बन जाता है, और फिर अविरोध संकट का सूत्रपात कर उठता है।

मंत्रिका यह सुन मन में न जाने क्यों आतंकित हो उठी। पर आचार्य शिष्य का मन अलग उठा। उसकी बुद्धि बलात् मंत्रिका की भार चुन उठी पर का टिकी। मंत्रिका ने बल में कभी सति को जैसे सप्रयास बाहर निकाला और फिर अन्वय आचार्य शिष्य एवं देवी शिष्या की ओर देखा। देवी शिष्या के मुख पर उसने सद्यः भाव भी तो किसी हुएप्रह का किम्ह नहीं पाया। उसे वह सर्वथा निरापव प्रतीत हुआ। वास्तव में उहका मुख भाव हीमतर हो उठा था।

मंत्रिका मन-ही-मन बोली—“जीवन सचमुच एक पहेली है जिसे जितना सुलझायो उतने उतने ही उत्तम रहो और यदि न सुलझायो तो उसी में अन्वय, मुक्ति के लिए अग्रहते रहो।”

उसके मुख पर जैसे किसी अदृष्ट पराजय की अज्ञाता, प्यकी मुस्कान का सहारा मिली हुई सी फँस गई।

इसी समय आचार्य शिष्य सहसा पृष्ठ उठा— और क्या देवी जया अनुभूति क्या है?”

देवी शिष्या पीठिका से उठती हुई बोली— प्राचार्य शिष्य संत प्रेरणा ही का वृक्ष नाम तो अनुमति है।”

प्राचार्य विषय उत्तरता से पुनः पूछ सटा—“धीर बाह्य में से कुछ नहीं।”

देवी शिष्या ने प्रत्याग करते हुए, समबुद्धि से पति-पत्नी की ओर देखा। फिर बोली—“प्राचार्य शिष्य वह केवल संयोग की बात है परन्तु जो बाहर है वह नीच है धीर जो अन्तर में है, वही मुख्य है।”





**आ**चार्य विष्व कीर देवी सिध्या के मम्म के इत प्रसोत्तर के प्रवाह में क्या कुछ रहस्य गमित था उसे मंत्रिका कुछ समझी भी थीर कुछ नहीं भी। वह तो फिर भी कुछ समझ गयी पर किसी अन्य के लिए तो वह जैसे सर्बथा समझ से बाहर ही की बात थी। थीर की बात जोड़ो स्वयं आचार्य विष्व ही उसे समझने में बसमयें रहा। उस दिन संभ्या समाज में उसने बाह्य में जो कुछ भी देखा था उसके घन्तर में कुछ थीर बात भी हो सकती है वह वास्तव में उसके यस्तिष्क में घाई ही नहीं थीर न ही श्रेष्ठीपुत्र कल्पिन तक यह समझ सका था कि देवी सिध्या को अपहार स्वय्य मुकताहार बंद कर वह किसी संकट का भी सुषपात कर रहा है।

वास्तव में हुआ क्या था? कोई दो बर्ष की लम्बी घबबि के परबत् श्रेष्ठीपुत्र कल्पिन जिस दिन बंधानी भीटा था उस दिन विनिरुचय धमारय बर्षकार उसकी कुशल धम पूछने उसके धावात पर पहुँचे थे। कुशल धम पूछने के परबत् फिर उन्होंने इस बात पर चिंता प्रकट की कि श्रेष्ठीपुत्र अब कभी बाहर जाते हैं तो प्रत्येक बार ही उन्हें निबधिरित घबबि से अधिक समय मन जाता है। फिर इसी सम्बन्ध में उन्होंने धपना यह भी मत प्रकट किया कि वह तो निरुचय ही बलेध मणिबध का प्रकोप है। इसके पूर्व श्रेष्ठीपुत्र कल्पिन इस बात पर मन-ही-मन ह्वित था कि बल्लो दो बर्ष की यह धाना सफल हो गयी क्योंकि वह धारी धाना में धन धमित कर लीटा था थीर उसका यह लाभ बंधानी के अन्य किसी भी सर्बबाह्य द्वारा धमित धन धपि धे नहीं धबिक था। किन्तु उसने आचार्य बर्षकार के मुख से जब यह सुना तो वह सक्रिठ हा उठा। वह सोचने लगा? दो बर्ष की यह धाना भी की थीर देखो तो कीर्दे विरुध साम भी नहीं हुआ कहीं यह सधमुध धनधध मणिबध का ही प्रकोप न हो। धत यह धानु रताबध स्वध-धाना-धेधता के इन प्रकोप को धान्ठ करने का उपाय भी बयोबूध वि निरुचय धमारय से पूछ बैठे।

आचार्य बर्षकार कुछ समय ता ध्यानस्व हुए जैसे उत्तर में कुछ सोचते से रहे फिर जैसे उन्हीं सहसा कोई बात स्मरण हो घाई। पूछने लगे—“क्यों धामुध्यान, धला कभी तुमने बलेध मणिबध के बँध के सम्मुख उपाधना भी की है?”

श्रेष्ठीपुत्र कल्पिन बोला—“धायबद, धेन तो कभी नहीं की हूँ धल कस्याली देवी सिध्या से एक बार मेरे धंघस की कामना से धबधध की थी?”

इस पर आचार्य बर्षकार जैसे प्रसन्न हो उधरना से धोन उठे—“हूँ धामुध्यान यही तो मैं धानना चाहता था।”

तनिक बरतक बहु फिर कुछ सोचते से रहे । खेप्टीपुत्र कल्पिन उनके मुख की धोर धरनुकटा हैं बेसठा रहा । कुछ सोचने के परचायु आचार्य बर्षकार ने फिर पूछा—“धीर क्यों धामुध्यान उन उमासना के उपलक्ष्य में तुमने गण कस्याणी को भी कुछ भेंट किया या या नहीं ?”

इस प्रश्न को सुन खेप्टीपुत्र कुछ व्यग्र-सा हो उठा । मुख पर घासका का भाव उहम-सा बना । बोला—“नहीं तो धार्यवर धीर कबाबिल मैं यही भूम कर बैठा हूँ ।”

इस पर आचार्य बर्षकार पीठिका से उठ, कल्पिन के धीर निकट जा बोला—“धामुध्यान केवल भूल ही नहीं यह तो भयंकर भल हुई । प्रयास भी हुआ क्योंकि देवी शिखा को बहु संयस कामना किए कुछ भी नहीं तो बारह बर्ष से भी अधिक बीस तुके धीर तुमने इस सारी शक्ति एक बार भी इस बात की सुच नहीं की ।

खेप्टीपुत्र बहु सुन स्पष्ट ही जैसे शयभीत हो उठा । पूछने लगा—‘क्यों धार्य वर क्या इसका सब कोई उपाय नहीं हो सकता ?’

आचार्य बर्षकार मानों आश्चर्यजनपूर्ण कष्ट स्वर में उत्तरता से बोल उठे—“क्यों नहीं खेप्टीपुत्र क्यों नहीं ? इस संसार में नला जायों की भी कोई कमी है धीर फिर बीछानी के ये शक्ति तो स्वभाव से बड़े हां भोले हैं ।”

यह कह, आचार्य बर्षकार बरतक जैसे फिर कुछ सोचने में व्यस्त हो उठे । पर, खेप्टीपुत्र कल्पिन का व्यग्र भाव धीर प्रयास ही उपाय जानने के लिए उठावता हो उठा । बहु नर मस्तक हो आसक्त शीनता के साथ बोला—“फिर धार्यवर धार ही कोई उपाय बताएँ न ?”

यह सुन आचार्य बर्षकार की मुख मुद्रा जैसे प्रयत्न व्यस्त हो उठी । कुछ सोचते हुए बोले—“धामुध्यान, उपाय तो प्रयत्न चल है परन्तु उपाय पानन भी उठना ही कठिन है ।”

कल्पिन उत्तरता से बोल उठा—“धार्यवर, चाहे कितना भी कठिन क्यों न हो उपाय धामुध्यान तो करना ही होगा । आचार्य मैं बहु धरनर कक ना ।”

खेप्टीपुत्र के मुख पर निश्चय की वृद्धता छा गयी ।

आचार्य बर्षकार ने उसकी धोर बेसठे हुए कहा—“धामुध्यान तुम्हें कोई भी तो बहुमुख धामुध्यान देवी शिखा को भेंट करना होगा ।”

कल्पिन प्रश्न होता उत्तरता से बोल उठा—“धार्यवर, यह तो कोई कठिन बात नहीं । क्या मैं एक धामुध्यान भेंट करने के धाम्य भी नहीं ?”

इस पर आचार्य बर्षकार तनिक हँसते हुए बोले—“तो तो मैं भी जानता हूँ धामुध्यान परन्तु उनकी शक्ति तनिक कठिन है ।”

खेप्टीपुत्र क मुख पर धारी उत्सुकता का भाव उभर आया ।

यह सोचता पूछ उठा—“यह शक्ति क्या है आचार्य ?”

आचार्य बर्षकार पुनः पीठिका पर बैठ उठे मानों समझते हुए से बोले—“देवी शिखा को धामुध्यान भेंट करते समय केवल तुम्हारे मन में ही यह बात धरनी चाहिए कि तुम किम उपलक्ष्य में उठे यह उपाय प्रदान कर रहे हो । धूमरे, उनसे बूझि धार्यवरतक रूप से उपायना की सी घत धार्यवरतक रूप में ही तुम उन यह उपाय भेंट

करी पात्र ही संख्या समान में नृत्य के परचाय सभी की उपस्थिति में यदि यह शुभ कार्य सम्पन्न हो जाए तो धीरे भी अधिक भयस्कर रहेगा। धीरे धातुमान देखो कोई बहका कारण पुछे उसके पूर्व ही शुभ धरणा प्रयोजन भी प्रकट कर दो।”

“किन्तु प्रबोधन रूप में मुझे क्या प्रकट करना होगा धार्यवर ?” कथिन ने शुभ उत्सुकता का भाव दिखाते हुए पूछा।

धाचार्य बर्षकार हँसते हुए बोले—“आमुष्मान्, तुम धनमृष कितने भोले हो। यना वह भी कोई पुकने की बात है ? देवी शिष्या एक वय-कस्याएली है धीरे सभी को उस पर सातवित भाव प्रकट करने का समान रूप से अधिकार है। धर उतसे कहना—देवी, इस सेवक ने दूर दियेय तक माया की है धीरे एक से एक मुम्बरी देवी है परन्तु इस धामुषय के लिए कोई भी जो योग्य पात्री नहीं शिषी, फिर तुम्हारी धरा भी जो यदा ही मुष् पर बनी रही है। स्वप्नों में न जाने कितनी बार तुम्हारे इन नृत्यों को देख मीने धान्त्य का धनुमय किया है, धीरे को धाम तक इन प्रकार मीप नीम बना रहा वह सभी के सम्मुख प्रकट हो सके, इसी से प्रतीक रूप में यह तुम्ह उपहार देवी की सेवा में प्रस्तुत है।

धीरे उसी दिन संख्या समान में जब येष्टीपुत्र कथिन ने देवी शिष्या को उसके प्रथम नृत्य के परचाय ही सभी की उपस्थिति में इसी भावोरपार के साथ सोन्वाह मुस्ताहार बँट किया तो तमूके बर्षक समचाय में हृदय की लहर शीघ्र बई। सभी तो येष्टीपुत्र का सामुवाय कर उठ। वय-कस्याएली देवी शिष्या ने भी उसे समु स्कान प्रहृण कर उसे अपने नेत्रों एवं धोष्ठीं से जवाया तथा पंख उतसे अपने कण्ठ को मुसीबित किया। फिर वह धनुषह स्वस्म दुष्टय वृत्त करती उससे लिए वह स्वाभाविक ही था। किन्तु उसके परचाय धाचार्य शिष्य के लिए जैसे वहाँ बँडे रहना धर्ममय हो गया। वास्तव में वह येष्टीपुत्र कथिन के भावोरपार को सुन स्वम्न ही बठा था धीरे उसकी वह सत्यता शीघ्र ही विक्रोम में परिसुत हो उठी थी। जो भी शिष्यशासक वह वहाँ किसी प्रकार बीठ रहा धीरे उसके मनमें दिन ही धाम भव वह बलाभल शिह देनापति के बुन से नीट देवी शिष्या की प्रहृाशिका की धीरे मया था जो कदाचित उसका इत सम्बन्ध में सबसे कुछ पुकना भी मुष्म प्रबोधन रहा ही। परन्तु फिर डार तक जाकर भी बापस क्यों लीट आया ? वह सोचने जगर—‘यह धन कुछ पुष्पा केवल मेरी संकीर्ण मनोवृत्ति का परिचायक ही तो होना।’

धीरे धाम उसके कुछ समय परचाय ही जब स्वयं देवी शिष्या बलकर उसके धामस पर धई तो वह प्रत्यक्ष में उसका कोई स्पष्ट कारण नहीं सम्य था। केवल संकेत में ही जैसे कुछ समझने का प्रयत्न किया। वास्तव में उसे कही विहित नहीं हो सका कि उसे देवी राहुली ने भेजा था। उसने क्यों भेजा था यना कि प्रह प्रस ही उसके अस्तित्क में कति बठ जाता ? तो भी वह जैसे कठ मोसाहित हो पठा। किन्तु उसके अस्तित्क पर धाचार्य बर्षकार के साथ हुआ वाताताय धीरे फिर शिह देनापति के धनुष कही गई पक-स्याय की बात पूर्ववत् ही छाई रही। पहली बात को लेकर भाव वह दुविधा प्रस था तो दूसरी का ध्यान कर वह अधिकाधिक सात्वन्मानि का सा धनुमय कर रहा था।



श्रीर धार्याय बर्षकार ने श्रेष्ठोपव कथिन ॥ क्या यह सब कुछ किसी विनोद  
 वस कहलवाया या या फिर किसी धर्म प्रयोगन से । किंकि यह बात केवल श्रेष्ठोपव  
 कथिन श्रीर उम्ही के मध्य रही घट वह भी केवल रहस्य बन कर रह गई, श्रीर वह  
 भी एक ऐसी रहस्यपूर्ण कि घटका स्वयं कथिन को भी कुछ पता न बन सका । घट  
 उस रहस्य के सम्बन्ध में यदि किसी को कुछ पता हो सकता था तो वह स्वयं धार्याय  
 बर्षकार ही थे ।

वास्तव में राज-पुरोहित-मूर्खोत्पन्न एवं उरीयमान मयब साम्राज्य के भूतपूर्व  
 महामातल धार्याय बर्षकार को बैद्यनाथ आए इस समय तक कोई तीम बर्ष ही बीते  
 होये । परन्तु इस धार्याय में भी विनिश्चय समारण रूप में उन्होंने जिस उत्पत्ता  
 बुद्धि कीउन एवं उत्कृष्ट स्वाय श्रियता का उद्भव परिचय वे जाना था उसके फलस्वरु  
 रूप वह न केवल धार्याय बर्ष के धर्मिण संघ बन गये थे, बल्कि पूरा धार्याय विष्टेप  
 रूप में स्वाय पीठिका के लिए जैसे धर्मिण भी बन चुके थे । उनका एवं उनकी स्वाय  
 श्रियता का इस समय सर्वत्र प्रभाव था एवं उनकी वृद्ध व्यवस्थाओं के सम्मुख जैते  
 सभी मत्त-मस्तक थे । बैद्यनाथ में वह केवल एकाकी आए थे श्रीर जिस दिन वह राज  
 गृह से यहाँ पहुँचे थे उनके युक्त पर श्रीर निराशा का भाव स्वाच्छ था मर्तो मयब  
 राज मन्त्रालय के दुर्व्यवहार ने उनके श्रीर प्रकर एवं शीघ्रपूर्ण व्यक्तित्व पर क्षिणता  
 की एक स्वावी छाप छोड़ दी थी । उनका हृदय भी तब धार्याय व्यक्तित्व प्रतीत हुआ श्रीर  
 उस समय उनका मूल से जो भी छत्र निकलता उसे उन बड़ी प्रतीत होता कि जैसे  
 उनके घट्टर की भाँट पीड़ा साकार रूप ग्रहण कर सभी के सम्मुख उपस्थित होने को  
 बलत उठी हो । श्रीर जब कुछ दूरदर्शी बैद्यनाथों ने उनके प्रति सविह प्रकट कर उन्हें  
 साध्य दिखे जाने का विरोध किया तो इसे उन्होंने सर्वथा स्वाभाविक कह केवल अपने  
 धार्याय का ही दोष बताया । उन्हें बैद्यनाथों से रहने की अनुमति दी जाए मयब नहीं  
 बैद्यनाथों के महामातल व्यक्तित्वों एवं कर्षकारों से इस प्रसंग की लेकर कई दिनों तक तीव्र  
 बार विवाद चलता रहा था । उनके सागमन का विरोध करने वालों में स्वयं धार्याय  
 धर्मिण तो था ही सामन्त प्रजापति देव ने भी प्रसंग दिए जाने का श्रीर विरोध किया  
 था । सामन्त प्रजापति देव ने तो यहाँ तक कह दिया था—'यदि इस छद्म रूपों की  
 बैद्यनाथों में स्थान दिया गया तो मैं न केवल महावलाधिकृत का पद छोड़ दूँगा, बल्कि  
 बैद्यनाथों से भी जना आऊँगा ।'

परन्तु अंततः धार्याय बर्षकार का निरंतर धनुनय एवं स्थिति के स्पष्टीकरण  
 का प्रयास सामन्त प्रजापति देव तथा उनके समर्थकों की भी परिश्रमि करके में सफल  
 ही गया । श्रीर फिर इनके कनस्वरूप जब मत्त-धार्यायों ने उन्हें विनिश्चय समारण का  
 गौरवपूर्ण पत्र प्रदान किया तो उन्होंने उन समय कुछ ऐसा भाव प्रकट किया जैसे  
 वह उन सभी बैद्यनाथों से लडा-पडा के लिए उदाहृत हो उठे हों ।

श्रीर मत्तर बध की इन बुद्धावस्था में भी जब केवल अपने पद मार बदन तक  
 सीमित न रहे उन्होंने बैद्यनाथों में एक स्वाय-विद्यार्थी की भी स्थापना की ता बैद्यना  
 थिक इनकी काय क्षमता का देख मुग्न हो उन । प्राण-देना में वह धर्मिण रूप में आए  
 बर्षिक्रमारा को सम्प्राप्त तक स्वाय धार्याय की बीना जैसे श्रीर फिर स्वाय पीठिका की

धीरे प्रस्थान कर उठते । शीघ्रकाल की मध्याह्न वेला में जब धीरे सभी अपने विचाम कमरों में नैन से निद्राभंग्य होते, वह पीठिका में बैठ धर्मियों की चुनवाई करते । सान ही, उन्हें तत्परता से निपटाने का प्रयत्न भी करते । उनकी ग्याय तुमा से उठते प्राय सभी निर्जय दचुक होते । अतएव, बोपी बण्ड पाकर भी उनका धारर किए बिना न रहता धीरे निर्दोष धरने को बोप-मूख हुआ सुन मसा हृषित हुए बिना बँठे रह जाता ? अत-ऐसे निरपेक्ष एवं दक्ष विनिश्चय समालय का सिध्य बनना प्रत्येक सामन्त एवं श्रेष्ठीपुत्र अपना केवल परम सौभाग्य ही समझता । सर्वा की उनमें प्रवाङ्ग धारणा की धीरे सभी उनकी हुजा कीर पाने को सामानित थे । अत छात्रों में एक स्वामादिक इतिस्पर्धा थी । ऐसा समझा बँठे उनकी दृष्टि में बड़ने के लिए बँठे सभी सामन्त एवं श्रेष्ठीपुत्रों में कोई भीचल संवर्ष छिड़ा हो । धारार्थ बर्षकार ने श्री कभी उन्हें हतास्ताहित नहीं किया । सिध्यलय एक-से-एक बड़कर प्रफल दधका ठकं डोक कर ताते बिजाता रूप में धारार्थ पाव के सम्मुख प्रस्तुत करते धीरे वह भी बँठे पूरे मनीबोध से उनकी इस धाम सुधा को समुष्ट करने का प्रयत्न करते ।

उन्हीं के प्राहार के पृष्ठ भाग में एक विद्याल बट मूल बड़ा था । उसकी सम्भी छात्रा प्रदाचार्यों की सजन छाया में निरय ही बैद्यनाथी के कुछ भी नहीं तो कोई हो सी कुमार विद्यार्जन के लिए एकत्र होते धीरे धारार्थ बर्षकार जब अपने सिध्यों के इत सहस्रहोते समुधाम पर विरुधम दृष्टि डालते तो उनका बल वर्ष से पून उठता । किन्तु धाम जब वह धारार्थ सिध्य से बार्ता कर लीते तो उस समय अपनी इस बृहत् सिध्य मध्याती को देख उन्होंने बर्ष का अनुभव नहीं किया बरन् उनकी रक्त बाहि नियों में उत्साह का संचार हो उठा धीरे उनके नैन धाधा से शीप्त हो उठे । सभी को सम्बोधित कर वह बोले—“धायुष्मत्तो प्रतिपावान इत्य कुमारो, धीरे” मेरे विद्य सिध्नी ! मुझे धाम धाय सभी के सम्मुख एक महत्त्वपूर्ण घोषणा करनी है !”

सभी सिध्य उत्सुक दृष्टि से उनकी धीरे देख उठे ।

धारार्थ बर्षकार तनिक रुक फिर बोले—“कुममुवल कुमारो, मनीपियों की ऐसी बारछा है कि आज का कोई धन्त नहीं वह तो धनन्त है धीरे उसकी यहवाई भी मथाह है तथापि इस अज्ञानवि में धाय सभी ने अपनी प्रवाङ्ग सचि विद्या न्याय धारण का जो धम्मयम किया है धीरे पुन सम्मगता से उसके मूङ्मर्ष की समझने का प्रयत्न किया है उसे देख मैं तो सखमुख शक्ति रह गया हूँ । मन्व की राजनदरी में पूरे बालीस बर्ष रहने के परचात् भी मुझे जो बध नहीं मिल सका वह मुझे यहाँ केवल तीन बर्ष की धधिक में ही प्राप्त हो सका मसा इससे बड़कर मेरे लिए धीरे क्या सौभाग्य होगा ?”

यह कह कर वह फिर तनिक रुक रहे । सभी कुमार उनकी धीरे धारार्थिक बलुगता से देखते रहे । कारण उनके धाधाय उनसे क्या कुछ कह रहे थे, वे उठे धभी एक पूर्वत समझने में असमर्थ थे । धारार्थ बर्षकार तनिक विधाम के परचात् फिर बोले—“मेराभी कुमारो, मुझे बर्ष है कि इस धकिचम बृह ब्राह्मण को धाय सभी के धारार्थत्व का सौभाग्य मिला, धीरे बैद्यनाथी के उदार साधनों एवं श्रेष्ठीबनों की धर-रता की तो मैं बिलनी प्रपेक्षा करूँ वह बोड़ी ही है । तथापत ने एक दिन जब उन्हें एक धाय सखध रूप में पाते देख अपने प्रमुख सिध्य धालन्त से नी यह कहा था—

‘घामुष्मान प्रान्त्य यदि तुने कमी देवीं को एक साथ बसते न देखा हो तो घाज इस धोर घाटे इन लिखिछवियों के समूह को देख के तो जगहूने मनु सर्वथा उचित ही बात कही थी। तो देख-पुत्रो घाज में घाप सभी से एक निवेदन किया चाहता हूँ धीर वह निवेदन यह है कि ।

इसी मध्य एक दिव्य सहसा उच्च कण्ठ स्वर में कह उठ—“धार्पवर निवेदन कह घाप हूँ सखित न करें हम तो घापके घारिण के घाकांसी हूँ।”

दिव्य की इस बात की सुन घाचार्य बरकार के भापण का मुख्य प्रवाह जैसे मध्य ही में बक गया। जगहूनि उस कुमार की धीर दिख कहा—‘घामुष्मान सुवत तुम्हारा यह धीर्य तो निस्सन्देह प्रशंसनीय है, ममा यह क्षीन तुमने कहीं से पाया?’

कुमार सुवत की जगा घाचार्य कबाचित मेरे इस हस्तलेप पर कुछ हो गए हैं घत वह भयभीत हो उठ। कतिपय अग्य कुमारों ने भी यह उसका मान उतावलापन समझ घत के हँस पड़े। उनकी हँसी देख [कुमार सुवत यदि धुम्ब हो उठता तो स्वामाधिक ही था। घत वह घाशोचपूर्ण दृष्टि से उन हँसते हुए कुमारों की धीर देख उठा पर बोना कुछ नहीं। यह वृत्त देख घाचार्य बरकार नी हँसे बिना नहीं रहे। फिर बोले—‘घामुष्मान सुवत कबाचित तुम्हें यह अम हुआ है कि मैं तुम पर कुपित हुआ हूँ। घामुष्मान तुमने तो वास्तव में ही वह अपने उच्च कुम्भित बात कही थी?’

घाचार्य बरकार की यह बात एक अग्य कुमार को जैसे पकड़ ही उठी। वह तत्परता से शाशोच बोना उठ—‘घाचार्य पाद सुवत की क्या घाप एक उच्च कुन जगा कुमार कह रहे हैं वह तो ।’

समी वह कुमार कुछ कह ही रहा था कि इसी मध्य सुवत का एक अनम्य निज सावैद्य बोना उठा—‘मयीं निज नीतिरम्य नया तुम्हें भी सुवत के कुम्भित होने पर कोई घापति हो सकती है वह तो ।’

यह बात घाने बक ही रही थी कि घाचार्य बरकार के एक उच्च टहाके से वह उहना नहीं बक रही। तत्परतात् वह बोले—‘घामुष्मानो यह तो अचमुच बड़े हर्ष की बात है कि बैशाखी के कुमार अपने कम गौरव के प्रति इनने लजब हैं। किमी ने यह उचित ही कहा है कि जिसे अपने कम पर अभिमान न हूँ वह नर नर नहीं बरन् पशु समान है परन्तु कुमारो इस घाद-विचारके लिए यह समय उपयुक्त नहीं। हाँ तो घामुष्मानो मे जा कुछ कहना चाहता था वह कोई रूप ही महत्त्वपूर्ण बात थी। वास्तव में मे घब इनना मुठ हो चुका हूँ कि विनितरम्य अमात्य के इस घुस-वावित्त का निर्बाह करने में अममर्ष हूँ धीर अब तक मे दग औरबपूर्व पर घ अचकारत लूँ, मेरी प्रथम लच्छा है कि घाप ही मे से कोई कुमार इस महत्त्वपूर्ण नद को सुपोषित करे वह मेरे लिए गोमाम्य का धीर शाक दी यर्ष का विषय होना धीर मे निरम्य ही घाने को मार्पक हुआ ममर्षना।

घाचार्य बरकार की अघम्यावित्त घोपणना नेचम कुमारों तक ही सीमित नहीं रह गई बरन् देगते देगते नगर के पूरे घाचार्य घरार में फैल उठी। धीर फिर बात भी बात में अनेक मनु-माम्य नायकियों से रच उनक प्रानाद की धीर बोज दिए।

सामन्त कातिकेय इस समय तक पर्याप्त बूढ़ हो चुके थे और तब कई मास से पांडव रोड से नीकिल थे तो भी वह इस संवाद को सुन अपनी धम्या पर लटे न रहे उनके बहुरंग सिद्धिकारक हो आचार्य बर्षकार के प्रसाह की धार प्रस्थान कर उठे ।

विनिश्चय धमसय आचार्य बर्षकार के प्रसाह का मुख्य यकोष्ठ इस समय एक नहीं बनेक सन्माम्य एवं प्रमुख प्रोढ़ तथा बूढ़ नागरिकों से मुक्त था और उन सभी ने जब बूढ़ सामन्त को स्मृत्यावस्था में बर्षा माए बैठा तो सभी जैसे एक स्वर में बोले उठ—  
“बयो धार्य क्या अब भी आपके मन में यह से अवकाश ग्रहण करने की कोई इच्छा छिप रहे सकेगी ? अब तो आपको अपने इस निर्णय पर पुनर्विचार करना ही होता ।”

इन सभी के अनुरोध को धुन आचार्य बर्षकार जैसे घाटी बुविधा में पढ़ मए बोले कुछ नहीं । सभी उपस्थितजन इस समय पीठिकाओं पर घासीन थे, और तब उनके सम्मुख विनमता की वाकार मृति बने जाड़े हुए थे । सामन्त कातिकेय ने जब उनसे मासन प्रहस्य करने का अनुरोध किया तो वह नत मस्तक हो सविनय बोले—“धार्य वर, मेरे लिए आज का यह दिन सभी बैधान्तिकों के प्रति बुरतता प्रकट करने का दिन है । उनकी सेवा उत्कार के लिए इस सेवक के पास और कुछ ही है नहीं प्रत उनके सम्मुख नत मस्तक हो जाड़े रहना ही मुझे शोधा होता है धार्यवर । मुझे इसमें सब मुक्त अवर्तनीय धान्य का अनुभव हो रहा है ।”

बूढ़ आचार्य के मुख से यह सुन सभी उपस्थित जन अभिभूत कष्ट से ‘बन्ध-बन्ध’ कह उठे । उनके इस लौकिक्य की वे सभी मन-ही-मन सराहना करते रहे गए । सामन्त कातिकेय पीठिका से उठ, मस्तक नवाते हुए बोले—“धार्यवर, आपकी पत्नी तो वह सट-बटा है निदने आपके विरोधियों के हृदयों को भी जीत लिया है । आज के सभी आपके प्रति फिटने कठक है अब वह बताने की कोई आवश्यकता नहीं रहे गई ।”

आचार्य बर्षकार इस पर जैसे संकोच का अनुभव कर उठे सप्रयास बोले—  
“धार्यवर वह मेरा लौकिक्य ही था कि आप सभी ने मुझ पर उठ दिन कृपा की और वे जीवन में फिर से अपना शीप ऊँचा कर सका धम्यवा मधसयन ने तो ।”

यह कहते-कहते उनका कष्ट मलों बरकट-सा ही गया । सामन्त कातिकेय बोले—“माधवर, अब उसे मुता बैठा ही प्रकटा है । यह सब कुछ कह आप तो हर्षे धम्युव जालिजत कर रहे हैं । और जता वह आप पर कृपा ही क्या थी वह तो बैधान्तिकों ने अपने कर्ण्य का पावन किया था । धार्यवर इस समय हम सभी का वह अनु रोध है कि आप अभी यह से अवकाश लेने की बात मन में न जाएं ।

और इस अनुरोध के सम्मुख आचार्य बर्षकार जैसे फिर विवतर हो गए ।

उत्तर, संवेदनाहक कर्णिक ने जब मलाम्बस सिंह को आचार्य बर्षकार की इस बोधला पर सभाचार सुनाया तो तब स्तम्भ रहे गए । और बसुंतवाहक सामन्त मधुसयन ने जब यह मवाद सुना तो उन्हें तो जैसे अपने कानों पर ही विश्वास नहीं हो सका । किन्तु बुरसा प्रयास आचार्य धिम्य ने जब यह सब कुछ सुना और साक ही यह भी कि विनिश्चय आचार्य की इस बोधला का सब बैधान्तिकों के धनेक मलामाय नागरिक उनक प्रसाह की धार प्राप्त लिए हैं तो वह जैसे बिना नहीं रहा अपने पर नहीं बरक बैधान्तिकों की धम्योवता पर । किन्तु धम्योवता बट ? धम्यवस में वह अपने ही थे

यह प्रश्न पूछ उठा धीर फिर शाय्या पर सेटै-सेटै ही लल। इस प्रश्न पर मामों पूरे धनी  
 माम से सोचता रहा। उसका स्वास फून उठा तथा कण्ठ लूळ मया धोपठ भी मुम्क  
 ही जटे, घट कुळ बल पीने की इच्छा हुई वह मंत्रिका-मंत्रिका पुकार उठा। धीर  
 जब मंत्रिका कदा में बौड़ी धाई तो बोला—“बयों देवी सिध्या तदा तुम कृष्ण पोड़ा  
 सा प्रमाण नहीं वे सकती ?”

मंत्रिका यह सुन पक्षि तो विस्मित हो उठी किन्तु धमके लल ही एक टहका  
 वे हीन पड़ी। बोली—“स्वामी यह तो कभी की पई, परन्तु धापने तो मुझे पुकार  
 था।”

धाचार्य सिध्द में जीमि खान से उसकी धीर देखा साय ही वह धपनी मूल पर  
 भी विचारता रहा। परन्तु उध पर वह इस समय न तो हीन ही धीर न ललित ही  
 हुपा करन् उधकी मूल मुहा संमीर हो उठी धीर इस बार जैसे साबधान हो मस्तिष्क  
 पर कुछ बोर देता हुआ सा बोला—“देवी बड़ी प्यास लयी है।”





एक कर सब सभी प्रकोष्ठ से बने गए धीरे धीरे में विनिरचय अमाल्य बयोव्य  
 तावत् शक्ति केर को द्वार मण्डप से बिदा कर अपने विद्याम कस में आए तो वह  
 कपे पर से अलसीय उदारसे हुए, सहसा एक उच्च उदाका दे, हँस पडे। उन हँसी के  
 प्रमाह में ही जैसे स्वतः उनके मुख से निकल गया—“पूर्व कहीं के ?”

कमार मुग्ध न जाने क्या से क्या के एक कोने में चुपचाप बड़ा आचार्य बर्ष  
 कार के घाने की प्रतीक्षा कर रहा था। उधने जब विनिरचय अमाल्य का उदाका धीरे  
 उधी के साथ उनके मुख से निकल आया की सुना तो उसने अपना आचार्य के बने  
 देह, उधी के सम्मुख में यह सब कुछ कहा है अतः वह अब से उद्यम गया। किन्तु जब  
 उधने रहे पर्व कल से आय निकलने का प्रयास किया तो अस्वकी पय आहूट को मुख  
 आचार्य कीक उठे और जब तक वह अपनी किसी मूल पर कुछ साँचे उधसे पूर्व ही  
 उनके वारे यात में एक विह्वल ही बीड़ गई। परन्तु दुपरे ही अणु वह अपने को  
 सम्हाल पहले से भी अधिक उच्च उदाका दे हँस उठ। साथ ही मुग्ध की ओर से  
 हुकार, बोले—“बर्ष आमुप्याम अपने आचार्य के आवास में बना इतने संकोच की  
 क्या आत्यवकटा था.. धी—इवर आधो आमुप्याम !”

मुग्ध भी एक गया केवज एक ही नहीं गया बरन् आपस लीट, आचार्य के  
 बरखों में बैठ गया फिर बोला—“आचार्यसाह आब आरको संभाव्य के मध्य टोकने  
 की भी बुद्धता कर बैठो उध वर में लक्षमुख आत्यं कश्मा और आरी आरम-नानि  
 का अनुभव कर रहा हूँ, आर्यवर मैं समा की वाचना करता हूँ।”

यह सुन आचार्य बर्षकर के मुख पर एक कृटिच मुसकान खीच गई और वेधों  
 में एक रहस्यपूर्ण वाच आ आरका। अपने ही से कहने लगे—“कमार मुग्ध तू जैसी  
 अथा की वाचना करने आया है, वह मुझे मताने की आत्यवकटा नहीं। बरन्तु साथ  
 ही वह प्रथम में प्रमाह आरसीयता का आ वाच दिखाने हुए कह पडे—“आमुप्याम मैं  
 कपित हुआ यह तुम्हारा केवल भव है। तुम्हारे उठ चीन पर मैं तो लक्षमुख विपुल  
 हो उठा था। और किसी के बलिष्ठक में तो वह बात धाई तक भी नहीं थी। तुम्हारी  
 इस आमु बुद्धि को देख मेरी तो यही आरणा बन गयी है कि विनिरचय अमाल्य के  
 बौरवकुमें पर के योग्य यदि इस बीजानी में कोई है तो वह मुग्ध ही है।”

हुकार मुग्ध को लवा जैसे उठे उठका अमीष्ट मिल गया। उधका हुन  
 हुपुपुरा उठा लवा साथ अन्तर अन्तःकरण हो गया। आचार्य के बरखों पर अपने शीर्ष  
 को रगड़ते हुए पदच कण्ठ हवर से बोला—“आचार्य पा” यह सब आपके भी बरखों

की रज का ही प्रताप है। धार्यबा यह धर्किकन भी मत्ता किली योग्य वा ?”

धाचार्य बर्षकार ने इस बार उसे ऊपर उठाते हुए कहा—“यह सब तुम्हारा लक्ष्य कुनोचित हीनग्य है धायुष्मान धीर तुम्हें यही धोभा भी देता है।”

सुघत का मन प्रफुल्लित हो उठा।

उसे नए धारी कुछ समय ही बीता होमा कि त्रियेधबाहक ने कम में प्रवेश कर निवेशन किया—“धार्य धास्थानाधार में कुमार कीतिरन धामा है धीर यह धापके बर्षन किया बाहटा है।”

इस संवार को धुन विनिश्चय धामारय को एक सुखर धनुमृति हो रही। मन ही-मन उल्लसित हो उठे। परन्तु प्रकट में कुछ उपेक्षा का सा भाव दिक्ताते हुए बोले—“धायुष्मान सुबन्ध मेने पर से धवकाध मेने की इच्छा नया प्रकट की यह तो सब उधसे भी धारी धार्य ऊपर धा पड़ा। कह दो धायुष्मान उधसे भी कि यह नहीं धा जाए !”

त्रियेधबाहक के जाने के पश्चात् धाचार्य विचार-रिक्त हुए हैं धम्मा पर बैठे रहे। फिर भी एक बात जैसे बसात् उनके मस्तिष्क से धा टकपाई। यह उही पर धारी कुछ सोच ही रहे थे कि कुमार कीतिरन ने कम में प्रवेश किया। उधे बैठ यह उत्तरा से धम्मा पर उठ बैठे। तब ही बोले—“धायो पुनवर धामी। इस समय तो मैं लक्ष्य धुन ही प्रतीक्षा कर रहा था कि संयोग से त्रियेधबाहक ने तुम्हारे धायमन की लुचना धाकर ही मन प्रसन्न हो उठा।”

कीतिरन नव मस्तक हो सविनय बोला—“धार्यवर यह मेरा परव धीमाध्य है धार्य धाका करें।”

यह धुन धाचार्य जैसे धम्मा पर बैठे न रहे धके। उधसे नीचे उतर कीतिरन के समीप धा उधके लक्ष पर धपना हाव रखते हुए नक्षत्र कष्ट से बोले—“धायुष्मान मैं तुम्हारे कुन से किठना उधइत हुमा है मत्ता यह किधी से धिया है धीर धात्र तो धामन्य धाधिकेय ने मुझे जैसे धायमन धारी काल के बोध से ही धार धिया है धीर इस समय मे पड़ा-पड़ा बही सोच रहा था कि उधसे किस प्रकार उधल्ल हुमा जाए ?”

कुमार कीतिरन का नव मस्तक धीर नव हो गया। सविनय बोला—“धाचार्यधार यह तो त्रियेधबा का धावितर का धान विनिश्चय धामारय लक्ष्य महत्त्व धुनें बह की धीहीन न करें उधकी यही धाकाया है।”

धाचार्य कुछ सोचते हुए बोले—“किन्तु धायुष्मान धयेय धार्य की यह धिता ध्यर्ष है नवीं कि बीघाली में इस समय एक से एक योग्य तत्पण है धीर कोई भी इन पर के धार को बहन करने में लक्ष्य है। धायुष्मान सुघत ही को धा न योग्यता की इच्छा है मत्ता उधसे क्या नवीं है ?”

यह कह धाचार्य बर्षकार ने तनिक कफ कीतिरन की धोर देया। धुं कीतिरन धीर मुद्रा में परस्पर कोई धीर नहीं था, बरन् मीठी हो धो। कीतिरन यदि धामन्य धाधिकेय का पुत्र धा ती मुघ्न धामन्य धीरधत्र का। धामन्य धीरन धीर धाधिकेय के लक्ष्य हो यह धीर धीर एक प्रकार से कम परम्परा का धंध धी धीर धानों कुनों के लक्ष्य यह धनिष्ठ मन्त्रधय न जाने धितनी धीधियों से धनवरत धन में बत्ता धा रहा

था। सामन्त बीरब्रह्म का कोई दो बप पूर्व स्वर्गनाथ ही बुका था धीर तब से कुमार सुघट की संरक्षकता था भार सामन्त कातिकेय के कर्षों पर ही था। और कोई तीन बर्ये पूर्व जब धाचार्य बर्येकार राजगृह से तिरस्कृत हो बैसाली में आए थे तो इन दोनों मित्र-धामन्तों ने ही उनको धामय विद्ये जाने का प्रवण समजन किया था। इत कारणा से नहीं कि उनका धाचार्य बर्येकार से कभी किसी प्रकार का सम्बन्ध रहा था बल्कि सुघट कि धारणागत को प्रयत्न देना बैसाली की एक पुनीत परम्परा थी और उसका पामन प्रतिबन्ध था। इन दोनों कुमों के निमित्त सम्बन्धों की बात धाचार्य बर्येकार से भी नहीं छिपी थी। धत्त उन्हें धाचार्य था कि विद्यापीठ में जब उन्होंने कुमार सवत के धीर की प्रार्थना की थी तो वह कुमार कीतिरथ को क्यों न सहन ही सकी केवल प्रसन्न ही नहीं हुई, बल्कि अपने सुघट के कुल पर भी कोई ध्यम किया था। वास्तव में कुमार कीतिरथ ने उस समय प्रार्थना की कुछ कह विधा था उसे मुन सुघट तो शक्ति रख ही गया था। स्वयं कीतिरथ को भी बाद में अपने पर कोई कम धाचार्य नहीं हुआ था। उसे ज्ञान हुआ कि कहीं धाचार्य किसी प्रसंगवत्त यह बात उसके निता से न कह दें प्तत उसके पूर्व ही वह उनसे ज्ञाना की वाचवा करने जमा धामा था। फिर भी न जाने क्यों इस समय धाचार्य के मुख से सुघट की पुनः प्रार्थना सुन वह उसे सहन न कर सका। धाचार्य बर्येकार जो बँधे उसके मन के भाव को ताड गए, बोले—“माधुष्मान्, धृ तुम ही उसके क्या कम शोभ्य हो परन्तु उसमें बोध्यता से भी धार्थिक एक स्वाभाविक छुट है धीर वह है महत्वाकांक्षा का फिर वह महत्वाकांक्षा को स्पष्ट प्रकट न कर छिपे छिपे उसको कभीमूत करने की कला में भी वर्य प्रतीत होता है।”

कुमार कीतिरथ ने इस बार अपनी दृष्टि ऊपर उठा उत्तरता के साथ कहा — किन्तु धार्य बैसाली में तो महत्वाकांक्षा को एक पुर्वुल समझ देय दृष्टि से देखा जाता है।”

धाचार्य बर्येकार तनिक हँस बोले— देखा जाता है नहीं बल्कि देखा जाता था माधुष्मान् किन्तु तब से तो संवागीय का न जाने किन्तना बल गया की पामनकारा में पहुँच चुका है। माधुष्मान् बैसाली सदा ही से नूतनता की प्रेमी रही है, धीर बैसालिकों ने भी सर्व्व की नूतन है उसका स्वागत कर, उसे धपनावा है। केवल धपनावा ही नहीं बल्कि नई सामाजिक मान्यताओं को भी जन्म दिया है धीर इन सामाजिक मान्यताओं के ही कनस्वर यदि एक और पसरुष्य के स्वरूप का विस्तार हुआ है तो बुधरी और उसकी कुछ परम्पराओं में भी परिष्कृत धामा है और इस परिष्कृत की प्रक्रिया में धृ स्वाकांक्षा मात्र सजयता बन कर रह गई है। धीर सजय होने में तो कोई बुराई नहीं धाधुष्मान् ”

कीतिरथ उत्तर में कुछ नहीं कह सका। वह केवल यही सोच कर रह गया कि धाचार्य प्रजाक विद्वान हैं धत्त उन्होंने जो कुछ सोचा समझा है वह उचित ही होगा। वह बस से बाहर निरुत्त जब कुले नाठावरण में धामा धीर अपने महत्वाकांक्षा वाली बात पर सोचा तो उसे भी उसमें कोई शोक नहीं बीबा धीर अपने जब कोई शोक नहीं बीबा तो वह सोचने लगा—“यदि सुघट निमित्तधम धमात्य के पद के लिए महत्वा कांक्षा कर धकटा है तो फिर यका मुझ ही में ऐसी क्या कमी है, जो मैं उसे



लिए हज्जा नहीं कर सकता ?”

जब यहि नहीं कीतिरज की सुघट दूर से भी बिलाई है जाता तो बहु इस भाव से हट दूवरी बिधा म चल पड़ता । एक दो बार सुघट ने चाहा भी कि वह कीतिरज को टोक सबसे उसके कम व्यवहार का कारण पूछे और एक बार तो उसने पूछा भी परन्तु कीतिरज ने इन सम्बन्ध में अपनी केवल खेला भाव ही दिखाया । प्रकट में तो कुछ नहीं कहा परन्तु मन-ही मन अपने से बोला—“यह व्यवस्था ही इसका कोई भीति कीमत है जगमा वह मित्रता के लिए इतना उम्मुक कयापि न होता ।”

एक दिन जमा हुआ सुघट गोबूनि बेसा में अपने अन्य मित्रों के साथ महाजन में घासेट कर नगर की घोर सीट रखा था । विनियम्य समास्थ भी नियम इस बेसा में नगर से निकल पुष्करिणी की घोर जमाने निकल जाया करत है । परन्तु उस दिन वह पुष्करिणी की घोर न का फटापारघाला की बिधा में चल दिए । सुघट एवं उसके मित्रों ने जग्य शूकर का घासेट किया का मत है सभी घरवन्त प्रयुक्त है । घाचार्य बर्षकार ने जब उन्हें इस प्रकार घासेट देला तो वह भी उसी बिधा में चल पड़े । जब वे सभी पास आए तो घाचार्य बर्षकार ने उन्हें टोक पूछा—“बनों कुमारो, पात्र यह घासेट किस के धीरे का परिचायक है ?”

सुघट समेत सभी कुमार एक स्वर में सोस्तास बोले उठे—“घाचार्य पात्र हम सभी ने मिलकर इस पात्र है ।”

घाचार्य बर्षकार इस पर जैसे साक्षर्य बोले—“सभी ने मिलकर केवल एक शूकर का ही घासेट किया तुम्हें तो पात्र कई शूकर जाने चाहिए है ।

वह सुन सभी सोस्तास कह उठे—“अच्छा घाचार्य पात्र जब हम कई शूकर साएंने घोर घापो बिखाएंने भी ।”

घाचार्य बर्षकार उनका यह जलाह देस जैसे जग्यन्त प्रसन्न हो उठे । बोले—“अच्छा तो यह बात है !”

इसके परचाद् जब वे सभी घागे निकल गए तो घाचार्य बर्षकार की जैसे सहसा कुछ स्मरण हो घाया । उन्होंने सुघट के एक अन्य मित्र जयद्वज को पुकार, अपनी घोर घागे का संकेत किया । जयद्वज भी सोस्तास उनकी घार शीघ्र लिया । सभी घागे पर घाचार्य ने इसके कानों के निकट अपनी मुंह का कुछ कहा । उत्तरचाद् जब वह सोस्तास करता हुआ अपनी मित्र मण्डली में बोला तो सुघट ने जग्युक्ता से पूछा—“बनों मित्र जयद्वज घाचार्य पात्र ने तुम से ऐसा क्या कहा जो इतने प्रसन्न हो उठ ।”

जयद्वज उसी प्रकार उत्कण्ठित रह बोला—“मित्रवर घाचार्य पात्र जमा घोर क्या कहते यही कह रहे है कि तुम सभी बड़े बचवान हो ।

पर सुघट को जयद्वज की इस बात पर जैसे कुछ भ्रंइह हुआ । वह सोचने लया घाचार्य पात्र से अपने जयद्वज ही यह कहा होना कि यह शूकर मैंने मारा है घोर फिर उन्होंने उनसे कहा होना—“जयद्वज तुम सचमुच बड़े बचवान हो । केवल सुघट ने ही ऐसा नहीं सोचा बरन् जग्य कुमारों ने भी यही अनुमान लगाया परन्तु इन समय विभी ने उनसे कुछ कहा नहीं जग मन-ही-मन कुछ सोचकर रह गए सोचा कि जयद्वज न जयद्वज ही बीजापी के प्रतिकूल घाचरण किया है ।



देवी या अमाती स्तूप निर्माण के काय का प्रवृत्ति और उसके प्रति धाराम-बुद्ध वैयासिकों की प्रगाढ़ बधि को देख धारयन्त प्रसन्न थी धारार्थ सिष्य भी प्रसन्न था। परन्तु एक ऐसा वृद्ध था जिसे वह अपनी समस्त शक्ति तथा मृतने का प्रयास कर रहा था।

येन्टीपुत्र कपिन का मुक्ताहार उसकी वह बापा और फिर प्रसुनर में देवी सिष्या की वह मुस्कान उस घारे वृद्ध का वह एक लण जो भी तो ध्यान नहीं किया चाहता था पर जैसे वह स्वयं उसके नेत्रों में उमर स्थिर हो उठता। और यदि कभी समीप से वह वृद्ध स्वयं उपस्थित होगा भूल जाता तो तब धारार्थ सिष्य न जाने क्या कुछ सोचा हुआ सा अनुभव कर व्याकुल हो उठता। तब वह एकान्त टटोलता-सा कमी हार तो कमी उभर जाता और इस सारी अवधि ही वह केवल यही निश्चय करता रहा कि जब देवी सिष्या की भट्टालिका की घोर कमी भी नहीं जाऊँगा। पर संझा समाज का समय जैसे-जैसे निकट घाटा चमता तो उलका धरत जैसे घटवता-सा कमी बरूँ तो कमी बरूँ जाता और फिर अस्तव उसी के द्वार के सम्मुख पहुँच सका हो रहा। फिर उस द्वार को देख वह मन-ही मन कहता—'बसो कोई बात नहीं घाम तो घब धा ही बया पर कम नहीं जाऊँगा। और धरते दिन जब वह कम घाता तो वह जैसे अपनी ही किसी दुर्बलता पर मन-ही-मन मरणा उठता मरणाता रहा और उसी के घाय-साव उसका धरत भी भट्टालिका की घोर ही बचता जाता। और धरतः जब वह द्वार के सम्मुख पहुँच रहा तो अपनी घाम की इस पद्यय पर, धरत अपनी किसी धरत प्रसमर्पता पर मन-ही-मन स्वीकारोक्ति की सिन्धु हँसो हँस रहा कमी-कमी एक उलका है वह अपनी प्रसमर्पता पर हँस भी उठता। किन्तु धरते लण ही मन्धीर हो कहा—'देवी सिष्या मैं तुम्हें भूम बाढें, इसीलिए तुम से बूझा किना चाहता हूँ। क्या तुम अपने से बूझा कराने में मेरी सहायता नहीं कर सकती? यह बात मस्तिष्क में घाटे ही उसे लयता जैसे उसे धनायाव ही कोई बड़ा हाय मिल गया। सांभता—'देवी सिष्या से घाम बस यही बात तो कहने घामा हूँ। और इनके उत्तर में देवी सिष्या उसी प्रकार मुस्करा देती जैसे जब दिन घा समाज में वह येन्टीपुत्र कपिन की घोर देख अनुग्रह का घाम प्रकट करती हूँ। करा उठी थी। यह देख उनका मुक घामघ से घाम हा उठता पर फिर भी वह घम न सीट सावेध ही समाज स्वस की घोर बड भेगा यह लोचते हुए कि घाम इसी घम के घाय हमका मृत्यु देखता है जिससे उसे कम से कम यह तो विशिष्ट ही

कि कोई कोई क्यों मे ही, स्वर्ग में उसकी किसी बात हैं इतना शुभ्य भी हो सकता है।”

गणारथ्यसिंह सेनापति को यह मसीमांति विधि का कि धार्मिक विषय मायक है। किनी की भावुकता के सम्बन्ध में कोई किसी धर्म्य को कुछ स्पष्ट बताए, यह धारण्यक नहीं परन्तु धार्मिक बहुमास्व ने उसे विधि पत्र के साथ एक दिन मंसाती सिंह सेनापति के पास बैठा था उसमें उन्होंने अपने विषय की इस दुर्बलता का विशेष रूप से धर्म्यक किया था। किन्तु साथ ही धार्मिक बहुमास्व ने अपने विषय की इस भावुकता को उसकी दुर्बलता नहीं कहा था उन्होंने लिखा था—“यह तो उसके स्वधर्म का मुख्य एवं साथ ही स्वाधी धर्म्य है विधि पर उसकी सारी कारिजिक विधिपता धावा पिट है।” धार्मिक बहुमास्व ने फिर इसी पत्र में धार्य लिखा था—“धामुष्मान् किन्तु उसकी यह भावुकता सहज ही में किसी धर्म्य में धारणीयता का संचार कर उठती है साथ ही वह उसे सत्कार्यों की ओर भी प्रेरित करती है किसी दुष्कर्म की बात तो वह सोच तक भी नहीं सकता थीर यदि वही उसे परिस्थिति बस सोचनी भी बड़ जाए तो पहले पूर्व ही वह निरास हो उठता है थीर फिर वह वधि धारम विरमेपन को बाध्य हो उठता है जो धर्म्यत उते अपने क्रम परिचय की विभासा तक से धाती है। किन्तु धामुष्मान् वह धजात कम थी नहीं है।”

धीर, धावाय बहुमास्व ने इस पत्र में उसके कस के रहस्य को भी खोल दिया था। वास्तव में वह एक गोपनीय पत्र था विधि यद्यपि स्वर्ग धार्मिक विषय ही साबा था तो भी उसने उसे पढ़ा नहीं था। कारण ? क्यों कि धार्मिक बहुमास्व ने उसे ऐसा ही धादेण किया था। धीर जब उसने वह पत्र सर्वथा प्रसक्त रूप में सिंह सेनापति को लाकर दिया तो वह उसकी इन कर्तव्य बरायणता एवं निष्ठा पर मुग्ध हुए बिना नहीं रहे। धीर उनके इन धनत्र गुणधन्नु का किस कुल से सम्बन्ध था सिंह सेनापति ने यह रहस्य किनी को भी नहीं बताया था। वह कम उनके तथा धार्मिक बहुमास्व के मध्य ही की बात बनकर रह गई थी। धीर, जैसे धम तो उनकी इनकी भी धारस्य कता नहीं रह गई थी क्योंकि उसकी भावुकता ने उसे धम तक पूर्वत वैमानिक, एक निष्ठावान वैधानिक बना दिया था। धम जब उसने उस दिन सेनापति के सम्मुख पर मुस्त होने की इच्छा प्रकट की तो वह उसे उसका कोई लघोम भावावैग धमम कर भी कुछ विभित हो उठे थे। वास्तव में अभी ने वह उसका कारण जानने को धरमुक के परन्तु उसके पदधान् ही अब उन्होंने धार्मिक बरवार की धोपणा भी मुनी तो वह बुधिया-धरत हो रहे। सोचने लगे कि यह कैव्य संयोग माय है धारवा दोनों में कोई परस्पर सम्बन्ध भी है ?

पर इसी मध्य बैंगाली के धनधरण व्यस्त जीवन में एक दुखी ही गतिविधि का संचार हो उठा। उसके ज्ञान दूर विगत से धाने जाने प्रहाम्नु जनों की भीष्ट से मुक्त रहे। वास्तव में बेनी धाधनापी के स्तूर निर्माण का संचार इस समय तक सभी धोर दूर-दिगामी में धैर बुजा था धीर जैसे जैसे यह संचार धैरता जा रहा था जैसे जैसे ही बैंगाली में धाने जाने योग्य की भीष्ट भी प्रगाड़ हीनी जा रही थी यहाँ तक कि धम ज्ञान विस्त धावेगनों में उनके धावाय की व्यवस्था धमम्यक प्रतीत होने

लगी। परन्तु इससे बैधानिकों का उत्साह कम न हो उल्टे बढ़ा ही। वे गद्गर् हो पर स्वर कहने लगे—“यह तो बैधानी का सीमाव्य समझो कि वैदिकों ने इसे इस प्रकार तीर्त्स्व का सम्मान प्रदान किया।”

जब उपरत-आवेदनों में स्थान नहीं रहा तो सम्भाव्यत धर्माभुजनों के स्वागत हेतु बैधानिकों ने अपने प्राचासों के हाथ जोस दिए। उनकी बाहुओं को पकड़-पकड़ से उन्हें अपने प्राचासों में ले जाने लगे साथ ही कहते—“भद्रजगो यह तो सचमुच देवी धाम्नापानी की कृपा है कि हय धाप सभी के दर्शन पा सके।”

धीरे वैदिकिक बर्तक भी कहते—“बैधानिकों धाम्नाक यह प्रतिष्थ वा हय सच मुच अपने को बन्ध हुआ अनुभव कर रहे हैं।”

मिदु मह्यकी ने जब यह सबाव सुना तो उस समय वह सबावत की पावन भूमि कपिलवस्तु में ही था। बैधानी में शास्त्रा की पुष्य स्मृति में स्तुप का निर्मास्य ही धीरे वह भी देवी धाम्नापानी के हाथों धीरे वह उसका संवात्र सुनकर मूं ही रह जाए, उसके लिए क्या यह सँडे संभव था? वह सुरज्त प्रस्वान कर सठा। जब बैधानिकों ने उसके प्रायमन का समाचार सुना तो जैसे समुची नगरी ही उसके दर्शन को बनक पड़ी। फिर वह सकेला थी तो नहीं प्राया था न जाने कितने साक्य-जन भी इतना ही धर्म में उनके साथ ही सँडे धाप थे वे ही दाक्यजन, जिनके मध्य एक दिन वर्षावत में जन्म लिया था।

धाम्नापानी के प्रायमन से समुची नगरी भग-विभोर हो उठी बैधानी कि नर-नारी बर्ष का भी अनुभव कर सँडे। धीरे सभी ने यह अपने लिए सीमाव्य का दिन समझा।

बैधानिकों ने तो यह अपने लिए सीमाव्य का दिन उपस्थ धीरे उनके लिए वह उचित भी था परन्तु उबर इसी मध्य सबावत की पावन भूमि कपिलवस्तु में क्या हो रहा कि कोई एक सप्याह परचाव ही कुप्यचरों ने प्राचार्य शिष्य की जो संवेस प्राकर सुनाया वह सँडे बुरी तरह सिहर सँडे। यह अपने से बोला—“विदुडम जना यह भी कोई प्रतिशोध हुआ कि तुने समुची जाति का ही संहार कर दिया। कौडल नरेष विदुडम द्वारा समुची साक्य जाति के संहार का समाचार जब गण महाजनरी में रीसा तो सर्वस धोक की लहर का बर्ष महाली तो रो सक सँडे। परन्तु प्राचार्य अपकार के कुप्यचरों ने उन तक उधरी भी प्राये का समाचार नहीं दिया था जिसे पुन यह न जाने क्यों प्रबल हो सँडे थे।

विदुडम हाथ साक्यकुल के विनास का यह समाचार कैजम बैधानी में ही नहीं, बरन् सर्वत्र फैल गया। राजा धमासघाबु ने जब यह सुना तो वह भी एक बार को धार्तिक हो सँडे। उसे लगा कि कहीं यह कपिलवस्तु से सीधे उबर ही की धीरे प्रस्वान न कर सँडे धीरे क्या पता वह बज्जीसंघ पर ही प्राक्रमण कर वे धीरे मरि वह ऐसा कर बीठा तो फिर मयस धाम्नाव्य के विस्तार की यह सारी योजना बिफल हो खोनी क्योंकि फिर उससे कुछ में भीतना कोई सरल बात नहीं। राजा धमात घबु सोचने लगे—“जदि विदुडम ने कहीं बज्जीसंघ को कौडल-राज्य में मिला लिया तो फिर मयस धाम्नाव्य के विस्तार की बात तो दूर की रही उसके वर्तमान स्वक्य

को भी सुरक्षित रखना असंभव हो जाएगा। यदि इधर में महत्त्वाकांक्षी हूँ तो उधर वह भी कोई कम नहीं। यदि एक दिन इस राज्य की महत्त्वाकांक्षा के बसोभूत हो मेने पिता को बन्दी बना कारागार में बाधा बा तो उमने भी उसी घातकता से प्रेरित हूँ अपने बृद्ध पिता प्रतेनमित की बलात् धावस्ती से बाहर बिना बिना बा घोर बह बैचारा न जाने किम प्राणा से मेरे पास घा ही रहा ना कि यहीं एक घावेघन में पहुँचते ही उसकी मृत्यु हो गई। संयोग से वह इस समय उसी स्थान पर बड़ा ना बहाँ कभी वह घावेघन ना घोर घब उसे लौटकर उस पर नए नगर की प्राचीर बनाई बा रही बी। उसका प्रधान अमात्य गोपाल भी इस समय उसी के पास बड़ा ना परन्तु उसे जैसे उसका ध्यान ही नहीं रहा जबक नेत्रों के सम्मुख घाचार्य बर्षकार जैसे सदैव या उपस्थित हुआ ना घोर इस समय हूँस कह रहा ना—“क्यों अन्नाद् बस बरत नए ?”

परन्तु इसी मध्य गोपाल कह उठा—“अन्नाद् पुत्रपत्नी ने जो घनी-घनी समाचार दिया है उसे तुम घाप अवश्य ही हृषित हो उठेंगे।”

अन्नाद् अन्नात्पुत्र के बुविचा-व्यस्त मुक्त पर उत्सुकता का पई। पूछने लगा—“क्यों घार्य देखा क्या समाचार है वह ?”

गोपाल ने इधर उधर देख जैसे सावधान हो बीमे से कहा—“अन्नाद् कीउन नरेस बिदुधम कपिलवस्तु से अपनी ही राजधानी धावस्ती की घोर सीट चुका है तथा बहाँ से जो समाचार पाया है वह कुछ घोर ही है।”

उस समय कोई भी बहाँ नहीं ना से भी गोपाल बस इतना ही कह सक गया। अन्नात् पुत्र के मुक्त पर पहले से भी अधिक उत्सुकता का भाव छा उठा। उता-बसी-सी में पूछ उठा—“वह समाचार क्या है घार्य ? बीम बतानी न ?”

परन्तु गोपाल जैसे सर्वथा अविचलित रह बीला—“अन्नाद् घब घाप प्राचार की घोर चर्ने बैधानी से भी बीम ही घनी कोई महत्त्वपूर्ण समाचार पहुँचने की संभावना है।”

इधर बैधानी में घब तक बिदुधम के सम्बन्ध में कोई घोर ही संचार पहुँच बड़ा ना। पुत्रपत्नी ने घाकर बताया कि बिदुधम जब कपिलवस्तु से धावस्ती लौटा तो इन समय अचिरवती नहीं में बर्षा के कारण बाढ़ घा चुकी थी घत-उतका मार्ग घब बह हो गया घोर अन्नात् घनी उसी के किनारे तिकिर लगाए पड़ी रही। घोर एक रात्रि अचिरवती नहीं में इतनी भयंकर बाढ़ घाई कि वह अपनी तापी घना समेत ही उसकी बिनाधनारी लहरों में लमा गया।

घाचार्य गिण्य यह सुन संताप की सीम लिए बिना नहीं रहा। परन्तु फिर भी उसके मस्तिष्क में एक बात उभरी रही घोर वह जो कपिलवस्तु के नृपंत नर-संहार की सेकर ही। तुम बिचार की उतता इतने भयंकर प्रतिगोध के लिए भी प्रेरित कर सकती है। हमरी बहने कर्मी बल्पना तक भी नहीं की थी। घोर, इसी प्रसंग में उसे अपनी ही कोई न जाने कब से भूमी बाग लहना स्मरण हा घाई घोर चूँकि वह एक बीस घबकि के परधान उमरी की घत: वह उतनी ही अचिर के साब उमकी बैतना को भ्र-भोर उठी। बीमे घब वह उसे अपने सम्बन्ध में एक बर्ष की बात समझता ना, फिर भी वह उन वर बिचारता रहा परन्तु इन समय उसके सम्मुख एक नहीं घनेक कार्य

के जिनके मध्य वह धर्म्यत व्यस्तता का अनुभव कर रहा था।

एक दिन जब वह मध्याह्न का भोजन करने कोई तीसरे प्रहर प्रायास पर पहुँचा तो उसे इतने विलम्ब से घाबा देख प्रतीक्षा पकित देवी मंत्रिका जिन मन से कहने लगी—“स्वामी घाय घाय प्रातः से ही निराहार है फिर भी आपने मध्याह्न भोजन के लिए इतना विलम्ब कर दिया।

वास्तव में यह कोई प्राय ही की बात नहीं थी बल्कि वह कई दिनों से ऐसा ही कम चल रहा था। किन्तु इतनी कार्य व्यस्तता के पश्चात् भी आचार्य विष्य के मन को संतोष नहीं मिल पा रहा था। कारण ? वह कुछ ऐसा समझ रहा था जैसे वह किसी मुख्य प्रवाह से हट कर ही घटक बना है और उसमें कोई सराहना ही नहीं रह गया है। देवी विष्या को संझा समझ बैसी वह मुस्कान उसे मुझा नहीं भूनी का रही थी और उसके अस्वरूप वह कुछ ऐसा अनुभव कर रहा था कि जिसने एक दिन इस पीठे जीवन में समायास ही बहुत कुछ कर दिया था उसी ने अब जैसे कोई धक्का पा उसे सहसा छिन भी लिया है। देवी विष्या की ओर से उसने इस प्रकार की कमी कल्पना तक भी नहीं की थी, इसलिये वह धर्मविक्रि जिन वा, केवल जिन ही नहीं बरन वह स्पष्टतः यह अनुभव कर रहा था कि वह अपनी कोई न नैवाने योग्य धर्म्य विधि देना बैठा है। परन्तु वह उसने स्वयं तो नैवाई नहीं थी तो भी उसे भाँप चुक था। सोचने लगा—“मैं ही जब इस योग्य नहीं तो फिर देवी विष्या भी क्या करे उसका इसमें क्या दोष भी क्या है ? उसके मन में घावा कि एक दिन वह देवी विष्या से उसके प्रेम की वाचना करे, परन्तु हमारे ही जल वह सोचने लगा—“क्या प्रेम भी वाचना से मिल सकता है ? और जब मैं उससे यह वाचना करूँगा तो क्या क्या वह यह कह देगी कि बाधो मैं तुम्हें प्रेम नहीं देती ! परन्तु प्रेम संतुष्ट क्या है ? क्या वह वाचना से मिल सकता है ?” फिर वह अपने से पूछने लगा—“वाचि, क्या देवी विष्या ही उसके लिए सब कुछ बन गई है ? और क्या उसकी कृपा कोर पावे बिना जीवित नहीं रहा जा सकता ? तब वह अपने को उत्तर देते हुए कहता—“क्यों जीवित क्या मैं अब नहीं रह रहा हूँ ? परन्तु वह भी कोई जीवन में जीवन है परे यह जीवन तो निस्तार है निश्कार है ऐसे जीवन को जिसे देवी विष्या का प्रेम न मिल सके।”

परन्तु जीवन को निश्कारते निश्कारते वह अपने को भी निश्कार उठा यह सोचकर कि जिस बैशाखी ने उसे इतना कुछ बना दिया है, और जिसने उसके जीवन के सभी आभाषों को करने का प्रयत्न किया है केवल प्रयत्न ही नहीं बल्कि बलुत् भरा है वह घाय उसी बैशाखी के प्रति समय घाने पर सदासीन हो उठा है। जैसे ? वह जैसे उस पर अधिक न सोच पाया परन्तु इतना धर्म्य स्वीकार कर उठा कि यह मेरी उदात्तता ही है धर्म्यता ? धर्म्यता क्या ?

उसके सम्मुख जैसे कोई प्रश्न साकार रूप में था उपस्थित हुआ।

वह परोक्ष भोजन पर से सहसा उठ खड़ा हुआ। मंत्रिका यह देख स्तब्ध रह गई जिन भी हो उठी। और स्वयं आचार्य विष्य ? वह उल समझ नहीं खड़ा भी न रह सका और न ही वह विषयम कक्ष की ओर जा सका बल्कि सीधा द्वार-मण्डप की ओर दौड़ धरवाकड़ ही साधे बाहर की ओर प्रस्थान कर उठा।



नित्य प्रति की भाँति विभिन्नय धमार्थ बर्षकार धाम श्री पौत्रुति बैसा में पुष्पकरिणी तट पर वा पहुँचे । जैसे भूमते भूषते ही वह उसके पश्चिमी छोर पर पहुँच गए, धीरे धीरे वहाँ देखे जाते हो गए जैसे दूर-सुदूर तक फैले हरे भरे कमलों की मनोहारी छाटा को देख रहे हों । विक्ट ही में बलमबास धाम बीक रहा वा परन्तु उस धोर जैसे उनकी दृष्टि ही नहीं गई, यदि गई थी तो फिर वह उबार से उभट वीछे की धोर धमन धामकृष्ण की घोट में से झँकती साहाय्य कुँडपुर धाम की धट्टालिकाओं पर बा टिकी । लहलहाते कमलों धोर साहाय्य कुँडपुर धाम की धट्टालिकाओं को देख जैसे उन्हें बीकन का कोई विस्मृत पृष्ठ स्मरण हो धावा । वह सोचने लगे—'पाटलिङ्गाम में मन्व धाम्य का दुर्ग बनवाते समय धन में यथा तट के इस धोर जैसे इन हरे भरे, लहलहाते कमलों को देखता था तो मेरा मन एक मुजब कल्पना से प्रारुधा उठता था धोर धाम ही वह महत्वाकांक्षा नी बनवती हो उठती थी कि न जाने किस दिन वह बँधाती मन्व साम्राज्य का धन बन सकेगी ? तब से कितनी लामला भरी दृष्टि से इन धोर देखा करता था मन हाता वा कि बँधाती में ही रह उसकी इन स्वर्ण रत्न एवं धाम कनक पुरत ऊँची मन्व धट्टालिकाओं को भी भर देखता रहूँ धोर देखता रहूँ इन सुदृढ़ विधान बना जाने योयव बँधातियों को जिनके धर्म्य की देखा महामतापी विन्वधार में भी जैसे पदाजय का अनुभव कर धवनी साम्राज्य की महत्वाकांक्षा को सदा-सदा के लिए स्वाग दिया था । जहाँ स्मरण हो धावा कि राजा विन्वधार जब प्रीङ्गवस्था में था धोर उधकी रक्त धमनिया में साम्राज्य विस्तार की मुजब कल्पना के धरम्य अलाह का संचार हो उठ करता था ता वह उग समय केवल एक ही बात कह पाता था, धोर वह थी— 'धामार्थ बर्षकार यदि मुझे बँधातियों की एनता धोर उनके मन का लहलहोय विन जाए तो मैं दिगिजय कर सगता हूँ धोर पता नहीं से कैसे मुझे है कि इतनी दुर्लभ सामर्थ्य के स्वामी होकर भी वे धवन नगरधम्य की संकीर्ण सीमाओं में ही पिरे पड़े हैं धोर धाम उन्हीं की इन सीमाओं में ही धामक हूँ—परन्तु वे टट्टेनी धधध ही कितनी दिन हूँधी धर कब ?

तनिव एक उन्हेने फिर धवना विचार प्रवाह जैसे बनाय दूधरी धोर मोड़ लिया । लखने लगे—'यदि मन्व की तरह कभी बँधाती के इन योद्धाओं में भी साम्राज्य स्थापना की बात सोची होगी तो भला क्या होगा ? होजा क्या बर्षकार संय शयेन मन्व धमन ही इनके धधध होगा धोर धवनी में कण्ट प्रयोग वा धरितरत तट न रह पाता नगा धार्थी बीधन धोर से धधध नून सभी इसके धरत बन रहते,

घोर चीन जाने इस समूचे बम्बू द्वीप पर ही इनका एकलक्षण राज्य होता पर ये प्रथम  
इस घोर से सदा उदासीन ही रहे उदारता को धरना कोई देवत्वपूर्व गुण समझने रहे  
पर कब तक समझते रहेंगे ?

इसी मध्य पुष्करिणी तट ही की घोर दीड़ते था रहे एक धरत की पदचर्या  
की धाड़त से उनका ध्यान भंग हो रहा । जयके जते उचटती बुद्धि से उभर की घोर  
देखा फिर धामकुंड की घोट में से भाँकती हुई घटानिकाओं की देखते हुए वह पुनः  
धरने से बोले—“एक विम सध्या समय परजते मेरी एवं मूनभावार बर्षा में भीयते  
हुए मैंने इसी धाम में तो धाकर धरण भी थी ।

धरण लेने की घोर बैद्यनाथों द्वारा धरण दिए जाने की बात सोच धाम वह  
न जाने क्यों मन ही मन हँस पड़े परन्तु किस पर ? धरने ही पर या बैद्यनाथों पर  
पर वह जैसे उनके निकट ही रहने बनकर रह गया । वह धरत इस समय तक पुष्क  
रिणी के सन्निकट पहुँच चुका था उसे देख धार्या के मुख पर जैसे स्वत हृष का सा  
भाव उभर आया । परन्तु उन्होंने उत्कान ही उस घोर से ऐसे बुद्धि हटा नी जैसे  
उससे उनका कोई सम्बन्ध नहीं है । परन्तु धरवारोही एक पवन के मँकि की मति उनके  
सर्वा धामिक पहुँच सहसा एक तररता से बोला—“धार्यवर, मुझार् गंवातट के इस  
घोर बिबर चुकी है ।”

धार्या बपकार ने भी उसी उत्तरता से कहा—“तो फिर उन्हें बटोर उपात  
में सा एकन करो । घोर धायुष्मान जना स्वर्न मुझा का क्या हुआ ?”

धरवारोही धामवान बुद्धि से इतर उबर देख बोला—“धार्यवर उसने तो धरने  
को ताम्र धारण में हीन लिया है, घोर धार्य पर से पाँच मुझाओं को उठा धर इतर  
ही की घोर धरसर है ।”

इस पर धार्या बपकार बोले—“ताम्रवर्न से कहो वह उबर मुझाओं को  
कैक धरने ही मध्य कोठार में पहुँच जाए, सेप सब ठीक है ।”

धरवारोही यह सुन फिर उसी विधा में सावेय बीड़ लिया बिबर की घोर से  
वह धारा था परन्तु इस पर धार्या बपकार जैसे धरना उठे । धरने स्वान पर ही  
कहें यह उक्त धरि में इतनी उक्त धरि में कि पुष्करिणी के पूर्वी तट पर कड़े मुखक  
प्रहरी भी मनी मति सुन में वह बोले—“धरे को धरवारोही क्या तू कहूँ है धरि  
तो तुझे धार्य बपकार था फिर भी ।”

परन्तु धरवारोही ने जैसे हम धोर कोई ध्यान ही नहीं बिबा तीव गति से उसी  
विधा में बीड़ता जमा गया । घोर धार्या बपकार जैसे धरनी हम मूर्खता पर एक उक्त  
ठहाका दे हँस पड़े । हीनी के ठहाके को मून प्रहरी तरणों का ध्यान इस समय तक  
नूनैत इतर की ही घोर धाड़त हो चुका था घोर ध विनिश्चय धामाय की ही घोर  
देख रहे थे । धार्या बपकार ने धरने गह्वर स्वभाव के धनुषार उनमें से एक को संकेत  
कर धरनी घोर बुलाया घोर वह मुखक भी विनीत संभक की मति सोसाह उनकी  
घोर कह लिया । सेप सनी तरण उमुष्ता से उबर की घोर देख उठ बैठते रहे कि  
विनिश्चय धामाय ने उनके धान में भीम से कछ कहा है । अब वह धारिस धरने धारियों  
में पहुँचा तो धरने से एक प्रत्ययिक उमुष्ता दिखा पूज उठा—“धरि निज



धाम ने तुमसे क्या कहा ?

विद्यम उत्तर में सोत्साह बोला— 'कछ भी तो नहीं बन्धुवर, वह कह रहे थे तुम सभी बड़े धनवान हो ।'

इस पर वह पुछने वाला तथा अन्य सभी सोचने लगे— विद्यम निश्चय ही भूठ बोल रहा है इसने धमारय से धक्कन ही यह कहा हुआ कि मैं बड़ा धनवान हूँ जैसे धीर हम तो सभी निधन हैं ।

तत्पश्चात् धाधाम बर्षकार पुष्करिणी तट से नीचे उतर, कूटमार धाला की दिशा में बढ़ लिए, परन्तु जैसे उनकी दृष्टि बसात ऊपर धाकास की ओर उठ ली। वह धारण्य से मैं पढ़ गए, बोले— 'घरे धाक धसमय मैं व मेक कैसे ?

वह कुछ ऐसे किन्तित हा उठे जैसे इन धिरे मेरी ने कोई बाधा उपस्थित की हो । धत वह कूटमार धाला की ओर धपसर हो लिए ।

उपर धाकास को सहसा मेधाछन्न हुआ देख धाधाम्य धिष्य कुछ धकरा-धा गया ।

इस समय सदासीरा के तट पर बंठा कुछ सोच रहा था । वह सोच रहा था— 'बन्धुवर सिंह ने मुझे यह पत्र धवान कर बीघासी के साथ निश्चय ही धन्याम किया है मैं उसके किन्तित भी तो योग्य नहीं हूँ । तो फिर मैं किन योग्य हूँ ? वह इस समय जैसे इस बात को सोचना ध्यर्थ समझ रहा था फिर भी वह सोच उठा 'इससे तो मैं यदि देवी धिष्या की धाकक मण्डली में ही हुमा होता तो कहीं धधिक योग्यकर रहता । तब देवी धिष्या कम से कम दृष्टि धाया में तो बनी रहती धीर हर समय धसका धानिष्य लाभ भी हा रहता । उसने इस बात को धपने धन्तर की धुर्बलता समझ रहा था, सोचने लगा— 'भसा इनमें देवी धिष्या का क्या बोध है ? धीर न मेरा ही यदि है भी ता केवल एक का धीर वह स्वयं धाधाम बहूनावन का जिहोनि मुझे जैसे इसी धुधिषा के लिए यहाँ बीघासी भेजा हो ।

वह धन पर कुछ किन्त हुआ धा मुंभला उठा धाक ही धपने पर भी धपने पर धधिक क्योंकि वह इन धपनी ही धुर्बलता समझ रहा था, सोचने लगा— 'भसा इनमें देवी धिष्या का क्या बोध है ? धीर न मेरा ही यदि है भी ता केवल एक का धीर वह स्वयं धाधाम बहूनावन का जिहोनि मुझे जैसे इसी धुधिषा के लिए यहाँ बीघासी भेजा हो ।

किन्तु मसिष्क में यह धिषार धाने ही वह ऐसे कीर उठा जैसे उसने किनी दुष्कर्म का बोध किया हा । वह कीर उठा यह सोचकर कि जिस धाधाम्य ने मुझ 'धीर धाक जहाँ के प्रति यह धुधिषार उनके प्रति यह इतधता ।

वह धाने को धिषार उठा ।

वह धुठनों क बन्धु मुनि पर बँड गया उमक कर धंकिम बड हा उठे धीर नेत्र धधु धुगि कण्ठ ध ध धाया । धधकण्ठ कण्ठ है बोला— 'धाधाम्यराध धाध जहाँ भी हों इन इतधन का धाया करना धाया करना इन धमात धुम का जिते धाने धीधन में धना कण्ठ निया मुझे इन देव धुग्ध धाला में भेजा धीर भेजा इन देवी धिष्या को दैतने को जिसके दर्शन या मे धय्य हो गया हूँ महाधमी में सधधुध धय्य हा गया हूँ उमक धधंन कर पर वह धध इन लमध न जाने मेरे किन धरराध न मुझे दण्ड दे रही है धाधाम्यराध वह तो धुधधमी है धीर बरधाणधमी भी है तो फिर क्या

उसकी उमेरा उचित है ?”

बिभक्तन नहीं धायुष्मान बिसकुल नहीं ।

सहसा नेपथ्य से आए इस उत्तर को सुन वह चौंक-सा गया । किन्तु तत्परता से दधर दृष्टि कर जब उसने देखा तो अभिवादन स्वल्प उसका धीरे भ्रुक गया । फिर जैसे सावध बोलो—“बन्धुवर आप यहाँ कैसे ?”

धामन्त्रक भिक्षु बेष में आ धीर उसके मुख पर एक सहज मुस्कान खेल रही थी । आत्मीयता का सा भाव दिखा वह कहने लगा—“क्यों धायुष्मान क्या वहाँ पुण्यपात्र आचार्य बहुभावन का एक शिष्य पहुँच सकता है वहाँ दूसरा नहीं आ सकता ?”

आचार्य शिष्य के मुख पर एक क्षण को वर्ष का सा भाव स्फुरित हो उठा । परन्तु, धमके क्षण ही वह जैसे सप्रयास बोलो—“बन्धुवर, भिक्षु सब में प्रविष्ट होने की इच्छा बनवती हो उठी है ।”

उसके मुख से एक भारी साँस निकल बासुमडल में विमीन हो गई ।

भिक्षु की मुद्रा इस समय एक कम्पीर हो उठी थी । किन्तु वह फिर अपनी स्वामाबिक मुस्कान के साथ बोलो—“क्यों धायुष्मान क्या इतना कि इस समय बैद्यनाथ के ऊपर यह प्रकाश मेघाच्छन्न हो है ?”

पत्तर से पूर्व आचार्य शिष्य का मन भारी हो उठा । मस्तक गत करते हुए उसके मुँह से फिर भारी साँस निकल गई । भरीए कण्ठ स्वर में बोलो—“हाँ बन्धुवर, क्याबिध इसी से ।”

भिक्षु तनिक सोच बोलो— धायुष्मान, फिर तो वह पलायन हुआ भव भिक्षु सब में तुम्हारे लिए कोई स्थान नहीं ।”

यह कह भिक्षु की दृष्टि में एक वृद्धा-सी उमर आई । उसके इस उत्तर का सुन आचार्य शिष्य हतोत्साहित हो उठा धीर मुख पर भारी निरुत्साह व्याप्त हो उठी । उसके घोष्ठ तो पर्याप्त समय से ही झुक चले आ रहे थे । स्वसि कण्ठ स्वर में बोलो—“तो क्या बन्धुवर मेरे लिए धन कहीं भी स्थान नहीं ?”

भिक्षु महात्मी तत्परता से बोलो—“क्यों भनी तो बैद्यनाथ को ही तुम्हारी आश्रयकता है धायुष्मान ।”

आचार्य शिष्य ने भिक्षु महात्मी की धीर तनिक बेच कहा—“बन्धुवर, बैद्यनाथ को तो इस समय प्रमाण की आश्रयकता है धीर वह मेरे पास है नहीं ।”

यह कह वह कुछ बका, फिर जैसे कुछ सोचते हुए से बोलो—“धीर इस समय बैद्यनाथ को नहीं बरन् स्वयं उसे बैद्यनाथ की आश्रयकता है क्योंकि—”

जैसे इस बार वह अपनी धमुरी बात को पूरा करने के अभिप्राय से साहस कर निस्संकोच हो बोलो—“क्योंकि बन्धुवर मुझे देवी शिष्या की आश्रयकता है ।”

भिक्षु महात्मी बोलो—“धायुष्मान स्वयंवर से फिर क्या तुम धम भी आश्रयन होकर नहीं कर सकते ?”

किन्तु इस पर आचार्य शिष्य तनिक भी विचलित नहीं हुआ । वह मस्तक हो बोलो—“हाँ बन्धुवर ऐसा भी हो सकता है ।”

मिथु महासी जैसे निरवास की बुद्धता से कह उठा— हो सकता है नहीं धामु प्मान बरन् है ।”

“तो भी बन्धुवर घाय मुझे इस समय सिन्धु तब में प्रविष्ट होने की अनुमति प्रदान करें ।

मिथु महासी ने उसकी घोर देखने हुए कहा— ‘धामुध्यान वह तुम्हें मिला सकता है परन्तु उसके पूर्व ।

मिथु महासी को मध्य ही में रुका देत धात्राय सिन्धु उत्सुकतावश उत्तरदाता से पूछ उठा— उससे पूर्व क्या बन्धुवर घाय धारण करें ।

मिथु महासी माना सोचते हुए से कह उठा— “तुम्हें पहले देवी सिन्धु से अनुमति लेनी हावी में क्या कोई भी तुम्हें बीजा देने से मना करे टोक सकता है ।

धात्राय सिन्धु को लम्बा जैसे उन्हे सहसा कोई अवलम्ब मिला गया । वह सुरल ही तो धारणाकर हो देवी सिन्धु की प्रकृतिका की ही घोर प्रस्थान कर उठा ।

घोर मिथु महासी वही जडा रह उसकी घोर देखना रहा । घाय ही कुछ सोचता भी रहा । वह सोच रहा था कि एक दिन तू भी तो ।

उधर धात्राय में संशयान में ही को देत धात्रकक में मयूर कक छटे, धात्रकुक भी जगनी मयूर जगति से बूज उठे घोर कि धरनी ही प्रतिष्ठा को मुन से प्राणि बापिक उच्च स्तर में केका कर नृत्य करन हो उठ ।

धात्राय सिन्धु का धरन इस समय तीव्र गति से बीडता हुआ जा रहा था । वह नए उदात्त को पार कर धरनी पच्छिमिणी के उत्तर तट की घोर इन उदरय से मुड़ा था कि त्वायन की पावन स्मृति में बनत स्तूर को देगता बन् किर साध ही देवी धात्रपाली के धरन भी हा जाएं। वह उधर गत दो-एक दिनों से क्या भी नहीं था । परन्तु वह नाच उठा— ‘मिथु मक में तो प्रविष्ट हो हो रहा है घत धर उसकी धरनी क्या धारणयकता रह गई है क्या स में भी वही रहूँगा बैंगाली में राजा बेटक की विपुन मर्यात को त्याग कर धर बही तो रहना है संश्रिका में भी भला किर क्या संश्रय रू जाएया ? जिन्त मरिका का ध्यान धाने ही उनके हृदय में एक हीम ही उमर उठी । वह सोचने लगा— धात्र क्य ही में उन पर धनाधार कर बेट पर धरनी कन न उमे भी कोई बेट वही रूंगा । उनका धरन इन्ही मध्य पच्छिमिणी तट पर पट्टक क्या था । वहाँ धात्रिक कक उमने मग्गुय ही बनने स्तूर पर हृदी-भी कृति शानी परन्तु इन्ही मध्य उमने धरिणक में कोई विचार जैन विद्यत गति से धा टकराया धरन भी उगी के नाच कनन कक को घोर बीड लिया । धरन तीव्र गति में कनन कक की घोर बीडता जा रहा था परन्तु वह ध्यान मन में धरनी विधान धार में क्या साधना का रहा था । कुछ क्या यही नाच रहा था— धात्र कक धरनी भी धने देवी सिन्धु को कुछ भेंट करी लिया घोर जीवन के इस महत्त्वपूर्ण प्रणय पर जब तक ना पटागेर हो उमने पूर्व में उगे एक कनन बुज ही उरहाय करन भेंट करता था उमने बहूँगा— देवा धरने धरन के धरिण में धरन धरिण कनन की धरिण कोई बहूमय्य सुवगाटार तो है नहीं धर मुन इमे ही स्वीकार कर ना जीवन जाने गई

मुम्हारे इस स्वामन नेछपाध पर कण्ठ के मुक्ताहार से कहीं अधिक सोभायमान हो सके।

अंतत कमल कुण्ड धा पहुँचा। धवन को उत के तट पर छोड़ वह पहले निकट की एक बावड़ी की ओर चल पड़ा। उसके सोपान पर से नीचे उतर उसने उसके जल से अपने मुख को धोया। वहीं जो भी धीर फिर उसके जल को ले अपने शरीर पर छिड़का जैसे वह इस समय वहाँ पुष्प तोड़ने नहीं बरन् किसी उपासना की रीयासी करने आया हो।

कुंड में इस समय एक नहीं बनेक धीर ने भी विभिन्न वर्ण के कमल पुष्प जितने थे—खैत नील रक्तितम एवं पीले—सभी प्रकार के तो। अत वह उनकी विविध वर्ण-रङ्गा को देख जैसे कण्ठ छोच में पड़ गया। छोचने गया—खैत संभ का खोतक है, पर बेबी छिप्पा से भेरा न तो कोई संसर्ष ही रहा धीर न दुराग्रह ही अत वह उचित नहीं फिर तो रचितम ही छीक रहेया पर, वह धनुष्य एवं धासक्ति का परिचायक है जो संभव है कभी मेरे मन में रहा हो किन्तु अब नहीं, बिनकम भी तो नहीं अत वह अब निरवक है धीर नील पुष्प उसकी उबन स्वामन केज राशि में जो सा आदना धीर पीत वीराम्य ना खोतक है पर वीराम्य को एक बार स्वीकार कर मता न उसे किस प्रकार पुष्प मेंट कर सकता हूँ। धीर वह वहाँ की आमा में खलक-सा गया। अंतत बोला—खैत धुन भी है धीर सरलता का भी परिचायक है, फिर बेबी छिप्पा भी तो सीम्य है सरस है अत नहीं क्यों न ले नू प्रेम जितना भी सरल हो वह उतना ही मुखर है फिर अब तो एक प्रसंग की परिसमाप्ति की ही बात है, वह भी जितनी सहज धीर सरल हो उतनी ही मुखर खेपी।

यह छोच वह अंतत कुंड में उतर गया पर अधिक उचले जल का पुष्प उसके मन नहीं आया अत वह धीर जाने बढ़ लिया मन-ही-मन आना—प्रेम की जितनी भी नहुपई में उतर जो उतना ही प्रच्छा है उसका उपहार जितना धम कर धजित किया जाए वह उतना ही मुखवान है प्रेम का मुख बन नहीं बस है साबना है धीर स्थान है बेबी छिप्पा आज मेने अपने प्रेम को त्यागने का निश्चय किया है इसनिए निश्चय किया है कि तुम किसी धीर के साथ प्रेम कर लको धीर तुम प्रसन्न रह सको यही तो मेरी एक भाव महत्वाकांक्षा है।

कुंड के जल से उसके सारे वस्त्र भीज गये पर जैसे उस धीर उसका कोई ध्यान ही नहीं गया। बाहर धा उसने एक धारपी पुष्प की ओर दल-चित्त दृष्टि ॥ देखा बोला—“बेबी छिप्पा की निमत मुख-कान्ति पर अब यह धुन पुष्प अटक रहेया तो निश्चय ही इसका सोप्य भी धीर बढ़ रहेया धीर यह बन्ध हो खेगा धभी तो यह कण्ठ भी सुन्दर नहीं तब देखना अब यह उगकी केष राशि में जलक रहेया।”

धीर फिर वह कुंड के जल में ही लड़ा रह अपने नेत्र भूरे न जान क्या अंत-दृष्टि से निहारता हुआ हृदयबन्ध करछा रह गया।

सहसा ऊपर नम में मेघ गर्जना कर उठ। उसे गुन धाअरुज के मयूर भी धानन्दोच्छ्वास से कुछ वह उठ। धाअरुज मेघों की सन्नता को देख धाचार्य छिप्प क अंतर में सिपा कोई भाव धपवा कोई चाह भी जिन उठी मेघ गर्जना गुन वह

भयभीत नहीं हुआ बरन् उसे एक सुन्दर अनुभूति हो रही। मन-ही-मन बोला—'कल जब मैं मिथु संध में बाईया तक देखा जाएगा परन्तु प्रायः तो अभी मैं देखी छिप्या की घट्टानिका की ही ओर जा रहा हूँ। देखी छिप्या मेरी है और मैं देखी छिप्या का बहू हूँ या न हो पर मैं तो हूँ ही। क्यों प्रेम क्या एकांगी नहीं हो सकता? बहू हाँठा है यदि जब तक नहीं हुआ है तो प्राये हो रहेगा उसकी भी तो अपनी निराली अनुभूति है अपना सुख है अपनी कल्पना है और उसका यह निराला मन ही तो आनन्दोद्भवसाध है ऐसा उल्लास जिसमें कल्पना कहीं अधिक स्वतन्त्र हो चुकी है और पीड़ा में एक विशिष्ट मातृम का संचार हो उठता है।

यह सब कुछ सोचत-विचारत वह माने बड़ा ही जा रहा था कि मार्ग में उसका आसक्त भा गया सोचने लगा—'जब आसक्त तक था ही क्या हूँ तो फिर बल ही बर सता बरूँ।' पर फिर सोचने लगा—'बनो ऐसे ही बनो उपहार उपमाएँ हो रहे। परन्तु वह फिर प्राये सोचने लगा—'मंत्रिका से तो कम से कम कहता ही बरूँ कि कम तुम्हारा यह आचार्य छिप्य मिथु संध में प्रविष्ट हो चुका और फिर वह उसके पश्चात् तुम्हें कोई कष्ट नहीं देना प्रायः बीसा घनाचार वह तुम पर कर बीठा फिर कभी नहीं कर सकेगा। किन्तु बाबा द्वार पर लड़ा प्रहरी उसे देखते ही कह उठ—'स्वामी स्वामिनी तो महापीर के आवाह पर गई है देखी रत्नकमल कम से प्रस्वस्व है, इसी ही उबर बनी गई है वह सब कम घाएँगी।

प्रहरी के मुख से यह सन्देश सुन आचार्य छिप्य न जाने क्यों एक बारभी बबरा ना गया पिल भी हो उठा। परन्तु दूसरे ही क्षण अन्तर में एक भारी स्वास भीचते हुए बोला—'बनो यह भी अच्छा ही हुआ कम उम्हें स्वयं पता लभ जाएगा।'

प्रहरी की उच्छ्वा हुई कि पुछे तो क्या स्वामी? पर वह यह चाहकर भी नहीं पुछ सका। आचार्य छिप्य के मन में आया कि पहले महापीर के आवाह की ओर ही हो पाऊँ, क्या पता देखी रत्न कमल सचमुच प्रस्वस्व हों पर वह यह भी केवल सोच कर ही रह गया अरुचि से स्वयं ही सीधे देखी छिप्या की घट्टानिका की ओर ही बढ़ गया।

अभी वह बीबी मुन पर ही था कि गणसंवागार की दिशा से आता उसे समझा महायक अनिरुद्ध मिल गया उसे देग वह दूर ही था आता—'विचरत प्रायः से तुम अवन ना ही मरशा प्रथम समझी मैं ता कम मिथु संध में।'

परन्तु वह यह बात अचूरी ही वह सका। फिर प्रमद बदन वह पुछने लगा—'क्यों विर अनिरुद्ध यदि प्रमाणा नहीं मिल तो क्या फिर संशय पनरयो ना ही बंदी नहीं बनाया जा सकता?'

अनिरुद्ध अनिच मोच आता—'अन्य कार्य अक्षय पशु यह सभी संभव है अक्षरि मर अक्षर राज्य में आगत रिपिनि हो और उनके विरुद्ध नहीं अक्षरि अक्षर प्रतीत हाता हो या फिर उभये विरि मरुत की आसंवा हो।'

रम पर आचार्य छिप्य उत्तरना में बर उठा—'विर अनिरुद्ध मर में यह मर्मा सुख है, किन्तु हाँ नहा अलप है इनीविण इनी दुविधा है ह्याबाध में निरचय ही।'

माभार्य सिप्य बेचि साबधान हो उठा उसने फिर प्रसंग बदल घोर कुछ पूछना चाहा परन्तु न जाने क्या सोच बस मौन रह गया । उसका अर्थन फिर सीमा बेबी सिप्या की घट्टालिका की ही ओर बढ़ लिया ।

धनिकर भी तनिक देर नहीं बढ़ा रह, अन्ततः जिनार जा रहा था उसी ओर बढ़ गया ।



भयभीत नहीं हुआ बरन् उसे एक सुन्दर धनुमूर्ति हो रही। मन-ही-मन बोला—'कर्म जब मैं भिन्नु सब में जाऊँगा तब देखा जाएगा परन्तु धाम तो धामी में देवी छिप्पा की घट्टामिका की ही घोर का रहा हूँ। देवी छिप्पा मेरी है घोर में देवी छिप्पा का वह हो या न हो पर मैं तो हूँ ही। क्यों प्रेम क्या एकांगी नहीं हो सकता? वह होता है यदि अब तक नहीं हुआ है तो धामे हो रहेगा उसकी भी तो अपनी निपत्ती धनुमूर्ति है अपनी सुख है अपनी कल्पना है और उसका यह निराशा पत्र ही तो धानम्बोधप्रवास है ऐसा उच्छ्वास जिसमें कल्पना कहीं अधिक स्वतन्त्र हो रही है घोर पीड़ा में एक विशिष्ट माधुर्य का संचार हो उठता है।

वह सब कुछ सोचते-विचारते वह धामे बढ़ा ही जा रहा था कि धाम में उसका प्रासाद था क्या सोचने लगा—'अब प्रासाद तक था ही गया हूँ तो फिर मरन ही बर सता बरूँ।' पर, फिर सोचने लगा—'बलो ऐसे ही बलो उपहार उपमाण हो रहेगा। परन्तु वह फिर धामे सोचने लगा—'मंत्रिका से तो कब से कम कहता हूँ बरूँ कि कम तुम्हारा वह आचार्य छिप्प मिले संघ में प्रविष्ट हो रहेगा घोर फिर वह उसके परचात तुम्हें कोई कष्ट नहीं देना धाम बीसा धानाचार वह तुम पर कर बैठा फिर कभी नहीं कर सकेगा। किन्तु बाज़र द्वार पर जड़ा प्रहरी उसे देखते ही कह पठा—'स्वामी स्वामिनी ता महावीर के आवास पर गई है देवी रत्नकमल कम से परस्व है इसी से उपर चली गई है वह अब कम धामेकी।'

प्रहरी ने मुँह से वह सन्देश सुन आचार्य छिप्प न जाने क्यों एक बारगी पकट सा गया किन्तु भी हो उठा। परन्तु धामे ही राण धामर में एक भारी स्वात खीचते हुए बोला—'बलो यह भी अच्छा ही हुआ कम जगड़े स्वयं पता लग जाएगा।'

प्रहरी की दृष्टा हुई कि पूछे सो क्या स्वामी? पर वह यह चाहकर भी नहीं पूछ सका। आचार्य छिप्प के मन में धामा कि वहने महावीर के आवास की घोर ही हो पाऊँ, क्या पता देवी रत्न कमल सचमुच परस्व है पर वह यह भी केवल सोच कर ही रह गया धाम बीस स्वय ही सीमे देवी छिप्पा की घट्टामिका की घोर ही बर दिया।

धामी वह बीबी-मुन बर ही का कि गणसंवागार की रिमा से धामा उसे समझा महापक धनिरउ मिल गया धम देग बह दूर ही न माना—'मिचर धाम मे तुम धामे की ही सरसा प्रधान समझा मे ता कम मिले संघ में।'

परन्तु वह यह बात धमुरा ही कह सका। फिर प्रमद बरन् पूछने लगा—'क्यों मिच धनिरउ यदि प्रमाण नहीं मिल तो क्या फिर संदिग्ध धपराभी को ही बंदी नहीं बनाया जा सकता?'

धनिरउ उनिक गाव माना—'धरप धामे धमप्य परन्तु यह सभी संभव है जबकि नगर धपका गज्य मे धामान स्थिति ही घोर उपक निर बर। स्थिति धामरु प्रमाण होता है या फिर समझ विगी मकट की धामाता है।'

धम पर धामाय छिप्प नगरता मे बह उठा—'मिच धनिरउ नगर में वह कहीं कुछ है किन्तु कष्ट नर। धरप है इनीमिच सभी धुरिका है ध्यावागट मे निरपय ही।'

माचार्य शिष्य जैसे सावधान हो उठा उसने फिर प्रथम बदल और कुछ पूछना चाहा परन्तु न चाहे क्या सोच बस मौन रह गया । उसका अर्थ फिर सीखा लेनी शिष्या की घट्टासिका की ही धोर बढ़ लिया ।

अनिच्छ भी तनिक बेर नहीं खड़ा रह अन्ततः निश्चय था रहा या उठी धोर बढ़ लिया ।







सुप्या समाज की देना निकट घाई वेत, देवी सिप्या के बल कुछ समय पूर्व ही प्रता  
 मन कप्त में था उनके बिद्याल-दर्पण के सम्मुख पीठिका पर बैठी की कि एक  
 परिचारिका ने मनेन लय में प्रबल किया। परन्तु, कथम प्रविष्ट होते ही परिचारिका  
 को जैसे अपनी किन्ही मूल की मुच हो घाई।

प्रद्वारिका की उची परिचारिका को बिबिध या कि कमा देवी को अतिरिक्त  
 अक्षिकर समय है और बहु व्यवहार में मार्य भाव को अनुकूल वाचरण समझती है  
 अतः आमत परिचारिका अपने उत्तरण के माधारेण पर बैठे मजिबत-सी हो गई।

किन्तु धात्र जैसे देवी सिप्या ने भी परिचारिका के इस माधरे के प्रति कुछ  
 उत्सुधता दिखाई। उसकी पय धाहृट को मुच उनकी दृष्टि दर्पण की धार से अनात्  
 हट रही। वह देख उसकी सजन स्वागत भुचयती वेच राशि को अयक पुत्र से मवा  
 मित करती प्रमाधिवा का ह्राय भी अलग हूँ रहा। किन्तु अथक प्रतीसा के परचात्  
 देवी सिप्या के नेत्र पुन दर्पण में अंक उठ दर्पण में ही अचिठे रहु अनेने देखा कि  
 परिचारिका के मुग पर अमी भी अलग की अलगमा अयात् है उनकी मति भी अठ  
 कठ कृती-सी प्रगीठ हुई अत्र देवी सिप्या ने इन समय यही समजा कि अक्षिकर बहु  
 हनी से कठ बहु नहीं पा रही है। देवी सिप्या ने एक बारपी या अनुध्यापक अपने  
 माधरे का कारण पुछना भी आहा परन्तु नाच ही यह नीच कि कमा अपने धाय कह देगी  
 बहु अिठ दर्पण में अरी दृष्टि से अंक उठी जैसे बहु धामे ही अने में किन्ही अम्य  
 की अवि दर्पण की अहायता से देगा आहृती की पर बहु कुछ अराठ हो उठी उभाती  
 पर गिलता की पीपी पुत्रान की अंन-नी गई अमर में अग-कोई अरु भाव की दृष्टि  
 में था अरु-ना कमा धावत मदनता अणीगुन अयिन का दीण मुलाहार अने  
 जैसे अलग हो अग। अने मुलाहार को अतरता से अना प्रसापिका की धोर फेंक  
 दिया अ मुग पर अरु ही गिलता का भात्र छा उठा अिठ अिनामा का-ना। अिठ,  
 बहु अहृ अर में पुछने लयी—'अपी अरिमा अमा मारी की अरुअिठ अीमा कया  
 है?'

प्रमाधिवा ने दर्पण को धोर दृष्टि कर अरुने ता जैसे देवी सिप्या के अनामात्र  
 का अरुने का मा अनाम दिया अिठ अहृ अंन में अीनी—'देवी अपने अनीमात्र ही  
 अपनी अरुअिठ अीमा है।

अनिर अर प्रमाधिवा अरिमा अिठ अने पुछ माधरी हुई भी अान उठी—  
 'धोर देवी को मारी अरार के अनीमात्र के यही अरु अिठ अिठ अीमा के अय भी अरु

पंक बनी रहे, वही तारी सम्पुन है।”

“जैसे ?”—जैसे वह प्रश्न देवी सिध्वा के मुख से उत्सुकतावश ब्रह्मात् निकल गया। प्रसाधिका भी उत्तर में सहज स्वभाव कह उठी—“जैसे देवी सिध्वा स्वर्ग।

देवी सिध्वा ने धनुमान लगाया था कि कपिधा इसके उत्तर में निरन्तर ही देवी प्राभ्रगामी का उल्लेख करेगी। वास्तव में इस प्रसंग में उसने अपने सम्बन्ध में कल्पना तक भी नहीं की थी। अतः उसे प्रसाधिका की बात पर विश्वास नहीं हुआ फिर भी उसके मुख पर धर्मिन्वास का नहीं बरन् विज्ञासा का सा भाव छा गया। परन्तु वह भी धीमे ही लुप्त हो रहा। उसकी मुख मुद्रा यन्मीर हो उठी और यन्मीर मुख पर धानेस की एक रेखा उभर उठी। वह बोली—“कपिधा क्यों क्या वह भ्रम उत्पन्न करने का प्रयास नहीं है ?

देवी सिध्वा के मुख से ऐसा प्रश्न सुनकर भी प्रसाधिका सर्वथा धर्मिन्वित रही। हाँ उसके पीर मुख पर एक मुग्धान अवस्था खेम उठी। वपुष में देवी सिध्वा के प्रतिबिम्ब को निहारती-सी वह बोली—“देवी धापको मैं भ्रम करती, तो मेरा साहस कयापि नहीं हो सकता। मेरी दृष्टि में तो वह एक वास्तविकता ही है।

‘तो कैसे देवी प्रसाधिका ?

इस बार देवी सिध्वा के मुख का विज्ञासा भाव सर्वकोच प्रगाह हो उठा। प्रसाधिका उत्तर से पूर्व अपनी पीठिका से उठ खड़ी हो गई।

परिवारिका तीन भाव से खड़ी रह लोगों के मध्य प्रारम्भ हुए इस प्रसंग को मानते, पुनः सम्ममता से सुन रही थी परन्तु साथ ही संवाद निवेदन के उद्देश्य से धमसर के लिए भी प्रवलयीन रही। अतः इस बार उचित धमसर समझ वह कहने को उद्यत ही हुई थी कि इसी मध्य प्रसाधिका देवी सिध्वा के बो-एक उत्तर के धपों को अपनी लम्बी धनुंसिधियों से संभारती हुई कह उठी—“देवी जब धीवन का प्रवाह सर्वथा सामान्य गति से चलता रहता है तो यह ठीक है कि प्रवृत्तियाँ भी विध्याम की स्थिति में रहती हैं परन्तु धमसर धाने पर वे क्या रूप ग्रहण कर सकती हैं यह तो संकित मिल ही जाता है। संभव है किसी दिन ।”

“किसी दिन से मुम्हारा तात्पर्य कपिधा ?”

देवी सिध्वा के मुख की उत्सुकता इस प्रश्न के साथ-साथ पूर्ण से भी धमिक प्रगाह हो उठी। किन्तु प्रसाधिका अपने पूर्ववत् सहज ढंग में ही बोली—“देवी सिध्वा कसा धर्मिच्छानी का वह कोई साधारण तो है नहीं उन पर तक धाजाना अपने भाव में एक धसाधारण बात है फिर तुम तो बंघाली में एक तारी संभव की भी प्रतीक रही हो परन्तु मैं वह सब कुछ नहीं कहती मैं तो केवल यही कह रही हूँ कि यदि धमसर धाया तो परन्तु इसका धर्म यह भी तो नहीं हुआ कि उस धमसर का धाना धनिवास ही है।”

देवी सिध्वा प्रसाधिका की इस उत्तमी बात को जैसे बिलकुल ही तो समझने में असमर्थ रही। किन्तु अपने वह ध्येय की बात भी नहीं समझी। उसे लगा कि देवी प्रसाधिका ने धमत्यध में धमस्य ही कोई महत्त्वपूर्ण बात कही है, मेरे संदेह में नहीं बरन् किसी धमसर निरीय के। और, जसा वह क्या हो सकता है ? वह हन विधा में

कुछ धीब ही रही थी कि इसी मध्य परिवारिका गत मस्तक हो सविनय परन्तु धाब ही उत्साह का सा भाव दिखाती हुई कह उठी—“देवी धाकास में इस समय मेरा ध्याए हुए है और धास्वानामार में धाचार्य सिष्य पचार है ।

यह संवाद सुन धात्र न जाने क्यों देवी सिष्या का हृदय जैसे बलात् पुरपुरा सा उठा, परन्तु प्रयत्न में उसके मुख पर केवल भाराचर्य का भाव छा कर रह गया । क्यों ? इस कारण नहीं कि धाचार्य सिष्य को उस संकेत के पश्चात् धात्र ही जाने की कसि सुन हो धाई । जैसे संभव है वह भी एक कारण रहा हो परन्तु उससे भी अधिक सम्भवतः यही रहा कि परिवारिका इस संवाद के साथ कस में केवल जाने ही नहीं धाई वरन् उसके मुख पर उस समय उत्सास का भाव भी स्पष्ट परिभाषित हो रहा था । क्यों ? क्या वह । परन्तु वह धब इस प्रसंग में अधिक सोचना धर्ष समस्त प्रयत्न में परिवारिका से कह उठी—“धारी धो बासधरवतिधा तुने तो धाब सधमुष धनर्य कर दिया धाचार्य सिष्य और इतनी हीर धास्वानामार में प्रतीक्षा करें यह तो एक धम धसंभव है वह धब तक निरधय ही सीट गए होंगे ।”

देवी सिष्या का मुख सहसा धिबर्ष हो उठा । धाब ही उसे ध्यान हो धाया परिवारिका का धना इससे क्या बाप था धत वह कुछ परधाताप के से कस स्वर में बोली—“वतिधा धना करना इसमें धना ठेप क्या सोच था धीर न ही कोई देवी प्रसाधिधा का यह तो धात्र मुझ ही से धुन हुई कि धकारण यह प्रसंग छेड़ बीठी ।

वतिधा उत्तर में धना क्या कहती और क्या कहती प्रसाधिका कविधा सिष्यु कविधा ने वह धबधय सोधा कि धरि इस समय देवी सिष्या के ध्यान पर कोई धय धधिसनी होती तो वह धनरय ही उत्पत्ति हो उठती धाया की धाचना करना तो एक धूर की बाध रहती ही ।

धानर में देवी सिष्या इन समय धारी दुधिधा में थी । धाचार्य सिष्य को उसकी धट्टानिधा में धाने धब तक धुरे बाधु धर्य से भी अधिक ही धुके से पर कधाधित ही ऐसा धनर धाया हुआ कि धत्र मन धीर उन धोनों में इननी धसध-धसत रही हो । धीर धब निरधय ही इनना समय नहीं रह गया था कि वह धपने को ध्यवत्तिध करती । वह कुछ धाणों तक तो सोचनी रही, किन्तु धसतन निरधय कर धपने में बोली—“जब धात्र ऐसा ही संयोग धन धाया है तो धिर जाने में धय धा नहीं संकाध कर । धीर धिर वह उगी धबधधा में जैसे सधेय कस से बाधर निकध ली । धात्र उधे धा माधुना धध्या में धेल परिवारिका को धाधर्य हुआ प्रसाधिधा को उमसे भी अधिक । पर देवी सिष्या के सधा-सधत पधों में भी धात्र सधमुष न जाने कर्ण में धति धा नहीं धो । यह धारे धाय धाधधिन भी रही धाधनी रही कि धाचार्य सिष्य कही प्रतीक्षा कर धसतन धने न धण हों धीर धरि वह धने धण ता सधमुष में धिनी का भी धाना धैह धिनाले धीय न रहनी बीन जाने धुके धाने को भी धुंद धिनाले में लज्जा धाण ।

देवी सिष्या कुछ धो सोचनी रही हो परन्तु धाधाय धिधर इन धारी धधधि ही जैसे धनरधन धधधना-धानिक धीर धारीरक धाधों ही प्रधर की धधधना—धध उनके धधधध धाई धारी धाधिन के धधधान् धुष धिधधिन का धा धधधध करणा रहा । उने यह ना धिधधन धा ही धि देवी सिष्या धाई उमधी धिधनी भी उधाा क्यों न करे, पर धइ

मिसने धबधब धाएगी, चाहे फिर चिप्टाचार बघ ही घाए, पर बह घाएगी धबधब । मर-इस घोर से बह पूर्वत-प्रायस्त वा । तो भी बह इस सारी धवधि विभाति के मध्य भी कुछ सोचता ही रहा सोच रहा था—'जब एक बार पाव यहाँ था ही गया है अपना बन्धुकर महात्मा ने मेक ही दिया है तो फिर जो भी कहने वाली बातें हैं वे सभी कहकर खूना धम्यबा कम जब से मिसु संघ में प्रविष्ट हो जाऊँगा तो फिर एक-एक कर के सभी बातें सतायी रहूँगी घोर जब परचातार होगा कि धबधर मिला भी घोर कुछ कहा भी नहीं मग की मग में ही रह गई जब निश्चय ही ध्याग भंग हो रहेगा घोर फलस्वरूप न तो मिसु-बर्मोंका पावन कर सकूँगा घोर इसर का तो रहूँगा ही नहीं घर-बस कहीं धबधर में घटक कर रह जाऊँगा फिर भसा निर्वाण की बात सोची ही कैसे वा सकती है इसका अर्थ हुआ फिर इसी देह को बारण करो घोर मायाकी संसार में बाधो घोर फिर नये सिरे से इन सारी विपदाओं को सहे धबधर उनको सहना तो कोई बड़ी बात नहीं पर कौन जाने फिर धम्य भी मिसा घोर देवी सिध्या भी न मिसी तो ? धबधर, इससे तो निर्वाण ही बेपरकार है निर्वाण होने पर देवी सिध्या से मिसने की कम से कम यह जालता तो नहीं बनी रहेगी बह नाजवा मिसने धाज धबधर ही में पुजे इतना मटका दिया है ।

बाहर मेक बैठे क्रिसकामी मारते हुए बर्जन कर उठ अपना रौद्र रूप दिखा बमक भी उठे, घोर फिर सहना बरख भी रहे । धाधार्य सिध्द धास्थानागार के वनास किर्तों में से धबधर घाए एक श्रोक का स्पर्श पा सम्भूत कर बैठ गया । देवी सिध्या घट्टातिका के मुख्य कम की घोर से इस समय धास्थानागार की ही घोर बड़ी बसी मा रही थी कि बह मार्ग में मेकों की बर्जना को सुन सहम-सी उठी । बह सरा ही संवत रही थी घर धाज उठे अपने ही पर धाधधय ही रह्य । बह इस समय एक बर्पा बस से गावाध-भस्तक भीग चुकी थी सारी देह जल से तर हो गई, परन्तु उठे इस घोर से जैसे तनिक भी मुक नहीं थी भीये बरख उसके पाव से चिपट चुके थे पर उस घोर भी उसके ध्याग नहीं हो सका कि उसके चिपटे बरकों में उसके बाठ को क्या पठ हा उठी है, घोर नह मन में उठी धाधार्यकी प्रबलता के साथ एक पवन के श्रोक के सद्युध धास्थानागार में प्रविष्ट हो रही बिते ही जैसे कुछ देर पूर्व गवास में से एक पवन का श्रोक धावा था घोर धाधधय सिध्द के विचारों को किसी दूसरी ही कल्पना धरन में बहा ले गया था ।

धाधार्य सिध्द उठे इस धबधवा में देख स्तब्ध हो उठा देवी सिध्या भी जैसे देख हठप्रभ हो रही । परन्तु न जाने बह किस देवी की ज्ञपा से अपनी बाली पर समय रख सकी कि कण्ठ तक धाई किसी बात को भी बह कहने में शूक सकी ; पर उनके मेक तो जैसे उनके मन की बात कह हो उठे । घोर धाधार्य सिध्द जब कुछ सम्प्रभा तो धधिवादन के लिए उठ उसके हाथ मेकों पर पा रहे धम्यध मनीषाग न लाया कमल पुत्र पीठिका कर ही पड़ा रह गया मग-ही-मग सोचता रहा—'दिशो धाज इनने दिनों परधान् उनके कैपरास में यह पुत्र घटकाने की इच्छा कमबली हुई थी परन्तु जैसे बह भी धबुरी ही रह गई । कम जब मिसु संघ में था उनमें सम्मतिग हो रहूँगा तो फिर ममा कम कौन ता धबधर दिनेवा । अपनी इन इच्छा की पनबनी होते न देख बह

घोर भी बड़ गई। देवी गिप्पा पीठिका पर पड़े कमल की घोर देखती हुई बोली—  
“अब तो बसोगे ?”

आचार्य गिप्पा बुबिषा-सी म बोला—“अबतय चर्मुबा, परतु बरत बरतने  
नहीं।”

“क्या ?

“क्याचि आब मेरा यह जो भेप है वह किसी देवी के सम्मुख एक प्रमाण  
है।”

“क्या क्या बिना प्रमाण के काम नहीं चल सकता ? प्रश्न के साथ देवी गिप्पा  
के मंत्र घोर अचिक मुस्करा उठे। किन्तु आचार्य गिप्पा गम्भीर हो गया। बोला—  
“नहीं देवी गिप्पा क्योंकि बैंगली में प्रमाण गिताम्ल आबस्वरु है।

“वह है सो तो मैं भी जानती हूँ अच्छा क्या तक ही चलो बरत न  
बरतना।

आचार्य गिप्पा इस बार जैसे अपने को रोकने में असमर्थ रहा। वह चल पड़ा  
देवी गिप्पा भी बोलीं ही। कर्पा में भीपसे हुए घोर मुचप कल में पट्टेच देवी गिप्पा  
परिचारिका बलिया से बोली—“इन कर्पा में आब संख्या समाज वा प्राबोचन तो अस  
म्भव है अतः बँसी ही सूचना करवा दो। और फिर वह आचार्य गिप्पा वा साज से  
अपने निजी कल की धार चल पड़ी।

बस में सा देवी गिप्पा ने आचार्य गिप्पा के बरत काष्ठ मंत्रूपा से निकाल  
अनके सम्मुख रख दिए। पर आचार्य गिप्पा ने उनकी धोर देला तक भी नहीं। पूछने  
लगा—“देवी गिप्पा कृपा देवी मंत्रिका ने कुछ कहा नहीं उसने अबतय ही कुछ  
कहा होगा।”

देवी गिप्पा बोली—“आचार्य गिप्पा मंत्रिका देवी है। मला बड़ क्यों कुछ  
कहती।”

“क्यों बरी गिप्पा क्या देवी कयी कुछ कहती ही नहीं ? पर छोड़ो वह। क्या  
असने सचमुच कुछ नहीं कहा उसने अबतय ही कुछ कहा होगा ?”

देवी गिप्पा कहने लगी—“मुख तो कुछ गार रहा नहीं अच्छा तो धार ही  
बताओ क्या उम्हने क्या कुछ कहा होगा ?”

आचार्य गिप्पा कुछ सोच-ना क्या। पूछने लगा—“देवी गिप्पा क्या धार मेरा  
जाहान नहीं कर रही ?”

देवी गिप्पा गम्भीर ही बोली—“मै इतना साहस भी कर सकती हूँ आपने  
ऐसा कसे ममक मिया ?”

“क्यों यदि मैं बैंगल समक मूँ तो क्या कुछ अनुचिन जाना ?”

देवी गिप्पा के केशों को मुस्करान प्रगाड़ हा गई। उनकी धोर देखती हुई  
बोली—“दिनकर भी नहीं आचार्य गिप्पा।”

आचार्य गिप्पा जैसे बरी उन्म उन्म बना—“देवी गिप्पा मला यह कसे  
ममक है अतः है भी धोर नहीं जी।”

देवी गिप्पा हँस गई। उसे हँसते देग आचार्य गिप्पा को नापी आचर्य हुआ।

क्यों ? क्योंकि वह पहले कभी इस प्रकार हुई नहीं थी हूँगी भी हो तो उनसे देखा नहीं था । हूँगी के मध्य ही देवी सिध्दा बोली—“देखो धार्धार्य सिध्दा में हूँ वही हूँ संख्या समाज में नित्य प्रति नृत्य के लिए भी प्रस्तुत होती हूँ धाधार भी करती हूँ और सबका भी क्यों ? क्योंकि इस संसार में सब जन्म हुआ है तो फिर उसमें एना भी है और सब एना है तो उसी के अंत से रहना हाया जैसे कि देवी मंत्रिका एनी है, धार धार सारे दिन निराहार रहें, और उन्हें भी रखा परन्तु उन्हें अपने पर किंचित भी तो कुछ नहीं उन्हें कुछ है तो केवल इस पर कि धार रहे । क्या ? क्योंकि उन्हें यही सोना देता है जैसे मुक्त संख्या-समाज में नियमपूरक नृत्य करना ही सोना होता है । क्यों ? क्योंकि वह मेरा कर्तव्य है कर्तव्य के प्रति निष्ठा मात्र ही तो जीवन की सोना है । कदाचित् मंत्रिका ने भी यही समझा हो तभी तो वह परां धार, बत्त रक गई, और कुछ वह भी यह, वह कह गई है—“देवी सिध्दा में तो धार्धार्य सिध्दा को व्यवस्थित रखने में असमर्थ हूँ और असहाय भी हूँ । और यदि तुम ऐसा कर नको तो मुक्त पर तुम्हारा बहुत बड़ा उपकार होगा ऐसा उपकार कि यदि मैं उनसे उम्हारा भी होना चाहूँ तो न हूँ सक्षम ।”

धार्धार्य सिध्दा जैसे सब कुछ समझकर भी कुछ समझने में असमर्थ रहा पर हूँ वह धार्धार्यानि का सा धवस्य अनुभव कर उठा और पीठिका से उठ खड़ा हो गया साक्ष ही बोला—“देवी सिध्दा कम जब मैं पिशु संघ से प्रविष्ट हो चुँया तो निरास करो सब कुछ व्यवस्थित हो जाएया तब न देवी मंत्रिका ही को कोई बन् होगा और न ही मैं किसी अन्य को ।”

धार्धार्य सिध्दा का कष्ट स्वर धार्यात्मिक शोभित हो धारस्य हो गया । पर, देवी सिध्दा यह सुन पुन हँस पड़ी कुछ कहने को भी उद्यत हुई कि धार्धार्य सिध्दा साधय बाहर की धार बन पड़ा ।

पिशु संघ में प्रविष्ट होने के लिए देवी सिध्दा से अनुमति लेने की बात जैसे वह सब एक मूल ही चुका था । परन्तु धमी उनसे बो-एक पग डी रखे होंगे कि देवी सिध्दा ने अपना हाथ बड़ा उसे पकड़ लिया । बोली—“आपको मैं धाम धमी ऐसे नहीं जाने हूँगी ।”

धार्धार्य सिध्दा ने सरोपदृष्टि से देवी सिध्दा की धार देखा उत्रो प्रकार देखते रहे कुछ उठा—“क्यों ?”

देवी सिध्दा उत्तरता से कह उठी—“धार्धार्य सिध्दा वह मैं बाद में बतानेगी ।” और धमी क भाव वह फिर हँस पड़ी । धार्धार्य सिध्दा सारेय बोम उठा—“देवी मैंने इसके पूर्व तुम्हें बधावित ही कभी हँसते देखा हो क्या धाम तुम्हारी यह हँसी अभिनय नहीं है, या फिर यह मेरा उपहास है ।”

देवी सिध्दा के मुक्त पर कष्ट क्षिप्तता उमर धारि बोली—“धार्धार्य सिध्दा कभी हँसी नहीं वह ई स्वीकार करती हूँ परन्तु वह उपहास की हँसी नहीं है रही अभिनय की बात क्या जीवन ही अभिनय नहीं है ?”

“देवी सिध्दा बीसा कम से कम मैं नहीं समझता ।”

“धार भले हो न समझे पर वह ही एक वास्तविकता ही । सो जैसे ? यदि मैं

उम बताना चाहूँ भी तो चाह कर भी बता नहीं सकती क्याकि मेरी भी अपनी मज्ज मर्यता है। अपना भी अच्छा यह तो बताओ कि बन्धुवर महासी ने आपको यहाँ क्यों भेजा था ?”

आचार्य शिष्य बोला—“सम्भव है उनके मन में कोई भ्रम रहा हो।”

“अभी उन्हें भ्रम था पर आपको तो नहीं था फिर भी आप अपने निरक्षय को छोड़ आते यहाँ क्या करने आए ?

आचार्य शिष्य को देवी शिष्या का यह प्रश्न कुछ अपमानदाक लगा परन्तु फिर भी वह उस पर उत्तरित न हो सका। उन्हे जैसे कुछ धारवस्थ ही हुआ बोला—“तो क्या यह एक भयंकर भ्रम ही कर बैठा।

देवी शिष्या उत्तरता से बोली—“भ्रम भला इसमें क्या होती ? यह तो अच्छा ही हुआ कि आप आ गए।”

आचार्य शिष्य अपनी बृष्टि देवी शिष्या के मुख पर टिका बोला—“देवी शिष्या अच्छा तो सब होता जब तुमने कभी मेरी प्रतीना की होती इसलिए वह भ्रम ही हुई।”

देवी शिष्या इस बार निरक्षय ही निरक्षर ही रही इसलिए नहीं कि उनके पास आचार्य शिष्य के अक्षरवक्ष प्रश्न का कोई उत्तर नहीं था वह अक्षय या और वह उत्तर दे भी सकती थी फिर भी वह उसे टाक गई। परन्तु साथ ही भारी विवशता का भी अनुभव कर लई। उसे निरक्षर देव आचार्य शिष्य न बाने क्या कुछ सम्भवता स्पष्ट धरती में ही कुछ पुष्टन की विवश ही उठा परन्तु वह न कुछ वह पुनः क्या से बाहर की ओर चल पड़ा। देवी शिष्या ने पुनः उसका हाथ पकड़ कहा— आचार्य शिष्य यह नहीं आभावे पर्याप्त गति बीच खड़ी है फिर ऊपर से भ्रमसाधार बर्षा प्रकाश हो रही है समक है समर के भूने राजन्या पर आत प्रकाश भी न ही अक्षय बार में यदि कहीं कुछ हो गया तो ?

“तो क्या देवी शिष्या ?”

अभी वह कहूँने कि देवी शिष्या ऐसी भ्रमसाधार बर्षा और राति के इन अक्षय बार में भी आचार्य शिष्य का न टाक मडी। अभी की बात छोड़ स्वयं देवी भ्रम रिक्त क्या कहूँनी ?”

आचार्य शिष्य बोला—“नीर यदि रद्द गया तो फिर यह भारी बैयासी कम प्रानः क्या रहेगी ?”

देवी शिष्या अनुमान बाध उठी—“बैयासी की विवाह सब भ्रम करत यह अक्षय है।”

आचार्य शिष्य ने अनुमान से पूछा—“आ क्यों देवी शिष्या ?”

देवी शिष्या उत्तर में हुई ही हँस पड़ी। फिर बोली—“यही धारने ही तो कहा था कि बैयासी में अक्षय सब ही अक्षय है और अक्षय धार है।”

इस बार आचार्य शिष्य को भी कुछ हँसी आता चाहनी थी परन्तु फिर भी प्रकट में न हँस सका। नग अक्षय ही बोला—“देवी शिष्या धार अक्षयुष गणु अक्षयानी है।”

देवी सिध्दा बलिया को पुकार पठी ।

बन वह भा उपस्थित हुई तो देवी सिध्दा बोली—“बलिया, आचार्य सिध्द का इसी कम में बिष्टर कर दो मे मी यहीं भूमि पर सो रहूँगी ।”

आचार्य सिध्द यह सुन स्तब्ध रह गया । बलिया को भी आश्चर्य हुए बिना न रहा वह बोले उठी—“क्यों देवी, आप भूमि पर ही क्यों सो रहेंगी ? अट्टालिका में बैठना नहीं तो एक शय्या नहीं है ?”

देवी सिध्दा इसका कुछ उत्तर नै, इससे पूर्व ही आचार्य सिध्द बोले उठे—“बलिया यह सब कुछ खूने दो ।” और फिर देवी सिध्दा की ओर दृष्टि कर वह बोला— देवी सिध्दा क्या यह कैसे संभव है ? मुझे अपने आराधक की ओर सीटना ही होना ।

देवी सिध्दा कुछ पठी—“तो क्यों ? वह आश्चर्यक तो नहीं या फिर आपको यहई सोने में कोई संकोच है ?”

आचार्य सिध्द उसकी ओर ही देखता रह बोला—“हैं देवी, संकोच नै ही ओर ?”

देवी सिध्दा बोले उठी— आत्मविश्वास भी नहीं—क्यों नहीं न आचार्य सिध्द ? पर धाक आपको यही सोना होना । ऐसी रात्रि में मैं आपको इस प्रकार कर्मानि न जाने दूँगी । चाहे फिर आपको संकोच हो सकता ।”

आचार्य सिध्द मन्म ही में बोले उठे—“देवी सिध्दा संकोच तो इतना नहीं बरन्तु कम प्रातः स्वर्ण ही सारि बैशासी मे दोनों ही के नाम पर कर्त्तक को लग रहेगा अपने पर कर्त्तक लवे जो तो मुझे उसका इतना भयान नहीं पर हा ।

देवी सिध्दा एक लम्ब आवाज मे हँस पड़ी । फिर बोली—“केवल कर्त्तक के अर्थ से तो मैं आपको बाहर जाने नहीं दे सकती । इई अपने पर विश्वास न हो तो वह डूबती बात है मुझे तो अपने पर विश्वास है, और विश्वास है इस बात पर कि आप मान नहीं सारी रात्रि न सो पाने पर भी प्रातः अपने को स्वस्व पा सकोगे ।”

आचार्य सिध्द को देवी सिध्दा की यह बात लम्बुन नहीं रहेस्पुर्न सभी उभरे आश्चर्य में हुआ ।

वह पूछने लगा—“और रात्रि में और आत्मस्व हो पना तो ?”

देवी सिध्दा बोली—“इतना लुभ मुझ पर विश्वास कर सकते हो या फिर विश्वास न करने की ही ठान की है ।”

देवी सिध्दा की इस बात से क्या कुछ आश्चर्य हो सकता है आचार्य सिध्द कुछ भी समझने में असमर्थ रहा । लिन्तु इसी अर्थ एक प्रश्न सहसा उसके मस्तिष्क में आ सकाया । वह कुछ उठे—“देवी सिध्दा क्या मैं एक बात कुछ सकता हूँ ?”

देवी सिध्दा ने उत्तर में न तो ना ही कहा और न ही ही । परन्तु आचार्य सिध्द ने उत्तर की विरीय प्रतीक्षा न कर पूछा—“क्यों देवी सिध्दा, क्या अर अंकी-पुत्र कर्त्तक पर संदिह उचित नहीं ?”

देवी सिध्दा इस बार भी उत्तर में मौन रही । उभे मौन रहे देक आचार्य सिध्द



कह उठा— देवी सिध्दा ऐसा प्रश्न मैं किसी से भी पूछूँ यह मेरी मात्र संकीर्णता है, कदाचित् अधिकार भी नहीं पर फिर भी मैं न जाने क्यों तुम से इस प्रश्न का स्पष्ट उत्तर पाने के लिए उत्सुक हूँ। इस प्रश्न के निरूपण ही को उत्तर हूँ, उनमें से कोई भी एक सुनकर मैं संतुष्ट हो सकूँगा, कम से कम इतना धारणासन तो मैं दे ही सकता हूँ।

देवी सिध्दा उत्तरता सं बोली—“नहीं आचार्य सिध्द उसका एक तीसरा उत्तर भी तो हो सकता है।”

यह कह देवी सिध्दा के मुख मुस्करा उठ।

आचार्य सिध्द ने उत्सुकता से पूछा—“सो कौन सा देवी सिध्दा?”

देवी सिध्दा बोली—“पर, मैं इस प्रश्न का उत्तर वही यह आश्चर्यक नहीं।”

आचार्य सिध्द बोला—“तुम्हारे लिए न हो किन्तु मेरे लिए तो हो ही सकता है। अच्छा बसो फिर यही बताओ कि यदि अष्टीपुत्र कल्पिन ने मेरे सम्मुख मैं इसी प्रकार का प्रश्न किया होता तो क्या तुम उसका भी ऐसा ही उत्तर देती?”

देवी सिध्दा बोली—“आचार्य सिध्द अष्टीपुत्र कल्पिन हमारे मध्य की बातों में घाए, यह कोई अनिष्टाव तो नहीं। घाएके पन्धर तो इस समय स्वर्ग ही में सुरक्षा प्रदान की स्वामासिक विद्याया प्रवण हो उठी प्रतीत होती है।”

यह कह देवी सिध्दा ने आचार्य सिध्द की ओर देखा। आचार्य सिध्द उस की ओर देखते हुए कहने लगा—“देवी न जान क्यों मैं आश्चर्यक हुआ चाहता हूँ।”

देवी सिध्दा उत्तर में उठि सगर्व मुस्करा उठी। पर आचार्य सिध्द इस बार कुछ निरूपण कर कद से बाहर निकल गया। देवी सिध्दा ने भी उधे दस बार नहीं टोका ही कुछ कहा प्रवण। यह बोली—“आचार्य सिध्द मैं भी कुछ आश्चर्यक हुआ चाहती हूँ।”

आचार्य सिध्द बोला—“क्यों क्या इतना मेरा अधिकार है?”

देवी सिध्दा बोली—“अधिकार ही नहीं आचार्य सिध्द कर्तव्य भी है।”

आचार्य सिध्द कहने लगा—“देवी सिध्दा मैं इस समय प्रवण ही बुधिया में हूँ यह तुमसे क्या छिपाना फिर भी यदि मैं तुम्हें आश्चर्यक कर सका तो इसे मैं धरना हीमाय समझूँगा।”

देवी सिध्दा बोली—“आचार्य सिध्द केवल आपका ही नहीं बैथानी का भी। सुरक्षा प्रदान का दायित्व अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, उसके प्रति यह प्रभाव किसी प्रकार भी उचित नहीं। आचार्य सिध्द घाए के मेरा यह अनुरोध गण-कल्याणी के माते है।”

आचार्य सिध्द फिर चलते-चलते पूछ उठा—“धीर देवी सिध्दा के माते क्या कोई अनुरोध नहीं?”

देवी सिध्दा उत्तर में उत्सुकित हो बोली—“जो वह घाएके स्वर्ग पुत्र गया यह प्रवण ही हुआ तो फिर तुमो संकरिता भी घाएके कुछ अनिष्टा करनी है, इमारत बना जब तक यह गणराज्य प्रवण-प्रवण है, तब तक गण-कल्याणी भी जीवित है, घोर उन्नता सुरक्षा प्रदान भी फिर उन्नती बिगता क्यों?”

धन्य मैं व्याचार्य सिष्य जैसे न चाहकर भी पाठी मन से कह उठा— 'देवी  
 सिष्या यदि मेरे मन में कोई भ्रम था तो वह धान यहाँ आकर खीर बना ही कम  
 नहीं हुआ क्या यह एक विशम्भवा नहीं ?”  
 खीर देवी सिष्या इसके उत्तर में न 'हाँ' ही कह सकी खीर न 'ना' ही कह  
 सकी ।





**प्रा**तः जब प्राचार्न सिष्य की निद्रा कुत्ती तो उठे तथा मन का कोई भावो बोध उतर चुका है, परन्तु जैसे धर्म-मार्ग की क्लामित धमी भी धरवीप थी । प्रतः निद्रा कुत्तने के परचात् भी वह नेव बन्ध किये ही प्रससाया-सा लेटा रहा । रीरों को लम्बे पछार, करबट से वह सोचने लगा—“अरे यो ध्वजधर, तुने तो कस निम्न संव में प्रविष्ट होने का निश्चय किया था पर जैसे धमी वह तुम बैठा घाई ही नहीं । क्यों जब प्रायेभी उठ ही सही । वह भी प्रच्छा ही हुआ कि मैंने अपने इस निश्चय की बात किसी से नहीं कही पर धायक किसी से कह बैठा था, ही अनिच्छ ही को तो संकेत किया था, धीर यदि कहीं उठने यह बात किसी धीर से कह बी होमी तो ? फिर तो मुझे सचमुच बड़ा लज्जित होना पड़गा ।”

बाहर धर भी बर्षा हो रही थी । रात्रि भर ही उसका धनधरत कम कठियान रहा था धीर उसकी इस रिमझिम में जब वह धय्याबड़ हुआ था तो उसने जैसे किसी अनिर्लति-इन्द्र के पत्न्या की-सी विभामित का अनुभव किया था । कस में पूर्वतः एकांत ती था ही अतः एक बारगी धाया विभाम का भाव जब धीर प्रगाड़ हो उठा तो क्लामत-मस्तिष्क भी नये विचारों के छाव खेल उठा धीर न जाने कब तक बैसठा रहा कि जैसे निद्रा धा गई धीर जब वह घाई तो जैसे बस सर्वथा निर्द्वन्द्व हो कर ही घाई । धीर, वह निर्द्वन्द्वता उसके मुख पर धमी भी विद्यमान थी । संभवतः इनी कारण से “यदि अनिच्छ मे किसी धीर से कह दिया होगा” वाली बात पर उसने अधिक सोचना ध्यर्न समझा धीर फिर अपने नबोधित विचारों को एक धुरधुरी-सी से वह सोचने लगा—“उचागत करे, देवी रत्नकमल के प्रस्वत्न होने की बात मूठ निकल प्राय, फिर तो मैं मंत्रिका को सचमुच वह विन्नाई, वह विन्नाई कि वह भी क्या भाव रखेगी धीर मूल बाएवी देवी सिष्या की प्रदृशिका पर जाता थी । पर इस समय वह देवी सिष्या की कोई भी बात नहीं सोचना चाहता था अतः उसका स्पर्ध करती प्रसंग से तनिक हटने का प्रयास कर वह सोचने लगा—मंत्रिका ने देवी सिष्या से कस न जाने क्या कस कहा होना क्या कृष्ण क्या समी कृष्ण कहा होना धीर कदाचित् वह घाई हो कि परन्तु देवी सिष्या ने भी कस रात्रि धर एकार ही कर दिया । कहने लगी—भाज रात्रि की यहीं तो रहो ममा इस मृतताकार म्या धीर रात्रि के धन्धकार में मैं तुम्हें कति जाने बूगी यदि जाने दिया तो मला करिका क्या नहूमी ? मंत्रिका जब यहाँ थी ही नहीं तो फिर क्या कहती ध्यर्न ही मैं ही क्या साया इससे तो बहीं छो रहता ही प्रच्छा था नर सोठा तो क्या देवी सिष्या

से ही सारी राति कोई न कोई बाती करता रहता भला क्या बाती करता रहता ? सचमुच वह बड़ी बतुर है, समय भी पर लगता मुझ यहाँ तो किन्ती धनोप दीखती है ।' धीरे इसी के साथ विचार प्रवाह ने एक विराम-सा बिना फिर भी वह मेघ मूँदे ही पड़ा रहा जैसे वे झुंके कि न जाने क्या कुछ निकल रहेगा—कि सहसा उसे कुछ स्मरण हो आया बेबी सिप्या ने कहा था—'धीरे मुझे यही सोचा बेता है कि मे विरय प्रति ही संघ्या समाप्त में मृत्य के लिए प्रस्तुत होऊँ । धीरे मुझे ? जैसे अपने को विककार कर वह तत्परता से धम्मा पर उठ बैठा धीरे सम्मुख पीठिका पर न जाने कब से प्रतीक्षा में बैठा अनिरुद्ध भी उठ खड़ा हो गया । नत मस्तक हाँ आना— 'धाय मेरा अनिवादन स्वीकार करें ।'

परन्तु आचार्य सिप्य ने उसके अनिवादन का कोई उत्तर न दे उरतुकता से बूझा—'क्यों निच अनिच्छ ऐसे तुम यहाँ कब से बैठ के ?'

'प्रात ही से धार्य ।'

'प्रात ही से ? धीरे भला प्रब क्या समय होया ?'

'बही मम्माङ्ग ने कोई आवा प्रहर रोप रहा होगा धाय ।'

मात्र आवा प्रहर ? वह तो आरधर्ष है अनिच्छ । पर, तुमने मुझे क्या क्यों नहीं लिया ? धम्मा एक उच्छ्वास तो है ?'

अनिच्छ उत्तर में मोग रहा केवम मीन ही नहीं रहा बल् मस्तक भी नत कर लिया । उसके मुख पर नैराश्य मात्र भी सा गया । यह देख आचार्य सिप्य कुछ व्यग्र हो उठा पूछने लगा—'क्यों आनुप्याग, क्या कोई बन्धीर बात हो गई ? बैरानी कुछक से तो है, ना फिर उत पर कोई धीरे आघात हुआ है ?'

अनिच्छ ने नत मस्तक रहे ही बोझिल धीरे बीमे स्वर में कहा—'धार्य कुमार सुपत धम इस संसार में नहीं रहा ।'

'इस संसार में नहीं रहा ? क्या ही गया का उठे ?' आचार्य ने सारधर्ष बूझा ।

अनिच्छ ने पूर्ववत् नत मस्तक रहे ही बतयाया— 'धार्य कम राति में उठकी किसी ने हत्या कर दी ।'

आचार्य सिप्य पर जैसे बल प्रहार हुआ । वह धम्मा पर ही उठ खड़ा हो पूछने लगा—'हत्या ! सुपत की ? किसने की ? धीरे तुम्हें पता कब बना ?'

पर अनिच्छ इनमें से एक प्रश्न का भी उत्तर न दे मारों कोई पूछत ही संवाद सुनाने को व्याकुल हो उठा । बोला—'धार्य क्यार सुपत को इरग का संवाद सुन सामन्त कार्तिकेय भी ।'

'सामन्त कार्तिकेय भी ?' आचार्य सिप्य धम्मा पर ही धिक्क हुआ-सा रह गया फिर बोला—'यह तो लक्षपुत्र धनर्ष हो गया अनिच्छ ।

फिर धम्मा से नीचे कूट अनिच्छ के कर्णों की किञ्चोड़ते हुए बूझने लगा—'धीरे आनुप्याग मुञ्ज की हत्या किसने की इसका भी कुछ पता बना ?'

किन्तु अनिच्छ को जैसे धानी कच धीरे नहना रोप रह गया था । परन्तु वह कुछ कहे उदरसे पूष ही उठके वेपों से धधु-बार वह निकली ।

आचार्य सिप्य यह देख स्तम्भ रह गया अनिच्छ के कर्णों को बर्ष से धी अधिक

किन्धोड़ते हुए पूछने लगा— क्यों घायुष्मान्, क्या कोई बुद्धर समाचार अभी धीर भी शेष रह गया है ?

मनिन्द्र ने सत्तरीय के पक्ष से नेत्रों को पीछने का प्रयास किया साथ ही अपना शीर्ष झुका बोला— “भार्ये आपने घायुष्मटी चुभिता ।”

उसका कण्ठ मध्य ही में अवरुद्ध हो उठा । तो भी प्रयास कर वह बोला— “भार्ये आप तो जानते ही हैं । पिता धीर माता बोर्भो ही के विरंघत हो जाने पर मैंने कितने कष्टों से उसका लासन-यासन किया था धीर धाय ।”

उसकी बात फिर मध्य ही में रुक रही । जैसे जो कुछ वह कहना चाहता था कहने योग्य नहीं था । पर धाचार्य सिध्द जैसे उसे समझ चुका था । वह दीर्घ निश्वास छोड़ता हुआ बोला— “घायुष्मान्, बैशाखी के उज्ज्वल मसाल पर यह तो सचमुच भाटी क्लंकर है, धीर सबसे अधिक हमारे सुख पर, कि हम अपने शायित्य का उचित पासन नहीं कर सके ।”

तत्पश्चात् मनिन्द्र की पीठ को बपवया वह बोला— “मनिन्द्र बैशाखियों ने सदा ही सनी की हानि को अपनी हानि समझा है । घायुष्मटी चुभिता के साथ जो कुछ हुआ है, वह तुम्हारा कोई निजी अपमान नहीं बरन् समूची बैशाखी का है धीर इन सनी के लिए कर्तव्य का धाह्वान ।”

धाचार्य सिध्द सभी कुछ धीर कहा चाहता था कि इसी मध्य मनिन्द्र कण्ठक उठा बोला— “किन्तु भार्ये ऐसा तो बैशाखी में कभी नहीं हुआ यह तो प्रणव की पुनीत परम्परा के प्रतिभूत आचरण हुआ ।”

इस पर धाचार्य सिध्द मनिन्द्र से पूछा चाहता था कि चुभिता कीवित भी है या नहीं अथवा प्रावात में ही नहीं है परन्तु वह इनमें से कोई भी प्रश्न न पूछ सका । क्यों ? क्योंकि इसी के साथ उसके अन्तर का कोई सबेह नाव प्रबल हो उठ पा । पीठिका पर बैठते हुए उसके मुख से जैसे स्वतः एक प्रश्न निकल गया । वह पूछने लगा— “अच्छ घायुष्मान् यह तो बताओ कि सामन्त कार्तिकेय ने जब यह समाचार सुना तो उन्होंने कुछ कहा था ? धीर सुषत की हत्या भला कहाँ हुई ?”

मनिन्द्र बोला— “भार्ये सामन्त कार्तिकेय ने जब समाचार सुना तो उनके मुख से केवल यही निकला— ‘हा विवशासनात् ! परन्तु कौशा धीर कितने किया धीर केशके साथ वह सब कुछ कहने से पूर्व ही वह अशित हो गए, धीर फिर—”

वह सुन धाचार्य सिध्द के अन्तर में बँठी किसी वृद्धधारणा को जैसे कुछ अरु मित गया । पीठिका से उठ वह बोला— “सामन्त कार्तिकेय को वह सब कुछ बताने की आवश्यकता भी नहीं थी । मनिन्द्र यह विवशासनात् तो बैशाखी के साथ हुआ है— बैशाखी के साथ धीर जानते हो कितने किया है ?”

मनिन्द्र उत्सुकता से धाचार्य सिध्द की धीर देख उठा । परन्तु धाचार्य सिध्द ने अपने ही प्रश्न का कोई उत्तर न दे धीर धामे पूछा— “धीर इन समय कुमार कीठिरस कहाँ है ? तब कहाँ था ? धीर विनिश्चय अमात्य को यह समाचार कब मिला ? धीर फिर क्या वह स्वयं भी कल-स्वक पर पहुँचे ?”

मनिन्द्र इतने प्रश्नों का एक साथ उत्तर भला कैसे दे पाता । परन्तु धाचार्य

धिष्य ने भी कदाचित् ये सभी प्रश्न तत्काल उत्तर पाने की वृष्टि से विद् भी नहीं थे। और धर्मन है कि उसने अपने ही पहले वाले किसी प्रश्न का अप्रत्यक्ष में अपने इन प्रश्नों द्वारा उत्तर देने का प्रयत्न किया था। धनिकट ने भी जैसे आचार्य धिष्य के अन्तिम प्रश्न को महत्वपूर्ण समझा था उसी का उत्तर लेते हुए बोला— मायें, आचार्य को यह कुछ वंशव सुनाने स्वयं में गया था परन्तु उन्होंने उसमें जैसे कोई शक्ति ही नहीं दिखाई। साव ही बोले—“शुद्धा प्रबान निक्रिय हो उठा है, और नगर व्यवस्था में मेरे साथ कोई सहयोग नहीं कर रहा था जब मेरे लिए इस पत्र पर बने रहना और भी असम्भव हो गया है।

निश्चय्य अमात्य ने एक प्रकार से एक प्रकार से क्या बरन् स्पष्ट शब्दों में ही आचार्य धिष्य पर वास्तव हीनता साव ही अनुशासन र्गन का आरोप लगाया था परन्तु उसे सुनकर भी उसने अपने को न तो अपमानित हुआ अनुभव किया और न वह उत्तेजित ही हुआ। यह देख यदि धनिकट को कुछ आश्चर्य हो रहता तो स्वाभाविक ही था। बैधासी में किसी पर, और वह भी सुरक्षा प्रबान समुच्च उच्च पराधिकारी पर, अनुशासन हीनता का आरोप लगाया जाए और वह भी उसके एक उच्च पराधिकारी द्वारा यह कोई कम महत्वपूर्ण बात नहीं थी। किन्तु उसे सुनकर भी धिष्य इस समय प्रकट में सर्वथा प्रह्वितस्व ही रहा। धनिकट की यह अवस्था ही उद्भवपूर्ण लगा पर वह अपने इस मनोभाव को प्रकट नहीं कर सका। क्यों? क्यों कि आचार्य धिष्य स्वयं उसका एक अधिकारी था था यदि उसके मन में इस समय कोई विज्ञाता उठी थी तो वह कुछ भी पूछने में असमर्थ रहा। साव ही वह उठते जैसे सोचने लगा—“यदि निश्चय्य अमात्य ने सुरक्षा प्रबान के सम्बन्ध में यह बात कही थी तो मुझे बन से यह सब कुछ नहीं कहना चाहिए था निश्चय्य अमात्य बाह्ये तो स्वयं कह देते या फिर उन्हें सुरक्षा प्रबान के विरुद्ध यह सब कुछ पणाम्यस्य के सम्मुख कहना चाहिए था। आचार्य धिष्य उसकी और अमान से देख रहा था और सम्भवतः वह उसके इस मनोभाव को ताड़ भी गया था तो भी उसने इस प्रश्न में कुछ कहा नहीं। कुछ सोचते हुए-से बोला—“आयुष्मान्, निश्चय्य अमात्य ने तो यह फिर नगरी के शान्त सरोवर समुच्च जीवन में पायाण लक्ष्य रेंका है।”

धनिकट को यह प्रत्यासय के समान लगा और ‘फिर’ शब्द को सुनकर तो वह जैसे चौंक ही उठा। वास्तव में उसे यह सब कुछ उद्भवपूर्ण लगा और साव ही उसे अनुभव हुआ कि निश्चय्य ही इस समय दोनों पराधिकारियों के मध्य कहीं किसी बात को लेकर गतिरोध है। वह जैसे सोचने लगा—“यह तो बैधासी में निश्चय्य ही किसी अप्रत्यासित घटना का सूचना होने को है। यह वह इन बार अपनी विज्ञाता पर जैसे नियंत्रण रखने में असमर्थ रहा वह पूछ सता—“तो कैसे थाय ?”

किन्तु आचार्य धिष्य की समस्त चेतना इन समय अंतर के ही किसी मनोभाव को देखने में व्यस्त प्रतीत हुई। यह धनिकट का यह प्रश्न उनके कानों से टटटाकर भी जैसे धनसुना रह गया। आचार्य धिष्य सहगा पूछ उठा—“क्यों आयुष्मान् सेट्ठी पून कल्पित था इस समय बैधासी में ही है ?”

कुछ भी हाँ धनिकट भी एक सुध्या पराधिकारी ही था था आचार्य धिष्य



सुबत धीर मधुसामा आचार्य धिप्य को कुछ आश्चर्य हुआ बोला— 'बैशाखी में मधुसामाएँ तो प्रौढ़ों के लिए हैं आधुम्याम धीर फिर सुबत तो मद्यमान से बैसे भी बूढ़ा करता था ।'

अनिच्छ कहने लगा— 'धर्म उपागत के महानिर्वाण पर जो धनेक बैशाखियों में मद्यमान न करने की प्रतिज्ञा की थी उसके पश्चात् से मधुसामाओं में ठरुणों का ही बाहुस्य हो गया है क्योंकि वहाँ कोई प्रौढ़ तो जाता नहीं जो उनको रोके-रोके प्रथ वहाँ उनका निर्दंड प्रवेष्ट है फिर मण्य धासन की धोर से इस सम्बन्ध में कोई ऐसी निय बाधा भी नहीं कि बण्य पुष्य उनको साबिकार रोक सकें ।

आचार्य धिप्य बोला— 'मह तो निस्संदेह ही बैशाखिक कुमारों का हास है पर ही फिर आक्रमणकारी का क्या हुआ ?'

"वह रात्रि के अन्धकार में भाम खड़ा हुआ धार्य ।"

"तो फिर क्या कुमार सुबत के साथ कोई नहीं था ?"

"या धार्य उसके साथ कुमार अयस्य था परन्तु उसका कहला है कि वह आक्रमणकारी को पहचानने में अर्पण अद्यम्य रहा ।

"तो वह आक्रमणकारी क्या कोई वैदिक था ? धीर, भना उस समय कीटिरस कहाँ था ?"

किन्तु इस प्रश्न के पश्चात् आचार्य धिप्य मानों कुछ सोचने लगा । तनिक एक फिर बोला— "अच्छा आधुम्याम इस समय तो धासरोही सम्बेसबाहुकों की व्यवस्था करो, ये सभी प्रथन बड़े महत्त्वपूर्ण हैं प्रथ उसके पश्चात् ही उनके सम्बन्ध में कुछ सोचना सम्भव हो सकेगा ।

उत्पश्चात् अनिच्छ ने तो अविवाचन कर अस्थान किया और आचार्य धिप्य पत्र लिखने बैठ गया ।

वर्षा बैसे धन बक एक चुकी थी ।

×

×

×

वर्षा को रके बैस देवी धासपामी अपने धासन से छठ खड़ी हुई, धीर उसे उठी बैस विष्णु महाखी बोल उठ्य— 'देवी यह तो धास ऐसे ही मध्याह्न हो गया थीकता है जैसे धमलों को धास धम से पूर्व ही भिष्ठाटन के लिए नगर की धोर निक बना होगा ।'

इसके उत्तर में देवी धासपामी कहा जाहती थी— 'धार्य जब तुम्हें धमो तक नगर से इतना मोह बना हुआ है, तो फिर विष्णु संभ में प्रविष्ट ही क्यों हुए, न तुम यहाँ धासे धीर न । परन्तु उसने यह कहा नहीं कहा भी नहीं और धार्य की बाठ सोचने से भी अपने को जैसे बलात् रोक लिया । विष्णु महाखी जैसे कुछ सोच बोल उठ्य— 'धर्मो देवी आधुम्याम धन्य को देवी धिप्या के पाठ धनुमति के लिए धेत्र धन्यता ही किया न धन्यता वह भी धास यहाँ धा रहता धसे ही जैसे ।'

विष्णु महाखी क्या कहा जाहता था देवी धासपामी वह मसीं मति समन्धमई थी धीर समन्धत कहा जाहती थी कि फिर किसी दिन देवी धिप्या भी विष्णु संभ में सम्मिलित हो रहती यही न ? परन्तु फिर उसने यह न कह कुछ धीर ही कहा । बोधी



—“भार्यं यणसंवायार भवन के बीछोँद्वार के समय धापका जो अस्ताह बैसने में धामा या पठा नहीं क्यों, यह धर क्यों नहीं बीछ पा रहा धम्यया मैंने तो यही सोचा था कि बैशासी में स्तूप निर्माण का समाचार सुन धाम कहीं भी क्यों न हों यहाँ धनधम बीछे धार्येगे तो वह साब तो पूरी हो गई, पर धार्य से जो अस्ताह अपेक्षित था उसे न पा मुझे कुछ चिन्ता ही हुई है।”

मिसु महाली बलचित्त हो यह सब कुछ गुनता रहा साब ही सोचता भी रहा कि बेबी धामपानी जो कुछ कह रही है, उत्प ही है अतः वह मौन रहा। अते मौन रहे देख बेबी धामपानी स्तूप-स्वत की धीर प्रस्वान कर उठी। मिसु महाली कुछ अस्तो तक बही बैठा सोचता रहा कि बिलाटन के लिए प्रस्वान किया जाए, धमया बेबी धामपानी के साथ मैं भी स्तूप-स्वत की धीर बनूँ। अन्ततः वह बेबी धामपानी को पुकार कह डठा—“अच्छा बेबी ठहरो मैं भी तुम्हारे साथ ही बसता हूँ।” फिर उसके निकट पहुँच वह बोला—“अब तबामत की कृपा से एक बार फिर यह संवोध मित्र हो गया तो बेबी को बिल्ल कक क्या मुझे यह सोना देगा ?”

किन्तु बेबी धामपानी कुछ न बोली वह मौन ही रही।

कूटानारक्षामा से स्तूप-स्वत पर्याप्त अन्तर पर था तो भी दोनों की चारिका की बति बीनी भी क्योंकि तबामत ने बीनी चारिका की ही उपरेखना की थी धीर कहल था कि तीक्ष्ण बति से अदर ब्याबियों की तो धार्यका रूठी ही है, बिचारों का प्रवाह भी संयत नहीं रहता। अतः बेबी धामपानी की चारिका की गति तबामत की उपरेखना-नुसार इस समय भी संयत थी मस्तिष्क में अठे बिचार भी हृदय में अठे भाव भी—बैसे ही संयत है जैसे कभी उनकी कला साबना संयत थी धीर इससे पूर्व प्रलय भी। महाली को एक उल्लसिता से जाते कोई एक बयं ही बीचा होया परन्तु इस अस्ता बति में भी वह बैशासी के धामाल-भूत नर नारियों का प्राण बन चुका था। क्यों ? क्योंकि उसने बड़ी-बड़ी ईंट पक्का फिर उससे यणसंवायार के विद्याल भवन का बिस प्रकार से पुनर्निर्माण करमा था उससे संवायार का तो स्वरूप धम्य हो ही अतः या साथ ही स्वापत्य-कला के क्षेत्र में भी उसकी दूर विगत तक क्याति फँस चुकी थी धीर अतः उस समय कुमारी धामपानी की। जैसे मिसुकी बेबी धामपानी इस समय धपनी नहीं किसी धीर की बाठ सोच रही थी धीर धीरे धपनी ही बाठ सोच रही थी तो धपने किसी धीर बीवन की असी भाँति जैसे कि तबामत बहुधा बोधिसत्य रूप में बुद्धत्व पूर्व के बीवन धीर जगमों की बटनाधों पर सोचा करते थे। धपनी चारिका की बति धीर भी बीनी कर बेबी धामपानी संयत कण्ठ स्वर में बोली—“अन्ते एक बाठ करूँ।”

मिसु महाली भी पूर्वत संयत था उसका कण्ठ स्वर भी बोला—“धनधम कहो बेबी।”

बेबी धामपानी कहने लगी—“अन्ते गीतग अब बूझ नहीं है धीर वह कुमार सिद्धार्थ ही थे तो उनसे देखवत मारी प्रतिबद्धिता मानता था धीर ईर्ष्या भी करता था मिसु संय में जाने धीर फिर धास्ता का एक अधरणी धिम्य बन जाने के परचार भी वह धपने अन्तर के इस निकार पर विजय नहीं पा सका वह तो सभी को विविद

है और यह भी कि ससुरा क्या परिणाम निकसा ?

महात्मी सर्वथा सहज भाव में बोला—“हाँ देवी जो कुछ तुम कह रही हो सत्य है, यह ध्यान देने योग्य भी ।”

तब देवी घाबरायी बोली—“सभी विकारों का स्वभाव एक-सा है इसी से क्या एक बात पूछूँ ?”

महात्मी भी पूर्ववत् सहज स्वभाव बोला—“हाँ देवी घबराव पड़ो ।

देवी घाबरायी पूछने लगी—“मार्ग क्या सामन्त भंडार की प्रतिशोध की विषय से प्राप्त है यही समझ लिया था कि घाबरायी भी विविक्षित हो चुकी है ?

मिथु महात्मी सर्वथा अविचलित रह उत्तर में बोला—“ऐसा तो नहीं सोचा था ।”

‘तो फिर उसके पश्चात् कभी भी घट्टासिका पर क्यों नहीं आए, क्या प्रायः उस समय वही समझ लिया था कि महात्मा कन्या पणु सर्वथी की घट्टासिका में जाते ही मर भी सकत चुकी है ?’

“नहीं देवी ऐसा तो नहीं समझ था पर ही नहीं था भी नहीं सका ।”

मिथु महात्मी का कण्ठ स्वर कुछ भारी हो गया । घाबरायी ने पूछा—“क्यों क्या घाबरायी से बुरा हो गई थी, या उससे सकोच होता था या फिर सामन्त भंडार का मर था ?”

मिथु महात्मी बोला—“देवी इन तीनों में से एक भी कारण नहीं ।”

देवी घाबरायी कुछ सोच फिर बोली—‘तो फिर हठात् हो गए होय ?’

मिथु महात्मी उत्तर में मौन रहा, उसी मौन में तत्काल स्वीकृति प्रदान करते समय रहा करते थे । देवी घाबरायी फिर बोली—“हठात् हुए, इसीलिए न कि पुस्तक का स्वाभाविक शोध प्रवृत्त हो गया था—अर्थात् नारी पर अकारणिक का और घाबरायी अपनी सुबद्धता के कारण उस परिधि से बाहर निकल भी गई थी ।”

मिथु महात्मी इस बार भी मौन रहा । घाबरायी ही फिर कह उठी—‘और राजा विन्धुसार के साथ हुए मेरे दुष्ट विवाह का रहस्य जब आप पर प्रकट हुआ होना तब तो आप और भी हठात् हुए होंगे ? क्याचित् बुरा भी करते सने हों और इसी से फिर आप कभी बैयासी भी नहीं आए ।’

मिथु महात्मी इस बार भी मौन रहा चाहना था किन्तु उनके मुख से हठात् निकल गया—“देवी वह स्वाभाविक था ।”

देवी घाबरायी फिर बोली—‘और जब मैं मुख्य मिथु संघ में सम्मिलित हो गई तो वहाँ तत्काल के वर्धन को भी कभी नहीं आए ।’

मिथु महात्मी ने कहा—“देवी आप यह भी सत्य ही नहीं है ।”

तब देवी घाबरायी कह उठी—‘तो मुझे गजपुद्धारर भी मुझे विन्धुसार से मिलने की कोई इच्छा नहीं हुई इसलिए नहीं कि मैं मिथु संघ में ही मन बाधा भी करूँ इसलिए कि मैं उसके साथ विवाह तक भी जाऊँ मृत चुकी थी ।’

यह मूल महात्मी को जैसे भारी घावघर्ष हुआ पूछन लगा—“क्या विवाह की बात भी कभी बुरी या सचती है, देवी ?”

देवी भ्राजराणी उत्तर में बोली— 'हां धाय यदि तुमने भी बहु तप्य स्वीकार न किया होता तो कल आचार्य शिष्य से कभी यह न कहते कि बाधो पहले देवी शिष्या से अनुमति न प्राप्ता आचार्य शिष्य भी तो विवाहित है अतः उसे तो संनिरका से अनुमति लेनी थी ।

मिसे महाश्री सोचने लगी— 'बैठे बहु वास्तव में ही कोई भ्रूस कर बैठे । परन्तु इसी समय देवी भ्राजराणी कह उठी— 'धाय तुमने बहु ठीक ही किया । और देवी शिष्या तो नाथी हैं न आचार्य शिष्य जैसे ही न जाने और संभव है बहु अभी भी आश्रय न हो परन्तु मैंने तो आरम्भ में ही जान लिया था कि देवी शिष्या उसकी और प्राकृत हुई है, परन्तु आचार्य शिष्य और संनिरका के विवाह पर बहु प्रसन्न ही हुई हाथी दुःखी नहीं क्यों क्या उसे भी एकाधिकार की कामना नहीं हो सकती थी ? किन्तु उच्च आचार्य शिष्य को देखो । धाय कहानी बही रखती है केवल पात्र बरस बाटे हैं सम्भवतः कुछ स्वल्प भी परन्तु आचार्य में बही मानव स्वभाव होता है 'बैठे ही बैठे इस स्तूप की आचार्य शिष्या में देवी शिष्या की स्वर्ण मंजूपा और मंजूपा में उपाय के प्रथम प्रथम पर फिर स्तुति का सुवन सुवन ही जीवन है और स्तुति उसका आचार्य सौन्दर्य का सुवन साधना है और जो बिकृत है उसकी विस्तृति ही वैराग्य प्रायः मैंने तो जीवन में बस मही लीखा है ।'

मिसे महाश्री भी कदाचित् इसके उत्तर में कुछ कहने को उद्यत हुआ परन्तु तब तक स्तूप-स्वल्प या सुका वा और इस समय बही एक नहीं प्रत्येक प्रसन्न बैठे शिष्यों की बाधे मीड बाड़ी बैठे अन्धी के आयनन और दर्शन पाने की प्रतीक्षा कर रही थी ।





आचार्य शिष्य पत्र लिखकर पठा ही वा कि तमी अनिच्छा था पहुँचा । मठ मस्तक हो सतने निवेदन किया—“घार्य अरबातोही संविधानाहक प्रस्तुत है ।”

आचार्य शिष्य को इस पर कुछ आश्चर्य हुआ किन्तु साध ही मुँह पर प्रसन्नता भी छा गई । अनिच्छा पर वृष्टि केन्द्रित कर वह बोला—“धामुष्मान् तुम्हाणे इस कार्य तत्परता पर मे जितना भी सर्व कर्क बोझा ही है अच्छा पत्र पढ़ोये ?

अनिच्छा कुछ सोच बोला—धीमन् पत्र पढ़ने से उसकी बोपनीपठा मष्ट हो जाएगी फिर अनावश्यक बिलम्ब भी होगा ।”

आचार्य शिष्य ने इस बार तनिक गम्भीर वृष्टि से अनिच्छा की धोर देखते हुए कहा—“अच्छा तो फिर नायक को यही कर्म में लिखा जायो ।”

यह वह उम्र पुन एक बार संसारावधानी पत्र को पढ़ता जाहा कि इसा मध्य अमेरिका पत्रम के एक अंक के समान कर्म में था पहुँची । उसके मुँह पर अग्रता व्याप्त थी । वह देख आचार्य शिष्य को कुछ आश्चर्य हुआ कि—“क्यों देवी देवी रत्नकर्मन तो सकुशल है न ?”

“तो तो सब सकुशल है आचार्य शिष्य परन्तु यह बताओ कि आप इतनी राति गए, तो भी अमेरिका बर्षा में देवी शिष्या के यहाँ से अकेले क्यों जने आए, देखो तो मकर में क्या कुछ हो गया है ?

अमेरिका घनी भी भस्त बीक रही थी । किन्तु आचार्य शिष्य एक उच्च ठहाका दे हँस पड़ा बोला—“वीर तुम डर नहीं, भीर नहीं की ।”

आचार्य शिष्य के मन में आया कि वह अमेरिका के कपोल पर एक झुकावा जपत बना से पर उसने न जाने क्या सोच ऐसा किया नहीं ।

अमेरिका तत्परता से बोली—“तो तो ही ही पर यह तो बताओ कि ।” अनिच्छा के आज नायक को आए देख अमेरिका की बात मध्य ही में रुक गई ।

आचार्य शिष्य ने ललित तो नायक की धोर ध्यान से देखा फिर उसकी धोर बपुते हुए उसके कंधे पर हाथ रख परोक्षित गम्भीर स्वर में बोला—“नायक सुमन्त धार तुम्हें एक महत्त्वपूर्ण अभिमान पर भेजा जा रहा है । देखो यह पत्र अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है अष्टीपुत्र कविन तक इसे पहुँचाना ही होगा ।”

नायक सुमन्त अस्तक मठ कर आत्मविरासत भी बुझता से बोला—“घार्य आरवस्त रहें ?

आचार्य शिष्य उसकी धोर पत्र बढ़ा बोला—“इसे सावधानी से एक बार पढ़

जो मार्ग में यदि नहीं बाधा समझे तो उसे गप्प कर देना गप्टकर फेंकना नहीं बरन उत्तरस्थ कर लेना यह किसी भी रूप में किसी के हाथ न पड़े समझे धातुष्मान ।”

पत्र उसकी धोर बड़ा धाचार्य सिध्द ने मंत्रिका की धोर वृष्टि फेर उससे कहा—“देवी, तब तक तुम एक पात्र में बन ले धायो ।

मंत्रिका स्पष्ट ही इसी धारोष का धर्मियाय समझ गई थी । धत बहु तत्कास कल से बाहर बर्ती गई धनिकल भी धपना धिर गठ कर लड़ा हो गया धौर जब तक सुमन्त ने पत्र पढ़ा, धाचार्य सिध्द उसकी धोर ध्यान से देखता रहा धन्त में पूछा—  
“जबो सुमन्त सब समझ गए न ?

हूँ धार्य धौर यदि श्रेष्ठीपुत्र कपिन

धाचार्य सिध्द मध्य ही में हस्तक्षेप कर कह उठा—“बहु सब तुम्हें स्वयं करना होगा बीघा भी उचित समझे करना सध्या तक हर प्रकार बीघासी बापस धा धाना है । बहु सुन धनिकल को कुछ बुधिया-सी हुई, जैसे यह ध्यान करके कि सम्भव है श्रेष्ठीपुत्र कपिन कभी इस मध्य धधिक दूर न निकल गया हो, परन्तु सुमन्त के मुख पर धारमविश्वास की बृष्ठा एवं उरी के धात्र उत्साह को देख बहु जैसे धानो धारमस्त हो रहा ।

सुमन्त जब धमिबाधन कर कल से बाहर की धोर जाता तो धाचार्य सिध्द उसे रोक पुन पूछ उठा—“उसी सधरन हो न ? धौर देखो सब एक धाम नहीं लख धन्तर से रहना हो धागे धौर हो पीछे किसी को भी कोई धन्वेह न होने पाए धामधान ।”

सुमन्त के प्रस्नान के पश्चात् धाचार्य सिध्द की मुख मुद्रा पूर्व से भी धधिक ध्यस्त हो उठी । धनिकल की धोर देख बहु बोला—“जब तक पत्र का कोई उत्तर धाए, तब तक धनिकल हुमें कुछ धावधायक कार्य निपटा लेने होंगे धौर उनमें प्रमुख बहु है कि नगर धौर उसके उपान्तों में बितने भी धदधिक हों उनकी उत्तरता से नशाना कर नी भाए । तुम तब तक धावधायक संस्था में गणपुस्त्रों को से इस काम को करो धौर मैं इस मध्य नगर की स्थिति देखता हूँ ।”

धनिकल प्रस्नान कर उठा परन्तु धाचार्य सिध्द को सहसा कुछ स्मरण हो धाया धत उसे टोक, कह उठा—“धनिकल गणपुस्त्र यदि नापरिक वेप में ही रहें तो उचित रहेया न ?”

धनिकल बोला—“धार्य धाय बीघा भी धाळा करूं, उसका पात्रन होना ।”

जब धनिकल भी जभा नभा तो रिगत हुए कल को देख धाचार्य सिध्द के धस्तिष्क में एक बिचार उठ लड़ा हुआ परन्तु जैसे इस समय तब जैसे बिचारों से भी धकीब हो गई थी शोममठा कठोरता से परिणत हो चुकी थी तथा धावुकता बहु निरधन में । बहु तुरन्त नगर की स्थिति का धनधोकन करने को प्रस्नान कर उठा । मंत्रिका धाई परन्तु बहु उसे इस समय केवल देखती रह गई । वास्ताव में कुछ कहने को सघत होकर भी बहु इस समय धपने स्वामी को टोक नहीं सकी । धत उधि की बटनाधो तथा उनके प्रसंग में स्वामी के धाधित्व का ध्यान कर उसे कुछ कहने का साहस ही नहीं हुआ ।

घोर सपर, सपर के उपान्त में स्तूप निर्माण का कार्य नित्य की मति धाम भी परिमाण हो गया। दरवाजों की सपर नीक का बैक देवी धामनाची तो प्रसन्न की ही पर धाम बूढ़ भिक्षु महासी के जर्जर शरीर में भी धाम्य ललाह का सचार हो गया था। धाम देवी धामनाची का घोर भी अधिक प्रसन्न रत्ना स्वाभाविक था परन्तु फिर भी उसकी दृष्टि धाम-कथा सबाध वैशालिकों पर जा टिकती धाम ही उसे कभी कभी एक घोर बात पर भी धाम्य हो रहता—वैदिकों के मध्य कब बितने साधक दीख रहे थे धाम उतने उसकी दृष्टि में नहीं था या रहे थे।

इस, धामार्थ धिष्य धपने धामाध थे निकल सीधा मध्य मन्त्र की उठी मन्त्र धामा पर जा पहुँचा जहाँ मठ रात्रि कुमार सुपठ की इत्या हुई थी। उने देख नहीं बड़ी नापरिकों की नीक कुछ हट-सी गई, किन्तु उनके मध्य बड़ा मधुसाला का स्वामी धीरम्बक सहन-सा मया। नापरिकों ने इससे पूर्व धामार्थ धिष्य को कथावित् ही ऐसी मन्त्रों एवं संभव मन्त्र में बैका था धाम के उसकी घोर देखते रहे, धीरम्बक ने भी बैका किन्तु उसकी दृष्टि उसकी घोर प्रथिध द्विधी न रहे उसी मठ हो रही वह काँप सी गया कर्णकपाते स्वर में कहने लगा—“स्वामी मेरा तो सर्वनाथ ही मया।” धामार्थ धिष्य बूढ़ा धामा था—“सा बँधे ?” परन्तु वह मीन ही रहा मीन रहे ही उसने धीरम्बक का धामाध धीधे धामलोहन किया किन्तु सपटती दृष्टि ही से तो भी धीरम्बक बँधे उसकी इस दृष्टि को भी सहन करने में धाम्यबं रहा धाम्तर में नाधिका से नामि तक बँधे कोई बैका-सी धिष्य उठी हो उसे ऐसा मया धीर वह धीर प्रकम्पित हो गया। वह पूर्व से धामिक मधुरण कथ स्वर में बोला—“स्वामी उत मधुसाला मे सुम्भार सुपठ की नहीं, मन्त्र मेरी ही इत्या का ही धाम धामें इस धामा को सुन धाम इस मधुसाला में धमा कीन धामा ?”

नापरिक मन्त्र उतके इस कथल धाम्य को सुन धामित-से हो उठे परन्तु उन्हें धाम ही कुछ धाम्यबं भी हो रहा। केवल कुछ धाम पूर्व ही वह धिष्य धीधे स्वनाथ धिष्य मया हुआ धामा का धामलोांठ धिष्यरत्ना सुना रहा था वह सहसा धुप्ट हो मया। धामी ने धामने से पूछा—“वह धामार्थ धिष्य को देखते ही धमा धामा क्यों धमरु उठा ? परन्तु धामार्थ धिष्य पूर्वमठ मीन रहे मधुसाला के धार धमा फिर उसी के धाम मने धामाध के धमेध धार के मध्य के धाम्तर की माप रहा था—वह कुछ धामिक नहीं था। उत धाम्तर की मापता हुआ वह सोच रहा था—“वह धाम्यलकापी यहीं धाम में बड़ा रहा होगा ? उत धार पर बड़े ही धामार्थ धिष्य ने धिष्यल कोलों से धामना-धमन की धीर बैका। धीरम्बक यह बैक फिर मीन उठा—“स्वामी यह धाम ही का धामाध है मीने तो संध्या होते ही धामता मया सी थी।” किन्तु, इस धार भी धामार्थ धिष्य कुछ नहीं बोला केवल यह बैपता रहा कि धाम से मीन धाम दोनों धारों के मध्य भी मया कोई धाम हो सकता है—एक था परन्तु यहाँ धामें हो उसने धामना धाम धामा धमन तक धामा धीर धामा—इतने निकट से धामक धामा धाम्यम या धाम केवल धार की धाम ही धाम्यक है, फिर धिरम्बर क्यों भी होती रही भी धार के मीने बड़े रहे धामें भी धामरुधत रहा था सकता था। धामार्थ धिष्य ने धिष्य उठी धार पर बड़े ही, दृष्टि को धिष्यल कोलों में धमा कुछ बैकने का धामाध किया। यह सोचने मया—

'मृतक भीर जगका साथी—धीरों महिरा-गान के पश्चात् परस्पर सट कर न बने हों—यह सम्भव है पर बटमा के धनुसार दोनों के मध्य व्यवस्था ही कुछ अन्तर रहा है। किताबी भी रहा हो तो भी मृतक का साथी प्रहार परिधि में था रहना है फिर प्राक्मणकारी के लिए इतनी उत्प्रेरणा से भेद करना सम्भव रहा होना बटमा में सम्भव ही कुछ समय बना है तो इस मध्य मृतक के साथी व्यवस्था से क्या किया ? फिर इन धीमिद स्वकर्म में कल्प प्रहार धीरों पर ही सम्भव था यदि मृतक महिरा-गान के पश्चात् तनिक भी होश में रहा होना तो पहले बार को वह गिरलक होते हुए भी बिकल कर सकता था और उसने व्यवस्था किया होगा क्योंकि मृतक कल्प कोशक धीर इन्द्र-मुक्त के साथी वात-व्यतिपातों में किसी से भी बड़-बड़ कर था अतः संभव बटमा का धनि कार्य भंग रहा होगा किन्तु उसके पास कोई धन या धनवा नहीं, धीर व्यवस्था बन बन निकला तो वह उस समय व्यवस्था ही होना में रहा होगा और जब वह संभव था और मृतक उसका साथी था तो कोई कारण नहीं कि मृतक ने अधिक भाग्य में महिरा का पाव किया ही और यदि उसने किया था तो उसमें व्यवस्था ही किसी का धनाथ वरक अनुरोध रहा होगा, धीर उसके इन अनुरोध में किसी की प्रेरणा न रही हो वह भी सम्भव है साधारण विषय सम्मुख बड़े प्रचुराणा के स्वामी से कुछ प्रसन्न पृष्ठने को उद्यत हो उस परन्तु उत्प्रेरणा उसके पग बँधे स्वतः धन की धार बड़ लिए । फिर वह नहीं एक ही बन्ध बोले बिना किसी धन्य स्थान की धीर प्रस्थान कर उठा ।

यह देख औरम्भ संभव में पड़ गया धीर नागरिक बकित हो उठे । धारा बाठा बरतु बँधे धने में सिधत आत्यधिक रहस्यपूर्ण हा बल ।

×

×

×

अन्ततः देवी धात्रासी से रहा नहीं गया ।

बास्तव में वह पर्याप्त समय से देख रही थी कि विद्यु महासी के कुछ बटौर में उत्साह का धावेन प्रतिकार ही बढ़ता जा रहा है धीर उसी के साथ उसके स्वर रचना व्यस्त हाथ भी धमिकाधिक गतिमान हो उठे हैं । अतः धनने करतल नर रबी दुम्बी मिट्टी को उसकी धीर बड़ा वह बोली—“अन्ते अतिरेक से ध्यान में बाधा पहुँचती है धीर बयल पर प्रतिफल प्रभाव पड़ता है मित्र-संघ दोनों ही प्रकार की धरि के मध्य धरि स्वामित कर धीरे काल तक सम्भ्रम की सेवा करता रहे, ऐसी धास्ता की उरदैवना है ।”

तब मित्रु महासी ने सोचा—देवी धात्रासी ने धनुस्त्र ही कहा है अतः मैं बीसा ही धात्राण कर्क । देवी धात्रासी के करतल से उठाई मिट्टी को स्वर नर इस बार लबे हाथ से स्वामित कर वह बोला—“हाँ देवी एक विद्यु सम्भ्र संघ है किन्तु नहीं धीर धनसे धिम्नता ही धिर्म का धात्राण है बँधे ही, बँधे किसी एक नागरिक के प्रतिफल प्राकराण से भी कण विचलित हो रहता है ।”

इन धर्म-व्यस्य में उद्यत गण-व्यवस्था की वात घाई देण देवी धात्रासी धंकित हो बठी । निष्कट में बड़े जो वैद्यासिक यह सुन लके वे भी धंकित हो उठे । वे सभी एक स्वर में कह उठे—“अन्ते लबावत न थी ता एक बार वैद्यासी के सम्भव में ऐसा ही कहा था ।”

तब मित्रु महासी बोला—“देवी वैद्यासिकों ने क्या धन की ठीक ही सूना है ?”

यह कह मित्रु महासी तनिक रुक रहा। कुछ सोच वह देवी घामनामी की घोर दैतने हुए पुन कह उठा— 'नया देवी क्या बरमान सिन्ध का धाधार नहीं? बैसे ही बैसे धाम का ध्याम अमितम समाधि का घोर अन्त मानव की दुःखद कल्पना निबीग का धाधार बन रहना है। तो फिर बौध्दिक भी बैसे ही सोच क्यों धाधारण करें?'

इधर, इसी समय धाधार्य सिन्ध का धरव सामन्त कार्तिकेय की घट्टानिका के समुच्च धा रहा। धीर उधर, धाधार्य बपकार धपने धामाध की कल पर पड़ नपर धाधीर के बाहर धारों धोर दूर धुदर तक धेवी इरीठिया की मनोहारी कला देवने में ध्यस्त हो उठ सवामीरा भी धुधित धारमि मे धा रही। उसे देख बन्धु धेने धीठ-से गण, धारने ही से बोले— 'देखो तो धामि में कुछ क्या भी नहीं हुई धीर सवामीरा में यह नाङ्क ही धा गई। यह तो कोई धम सधरण नहीं कीन धाने क्या मे भी इन समय पैवा ही का धारण किया हो पर धर्यनार ममा सवामोच से धंया की भी कोई धुपना है धरि एक गम्भीर है तो धूमरी उध्धु लम।

पैवा धाधार्य बपकार मे धाधा किन्तु बौध्दिक हा बैसे ही सोचते मे धत यह धपने को धाबधान कर उठे धीर फिर धपने से बोले— 'बपकार धभी बैसे धनी बौध्दिक सोचते हैं नू भी बैसे ही सोच। सोचने धये— 'इन बौध्दिको का धरिबास काना उचित नहीं धरि कहीं धनिदध ने धुरला धधाल बनने की इध्जा धीर धाध ही मङ्क भी कि धैने उसे सध्दायता का धधन धिया है। कहीं धिरी के धामने यह धान धरुण कर ही तो यह सब कुछ एक धानु के धरोदे की धाति धरानापी हो रहेना धीर उधर मे धधम संकट मे पड़ रहेना धर धेरा तो कल नहीं ही मे धधधिय।'

मस्तिङ्क मे उठ किली धिधार को धधय मे रोठ धैव उध्धैने धानी धुधि बनाधु कि सवामीरा के धधध की धीर धिधा ही। उध्धै लगा सवामीरा का उठनता धधध उठनधों से टकध उध्धै धत धिधधत काने को धुध संकल्प है धीर धरि उधका यह संकल्प सधधुध धूर्ण हो गया तो धा क्या? कम्मधरी की इन धई बला मे धिधधम ही इध्धु-कार धध उठेगा धीर धुधन नधर मे? उनके मेध एध सधधधधन की धाति धिनी धधकर धुध को देख उगे मे धुध रहे। धरन्तु धाध ॥ धुध पर धाधधधधधध की-धी धुधता भी उधर धाई।

×

×

×

×

सामन्त कार्तिकेय के धधध का धधध धधधध धम धधध धधेक गण धान्य धाम धिकों से धगा हुआ धा। मध्धामन्त सिंह सेनाधति देरी धेहिधी, मध्धध धधधधुध धलध्ध धैव धैरी धाधधधता ॥ ७ मध्धधधेध धधधध धल धी देवी रन कधध धधध धभी धी धई उधधधध धे। धी भी धधधध के धुरे धाधार धधधर मे धानों धिधधध सामन्त की धुधि मे सधधा धीन धधध धा। धीर कधधर कीधरध धम धभी के धधध बँठ' धध धिध धिध, बैसे धधनी धिधी धधधर धधध पर धीधधधुध हुआ धुध धिधार-सा रहा धा। किन्तु धाधार्य धिधध की धध-धधधध धुध धध उधने धधधी धुधि धधध उधधई तो यह सधधा एध धधध धधध की धाति धुध-धुध कर री उठा। पर यह सब धध धुधधर धा धाधार्य धिधध की धुध-धुध सधधा धधधधधध रही धैव उधे धाध धिधारों के धधध-धधध धधधधध से भी धधधध हो गई धी। धी धधध मे धीधधना धैने के धधधधध के धधधध



रता के साथ उसकी घोर धमक बह गया। निकट का एक घण्टी की गीति धारणी मत्ता का साथ दिया वह बोला— प्रामुप्यान् पितृ विभोग जीवन में सप्तमूक एक बड़ी दाहि है घोर उसकी पूर्ति असम्भव है।”

विजय हमी मध्य उसका वृत्ति जैसे कुछ धोखे में ही व्यस्त हो रही। प्रकट में उबटनी परन्तु माध्यामी के साथ उसने कीतिरथ के पंरा उनकी संयुक्तियों की घोर देखा घोर कथापित् उसकी वृत्ति दाम्बेक संयुक्त नक्ष पर स्थिर भी रही। उदात्तत्वात् उसने महमा कीतिरथ का वाम हाथ पकड़ उसकी हथेली को धपकना कहा—“घोर फिर प्रामुप्यान् यह तो एक प्रकार से घटाय मृत्यु ही हुई है।

घनं पिता के सम्बन्ध में घटाय मृत्यु की बात सुन घनं का घनं द्विती कारण से कीतिरथ का हाथ कुछ कपकपा-सा गया परन्तु इनका अनुभव इनका घाचायं सिद्ध को ही हो गया। घोरों की वृत्ति में उनका यह कल्पन था ही नहीं गया। इस पर घाचायं सिद्ध ने दाम्बेक कीतिरथ की घोर जैसे साधय वृत्ति में देखा। यह वृत्ति कुमार कीतिरथ को घोर व्यथित कर उठी घनं यह पहले से भी धरि कफकठ उठा। सभी को ऐसा लगा जैसे कुमार कीतिरथ अपने ऊपर घाई इस घोर विपत्ति में देवन घाचायं सिद्ध से ही पूर्ण संतुष्टता प्राप्त की मासायित हो उठा हो। किन्तु, घाचायं सिद्ध सब घाने कठ घोर न कह मौन भाव से निश्चि ही न पकी एक पीठिका पर बैठ गया।

घोर गलाभ्यय सिंह कथा समा सुपरिचित जनों को लगा घाचायं सिद्ध ने घानों यह रिती गन्मीर अभिनय का प्रयास किया है। पर साथ ही वत राजि में एक-एक कर बटी तीन दुपटनाया का ज्ञान कर उन्होंने समझ कि कथापित् उन्हीं का उनके मस्तिष्क पर भारी प्रभाव हो सम्भव है वह यहाँ जाने की विधि से भी न रहा हो। घां की सिद्धाचारवत्त समा घाना हो। पर साथ ही उनकी यह भी निश्चित करलगा की कि घाचायं सिद्ध सिद्धाचार का यह साहम्बर कभी नहीं रह सकता। घोर फिर उसके मकोबडीय स्नानाह के लिए यह अभिनय तो एतदप ही असम्भव है यद्यपि घान उसमें यह कोई प्राकस्मिक परिवर्तन हुआ है। वे सभी यह सब कुछ सोच ही रहे थे कि घाचायं सिद्ध पीठिका से उठ उठना प्रयास करेगा।

कथा स वाह्य था उनका घनं पुन मध्य मध्यन की घोर हीट दिया।

उपर मादूनि बैसा गनिष्ठ घाई बंद घाचायं बपकार घनं प्रानाहकी कठ से नीच उतर निरय प्रति की गीति मात्र भी पुष्करिणी तट की घोर बन पड़े।

घोर घाचायं सिद्ध का घनं इन बार अभिरुद्ध क बाबु घ पर घाचर दृष्टा उनसे परत तो बाहर हुई घाई यह कठ दृष्टा कुछ मोचा भी परन्तु धीप्र त्री जैसे सचेष्ट भां मोचने ॥ घनं को घमात् गेरु मिया। घानां सोचन का ज्ञान घान घान न ही उसे घूला हो उठी थी। घनं यह निस्संकोच भाव से माधेय घाचायं में प्रविष्ट हो गया मम्मूय ही अनिरुद्ध की पत्नी महामाया लनी विन्हाई दी जने देख वह दूर ही से पूज उगा— कहीं देखी क्या मुझ पहचाना ?

महामाया के नक्ष इन समय जैसे प्रतीक्षा व्यस्त है। घाचर्यासित रूप में घाचायं सिद्ध को घण है वह हतप्रभ हा उनी। उस दक्ष कुछ ऐसा भी मगा जैसे उने घनं नेत्रों पर ही विदवास नहीं हा पा रहा था वह गसभम रही थी बोली—“ही धीमन

वहवाण सिया पर घाय तो घाव सिद्ध सब में प्रविष्ट होने वाले थे ?”

आचार्य शिष्य तनिक हीन उत्तर में बोला— “हैं देवी होना तो था किन्तु घाव प्राण उठते ही जब बैरानी की इन घनहोती घटनाओं के सम्मिश्र में सुना तो फिर विचार स्वर्गिन करना ही पड़ा।” तनिक कुछ बैसे कुछ सोच वह कुछ उठा— “पर देवी घायको यह कैसे पता लगा कि मैं मन्वन्त प्रवेश का भी निश्चय कर बैठो हूँ ?”

महामाया उत्तरता में कह उठी— “स्वयं स्वामी ने ही तो बताया था श्रीमन्।”

ब्रह्म कथ — आचार्य शिष्य ने पूछना चाहा परन्तु यह न पूछ वह कहने लगा— “हैं देवी मैंने बहुत निश्चय ठिका था घोर कल संघर्ष मैंने व मुष्मान घमिच्छ को यह सब कुछ बना भी दिया था जिससे वह अपने नए वास्तविक प्रति धमी से सावधान हो जाए।”

यह कह आचार्य शिष्य ने अपनी दृष्टि तनिक ऊपर उठा महामाया की घोर देखा । देवी महामाया बसि इन समय अपने धन्तर में उठे प्रमत्तता के मात्र के साथ संघर्ष कर उसे प्रकट में घाने से बलपूर्वक रोक रही थी । इसी मध्य आचार्य शिष्य अपनी दृष्टि मत कर एक मारी निश्चय छाड़ते हुए पुनः बोल उठा— “देवी खैर है कि यक्षीपुत्री मेरे इस वास्तविकार से कभी भी तो प्रसन्न नहीं हो सकी । वह येष्ठीपुत्री है कदाचित् इनी से । परन्तु मुझे विश्वास है कि घाय कभी भी घायुष्मान घनिट्ट को सब घोर से हतोत्साहित नहीं करनी ।”

महामाया बोली— “श्रीमन् देवी मन्विका बना क्यों उभरती रहती ? बैरानी में सुरक्षा प्रधान था पर तो घमिकारों की दृष्टि से अत्यन्त गौरवपूर्ण है इनना गौरव पुनः की यदि वह चाहे तो एक बारगी नसाम्पदा को भी ।”

महामाया को सहता जैसे कुछ ध्यान हो गया घोर उन्ही के साथ वह बत रही । पर आचार्य शिष्य अपनी अपनी बात को पूरी करता हुआ कह उठा— “हैं देवी यदि वह चाहे तो गलाप्यन को भी बन्धी बना सकता है।”

घोर इसी के साथ वह एक ठहाका दे हीन उठा तपदवास्व बोला— “किन्तु देवी उनक लिए उमे प्रयास ही था चाहिएं।”

यह सुन महामाया कुछ मन्त्रा का-ना अनुभव करती हुई क्षिप्त हो उठी । क्षिप्तता से उनके घाण्ट कोर कैम-ले गए । बोली— “नही श्रीमन् मेरा यह घमिप्राय क्शाति नहीं था कि किसी को बन्धी बना हो जिना जाए, मैं तो ब्रह्म घमिकार की बात कह रही थी ।

परन्तु आचार्य शिष्य ने जैसे वह मनसुना कर दिया । वह पूछने लगा— “क्यों देवी घायुष्मती बुद्धिता तो सफल हैं न ?”

देवी महामाया उत्तर में बोली— “हैं श्रीमन्, जैसे तो सकुपम है किन्तु वह घानी भी अत्यन्त मन्त्र बीक रही है ।”

“तो तो स्वाभाविक ही है देवी सुरक्षा प्रधान के नाते मैं अत्यन्त तन्त्रित हूँ मैं उठते भमा मीना चाहता हूँ।” यह कह आचार्य शिष्य ने ऊपर तम में नीचे की घोर दुलकती सूर्य-किरणों की घोर देखा निश्चय ही क्षिप्त हो रहा था फिर भी उठने अन्दर क्शा में जाया आर्यस्यक सम्मिश्र । वह महामाया के पीछे-पीछे कल बड़ा ।

प्रायुष्मती सुचिता धनी भी धन्या पर पड़ी थी। उसके चेहरे बिसरे हुए थे जवा नेत्र मूक कर सात हो चुके थे। धार्याय सिष्य को देख उठने जैसे धात्म प्तानि का अनुभव किया। अपने नेत्रों को हावों से ढाप वह एक पम ही तो रो पठी। उस रोका देख धार्याय सिष्य का हृदय भी जैसे अपने पर गिय जल न रख सफा। वह भापी संताप का अनुभव कर उठा मन बोभ्रित हो रहा परन्तु दीघ ही खपत हो जाता—  
“प्रायुष्मती पहरायो नहीं यह बैदायी के उरग्नस भसाट पर भाये कर्मक सगा है, मपरायी को जोर उसे पवश्य ही कटोर बण्ड विना जाएया। पर यह तो बतयो भापु ष्यती क्या वह कोई वैज्ञानिक ही था ?”

कमारी सुचिता किमी प्रकार अपनी मुश्किलों को रोठ अपने नेत्रों पर हाथ रखी ही कह उठी—“बचुबर वह निश्चय ही वैज्ञानिक नहीं था।

यह सुन धार्याय सिष्य का मुख स्रृष्टा जिल्लेज हो उठा किन्तु नेत्रों में जैसे प्रसन्नता उभर आई मानो उसे कुछ भिस भया हो। जब उसके लिए जैसे वहाँ भनिक खड़ा रहना असम्भव हो गया तो भी उसने देवी महामाया की घोर दृष्टि कर पूछा—  
“धीर देवी उस समय धाप कहाँ थी घोर भया उसने धारास में मपर जैसे प्रवेश किया क्या इस सम्बन्ध में धाप मुझे कुछ बता सकोगी ?

महामाया ने उत्तर से पूर्व अपने को जैसे कुछ सम्हाला-सा फिर बोली—  
“धार्य बटना इस प्रकार हुई कि स्वामी के जाते ही मैंने मुख द्वार की सर्वथा सगा बी थी। उनके प्रस्वान के पर्याप्त समय पश्चात् कोई व्यक्ति धारा घोर उसने स्वामी का नाम से पुकारा। उस समय मैं अपने ही कल में थी। तब कर्पा तो हो ही रही थी फिर भी मैं सिप्टाचार से धन्या से उठ खड़ी हुई। मैं द्वार की घोर जा ही रही थी कि इसी मन्त्र मुझे लया प्रायुष्मती उस धाप व्यक्ति को कुछ उत्तर दे रही है। धरा में धारवस्त हो पुन धन्या पर धा सेटी बस सेटी हुई थी कि प्रायुष्मती घातकित कण्ड स्वर में मुझे पुकार उठी। यह सुन मैं सानेम उनी घोर रोड नी परन्तु इसी मध्य उस उर्द्ध व्यक्ति ने प्रायुष्मती को अपने पालियन में खोज लिया घोर प्रायुष्मती के मुख को भी उसने बलात् अपने करणस से ढीप भिया किन्तु उसके पश्चात् भी प्रायुष्मती उससे इंद्र करती रही मैं समक तो उसकी घोर देखती रहूँ कि कलध्वकिमुड की भावि खड़ी रही परन्तु फिर उत्तरता से उमकी घोर अपक मैंने उहाँ के कोन से खनन सीन भिया घोर अपने को निररत हुआ देख यह ।”

महामाया धनी कुछ घीर बता ही रही थी कि धार्याय सिष्य मध्य ही में घोरताह प उ उठ—“धीर देवी वह खनन इस समय कहाँ है ?

“यह यही है भीमन्” यह कह वह बधाचित् उसे सेने ही उररता से अपने कण की घोर बली पई। घीर धार्याय सिष्य सुचिता के मुख पर रखे उसके हाथों को हटा कहने लया—“प्रायुष्मती पहरायो नहीं देवी महामाया ने तो यह निश्चय ही पुरस्कार पाने योग्य कर्म किया है घीर. ।”

इसी मध्य देवी महामाया उस मन्त्र पश्य को से वहाँ धा पहुँची धार्याय सिष्य ने परमुक दृष्टि से उसकी घोर देखा घीर पश्य को हाथ में लिए विना ही जैसे उसे पहचान भी लिया। उत्पश्यत्, कोप से धन्या। खनन निकल महामाया की घोर बड़ा

बहू बोला— देवी बहू ध्यान मुझे दे दें और सुरक्षा प्रदान का यह उद्दा ध्यान से ध्यान करने हाथों में भ से परन्तु इस वाक्यत्व क साथ कि यदि इस ध्याना से बाहर निकल कर भी तुम्हें बहू जलाना पड़े तो तुम अपने भी विपुल नहीं होगी ।”

देवी महाभावा उसकी और हृदयप्रभ हुई-सी देखती रह गई किन्तु इन बार ध्यानाय धिय उसकी और सीधी ब्रिटि कर उत्पत्तय धरना मस्तक तव करते हुए बोले लल—“देवी मैं धारने इस तादृशपूर्ण काम के लिए ध्याना अधिवादन करता हूँ यदि कम समुदा बैद्यनाथ की इसी प्रकार ध्यानाके समुदा नत मस्तक ही ध्याना इन प्रकार अधिवादन कर लके तो बहू निरुपय ही बैद्यनाथ का केवल बैद्यनाथ का ही नहीं बल्कि समुदा ब्रह्मिष्ठय का सीमाय होगा और सीमाय होगा उस महान धारण का जिसके लिए ।”

ध्यानाय धिय फिर सहसा मध्य ही में रुक रहा । उसे सदा जैसे धन एक-एक धन का भी निरुपय धरुणित होगा । धन बहू सुरक्ष प्रदान के लिए उद्यत हो उठा जतने जतने फिर एक बार देवी महाभावा की और कुछ अभिनय ब्रिटि से उसकी और देखते हुए बहू बोला— देवी धरने समुदा क प्रतीक इन धरुण को इन प्रकार से धरने पर धान दुःखी न हों यदि संभव हो सका तो बहू कम गणसध्याना के एक ऐसे स्थान पर रखा जाएगा जहाँ धरुण उठे मधीमति देख लके और साथ ही यह भी समुदा सके कि बहू किस बात का प्रमाण है, धान यह सदा इस बात का प्रमाण है कि ।”

किस बात का धरुण ? महाभावा के मुख से जैसे यह प्रश्न उन्मुक्तयय उद्यत निकल पया । वास्तव में उसके मुख पर इस समय तक धरुण जिज्ञासा का धान स्थिर हो उठा था ।

ध्यानाय धिय प्रदान करते हुए बोला— देवी धरुण धरने पर यह सदा न धरने क्या-कछ रहस्य लोभगा परन्तु इस समय तो बहू बुधिरा से जैसे मौन ही है संभव है तब भी हो पर कम कम बहू निरुपय ही उठना तो सब कुछ बटा देना ।”

किन्तु देवी महाभावा की ब्रिटि इस समय ध्यानाय धिय क पयों पर स्थिर की उनके गत्यानेम को देख एक बागी बहू भी तस्थ हो गई परन्तु धरने धरुण ही अब उस धरने हाथ में सुरक्षा प्रदान के सदा का तथा साथ ही उनके ध्याना का धान हो धरुण तो बहू धरुणता की धरुणता की और मक कर जैसे उत्तमिष्ठ हो बोली— “ध्यानाय धिय धरुणता धन उठेगी भी कि ऐसे ही धरुणता हुई नहीं रहेगी ।”



आशय बपकार में जो सोचा था बँसि यही हुआ।

सबानीरा की उड़क सहर उटकन्धा को छोड़ घन्त नए जगत् की धार बढ़ ही तो निकली।

उधर दिवस की यात्रा समाप्त कर बड़ा मारा सूर्य धामी प्लोकी धामा क माय बँदासी की स्वर्ण रत्न एक लाख कलखों युक्त अंधी भव्य घट्टी-बापी की धार निहार उठा। पर धान उस जगा जैसे मयूची लगी ही हिमी भी संताप में घाकन्त डूबी हुई है। मामल कालिबेय को मरु एव कुमार सुयत की न्या के दाक के देखी दिव्या ने भी धाज मँध्या समाज स्वगित ही रखा अत जो मुकर राजरम एवं बीबी-बिरीप धीर फिर उसका एक विस्तृत प्रायण मध्या बैसा को पाया देल रंगारंग है। असंख्य पीरकता की बहुल-बहुन म धंज चठवा था बह भी गुना ही शीघ्र पडा। बँसि भी देखी दिव्या का मन भी धाज न जाने क्या उचाट था अहानिवा के समो बहा ही तो उसे उदाय बीक्ष पड़े धन बर बाहर निरभ वाटिका क उमी गिवाजध पर मा बँटी बहो कमी प्रारंभ के धाचार्य दिव्य भी समके पास था बैठा करता था। दिव्य उसे बहाँ बैठ धमी कछ ही लाग बँसि होये कि स्वयं महुक उपक सम्मुख धा रंग दृष्टा फिर नन मगठक ो जाला— देखी ! धापकी सेवा में धाधाय दिव्य ने धमिवादन निवेदन किया है।”

यह सन देखी दिव्या को कुछ ग्राहयें हुआ करारिन् स्वयं महुक क धामन पर पर साध ही उनके मन को लधा जैसे उन फिर भा कुछ गिन मरा है। गोत्राम पूछने लगी— ‘धीर वह धारवागागर में ही है न ?’

शंभु ने अपनी दृष्टि लजिक ऊपर उठा कर— देखी वह धाये के परन्तु मुरस्त ही सीट भी धए, धीर धापकी सेवा में यह धरग प्रस्तुत करने को यह मए है।”

उद्ग प्रस्तुत करने को कह मए है। ये धर शंभु क धि पर धाचार्य दिव्य ने क्या कहा होगा समका अनुमान सवा जैसे धाधाय दिव्य की धति में ही ध धर उसके कानों में धीर फिर उमी क धाप धधुवे धगस्तम में मँज उर। म्मुग लड़े शंभु म बह मरनी उमी ध्यवाक्या में कहा बाहनी भी— शंभु धाध न जान कबो मेरा मन धारणत उचाट है। परन्तु न जाने क्यों बह इसमें भी कछ संरोध का धनु भव कर उठी कछ छोड़ फिर जैसे धगवाम बाभी— शंभु मला तुम उग्रे मही क्यों नहीं सिबा लाए ?”

संबुद्ध नत मस्तक हों बोला— 'देवी यह धाम धरम्य स्वस्त दीप्त रहे मे  
 नैयब है उन्हें धाम इय समय धरकाय न रहा हो ।'

"बरा यह उशम भी कील रहे वे ?

"नही देवी उनके मुख पर ता स्वर ही धारमविश्रवाय की वृत्ता पी ।

देवी विप्या शिलाशय्य से उठ बोनी— अबु किर तम्ह निरवय ही भ्रम  
 हुया होगा या किर ।

भागे की बाण उमक मुख म निरवय ही नहीं खकी । यह धपन हा म बावो—  
 घरी यह ता मन्मथ भावतिरेक हुया ।

देवी विप्या अब तक कबल लक्षों को हा उनके यथाकर मे प्रहाम वरन की  
 धरम्यस्य की धीर धनुमानों का उनमे मया ही त्याम्य संवम्य का परन्तु धाम उत  
 मया जैम मे सजी लतिकस्ता धरमर पा एक साथ ही उमके ऊपर टट पड़े है । यह  
 मोचने लगी—'कल ही तो यह कवन पुण मकर धावे मे धीर धाय यह एक उद्म  
 हे गए । क्यों ? उनमे से यदि एक धरमकार है ता कुरमा' ।

उत विश्राम का कि धाकाज विप्य मे को कुछ कडा हुया उतुक मे निरवय  
 ही यह मक कुछ दगा मिया है किर नी जैम उते धाम संबुद्ध पर विश्राम नहीं हुया  
 बुझने लगी— 'क्यों अबु क धाकार्य विप्य मे कुछ धीर तो नहीं कहा या ?'

अबु क मे मयाजुर्क है मत्र मस्तक रहे कहा—'नही देवा उहान धीर कुछ  
 भी तो नहीं कहा ।'

जिम संम्या देवा से धाम्य दिना देवी विप्या का मुख अधिवाधिन द प्य हो  
 रहता था धाम उनी मे उतक मुख पर उशानी की मही छाया पन्ती-सी धानी ।  
 कल की धार वही प्रथम पग क माय ही मत्र पूछने का उद्यम हो लगी—'क्यों अबु क  
 तो क्या यह लक्षण उहोंने धारमहृत्पा का सेवा है ? विन्तु उतने ऐसा पूछा नहीं ।  
 क्यों ? क्योंकि उत विश्राम का कि धाका य विप्य कभी ऐसा नहीं कह सकते । यह  
 धपन से बोनी—'क्या मे उहें धाम तक इतना भी नहीं समझ पाई है । किन्तु किर  
 कुरमे वय के साथ एक दुरमा ही प्रमन उमक मलिनच्छ से धा टकराया किर तीमछ  
 चौपा धीर मया संवत कीउने कानी देवी विप्या एक नही धमक प्रमनों का जिनी  
 धाम के नहीं करल धपने ही प्रमनों का उत्तर पाने को व्याकृण पी हो लगी ।

धाकाय विप्य जिनी की ब्राकम देखे धीर यह दुर्मो म हा यह उमका  
 स्वभाव नहीं था परन्तु यदि धाम उतने कही देवी विप्या का कभी मनो-गा मे वल  
 निचा होगा तो यह निरवय ही प्रमन हो रहता । क्यों ? क्योंकि उतकी इन व्वाहु  
 मता की देव एक तो यह धाकाय ही रहता धीर किर उनी क साथ यह उत  
 विधीपाधिकार का प्राण हुमा अनुभव का उतना या महज ही मे किनी का धरने  
 धाधियनपाय मे लीच बबोक धीर धरमन दुगार धारमनाय काने क निए प्ररित कर  
 रहता है । पर धाकार्य विप्य हमने मदा बंचिन ही रहा । क्यों ? क्योंकि उतकी दृष्टि  
 मे देवी विप्या धरमिक मोम्य की धीर कथाचित उमके इला सोम्य कर के सम्मुख बहै  
 कभी भी धर धपने मक की बात प्रवट न कर सका ता भी धपन इन धरोच पर  
 धाम छिन्न नहीं था धीर यदि या भी ता उये धाम इतना धरकाय ही कही

बहु पुत्र' उसी प्रसंग पर सोचता जिसके प्रवाह में उसने अपने को मग ही-मग बार-बार भागवत हुआ समुद्र किया था और उससे भी अधिक बार उसे अपने मन की केवल एक आति समझ समझ अपनी ही किसी मूढता पर हँस रहता था। अतः भाव देवी सिद्धा शर्मा ही से व्याकरण हुई क्योंकि इस समय आचार्य सिद्ध का घर तो प्रट्टाभिका से न जाने किसनी दूर—यद्यपि नगर परिवर्ष से ही—फिर भी वृष्टि छाया से बहुत दूर निकल चुका था। बारभ्रम में वह इन समय अपश्य के आवास की ओर आ रहा था कि मार्ग ही में अनिच्छा मग्न गया। अनिच्छा की आरणा थी कि आचार्य सिद्ध विमते ही कहे—'क्यों अनिच्छा इन कार्य में और इतना समय? उसने जो सोचा—'परि वह वह कहेंगे तो वे भी कहें चुंवा आठ' ही से निराहार हूँ और आने मुझे लगना वा यह क्या ही विविध कार्य और किया। पर उसने यह सब कुछ शर्मा ही सोचा क्योंकि जब वह आचार्य सिद्ध के सम्मुख आया तो आचार्य सिद्ध ने पहले ही एक शिक्षाप्रसंग की-सी मूढ बुद्धि से उतका बैठे आराधनीय आचारीकन किया और फिर अपने पदोन्निव नगरीर बुद्ध स्वर से आदेश किया—'अनिरुद्ध अपश्य सहित सभी को तत्काल बरी बना लिया जाए।'

यह आदेश सुन अनिच्छा स्तब्ध रह गया जैसे उस पर कोई बण्ड प्रहार हुआ हो। किन्तु वह भीतर ही मग्न हो बोला—'आर्य क्या प्रकार कीतिरय को मी?'

'ही कबो नहीं?' आचार्य सिद्ध ने दृढ़ता से कहा।

'पर वह तो इस समय पितृ द्विदोष से ।'

आचार्य सिद्ध उसे मध्य ही में रोक कर उठा— पर इनसे क्या कीतिरय ने केवल मुठ की ही हरावा नहीं की बरन् अपने पिता की अकाल मृत्यु के सिने भी तो नहीं बोयी है।'

वह कह वह तनिक उका कुछ सोचता-सा रहा फिर अपने स्वामाधिक मनीर स्वर से बोला—'और अनिच्छा इन समय में गलायक के दुर्ग की ओर जा रहा हूँ, इस आदेश पालन के पश्चात् तुम भी वहीं अपने को प्रस्तुत करो।

और उत्तरदायक आचार्य सिद्ध पवन के एक बबल झोंके की भाँति दुर्ग की ओर बढ़ गया। अनिच्छा कुछ अलौंठक तो लड़ा कुछ सोचता-सा रहा और फिर उसने अपना घर भी उठी दिशा में दीक्षा दिया आचार्य सिद्ध के घर की बति से भी अधिक तीव्र पति के साथ संतत उनका घर आचार्य सिद्ध के घर से धारै निकल गया केवल धारै ही नहीं बरन् आचार्य सिद्ध के घर के सम्मुख भी उसने अपना मार्ग भी रोक लिया। आचार्य सिद्ध भी पूरी अति से घर की तरफ को लीक रह अका हो गया। और, अलका निकल हुआ जैसे आचमानीयक स्वर ही उत्तरदा से कहल कोप पर आ पडा। अतः अनिच्छा ने भी इसी मध्य अपना घर सर्वका आचार्य सिद्ध के घर से उठा लिया। किन्तु, जब तक आचार्य सिद्ध कोप में है तबप ही अनिच्छा में घर पीठ पर बैठे-बैठे ही अपना मातक गठ कर, नातर धार स्वर में कहा—'आर्य, मैं भी अपनाही हूँ।'

आचार्य सिद्ध के मुख से एक भारी सीत निकल उभार के मध्यमृष्टि में बिलीन हो गई। फिर अपने अहायक की ओर देखते हुए वह तनिक सोच पोला— अनिच्छा

यूझे वह भी विहित है परन्तु आज मैं देखी महामाया से उपकृत हुमा हूँ अतः इसी से कुछ सोच गया।”

अनिरुद्ध ने अपना धीरे-धीरे पूर से भी अधिक धबनत कर कहा—“धर्म यह विहरातमाटी क्षमा की याचना करता है अपने जीवन के लिए नहीं बल्कि बैशासी की रक्षा के लिए।”

“पर अनिरुद्ध उसके लिए मैं आश्चर्यतः हुमा चाहता हूँ। जानते हो आनुष्मती श्रुतिता के साथ वह धृष्टता किसने की है?” अतिम वाक्य के समाप्त होते-होते आचार्य सिष्य का कण्ठ स्वर अनेकानिष्ठ हो रहा और समूचा मुख समतला उठा। अनिरुद्ध ने संक्षम दृष्टि से उसकी धोर देखते हुए कहा—“नहीं तो धर्म।”

आचार्य सिष्य आवेष्टित कण्ठ स्वर में ही बोला—“तो तुनो वह कांड तुम्हारे ही विस्वासात्मा के कारण हुमा है। और जानते हो वह किसी वैवातिक का ही अल्प लेकर आया था।”

यह सुन अनिरुद्ध का समूचा मुख भी सहसा समतला उठा। आश्चर्य बोला—“धर्म आश्चर्यतः रहें मैं भी उनका प्रतिघोष प्रथम लेकर रहूँगा।”

आचार्य सिष्य जैसे आश्चर्यतः हो रहा और फिर वह कुछ भी कहे बिना पूर्व की ही तीव्र गति से दुर्य की धोर बौड़ लिया।

यह सरद्व अरु भी वह अरु, जिसमें विवस ने हजर संख्या के आचमन में मूर्ध्ना शीत विषम के लिए पर पसारे नहीं कि, वस उपर सर्वत्र संयत्न छा रहता है। फिर वह इच्छा पद का उत्तरार्द्ध भी था और आज वण महानपटी जैसे ही शोक संतप्त थी। रात्रि की महनता ने शीघ्र ही जैसे भयावह रूप ग्रहण कर लिया किन्तु उसकी इस विक्रमता में भी यदि एक धोर आचार्य सिष्य का तो कुछ ही धोर उसके सहायक अनिरुद्ध का परव धरपट वीकृता था रहा था और उससे भी अधिक गति से दोनों ही के मस्तिष्कों में विचारों का प्रवाह गतिमान था।

इस अनिरुद्ध का अर्थ यदि नगर के मुख्य द्वार पर आकर रुका तो आचार्य सिष्य का परव गलाध्यक्ष के दुर्ग में प्रविष्ट हो रहा। वहाँ इस समय केवम गलाध्यक्ष ही नहीं बल्कि उनके पास ही महामायाविकृत अक्षर्य वेव भी विराजमान थे और उनकी उस समय की मुख मुद्राओं को देख कुछ ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे दोनों ही किसी गूढ संज्ञा में व्यस्त थे। गलाध्यक्ष के हाथ में हम समय एक ताड़पत्र भी था। उपर नगर द्वार पर था अनिरुद्ध प्रमान धारणात्मा को दूर ही से देख उसे सावधान कर उठा। साथ ही द्वार को सुरक्षित करने का धारणात्मा कर वह फिर अस्वास्त हो उसी परमाणु से नगर की धोर सीट लिया। धोर मार्ग में जो भी पद पुरुष विभा उसे भी सावधान करता था। वह स्वयं भी धरविक्रम सावधान हो गया।

गलाध्यक्ष सिद्ध आचार्य सिष्य द्वारा प्रस्तुत पद्व को देख कुछ अस्मित हुए। आश्चर्य बोले—“यह एक मानव के हाथ में था! परन्तु गलाध्यक्ष यही नहीं कि वह वैवातिक एक मानव ही था?”

आचार्य सिष्य इस समय स्पष्ट ही कुछ लीक-सा गया तथापि सहस्र



बोला—“बन्धुवर धन धान इन प्रमाण के मोह में न पड़ें प्रमाण लीजते-लीजते ही तो अत्यन्त यह स्थिति धा उपस्थित हुई है, यदि धन उगका और मोह किया गया तो फिर बन्धुवर बैशाखी के मुक्त पर कर्ण ठ मगा हुआ ही समझे ।

“इसका अभिप्राय धामुष्मान् ? देना मेरे पास धमी-धमी मयध ही से प्रधान अमात्य धार्मिक गोपाल का यह पत्र धामा है और उनमें उगहाने लिका ने कि राजा अजातशत्रु समागत की मुख्य स्मृति में न रहे हीय स्वतः सुख स्त्रु के दर्शन किया जाहते हैं यदि यग सामन उसकी अनुमति प्रदान कर दे तो मगध राज्य की समुची जनता अत्यन्त अपने को अत्यन्त अचरित हुआ मानेगी। साथ ही अजात की इन बैशाखी माना से दोनों पत्नी राज्या के मध्य के सम्बन्धों में भी सुधार होगा और फिर किसी दिन यह राज्यवह नगरी भी तो बन्धी सब के गणाध्यक्ष का स्वागत कर अपने को अग्र हुपा मानेगी।

धाधार्म सिध्द ने पत्र की अत्यन्त ध्यान से सुना और जो कुछ सुना उठते वह अपने ही किसी निर्णय क प्रति बंदि सविश्व हा उठा। पर साथ ही उसे पत्र पर भी विचार नहीं हो पा रहा था परन्तु उसी क साथ उन पत्र में अविश्वास का कोई स्पष्ट कारण भी नहीं दीख पडा। अतः वह पुनः दुविधा में पड गया बीमा ही दुविधा में जिससे धान प्राप्त ही तो उस बंदि मुक्ति मिली दीख पाई थी। वह निराश हुआ गया। फिर भी बोला— बन्धुवर मन में न जाने कब से एक मय बना हुआ था जो धान सत्य होकर ही रहा। बन्धुवर इस प्रमाण के अभाव में ही तो मैं धान तक अर्ध में एक गृह्य का छिपाता रहा। धानवर जानते हो वह गृह्य क्या था ? अजातशत्रु देखी धामरासी के धानमन के दिन ही जो चार मासक मरकों की हत्या हुई थी वह केवल समय बच नहीं बरन् योजना बड की और उनमें धाधार्म कर्णकार का भी हाथ था।”

वह मुन बधाध्यक्ष अत्यन्त रह गए। धाधार्म सिध्द ने जो कुछ कहा उस पर उगहे विचार नहीं हुआ वह साबेस बोला—“धामुष्मान् तुम यह कह क्या रहे हो ? क्या यह धामन से मेरे जानने का प्रमाण नहीं हुआ ?

धाधार्म सिध्द नत मस्तक हो बोला—“बन्धुवर, इसी धारोप की तो मुझे पहल भी धनका थी और इसी कारण प्रमाण क अभाव में मैं इस गृह्य को प्रकट करने में असमर्थ रहा। वास्तव में वह मेरी अनुमति है उनके कारण दुविधा भी रही उसी दुविधा में मैं इतने दिनों तक एक बिलिप्त की भाँति भ्रमण में रहा भ्रमण रहा इस धाना से कि बधाधिक किसी दिन कोई प्रमाण मिल जाय। यद्यपि वह प्रमाण मेरे पास धान भी नहीं है पर धन में अपनी अनुमति में और संदेह कब मेरी यह धामर्ष भी नहीं रही। धान हा धानका मरी अनुमति पर ही निश्चित करना होगा अथवा कह दो बन्धुवर कि मैं वैधानिक नहीं बरन् बैशाखी का कोई शत्रु है।

धाधार्म सिध्द के अन्तिम वाक्य को सुन पलायिका सिद्ध का अंतिम सहवा कुछ स्मरण हो धामा धाधार्म बहुराज्य का पत्र उनके नेत्रों के सामने स्थिर हो गया परन्तु साथ ही वह सोचने लगे—“यह भी बीमा बिलिप्त बात है। प्रकट में यह कुछ कहने का भी उद्यत हा रहे परन्तु इसी मध्य महारजाबिहृत पीठिका से उठ बोले—“और तुम्हारी इस पत्र के सम्बन्ध में क्या कारण है, बन्धुवर धाधार्म सिध्द ?”

शास्त्राय दिव्य ने उत्तर में पहले तो कुछ सोचा सोचा कि जब एक बार दोपारोपण हो हो चुका तो फिर मैं अपने ही मैं भला क्यों सदेह बचक घात वह जैसे सचिवांस बोला— बन्धुवर वह निश्चय ही एक प्रपञ्च है। मेरा निष्कण्य है कि ममक राम राजास्यसु इस समय यही बैधानी में शास्त्राय बर्षकार के प्रयास में है।

यह मुन्य होता ही चकित हो रहे। किन्तु माय हा गगाध्वल तस्यगा पुत्र उठ— श्रीर यदि नहीं हुए तो शादुध्यान

बन्धुवर वह निश्चय करना शापका हाथिल है मरा हाथिल धरना न वर्ष प्रकट करना या श्रीर वह वेन कर दिया।

शास्त्राय दिव्य के मुख पर इस बार जब निडरु धारणविश्राम का उटना हो उठी।

इधर शास्त्राय बर्षकार इस समय अपने निजी कक्ष में शास्त्राय इरण्य थे। उनकी बल में पीठिया पर एक व्यक्ति भी बिचउमान था। सह्या उन उरावन की शास्त्राय कर वह बोले— सभाए यह एक भाग का १० विन्ध्य न कवन शास्त्राय न लिए बरन् हमारे जीवन के लिए भी बाधक है कुर्न का येके यह हुए का अब तक न मौनता निश्चय ही इस बात का धोतक है कि उसे यहां न उठे न १० विन्ध्य गया है। मन्नाद थाप इन प्रजात जन मुरजा प्रजात का कम कवन न ममक, यमक मासात्र न ज्ञान पर जो बार मुरकी भी बनि कराई गई थी न समय नम भा प्ररजा न मकना है इनका अमान वद पहले ही दिन वा मया व परन्तु यह बैधानी की मय्य धरवस्का ही की कि प्रयास के प्रभाव में वह जापके इस विनीत मेवक का कउ भी न कर मवा उवके हाप ठा एके बरी बगाने से उठ ही रहे मेरे विरउ मुह जो बन्धु रहा। पर थाप उठ इन समय तक यह रहस्य प्रकट हो चुके हैं कडावत कोई प्रयाग भी मिल चुका है घत मन्नाद अब थाप उठे श्रीर शास्त्राय के पुत्र भाग में एकत्र साभाय के संनिव) का साभाय करे मुत्त उम्मागर मे मे उठे कमी का शरव प्रशान कर चुका है श्रीर के अब मुद के लिए पुनः सम्मड है।”

मन्नाद सोलवान पीठिया व उठ बोले— 'ता थायवर फिर साभायन वा यह विनीत सबक भी प्रस्तुत है घात भी थाये बह मेरा माय-मयन कर।

शास्त्राय बरशार का अन्तर उत्साह में शिपोर उठा मुत्त भी धिन उत्र श्रीर निम माना किसी फिर शास्त्रायन विजय को सम्पुत देत मुन्करा उठ। यह बोले— 'सभाए घात ठा साभाय के उरक है थाप ही के बाहुबल पर तो उनके विरार का दाविरन है धारवथा उह विनीत उकक त्रिभ योग्य है जो यमक-धरिचित के माय बसेन की प्रपता बरे।

सभाए नत मस्तक हो बोले— धारन मैं तो निमित्त मान हूँ बन्धुन मकव साभाय के संस्थापक ता थाप है अग्यथा मया उठ का पारकर, इकर वहाँ बैधानी उरक भावक संनिवों का घाता कमी संमन हो पाता कडावत नहीं थाय यह अब थाप ही वा नीति बौधय है जिसमें अतमव को भी संभव कर दियावा।”

शास्त्राय बरशार एक उष्ण ठहाका दे हंस उठ हंसते रहे। उनकी यह हँसी साधारण नहीं थी बरन् जैसे विजयोन्माद की हँसी थी जिसे मुन्य एक धारमी बह

उसका धरम फिर तरल ही तो खरिठ गति से उसी धोर बीड़ लिया। उमके पीछे-पीछे अनिच्छ भी बीड़ उठा। नागरिक भी धपने धाधारों की धोर बिहनाते हुए, धाधुान धरत हुए छि— धरे धी नही जाने उ धर भी जाने उधो धाधो बैधा सिना बैना ती न माध जिधामधाल धपा है मजानीरा की उहूँ राहणों से नए उधात में लही धरन् माधध भूमिधों न नगर में प्रवेध धिया है।

धीर दग धाधोर ध धर नो उध मधधधधधधध धधधधध उधे धधनी धुधि धैना माधध धीनधो की धका ती धह उधकी संधधा की धेध धधिय धा उधे हठाध धो। धर धध उधधान धर धधधधर में कध नागधिका की धी धान धया ती धनके धुरध में धधधध का मधधर धा उठा। धध धा में गगधधध धि— धधधधध धी धुधे धे उधकी धोर धुधध कर धह धोले—“धधधधर धधि हध धिनी धधधर धी हस राधि हनके माध संधध करधे हूँ ना धाध धुधारी धिधध धिधधध है। धधर धधध धधधधध की रधा करे धोर धी ।

धनी मधध धैनी रोधिणीपीछे म कध उठी— धधधधर धधधध धधध की रधा में कध धी गौर धुध धोना ही धनी धधधधधरों की माध से धनही धधिय धधिय धर धूठ धधो धधिय धधिय में धी ती धह धिधधधधधनी धधधध धधधधर धधधधधु के धध धधधिय है धधि ठक धर उधका धधधध कर धिया ती धिधर उधके धैनाधों का धधधध धी धाधा धुधगा ।

धिय धधधधर ने धधे धनधी धाना की धनधी धूर धी धी धीध धिया धा। धह धैनिधों का धधधधध कर कध उध— धरे धैनिधो धेधध धया धा हन कधधो की तीध धधधर धधधध धी रधो।” धोर धिधर धिधधनी धधिय म लधे धैनिधो की उधध धधर में धधधधधे धुध धह धह उध—“धधर धैनिधो धया धेध लही रधे धि धुधधारे पीछे कीध धधे धा रधे हूँ। धरे धुधधों धे धैधधधध धु—धैधधधध।”

उधर धधध धे धधधधर का कध धधर धानों छे धधरधे ही धधधधधधधधध धधधध धेध का धधिय धधध धी धीध उध। धेध गधध धधध कधधधे धधर में धह धीध— धिधधधधधध धधधधर धधध धेध धेध धह धिधधधधधध न कधध धेगी ही धरन् धेरे धधधध धी धी धध धेधर रधेगा धोर हन माधध धैनिधो का धध धैधधनी के रधध धधो धर ही रधध धधध धधधधेगा ।

धधधधर एक उधध धधधधे हूँन उध। धिधर धीधध— धरे धो धधधध धेध धया धी धिधधधधधध धी हूँ? धिधधधधधध धा धिधध धिध धुने धिधध धा धि धधधधधध धर माधध धधधधधधध की धुना धिया धीध धिधर उध धर धधर धैधधनी से धधधर करध धिया धधधध धधध धध धधी का धधधधधध है ।

धीर धिधर धधी के धधध एक धधध कध धधर धधी धुध धध— धीर धधधधध धुध धध धधधधध का धी धा धा एक धिध धैधधधधध धे धेरे धधध धिया धा धिधधर धी धुधु के धधधध धुधे नही धरन् धेरे धधध की धधधधधधध कर धुधे धधधधध धिया धा धीर धधधधधध धुधे धिधधध धे रधधधध धी धोर धधधधध धरना धध धा धधधध धो धधधधध धे धध धोधध हूँ धधध धधधधध का एक धधधध धधधध धोधध धीर हस धधध धैधधध धी धधधधध धा एक धधधधध धी” धिधर धह धी एक उधध धधधध धेधध

उठा हँसता रहा। उसकी कर्कश हँसी समूचे बापुमण्डल पर गूँज उठी। अपनी मध्य पुत्रों के द्वार फपाट भी मातों भयंकर धार्तनाथ कर दृग् उठे उबर-नागरिकों से जूझने संनिक उच्छ्व कण्ठ स्वर से मगध साम्राज्य का जय-जयकार करते हुए धावे बल निकले खडम से खडम टकराने बने धीरे महाबलाधिकृत घलण्ड तथा मण्डापाख विद् भी धपने धपन धडंग का चुम्बन से आश्रमसुखारी धनिकों को प्रथम पवित्र पर दृट पड़े पंग रक्षक धाय मँनिकों की धीप पवित्र से जूझ उठे तथा सिद्ध भीधे प्रजानदानु की धीर बल निपा घलण्ड देख भी सनिकों से चुम्बता हुआ बपटार की धीर बलना रहा दूर ही से बोला— धरे धो बिस्वाद्यवाती धर्पकार मह मुञ्ज है इयमें खड्म उठा धर कायर की धाँति क्यों लटा है ?”

बपटार हँस उच्छ्व स्वर में बोला—“धरे धो धबोध बालक धपने कान धोल कर सुन मेरा धरुन ता कमी का धम चुडा धर तू बला में धी लो देखूँ तेरा बह कँडा धरुन कीडम है।”

घलण्ड देख उमसे धी धधिक उच्छ्व स्वर में बोला—“मै नि धान्धो पर धरुन नहीं धमाता धीर धो धारब तुने धमाया बा नह कधी का विरुध हो चुका नेगता नहीं बैशाखिक धाम उठे है।”

धर्पकार फिर एक उच्छ्व टहाका दे हँस पडा हँसता रहा कि उपकी इम हँसी पर मुञ्ज रत सनिकों की विरुधो पवित्र की धीर से धाहुनो का कछण कान छा उठा धीर फिर उमी क मध्य धाधाय सिध्व का उमत्त कण्ठ स्वर धँर उठा धीर गूँज उठा कि उम पर धनिकु क एकाकी कण्ठ के निकला गणराज्य का जय-जयकार केवल कण्ठ स्वर हा गूँज कर नहीं नह धया बरन् धनबरत का में धाहुन स लहा धी टकरा रहे थे। कसत धाहुन ही पस्तर टकरा कर नहीं रह गए, उनके कण्ठाने स्वर पर मूर्ख भी धात भी गूँज उठी धीर फिर माँक धरिधान धी बल उग धय धनि भी हा उगी देखी सिध्व के बाइठ धात्र कशाधिप ताँडन मूर्ख की पुन बला रहे थे धीर स्वयं देखी निध्या ? बह ता धात्र फिर धीमे गिब की धानना से धपतरिन हुई धो नृप्य मँध पर नहीं न्यय रम धीगणु में धाधाय सिध्व न धाहुन धमाते धमाने एक बार नभधारी न उगी धीर देखी धात्र पत नभमूब धपन इय गी कप में उत दिन में धी जिन दिन कि उमसे धर्षधम मधुर्ष क धधमर पर धवा धाधराधो क साध उमे नृप्य मँध पर धपतरिन हाडे देया बा धधिक मुन्धर बील रही धी धो फिर बह धधर्मा ही नहीं बा उमके नाध धीररिन धी धाई धो धीर धाई धी सामन्त पुत्री धागस्विना धी धीर धवी मधामाया ? उमके धाम में हा मधय बला नहुन का बा धात्र धान ही ता मुग्धा प्रधान में उसे प्रधान किया बा उसकी धनि तीब धी उतका कण्ठ स्वर भी मागध मँनिकों पर होत प्रत्येक प्रहार के साध-साध बह कडू रही धो— नृविता इमूँ धमा न करो इनका धँहार ही धोभा देता है देखा नहीं इनमें में हँ डिनी एक धागताधी में लम राधि हमें धकेया ममध तेरा धँया धपमान किया बा।” धीर धाधाय सिध्व इम सभी के इस रण कीडम को देख भी उठा बा उवा माध ही थे बा कुछ कडू रही थीं बह भी मुन रहा था। उमसिध हो उच्छ्व कण्ठ स्वर में बह पुनर उठा—“बधुधर धधधयो नहीं इय सब उठी धीर बड़े धा

रहे हैं किन्तु हमारी निश्चित है और अब मयब बर हमारा ही राज्य होगा पर साम्राज्य का नहीं गणराज्य के सम्बन्ध आदेश का जिसमें इन विद्रोहवादियों का सर्व नाश हो रहेगा।”

किन्तु बंधुवर सिंह ने यह सब कुछ बंठे धनमुत्ता कर दिया मानों उनके ठपक राखा प्रजासत्तागु के मध्य पर्याप्त समय से चल रहे दृग्-मुक्त के वे निष्ठात्मिक हल थे। अक्षय्य देव भी इसी प्रकार खूब रहा था और खूब रहे थे दुर्ग के वतिपय धन रक्षक मायभों की एक पूरी पंक्ति से ऐसी पंक्ति से जो सम्राट की रक्षा के लिए दृत्-मन्त्र्य हो कर आई थी मध्य पंक्तियों वाले सैनिकों का घानी पीछे बाएं-बाएं चारों ओर ही प्रहारों का काम गतिमान था। और इन धनवरत्त खड्ग प्रहारों के मध्य आघात वध कार सोच रहा था—‘कदाचित्त कि यह कोई मून हुई है, बैथानी के वे मायदिक तो घाते ही वा रहे हैं तथा हमर वा हैं उनमें भी अन्धाह मयापूर्व है केवल दबापूर्व ही नहीं बरन् बहु घाते मायदिकों को देख और बकता ही वा रहा है। यह तो प्रत्येक बीतता क्या हो।”

बहु निराश हो घटा निराश दृष्टि से उसने गोपान की ओर देखा किन्तु गोपान का इस समय किसी ओर भी देखना असम्भव था बर्यकार ने देखा कि उसके धारों से केवल स्वेद-जल ही नहीं बरन् रक्त भी प्रवाहित है और वह इस समय अक्षय्य देव से जैसे कुछ परास्त हुआ केवल प्रतिरक्षणक मुक्त कर रहा है। यह देख वह पबरा उठा। उनमें किन्तु वातर दृष्टि से सम्राट की ओर देखा वह भी जैसे बक से प्रतीत हुए, केवल बके हुए ही नहीं बरन् स्पष्ट ही सिंह के प्रहारों की रोक रहे थे। मनस सम्राट और प्रतिष्ठात्मक मुक्त करें? किन्तु तो पराक्रम निश्चित है अपना सन्धानता हुआ बर्यकार मात्रेण मध्य पंक्ति में धूस बढ़ा और किन्तु उनी तलरता से कृत पीय कालवय सैनिकों को साथ ले नहीं बाधित कीट आवा सैनिक जैसे किसी बकसर की बात में लड़े हो गए।

और बपकार सहसा अर्धबाहु हो उन्मत्त कम्ठ स्वर में बोपला कर उठा—  
“बीरो सिंह मारा गया अब केवल भूगाल ही बचे है और देखो आचार्य सिध्द बोधित ही बकड़ा जाए।”

सब्र आचार्य सिध्द भी प्रत्युत्तर में बंठे आह्वान कर उठा—“बैथानी के बीरो बंधुवर सिंह मारे गए, तो भी गणराज्य अजर अमर है वह अगुण्य है उनकी कीर्ति-अमर है मूर्धों की भांति उसके अन्तोक की भांति आब राहु ने उसकी ओर अपना हाथ बढ़ाया है बढ़ाया है ता बवा हुआ वह धभी मष्ट विमिष्ट हो रहेगा। और किन्तु नहीं आलोक हो रहेवा वह आलोक जिसमें अक्षय्य देव स्वयं मष्ट हो रहता है।”

परन्तु सिंह धभी भी सम्राट से खूब रहा था ही बर्यकार की बोपला का मून अक्षय्य देव ने लैक कोरो से उपर की ओर अक्षय्य देखा उसका देखना था कि कई सैनिक एक साथ ही उभर पर दूट पड़े, यह देख गलाप्यस का जैसे हवास फून उठा एक बार उनमें अपना दृष्टि उठा अक्षय्य देव की ओर देखने का भी प्रयत्न किया कि सम्राट का पदम लक्ष्मी पीना पर आ पड़ा।

मलु वा प्रतीक गया।

परन्तु फिर भी घाघार सिध्द नागरिकों को अपने साथ में मगध सैनिकों की पिछनी पंक्ति से भूझता रहा। देवी सिध्दा का भी काह्य अपने परे बेम से चल रहा था, और बड़ी बधा देवी महायाया के काह्य की भी संभ्रिका के इस रणकौशल को देख वह वर्ष का अनुभव कर उठा परन्तु सहसा उसे अनिच्छ का स्मरण हो आया पर्याप्त समय से उसका स्वर सुनाई नहीं दिया था चल उसने चारों ओर दृष्टि फैलाकर देखा वह कहीं भी नहीं शील रहा था तो क्या ?

उसका प्रदल जैसे रोप रह गया।

महामा कुछ नावक सैनिकों ने देवी महायाया को बर लिया फिर भी वह उन से भूमती रही परन्तु कब तक भूझती रहती ? देवी सिध्दा उसकी महायतार्थ हीठी तो वह भी फिर उठी। इकर प्रथम पंक्ति के सैनिक भी अपना कार्य समाप्त हुआ समक उबर ही की ओर अपने अग्य सैनिकों की महायतार्थ हीठ लिए, केवल कुछ सैनिक रोप रहे अपरसकों से भूमने रह गए। और कुछ सैनिकों को बर्पनार ने राक लिया उनसे वह मूठ सिद्ध और पक्षण के अर्थों को उठवा उभी ओर हो लिया बिबर धनी भी मुठ पतिमान था। किन्तु फिर भी घाघार सिध्द हठाम नहीं हुआ प्रतिशोध की म क्या जैसे उसे पुलकिंग में ममकार उठी वह हून-सक्य हा उठा मुठ करना रहा कि इनी मध्य महायाया का धार्तनाद उसक कानों से धा टकराया जलक इनमे उबर की ओर देखा हीं का कि मगध सैनिकों ने मान्यता से उनकी धार वह उनके काह्य के मध्य भाग पर तीव्र प्रहार किया।

काह्य निश्चित हा भूमि पर आ पिरा।

फिर भी वह लडित काह्य की महायता से ही भूझता रहा कि सहसा एक मोठी रज्जु संभ्राली-नी उसके धरीण से धा चिपटी।

मानों गति के अन्वकार में काई बिसाल धक्कर महामा उसकी काया से चिपट उठा।



## सपसंहार



**क्या** सेव रहा घोर तथा घसेय हुआ ?

यह एक प्रश्न है जो अपनी प्राण उठे वैशालिकों से घबरप ही अपने से पुछ होना और वास्तव में उन्होंने यह पूछा भी ।

उपर सदानोरा की उर्ध्व महूर भी इस समय तक कुछ घात हो चुकी थी परन्तु नव-उपाठ के तारारकों ने भी मानो बिन की-सी साँस थी । परन्तु, साथ ही उन्हें ध्यान हो आया आत्मन्तर वैशालिक क्या प्रब हृष्य के इतने खडोर हो गए कि नग शासन की घोर से महामता का आह्वान करता हुआ एक नहीं बरन् तीन-तीन स्वानों से नगरा बच उठा और फिर भी उन्होंने इपर की घोर मुख तक नहीं किया बलो कोई बात नहीं उन्होंने तो हमारी सुधि नहीं थी परन्तु प्रब इन स्वय ही का उन्हें अपनी कुलनता का संघाव से घाते हैं । परन्तु मध्याह्न पूर्व में जब बंनगर की घोर प्राए ताँ इतने दिन नहीं तक भी मुख्य-द्वार के कपाट बन्द रहे देखा व स्वय यह गए, उनमें से कुछ बकित भी हुए और कुछ केवल कीर्तुहन का नाव प्रकट कर रहे गए कुछ ने समझा—'यह तो वैशालिकों का प्रमाद है । पर अब उन्होंने अपनी बुद्धि खर उठा देखा तो वे बस अपना माथा ठोक्ते ही रहे गए वैशाली की घनेश प्राचीर के मुख्य द्वार पर कोई वैशिक प्रब सहृद रहा था । घोर सम्भवतः नगर में इस समय कोई बोधना भी की जा रही थी । बाहिर वैशालिकों ने कपाटों से कान लगा कुछ सुना तो वे स्वय ही रहे गए । उद्बोधक निजयोन्मत्त कष्ट स्वर में बोधना कर रहा था— ऐ वैशाली के प्रजापतो धान मध्याह्नोपरांत में वैशाली के मुख्य-राजघरा पर से मगध साम्राज्य के महस्वी सम्राट् विदेहीपुत्री प्रजापतधु की निजय माथा निकसेपी घोर फिर दुर्ग के मुख्य प्रकोष्ठ में एक राजसमा होनी राजसमा में साम्राज्य-निष्ठ वैशालिकों को बुरकार प्रदान किया जाएगा तथा बन्धियों को ।"

बाहिर वैशालिकों ने फिर बँसि आने की बात ही नहीं सुनी उन्होंने तो फिर भी कुछ सुनी परन्तु जो वैशालिक इस समय मुख्य-नगर के बन्द प्रासादों उच्च घटा लिकारों घोर साधारण प्रासादों में थे उन्होंने तो इतना भी सुनने का प्रयत्न नहीं किया, यदि सुना तो बस राजघरा पर एक बीबियों में पहलु बेत राव पुष्यों ने घोर वास्तव में उन्हीं को उस निजय याथा में सम्मिलित भी होना था । तो फिर ? किन्तु छोड़ो इस बात को । बस बही जान लो कि वैशाली हत-वरास्त ही थी । घोर क्या विहित नहीं ?

प्रश्न बँसि फिर बँस रहे गया । पर नवाचित् ऐसा नहीं ।

धीर मध्यरात्रिपर्यन्त जब बिज्ञानी के हुने राजपकों पर से बोधित भाषा निकली तो सम्राट् कुछ क्षिप्त कण्ठ स्वर में बोले—“घार्वर इससे तो हमे रहने ही दो।” किन्तु उनका प्रवान परमात्म बपकार बोले—“बही सम्राट् जब हुपाछि विजय हुई है तो फिर उस उपलक्ष्य में लक्ष्मी भाषा भी निकलनी ही चाहिये, यदि राजपक्ष सुमे है तो क्या हुआ मगर से बाहर कर्मांत तो लक्ष्मी भाषा स्थापित कर रहे हैं।”

धीर घंठत बहु राजसभा भी हुई जिसमें पुरस्कार के लिए तो कोई नहीं आया पर ही बन्धी प्रवच्य उपस्थित किए गए क्योंकि बहु कार्य भी साम्राज्य के दैनिक प्रयत्न ही भी सुव्यवस्था है कर सकते थे। धीर इस राजसभा में एक नहीं एक एक कर घनेक बन्धियों को उपस्थित किया गया धीर आचार्य सिध्द ने जब बन्धी प्रवच्य में ही महावीर भेलिख रत्न देवी रत्न कमल परमब्राह्मण मृत्युञ्जय प्रवान मदेयबाहुक कपिल उचकी पत्नी आका धीर फिर उठो बंधित के प्रतिबल शोर पर कमार कीतिरक एवं बरबक का भी देखा तो बहु बंधित रह बसा मकरिया धीर देवी सिध्दा तथा देवी रोहिणी का तो उसे उस समय रात्रि में ही पता चल गया था। धीर जब ये सभी आ गए तो आचार्य बर्षकार ने स्वयं सिद्धासन आसीन सम्राट् आवातउधु के सम्मुख मस्तक गत कर सन्निव निवेदन किया—“सम्राट् ! ये सभी बन्धी साम्राज्य के शत्रु धीर उधु है कुछ निरालसबासी भी घट धाप कन्हे साम्राज्य एक व्यवस्था के हित में उचित बन्ध प्रवान करें।” धीर फिर बन्धी आचार्य सिध्द के सम्मुख जा उतने प्रयत्न किया—“मैंने अज्ञात कम मुचक यदि तु चाहता तो मुझे बन्धी बना सकता था फिर भी तुने ऐसा क्यों नहीं किया ?”

किन्तु आचार्य सिध्द इस प्रश्न के उत्तर में मौन रहा। उसे मौन रहा देख आचार्य बर्षकार कुछ कण्ठ स्वर में बोला—“बन्धी बलता नहीं बहु सम्राट् प्रजात उधु की राजसभा है धीर उसमें सम्राट् का प्रवान परमात्म तुम्ह से अपनी बन्धि का प्रयत्न कर रहा है धीर उसका उत्तर न देना एक दूषण करावित् बहने से भी अधिक प्रक्षम्य अपराध होता।”

किन्तु आचार्य सिध्द इस बार भी मौन ही रहा। इस आचार्य बर्षकार ने इस बार निश्चय ही अपने को अपमानित हुआ अनुभव किया। अपने धन्वर भी ब्रीह को मिटाने के प्रयास स्वक्य उतने सभी सभासदों की धीर अपनी दृष्टि कर जैसे धर्म कह—“मात्रपर सभासदों भूकि यह अज्ञातकूल है अवाचित् इसी से बहु लज्जा का अनुभव कर रहा है।”

इसी समय बन्धी मल्लबाहुक मृत्युञ्जय मौन उठे—“आचार्य बर्षकार अवाचित् आप भूल कर रहे हैं बहु राजा बैटक के पुत्र हैं धीर यदि न भी हुए होते तो भी आपको साधारण सिध्दाचार तो कम से कम ।”

परन्तु इसी समय स्वयं सम्राट् कह उठे—“बन्धी बरजबर अज्ञातकूल है धार्वर यदि हममें आपको भ्रम हुआ है तो बन्धी मृत्युञ्जय का भी बहु केवल भ्रम ही है कि बहु राजा बैटक का पुत्र है बहु न तो अज्ञात कूल है धीर न ही अंधिय पुत्र।”

“तो फिर क्या बहु कोई मार्तवपुत्र है सम्राट् ?”

आचार्य बर्षकार के मुख पर परहात की कूह-सी मुस्काय खेल उठी।



किन्तु सभ्राट् घजातशाज् पर्वन्त महत्त्र जात्र मी बोसे—“घायबर बहु मार्यमपुत्र मी नही है वरन् एक झाङ्गल पुत्र ही है, स्वयं घाचार्य बर्षकार का ही धार्य ।”

घाचार्य शिष्य ने यह सुन जैसे लज्जा भयवा प्रारम्भान्ति से घपना मुक्त नत कर लिया ।

पर घाचार्य बर्षकार यह सुन स्तब्ध रह गया भारी बन्ध से पुछने लगा—  
इसका कोई प्रमाण सभ्राट् ?

सभ्राट् घजातशाज् ने क्रमशः घाचार्य शिष्य घोर घाचार्य बर्षकार की घोर किञ्चित् मुस्मान के साथ बोलते हुए कहा— ‘प्रमाण चाहिए धार्यबर तो लो मह पत्र, जो घाचार्य बहुलाभव ने किसी बिल तिरु सेनापति को भेजा था घोर घत्र इसी घुरा के एक क्रम की मजूबा से प्राप्त हुआ है ।’

मरी उत्रसमा में बिधमें कि घाचार्य बर्षकार ने घरने को सम्मानित किए जाने की घासा की थी सार्बजनिक क्रम से हुए इस रहस्योद्घाटन पर घसने मारी घपमान का अनुभव किया । बहु अचेतित हो उठा घोर किसी पर नही वरन् स्वयं मभ्राट् पर, एक घमानव के हाथ में उमने लखन ही तो जीव लिया पर बहु लिया घाचार्य शिष्य की घार । सभ्योम साधेय बोला— ‘सभ्राट् बदि बहु प्रमाण तस्य है तो यह ली ।’

एक अला में ही घाचार्य शिष्य का जीव घराघायी हो रहा पर उसके नेत्र जैसे हीम रहे के उमे इन प्रकार हूँसते बेल कर भी मकरिका रो उठीं लत्र ही घम्य मर्हना बंदी भी पर देवी शिष्या नही रोई बहु सर्वथा संवत ही रही । उसके हाथ तो बने हुए ही ने घत नैत्रकारों ही से मकरिका की घोर बेल लकी घोर फिर नेत्रों में ही न जाने क्या कुछ कहा कि मकरिका कात हो गई । साथ ही उसके मुक्त पर बर्ष का-ठा नाव जा बल ) सजल नेत्रों घोर सुनकते घोष्यों पर मुस्मान भी लहर उठी ।

उत्रर सभ्राट् बोसे— ‘धार्यबर यह तो घापने उचित नही किया घाचार्य शिष्य सभ्राट्म्य वा भी उही प्रकार निष्ठावान सेवक इन सकता था जैसे कि बहु कमी मरा उत्रम का रहा वा ।’

इस पर घाचार्य बर्षकार लत्परता ने नत मस्तक हो बोला— ‘महाराज यह घाप की भूल है बहु तो केवल नरागम्य का ही उत्रक बन कर रह सकता था घोर घत्र जैसे मने घत्परम्य के साथ बिदवातघात किया है कदाचित् बीसा ही बहु भी किसी दि । इस अत्रा जित सभ्राट्म्य क साथ कर बीठता ।’

यह कह भमण्य बयका सवेन देवी शिष्या की घोर बल बोला— ‘बासीपुत्रा घम्य बंधियों के सम्बन्ध में घत्र बन निर्भय हाना घत्र तू घपने मत्य-कीघ्त स सभ्राट् का मन प्रसन्न कर ।’

किन्तु देवी शिष्या भी घाचार्य शिष्य की ही मीति उत्तर में मीन रही ।

बर्षकार जैसे देवी शिष्या के मनोभाव को ताड गया । घत बहु इस बार कुछ घृष्टामे बोला— ‘घरी लो बासी भी गया तू यह नही जानती कि यह सभ्राट् घजातशाज् की गत्रमभा है घोर बिछने तुमम घादेक किया है बहु मनव सभ्राट्म्य का महाभाग्य है बला तू मृत्य वरेगी या नही ?’

देवी शिष्या ने उत्तर में मरा की मीति लत्रवा घविचलित रहे कहा— ‘घाचार्य

मैंने तो सब ही एक व्यापक समाज के सम्मुख मृत्यु किया है और उठी नृत्य की मैं सम्मस्त भी हूँ सीमित समाज में मृत्यु करना मेरे लिए एक बुद्धिभा है।”

“परन्तु यह राजसभा है और घोषण छोड़नी यह सीमित हो जाती है यदि तू सभा के प्रसन्न कर सकी तो तुझे राज नर्तकी बना दिया जाएगा।”

“भाचार्य मुझे उसकी कोई प्रतिभाया नहीं।”  
तो फिर बिना प्रतिभाया के ही सभा के प्रसन्न करने के लिए मृत्यु कर तुझे मुक्त कर दिया जाएगा।”

“भाचार्य जब मुझे मुक्त करने वाली बैसाली ही टाम बन गई तो फिर प्रयास में स्वयं ही स्वयंभू होकर क्या कर्कषी।” सद्गता राज सभा बसो बैसालिकों के उन्मूलन कष्ट स्वयं के मूक उठी। सभी मुक्त स्वर में ‘कल्प-कल्प’ कह उठ। पर भाचार्य बर्षकार उत्तेजित हो उठा। सदैव बोला—“फिर भी भाव तुझे मृत्यु करना होगा।

दही चिप्या भी इस बार बुझता है बोली—“भाचार्य यह असम्भव है।”  
“असम्भव है ?” भाचार्य बर्षकार ने धाम्नेय नेत्रों से उत्तकी घोर देखते हुए कहा। किन्तु, दही चिप्या ने सर्वथा अविचलित रह, पुनः कष्ट स्वर में ही कहा—  
“हाँ भाचार्य असम्भव ही है। बंदी बना लेने से केवल ठन ही बिकस हो सकता है पर उसके साथ मन भी बाध बन जाए, यह प्रतिभार्य तो नहीं।

भाचार्य की उत्तेजना इस बार शीघ्र में परिवर्तित हो रही और वह उसी प्रकार धाम्नेय धामे बड़ लिया जिस भाँति कि कुछ समय पूर्व भाचार्य सिप्य की मोर बडा का रक्त रंजित बदन उसके हाथ में था ही। किन्तु उनके उठने से पूर्व ही सभा के सद्गता एक उच्च ठंडाका ने हँस पड़े फिर बोले—“भार्यवर जीवन में धामने कभी पराजय स्वीकार नहीं की यदि भाव कर ही तो है तो कदाचित् जीवन का एक घाटी समाज बुर हो रहेगा।”

और भाचार्य बर्षकार सभा के यह बात सुन न तो पीछे हट सभा और न धामे ही बड़ पाया। मस्तक नृत कर केवल इतना ही कह सभा—“सभा ! धामकी बैसी प्रान्ता।”





